CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

आ 81/12

भारतीय संगीत का एक ऐतिहासिक विश्लेषण

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

ालय
राणसी-५
/12

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अ 81/12
आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

SPECIMEN

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय संगीत
एक ऐतिहासिक विश्लेषण

[विश्वविद्यालयीन स्नातक कक्षाओं हेतु]

आम्नाय–ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

स्वतन्त्र शर्मा
एम०ए० (संगीत गायन), एम० ए० अंग्रेजी (साहित्य)
संगीत एवं ललित कला-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

SPECIMEN

प्रकाशक
टी० एन० भार्गव एण्ड सन्स
1131-कटरा, इलाहाबाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय—ग्रन्थालय
...निधि, करौंदी
वाराणसी-5

लेखिका के अन्य प्रकाशन :

- "पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति एवं भारतीय संगीत"
- "भारतीय संगीत-एक वैज्ञानिक विश्लेषण"
- "An Approach to Indian Music" in three Volumes, Recommended by Prayag Sangit Samiti to teach Indian music in foreign countries.

प्रथम संस्करण : 1988

मुद्रक—रामायण प्रेस (पिक मार्केट), 739-कटरा, इलाहाबाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय—ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

प्राक्कथन

भारत की विभिन्न कलाओं में विशेषरूप से संगीत का भारतीय संस्कृति और समाज से अटूट सम्बन्ध है। चराचर को व्यामोहित करने की शक्ति संगीत में हैं और प्रकृति के विभिन्न उपादानों से ही मानव को संगीत की प्रेरणा मिली। भारत में संगीत धर्म और अध्यात्म से जुड़ा था और उसी पर उसकी नींव पड़ी। मानव सभ्यता के विकास के साथ ही मठों, मंदिरों में संगीत को प्रश्रय मिला। प्रभाती गायन और अष्टयाम की आराधना पद्धति से संगीत का प्रचार-प्रसार हुआ। संगीत भक्ति एवं आराधना का प्रमुख बिन्दु बन गया। मध्य काल में संगीत का विकास राज दरबारों में अधिक हुआ। राजा, महाराजाओं ने संगीत को संरक्षण दिया, कुछ राजाओं ने तो रुचि लेकर संगीत की विधिवत शिक्षा भी ली। अकबर ऐसे ही संगीत प्रेमी सम्राट थे, और उनके दरबार में संगीतज्ञों को विशेष आदर, सम्मान प्राप्त था, शायद इसी कारण मध्य युग में संगीत का पूर्ण और भव्य विकास हुआ। मीरा, सूर, तुलसी, कबीर ने अपनी रचनाओं द्वारा संगीत की पावनी धारा को जनमानस तक पहुँचाया और आज भी उनके पद संगीत बद्ध होकर घर-घर गायें जाते हैं।

संगीत की यह परम्परा कभी रुकी नहीं, हाँ अंग्रेजों के शासनकाल में संगीत अवश्य आमजनता से विमुख होकर रियासतों व घरानों की चहारदीवारी में केन्द्रित हो गया। परन्तु एक बार फिर संगीत उद्धारकों के संरक्षण में संगीत की यह पावनी धारा पुनर्जीवित हो उठी, विश्वविद्यालयों में संगीत को पाठ्यक्रमों में उचित स्थान मिला, अनेक संगीत केन्द्रों की स्थापना का क्रम शुरू हुआ, जहाँ प्रयोगात्मक एवं शास्त्रीय दोनों ही पक्षों में संगीत की विधिवत शिक्षा का नियम बना। उसी संगीत की महान शक्ति से भला हमारे कवि कैसे दूर रहते, काव्य एवं संगीत तो परस्पर अटूट हैं, आधुनिक काल में महाप्राण निराला, महादेवी वर्मा आदि ने भारतीय संगीत की दिव्य शक्ति को समझा और अपनी काव्य रचनाओं में संगीत के मूलभूत तत्वों को बल दिया और इसी कारण इन दोनों कवियों की सभी रचनायें गेय हैं और सांगीतिक पुट से ओतप्रोत हैं।

इस प्रकार संगीत के विकास क्रम में वैदिक ऋचाओं, वेदमंत्रों, वेद संहिताओं से लेकर आज तक अनेक आरोह-अवरोह आये, किन्तु प्रवाह निरन्तर चलता रहा और संगीत के कलात्मक एवं शास्त्रीय दोनों पक्षों का विकास हुआ। विभिन्न घरानों में संगीत का विकास हुआ और संगीत ने मानव हृदय की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के साथ-साथ मानव को भी प्रभावित किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज संगीत के प्रभाव से शायद कोई भी अपरिचित न हो गत कुछ वर्षों में विश्वविद्यालयों में संगीत को उचित स्थान मिलने से अब घर-घर संगीत की मधुर झन्कार सुनाई देने लगी है। संगीत को उपलब्ध कराने में क्रियात्मक पक्ष के साथ-साथ शास्त्रीय पक्ष का सबल होना भी उतना ही अनिवार्य है। अनेक शोध प्रबन्ध एवं अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ संगीत पर प्रकाशित होते रहे हैं, फिर भी ऐसे ग्रन्थों की नितान्त आवश्यकता है जो आधुनिक वातावरण के अनुकूल हो और संगीत जिज्ञासुओं को उचित रूप में सामग्री प्रदान कर सके।

मुझे प्रसन्नता है कि विदुषी लेखिका सुश्री स्वतन्त्र शर्मा ने इस दिशा में एक अच्छा प्रयास किया है, उन्होंने भारतीय संगीत के इतिहास की परम्परा को विकसित करने की दिशा में बड़े ही मनोयोग से संगीत के विविध पक्षों को अपनी लेखनी में सम्बद्ध किया है। संगीत जैसे गूढ़ विषय पर उन्होंने लेखन कार्य करके एक सराहनीय कार्य किया है जो सभी संगीत प्रमियों एवं विद्यार्थियों के लिए अनेक दृष्टियों से उपयोगी है। संगीत के गायन के पक्ष के साथ-साथ आप उसका शास्त्रीय पक्ष भी सुदृढ़ कर पाने में समर्थ है। मुझे आशा ही नहीं वरन् विश्वास है कि श्रीमती शर्मा की इस कृति का विद्वजनों में समादर होगा और भविष्य में उनकी लेखनी संगीत को और भी उपयोगी सामग्री उपलब्ध करा सकेगी। पुस्तक प्रकाशन के लिए मेरी शुभकामनाएँ प्रेषित हैं।

हृदय नारायण श्रीवास्तव
निदेशक
उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र
14-सी० एस० पी० सिंह मार्ग,
इलाहाबाद

2-1-88

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

भारतीय परम्परा में संगीत का उद्गम वेदों से माना जाता है। संगीत का जन्म सर्वप्रथम यज्ञादि के अवसर पर गेय मंत्रों के रूप में ही हुआ। धीरे-धीरे संगीत भारतीय जीवन में इतना गहरा प्रविष्ट हो गया कि साहित्य एवं कला की तो बात ही क्या, वैज्ञानिक एवं अभितांत्रिक ग्रंथों तक का प्रणयन छन्दोबद्ध होने लगा और जब संगीत को ललित कलाओं के रूप में मान्यता मिली तो उसके शास्त्रीय और क्रियात्मक दोनों ही पक्ष सबल हो उठे। संगीत को वैज्ञानिक आधार पर नियोजित किया गया और उसके शास्त्रीय पक्ष को नियुक्त किया गया। संगीत की अनेक विधाओं का विकास हुआ। समाज के हर वर्ग ने संगीत को अपनाया और इस प्रकार संगीत के शास्त्रीय पक्ष को और भी सबल बनाने की आवश्यकता पड़ी। इसी क्रम में समय-समय पर होने वाले आचार्यों ने अनेक श्रेष्ठ ग्रंथों की रचना की और शास्त्र के आयाम में वृद्धि होती रही।

गत कुछ वर्षों से विश्वविद्यालयों में संगीत को मान्यता मिली है, विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम हेतु अनेक पुस्तकों की रचना की गई, अनेक शोध प्रबन्ध एवं अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हुये हैं, फिर भी ऐसे ग्रन्थों की नितान्त आवश्यकता है जो आधुनिक शिक्षा पद्धति एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम के स्तर पर विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके। अपने अध्ययन एवं अध्यापन काल की इस अवधि में मैं इस कमी को अनुभव करती रही हूँ, और उसी की आवश्यकता हेतु आज के बी० ए० एवं एम० ए० में शिक्षा प्राप्त कर रहे प्रबुद्ध विद्यार्थियों के लिए मैंने इस ग्रन्थ का सृजन करने का निश्चय किया।

वैसे तो भारतीय संगीत का इतिहास इतना विराट और व्यापक है कि एक-एक युग पर विशाल ग्रन्थों की रचना की जा सकती है, पर वे ग्रन्थ विद्यार्थियों को न तो आसानी से उपलब्ध होंगे और न ही समयाभाव के कारण वे उससे लाभान्वित होंगे। आज जबकि संगीत का प्रचार व प्रसार बहुत हो गया है, इस बात की आवश्यकता और भी अधिक हो जाती है, कि इस युग में शास्त्रीय संगीत को जो उचित सम्मान समाज में प्राप्त है, उस संगीत के ऐतिहासिक रूप को उचित माध्यमों द्वारा शिक्षा-संस्थाओं में सामान्य अध्ययन के लिए पहुँचाया जाय। भारतीय संस्कृति और संगीत तो विश्वविख्यात है सैकड़ो वर्ष पूर्व का इतिहास जान कर ही हम अपनी संस्कृति एवं कला का सम्मान कर सकते हैं। प्राचीन काल में संगीत कला का सम्बन्ध पूर्णतया धर्म के साथ जुड़ा हुआ था, इसे वैदिक राजाओं एवं मुस्लिम शासकों की राज सभाओं में समान रूप से स्थान मिलता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहा है, जैसा कि विदित है, भारत की राजनैतिक सीमाओं के बदलाव के साथ ही संगीत भी प्रभावित होता रहा। शासकों की रुचि का कलाकारों और विद्वानों पर अवश्य प्रभाव पड़ा और संगीत में बदलाव आता रहा। धीरे-धीरे हिन्दू-साम्राज्य का लोप होता गया और विदेशी अपने कदम भारत में जमाने लगे।

तेरहवीं शताब्दी के बाद जब सम्पूर्ण भारत में विदेशी राज्य फैल गया तो संगीत के विद्वानों ने अपने-अपने ग्रन्थ छिपाकर रखे और विद्या को देने से इन्कार कर दिया, क्योंकि भारत में विद्वानों के लिए उनकी विद्या ही पूजा की वस्तु थी। इसी कारण धीरे-धीरे उस युग से ही ग्रन्थ अस्पष्ट होते चले गये। वर्तमान शताब्दी में अंग्रेजों के आने के बाद एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण का उदय हुआ, क्रियात्मक पक्ष के साथ ही शास्त्रीय अध्ययन एवं शोध शुरू हुये, जिसके अन्तर्गत संगीत का ऐतिहासिक विश्लेषण और तुलना के क्षेत्र सामने आये। प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन और मनन होने लगा और आज उसी के फलस्वरूप विश्वविद्यालयों में संगीत के ऐतिहासिक पक्ष को जानने की अभिलाषा एवं आवश्यकता संगीत शिक्षकों एवं विद्यार्थियो में स्वाभाविक रूप से दिखायी पड़ती है। प्रस्तुत प्रबन्ध-रचना का संकल्प इसी दिशा में उठाया हुआ एक साधारण कदम है।

माननीय श्री हृदय नारायण श्रीवास्तव जी, निदेशक "उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र" संगीत के विविध पक्षों के प्रति अत्यन्त जागरूक हैं। आपकी विद्वता एवं सांगीतिक रुचि से इस क्षेत्र में सांस्कृतिक कार्यक्रमों की जो भरमार सी दिखाई देती है, उससे हम सभी संगीतप्रेमी अवगत हैं, संगीत के माध्यम से ही उनको जानने एवं उनकी विद्वता को समझने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है, कई कार्यक्रमों में उनसे सराहना एवं प्रोत्साहन प्राप्त करने का सुअवसर मुझे मिला और उसी प्रोत्साहन के फलस्वरूप शायद मैंने अपनी पुस्तक के लिए "दो शब्द" लिखने का आग्रह उनसे किया। उन्होंने सहर्ष इस पुस्तक का प्राक्कथन लिख कर मुझे गौरवान्वित किया है, उनकी सहृदयता, विद्वता एवं सांगीतिक रुचि के प्रति मैं हृदय से उनकी कृतज्ञ हूँ।

इस पुस्तक को पूर्ण करने में अनेक बाधाओं का भी सामना करना पड़ा, कई बार लेखन का क्रम अस्वस्थतावश टूटा और मुझे लगा कि मैं इस कार्य को पूरा नहीं कर सकूँगी, निराशा के ऐसे क्षणों में मैं सहृदय एवं अत्यन्त योग्य डाक्टर एस० एम० सिंह के कुशल उपचार के कारण ही इस पुस्तक के लेखन को आगे बढ़ाती रही, और आज स्वस्थ रह कर इस पुस्तक को आप तक पहुँचाने में समर्थ हूँ, किस प्रकार उनके प्रति कृतज्ञता और आभार प्रकट करूँ, शायद मेरे पास उस आभार के लिये शब्द ही नहीं हैं। अस्वस्थ रहने पर तो गाना, बजाना, पढ़ना, लिखना सभी असम्भव सा हो जाता है। और ऐसी स्थिति में एक संगीत प्रेमी को जो मानसिक तनाव होता है, उससे शायद आप सभी परिचित हों।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस ग्रंथ के पूर्व भी मेरे दो अन्य ग्रंथ "पाश्चात्य स्वरलिपि-पद्धति एवं भारतीय संगीत" एवं "भारतीय संगीत एक वैज्ञानिक विश्लेषण" प्रकाश में आये हैं। संगीत सेवियों, अध्यापकों एवं विद्यार्थियों ने मेरे इन ग्रन्थों को सराहा है, मुझे बराबर पत्र लिखते रहे हैं, विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं कालेजों में विद्यार्थियों ने उनसे लाभ उठाया है, निश्चय ही इस प्रेरणा से मैं उसी क्रम में एक अन्य ग्रन्थ को लिखने का साहस कर पाई हूँ। सदैव की भाँति माननीय डॉ० सुरेन्द्र शंकर अवस्थी, प्रधानाचार्य भातखण्डे कालेज आफ म्यूजिक एवं गुरु प्रो० उदय शंकर कोचक जी के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ, जो सदा ही प्रेरणा स्रोत रहे हैं। विशेष रूप से अपने विभागाध्यक्ष एवं पूज्य गुरु पं० रामाश्रय झा जी एवं अपने सहयोगी अध्यापकों के प्रति मैं ऋणी हूँ, जिन्होंने विद्यार्थियों के मध्य मेरी पुस्तकों को उपयोगी बता कर उसको मान्यता प्रदान की। इनके अतिरिक्त श्री विनयचन्द्र मौदगल्य, निदेशक "गान्धर्व महाविद्यालय" दिल्ली, प्रो० देवव्रत चौधरी, अध्यक्ष संगीत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, डॉ० सत्यभान शर्मा, अध्यक्ष संगीत विभाग; दयालबाग विश्वविद्यालय आगरा, डॉ० जयश्री बनर्जी, वर्द्धवान विश्वविद्यालय, भाई मुकेश गर्ग, सम्पादक "संगीत" हाथरस, एवं अन्य सभी गुरुजनों, मित्रों, सहयोगियों, एवं विद्यार्थियों के प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने मेरे पूर्व प्रयास की सराहना की, मुझे पत्र लिखे और प्रेरणा दी।

पुस्तक लेखन की इसी शृंखला में यह तीसरा ग्रन्थ आपके समक्ष प्रस्तुत कर रही हूँ। आशा ही नहीं वरन विश्वास है कि सभी संगीत प्रेमियों एवं विद्यार्थियों में वर्तमान लक्ष्य के प्रति सूझबूझ का विकास होगा और वर्तमान काल के निकटवर्ती इतिहास के प्रति जागरूकता लाने में ये पुस्तक कुछ योगदान कर सकेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। पुस्तक में त्रुटियाँ सम्भव हैं। अतः पाठकों से निवेदन है कि वे मुझे अवगत कराएँ, मैं स्वागत करूँगी।

1 जनवरी, 1988

स्वतन्त्र शर्मा
8/2 A, बैंक रोड, इलाहाबाद
दूरभाष : 54382

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

विषय-सूची

पृष्ठ

प्राक्कथन . iii

भूमिका . v

अध्याय—1

भारतीय संगीत का इतिहास 1

प्राचीन काल, संगीत का जन्म 1, संगीत के इतिहास का प्राचीनतम रूप 3, अन्धकार युग में संगीत 4, सिन्धु नदी की घाटी की सभ्यता और संगीत 6, वैदिक युग में संगीत 7, ऋगवेद में संगीत, यजुर्वेद में संगीत, अथर्ववेद में संगीत, सामवेद में संगीत, पौराणिक काल में संगीत 13, रामायणकाल में संगीत 14, महाभारत काल में संगीत 16, पाणिनि युग में संगीत 19, जनपदों के काल में संगीत 20, जैन युग में संगीत 21, बौद्ध युग में संगीत 22, मौर्य-काल में संगीत 24, शुंगकाल में संगीत 26, कनिष्क काल में संगीत 26, नागयुग में संगीत 28, भरत कृत "नाट्य-शास्त्र" 29, गुप्तकाल में संगीत 42, हर्षवर्द्धन-युग में संगीत 45, मतंग कृत "बृहद्देशीय" 46, नारदकृत "नारदीय शिक्षा" 51, "संगीत मकरंद" 54, राजपूत काल में संगीत 56, जयदेव कृत "गीत-गोविन्द" 56, उत्तरी तथा दक्षिणी संगीत की दो प्रथक धाराऐं 58, मध्यकाल 59, शार्ङ्गदेव कृत "संगीत रत्नाकर" 62, तुगलक युग में संगीत 70, लोदी काल में संगीत 71, लोचन कृत "राग तरंगिणी" 71 रामामात्य कृत "स्वर मेल कला-निधि" 76, हुमायूँ 81, अकबर का काल 83, मानसिंह तोमर 83, संत संगीतज्ञ स्वामी हरिदास 85, तानसेन 86, भक्त कवियों का योगदान 86, सूरदास 87, मीरा 88, तुलसीदास 89, कबीर 90, पंडित पुंडरीक विट्ठल कृत "सद्राग चन्द्रोदय," "रागमाला" "राग-मंजरी" 90, जहाँगीर 95, पंडित सोमनाथ कृत "राग-विबोध" 95, पं० दामोदर मिश्र कृत "संगीत-दर्पण" 96,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शाहजहाँ 101, औरंगजेब 102, हृदय नारायण देव कृत "हृदय कौतुक", "हृदय-प्रकाश" 106, भावभट्ट कृत "अनूप विलास", "अनूप संगीत रत्नाकर", "अनूपांकुश" 108, व्यंकटमुखी कृत "चतुर्दण्डि प्रकाशिका" 109, पं० श्री निवास कृत "राग तत्व विवोध" 112।

आधुनिक काल

पूर्वान्हि आधुनिक काल 114, सदारंग, अदारंग 115, मुहम्मद रजा 119, "संगीत सार", "राग कल्पद्रुम" सौरेन्द्र मोहन टैगोर 120, उत्तरार्द्ध अथवा वर्तमान आधुनिक काल 121, पं० विष्णुनारायण भातखंडे 122, पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर 127, वालकृष्ण बुवा 131, राजा नवाव अली 131, पं० रामकृष्ण राजा भैया पूँछ वाले, श्री डी० वी० पलुस्कर 132, मिस्टर क्लीमेन्ट 133; मिस्टर डेनेलू 134। — 114

अध्याय—2

भारतीय संगीत का पुनरुत्थान — 135

अध्याय—3

भारतीय संगीत के विकास और प्रचार में आधुनिक विज्ञान का प्रभाव — 142

अध्याय—4

राग-वर्गीकरण — 147

अध्याय—5

घराना — 166

अध्याय—6

सितार के घराने — 198

अध्याय—7

तवले के विभिन्न वाज और घराने — 207

अध्याय—8

ग्राम — 222

अध्याय—9

मूर्च्छना — 226

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय—10
जातिराग का विकास 240

अध्याय—11
प्रबन्ध 244

अध्याय—12
तालों का वर्गीकरण 253

अध्याय—13
उत्तर भारतीय तथा दक्षिणात्य संगीत 258

अध्याय—14
कर्नाटक संगीत के कुछ प्रमुख गीत प्रकार 267

अध्याय—15
गमक और उसके विभिन्न प्रकार 275

अध्याय—16
अल्पत्व-बहुत्व 221

अध्याय 17
तिरोभाव-आविर्भाव 286

अध्याय—18
किन्ही दो रागों में आलाप के द्वारा न्यास की क्रिया 288

अध्याय—19
ध्रुपद की लयकारी-राग हिन्डोल 290

अध्याय—20
धमार की लयकारी, पूरिया धनाश्री 294

अध्याय—21
कुछ तालों का विवरण 297

Some Important Quotations 300

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय संगीत का इतिहास

भारतीय संगीत का इतिहास तो बहुत पुराना है, और इसका विकास भी अन्य कलाओं की तरह धीरे-धीरे हुआ है। परन्तु जहाँ हमें अन्य कलाओं के प्रत्येक युग की ऐतिहासिक सामग्री यथेष्ट रूप में, उपलब्ध है, वहाँ संगीत में ऐसी किसी रचना की उपलब्धि नहीं होती जो प्रागैतिहासिककालीन संगीत के रूप और तत्पश्चात् होने वाले विकास-क्रम पर प्रकाश डाल सके। संगीतशास्त्र के मौलिक सिद्धान्तों को लेकर अच्छे ग्रन्थों की रचना नहीं मिलती। भारतीय संगीत का इतिहास वास्तव में इतना प्राचीन, समृद्ध और महत्वपूर्ण विषय है, परन्तु संगीत के क्रमबद्ध इतिहास का विवेचन और विकास का कोई क्रमिक इतिहास नहीं मिलता। लेकिन इतना तो निश्चित है कि प्रारम्भ में संगीत निःसंदेह एक कला के रूप में नहीं था।

ज्यों-ज्यों मानव आध्यात्मिकता की ओर बढ़ा संगीत कला की उन्नति हुई। परन्तु किसी भी युग में गाये-बजाये जाने वाले गीतों अथवा धुनों और नृत्य का क्या स्वरूप था, यह केवल अनुमान से जाना जा सकता है; इसका कोई उल्लेख या रिकार्ड नहीं मिलता। नोटेशन-पद्धतियों का आविष्कार नया है और उनसे पहले किसी देश के संगीत का क्या स्वरूप था, इस पर उस देश के सभी विद्वान् एकमत नहीं पाये जाते।

इतना तो सत्य है कि प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक की एक लम्बी यात्रा-काल में भारतीय संगीत कला ने अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो विविध राजघरानों और साम्राज्यों के उत्थान-पतन का प्रभाव संगीत कला और उसके कलाकारों के जीवन पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। संगीत के विकास-क्रम में वैदिक काल की पवित्रता रामायण और महाभारत काल की सात्विकता, हिन्दू राजाओं की स्थिरता, मुगलों की ऐय्याशी और कलापरस्ती, सन्तों की शक्ति-परायणता, मराठो की कठोर जीवन-साधना और कला शक्ति, राजे-रजवाड़ों की रंगीनी, अंग्रेजों की उपेक्षा और स्वतन्त्र युग के संघर्ष और चेतना का प्रभाव हमें दिखायी पड़ता है। इतिहास साक्षी है कि कलाकारों ने युगों से जो कुछ पाया है, अपनी कला में पिरोकर समाज को दिया है। संगीत के घरानों को युगों ने पाला है और आज युग के परिवर्तन होने के साथ ही उसमें अनेक परिवर्तन होते दिखाई देने लगे हैं।

संगीत का जन्म

जहाँ तक संगीत के जन्म का प्रश्न है, मनुष्य की सृष्टि के प्रथम दिन से ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम संगीत के अस्तित्व को मान सकते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि क्रम-विकास के पथ का अनुसरण करते हुए ही संगीत उस प्राचीन स्वरूप से अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुआ है। विभिन्न धर्मों में संगीत के जन्म को लेकर भिन्न-भिन्न कथाएँ प्रचलित हैं। धार्मिक दृष्टिकोण के अनुसार संगीत की उत्पत्ति वेदों के निर्माता ब्रह्माजी के द्वारा हुई। ब्रह्माजी ने यह कला शिवजी को दी और शिवजी के द्वारा देवी सरस्वती को प्राप्त हुई। सरस्वती जी से नारदजी को संगीत की शिक्षा प्राप्त हुई और नारदजी ने स्वर्ग के गन्धर्व, किन्नर और अप्सराओं को संगीत की शिक्षा दी। इसी शिक्षा के फलस्वरूप संगीत के अनेक विद्वान् हुए और उन्होंने संगीत के विकास-क्रम को आगे बढ़ाया।

इस प्रकार संगीत से देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों, नर-रत्नों, सन्त-महात्माओं का घनिष्ठ सम्वन्ध जोड़ा गया है। एक अन्य धार्मिक मतानुसार देवताओं के आदि-देव शंकर संगीत के सृष्टिकर्त्ता माने गये हैं। समस्त विद्याओं की देवी सरस्वती वीणावादिनी कहलायीं। मंगलमूर्ति गणेश मृदंग-वादक बने। नारद ने वीणा-वादन और गान से ही भगवान को वशीभूत किया। भगवान कृष्ण ने वंशी-वादन कर समस्त सृष्टि को चमत्कृत कर दिया। ऋषियों-मनीषियों में वाल्मीकि, तुंबरु, भरत, याज्ञवल्क्य आदि ने संगीत को न केवल सर्वोत्तम कला सिद्ध किया अपितु संगीत को मनुष्य-जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष की भी प्राप्ति का सहज साधन माना—

वीणा वादनत्तत्वज्ञः श्रुति जाति विशारदः।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्ष मार्गं निगच्छति ॥

(याज्ञवल्क्य स्मृति)

सभी धर्मों में संगीत के जन्म को लेकर भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ विद्वान् संगीत का जन्म पक्षियों से मानते हैं, जिनमें पं० दामोदर पंडित का मत प्रमुख है। उनके अनुसार—

"मोर से षड़ज्, चातक से रिषभ्, बकरा से गान्धार, कौआ से मध्यम, कोयल से पंचम, मेंढक से धैवत् और हाथी से निषाद् स्वर की उत्पत्ति हुई।"

अन्य विद्वान् जैसे जी० एच० रानाडे इत्यादि संगीत का जन्म बुलबुल नामक पक्षी से मानते हैं। इन सभी मतों को स्वीकार करते हुए इतना तो निश्चित रूप से मानना ही पड़ेगा कि संगीत के जन्म का कारण ईश्वर-उपासना अवश्य रहा है। ईश्वर की उपासना करने के लिए भला संगीत से अच्छा माध्यम और क्या हो सकता था। प्रार्थनाएँ, स्तुति, आराधना सभी संगीत के रूप में सामने आये; इसीलिए संगीत का आधार धर्म माना जाता है। धर्म और संगीत का परस्पर घनिष्ठ सम्वन्ध माना गया है। संगीत को ईश्वर प्राप्ति एवं मोक्ष का प्रमुख माध्यम माना गया। मनुष्य ईश्वर एवं देवी-देवताओं को नाच-गा कर प्रसन्न करता था।

एक अन्य भारतीय परम्परानुसार संगीत का सम्बन्ध वेदों से मान्य है। वेद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का वीज मंत्र है—'ओम्'। ओम् के तीनों अक्षर—अ, उ और म, तीन ईश्वरीय शक्तियों के द्योतक हैं।

अ = ब्रह्मा की शक्ति का द्योतक है।
उ = विष्णु की शक्ति का द्योतक है।
म = महेश की शक्ति का द्योतक है।

इन तीनों शक्तियों का पुंज ही "त्रिमूर्ति" परमेश्वर है। इन तीनों अक्षरों का ग्रहण ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद से किया गया है। इन अक्षरों के संयोग से ही 'ओम्' शब्द निर्मित हुआ है। संगीत के सप्तस्वर षड्ज, ऋषभ् आदि ओंकार (ओम्) के ही अन्तर्विभाग हैं। शब्द और स्वर की उत्पत्ति ओम् के गर्भ से हुई है; यथार्थतः ओम् शब्द ही संगीत का जनक है। समस्त कलाएँ ओम् में ही निहित हैं। जो ओम् की साधना करने में समर्थ होते हैं, वे ही संगीत का यथार्थ रूप ग्रहण करने में सफल होते हैं। इसमें लय, ताल और स्वर का समावेश है।

इस प्रकार संगीत के जन्म को लेकर भिन्न-भिन्न मत मिलते हैं। परन्तु ऐतिहासिक तथ्य अभी प्राप्त नहीं है। संगीत को इतिहास की सभ्यता और संस्कृति के विकास से अलग नहीं किया जा सकता। सभ्यता के विकास के साथ ही साथ संगीत का जन्म होना संभव है और यह भी सच है कि संगीत का स्तर उस काल की संस्कृति और सभ्यता के स्तर पर निर्भर करता है; क्योंकि संगीत के साधन भी सामान्य जीवन से ही प्राप्त होते हैं। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता है, वैसे-वैसे संगीत भी उत्कृष्ट रूप प्राप्त करता है।

संगीत के इतिहास का प्राचीनतम रूप

वैसे तो भारत के सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से वैदिक युग ही प्राचीनतम युग है, किन्तु ईसा मसीह से वीस-पच्चीस हजार वर्ष पूर्व भी सृष्टि का विकास हो चुका था। ऐसा खुदाई में प्राप्त प्राचीन मूर्तियों एवं शिलालेखों से ज्ञात होता है। इन्हीं मूर्तियों से प्राप्त उल्लेखों के अनुसार भारतीय संगीत का जन्म भी सृष्टि के आविर्भाव के साथ ही हो चुका था और ईसा मसीह के काल में भारतीय संगीत काफी विकसित रूप में था। इन तथ्यों से यह पुष्ट होता है कि भारतीय संगीत ही विश्व का सर्व प्रथम संगीत है और इसी से प्रेरणा लेकर अन्य देशों का संगीत भी विकसित हुआ।

चूँकि संगीत, सभ्यता और संस्कृति एक-दूसरे से जुड़े हुये हैं, इसलिए समय-समय पर अनेक प्रकार के सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक प्रभाव भी इस पर पड़ते रहे हैं। संगीत को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ भी भिन्न-भिन्न रही हैं। इस दृष्टि से सर्वप्रथम भारत की प्राकृतिक अवस्था का संगीत पर प्रभाव पड़ा। अपनी भौगोलिक सीमाओं के कारण भारत अन्य देशों से पृथक रहा है। उत्तर में हिमालय पर्वत और दक्षिण में हिन्द महासागर, पूर्व में जटिल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर्वत श्रेणियाँ और पश्चिम में पर्वतों पर दर्रों की स्थिति से भारत में बराबर विदेशियों का आवागमन होता रहा है। इसका परिणाम यह हुआ कि विदेशी हमारी सभ्यता और संस्कृति से परिचित हुए और साथ ही उनकी संस्कृति ने भारत-वासियों पर अपनी छाप डाली। उत्तरी भारत पश्चिमी सीमा के निकट था; इसलिए ईरान देश का संगीत विदेशियों के द्वारा हमारे देश में आया।

भारत के प्रत्येक प्रान्त के संगीत में इसीलिए परस्पर एक-दूसरे से कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य ही मिलती है। उत्तर भारतीय संगीत दक्षिण भारतीय संगीत से भिन्न है। क्योंकि प्राकृतिक रूप से यह दोनों भाग एक-दूसरे से पृथक रहे हैं।

उत्तर भारत—उत्तर भारतीय संगीत का आधार धर्म रहा है। यहाँ संगीत की विशेष उन्नति हुई, साधना हुई; परन्तु विदेशी आक्रमण भी उत्तरी भारत में ही अधिक हुए। भारत का यह भाग 'सोने की चिड़िया' कहलाता था। यहाँ के लोग लड़ाकू प्रकृति के नहीं थे। इसीलिए वे गुलाम हो गये। उनकी संस्कृति भी अछूती न रही। सर्वप्रथम आर्यों के आगमन से उत्तर भारतीय संगीत प्रभावित हुआ, फिर मुसलमानों के आ जाने के कारण उत्तर भारतीय संगीत बदला। फिर भी मूलरूप संगीत का भारतीय ही रहा। यहाँ के रहने वाले संगीत के महान् ज्ञाता और पंडित थे। वे विदेशियों के शिकंजे में आते गये, परन्तु उनकी कलाप्रियता नष्ट न हो सकी।

दक्षिण भारत—अब यदि हम दक्षिण की ओर दृष्टि डालें तो देखेंगे कि दक्षिण भारत तीन ओर से पहाड़ों से घिरा हुआ है, जिनकी वजह से यह उत्तरी भारत से पृथक हो जाता है। प्राकृतिक अवरोधों के कारण दोनों प्रान्तों का विकास भी अलग-अलग हुआ। दक्षिण भारत का संगीत मुख्य रूप से कर्नाटकी कहलाया। यह संगीत उत्तरी भारत से पृथक है। उत्तरी भारत पर विदेशियों के लगातार आक्रमण होते रहे, जिनके कारण विदेशी संस्कृति का प्रभाव स्वाभाविक रूप से उत्तर भारतीय संगीत पर पड़ा। दक्षिण भारत इन आक्रमणों से मुक्त रहा, क्योंकि पहाड़ों से घिरा होने के कारण आक्रमणकारी उधर न जा पाये। यही कारण है कि आज भी दक्षिण भारतीय संगीत उतना ही पवित्र और मौलिक है जितना वैदिक काल में था। विदेशी संस्कृति का प्रभाव उनके संगीत पर परिलक्षित नहीं है। इनकी सभ्यता और रहन-सहन का तरीका इसीलिए उत्तरी भारत से भिन्न है।

अन्धकार युग में संगीत

भारत का प्राचीनतम इतिहास ई० पू० 3500 के लगभग शुरू होता है। परन्तु उसके पूर्व भी सभ्यता और संस्कृति अवश्य रही होगी, ऐसा अनुमान है। परन्तु उसका इतिहास नहीं मिलता। इसीलिए इतिहासकारों ने उसे अन्धकार युग कहा है। इस अन्धकार युग के जो पाषाण-चिह्न प्राप्त हुए तथा जो मूर्तियाँ मिली हैं उनके आधार पर अन्धकार युग को चार भागों में विभक्त किया गया है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1—पूर्व पाषाण काल
2—उत्तर पाषाण काल
3—ताम्र काल
4—लौह काल

1—पूर्व पाषाण काल—इस युग में संगीत का कोई विकसित रूप नहीं मिलता है। मानव जंगली अवस्था में रहते थे। जंगली जानवरों का शिकार ही उनका भोजन था। गुफाओं में वे निवास करते थे। इस युग के मनुष्यों का रंग काला था। उन्होंने पत्थर का प्रयोग कर कई प्रकार के औजार बनाये। अपने मनोरंजन के लिए इन्होंने पत्थर के दो चौकोर मंजीरे की शक्ल के वाद्यों का निर्माण भी किया था, जिसको ये लोग बजाते थे। इस वाद्य का नाम "अस्सा" था जिसको यह लोग बजाते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि इन्हें संगीत कला का ज्ञान था और ये अनेक अवसरों पर संगीत का प्रयोग करते थे। हाँ, भाषा के अभाव में इनका गाना केवल कुछ स्वरों के माध्यम से ही होता था जिसका एक रूप हम आज भी अण्डमान द्वीप समूह, मलाया द्वीप समूह तथा फिली पाइन्स में देख सकते हैं।

2—उत्तर पाषाण काल—इस काल में संगीत की अवस्था पाषाण काल से अधिक विकसित रूप में आ चुकी थी। संगीत की पृष्ठभूमि में ही सभ्यता का जन्म हुआ। इस काल में एक दूसरी जाति ने आकर पाषाण काल के लोगों को पराजित किया। यह नयी जाति अधिक सभ्य सौर सुसंस्कृत थी। इन्हें संगीत का ज्ञान भी अधिक था। युद्ध में भी ये संगीत का प्रयोग करते थे। इनकी सभ्यता का विकास पूर्णतया संगीत पर आधारित था। संगीत कला के साथ-साथ इन्हें चित्रण कला का भी ज्ञान था। इस जाति के लोग कोल, संथाल तथा होस जाति के नाम से इतिहास में जाने जाते थे।

3—ताम्र काल—इस काल में द्रविण जाति के लोगों ने आकर पूर्व काल की जाति को पराजित किया। ये लोग ताँबे के बने हुए हथियारों को प्रयोग एवं उपयोग में लाते थे। इनके आभूषण सोने-चाँदी के बने होते थे। ये लोग संगीत के बड़े प्रेमी थे। नृत्य का प्रचलन भी हो चुका था। संगीत में अब शब्दों का प्रचलन भी हो गया था। सबसे विशिष्ट बात जो इस काल के संगीत में मिलती है, वह है आध्यात्मिकता की ओर झुकाव। इस युग में देवी-देवताओं की आराधना करते समय संगीत का प्रयोग किया जाता था। संगीत का जो धार्मिक रूप बाद में सामने आया, वह इसी युग की देन है। संगीत को इन्होंने ईश्वर-प्राप्ति का माध्यम समझा। आर्यों ने इसी युग के संगीत से प्रेरणा ली। संगीत इस युग में जीवन का अनिवार्य अंग बन चुका था। कुछ विद्वानों के अनुसार भारतीय संगीत की नींव इसी युग के संगीत पर आधारित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

4. लौह काल—ताम्र युग के बाद भारतवर्ष में पामीर पर्वत की ओर से एक अन्य जाति आयी, जो लोहे के हथियारों का प्रयोग करते थे। ये लोग भी संगीत के जानकार थे। परन्तु इनका संगीत द्रविणों के समान विकसित अवस्था को प्राप्त नहीं था। इन्होंने भी ईश्वर की प्राप्ति हेतु संगीत को आवश्यक माना। अनेक शुभ अवसरों पर ये गा-बजा कर अपना मनोरंजन करते थे। महिलाएँ और पुरुष दोनों में नृत्य का प्रचलन था।

सिन्धु नदी की घाटी की सभ्यता और संगीत

मोहन जोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई के बाद से सिन्धु घाटी की सभ्यता और संस्कृति सामने आयी है। इस खुदाई से यह प्रमाणित होता है कि सिन्धु नदी की घाटी में जो लोग रहते थे, उनकी सभ्यता बहुत उच्च कोटि की थी। सुन्दर कलात्मक भवन, मनुष्यों और देवताओं की मूर्तियाँ, सोने और अन्य धातुओं के आभूषणों को देखने से ज्ञात होता है कि उस समय की सभ्यता अत्यन्त उच्चकोटि की थी। संगीत सम्बन्धी वस्तुएँ भी मिली हैं; जैसे—शिव जी की ताण्डव-नृत्य करती हुई मूर्ति, अन्य अनेक नृत्य करती हुई नारी मूर्ति; इन सब से उस समय के संगीत का उत्कृष्ट स्तर का पता लगता है। वास्तव में खुदाई में प्राप्त अवशेषों से सिन्धु घाटी के लोगों की कला, संस्कृति, धर्म और विज्ञान आदि के विकसित रूप का आभास मिलता है। उस काल में सार्वजनिक रूप से नृत्य और गाने का प्रयोग होता था। संगीत जीवन का एक आवश्यक अंग था।

सिन्धु-सभ्यता में उपलब्ध लिंगादि आकृतियों तथा अन्य मूर्तियों से स्पष्ट है कि इनकी धर्म-साधना में मूर्ति-पूजा तथा वृक्ष आदि वस्तुओं की आराधना होती थी। विद्वानों के अनुसार भारत में प्रचलित शैव-परम्परा का प्रचलन एवं प्रवर्त्तन इसी काल में हो चुका था।

सिन्धु-घाटी की सभ्यता से यह प्रमाणित होता है कि विश्व में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति प्राचीनतम है। संगीत के उत्कृष्ट स्वरों का आभास मिलता है। इनकी कलात्मक आकृतियों से यह प्रमाणित होता है कि तत्कालीन जीवन में संगीत का पर्याप्त प्रचलन था तथा धार्मिक एवं लौकिक समारोहों पर गीत, वाद्य तथा नृत्य के द्वारा लोगों का मनोरंजन किया जाता था। गीत तथा वाद्यों के साथ ढोल, दुन्दुभि-जैसे वाद्यों से संगति की जाती थी। हड़प्पा में उपलब्ध एक चित्र में एक पुरुष को व्याघ्र के समक्ष ढोल बजाते हुए अंकित किया गया है। झाँझ और करताल के समान वाद्य भी यहाँ उपलब्ध हैं। वीणा-जैसे तंत्र वाद्य का कोई अवशेष इस सभ्यता में नहीं प्राप्त होता। सिन्धु घाटी की सभ्यता का आध्यात्मिक एवं नैतिक स्तर ही आर्यों के संगीत की नींव बना। इस काल के संगीत में कोई शृंगारिकता नहीं झलकती।

आर्य जाति के लोगों को सिन्धु-घाटी के लोगों से युद्ध करते समय अनेक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलात्मक वस्तुएँ प्राप्त हुईं और यहीं से उनकी संस्कृति और सभ्यता की नींव पड़ी। खुदाई में गाती हुई नारी की मूर्ति भी मिली है। वास्तव में द्रविण जाति की सभ्यता और संस्कृति तथा सिन्धु घाटी की सभ्यता और संस्कृति में बहुत समानता पायी जाती है। संगीत का विकास भी इन दोनों सभ्यताओं में एक-सा है।

वैदिक युग में संगीत

भारतीय संगीत की परम्परा को हम वैदिक युग तक ले जाते हैं जबकि इसका मूल उद्देश्य भगवान की आराधना करना होता है। भारतीय संगीत के इतिहास की दृष्टि से वैदिक युग ही प्राचीनतम् युग है। ई० पू० 700 से ई० पू० 800 तक यह युग माना जाता है।

वैदिक युग का प्रारम्भ आर्यों के आगमन पर होता है। आर्यों का संगीत इतना उत्कृष्ट था कि वे जहाँ भी गये, इन्होंने सबसे अधिक अपने संगीत की छाप उस देश पर डाली। अपने श्रेष्ठ चमत्कारिक संगीत के कारण ही विदेशों में अपना प्रतिष्ठित स्थान बना सके। इस काल में संगीत का उत्कृष्ट स्थान था। सुबह-शाम प्रत्येक परिवार में ईश्वर की आराधना होती थी। इस काल में जितना संगीत का विकास घरों में हुआ, उतना बाहर नहीं हो पाया। संगीत की दो धाराएँ हो चुकी थीं। पहली धारा शास्त्रीय संगीत की और दूसरी धारा लोक संगीत की थी। लोक संगीत में आर्यों के युद्ध-विजय से सम्बन्धित कथाएँ रहती थीं।

संगीत प्रायः ब्राह्मण वर्ग में था। वे ही कला-साधना कर समाज के चरित्र को उच्च स्तर तक ले जाते थे। ब्राह्मण ही संगीत की शिक्षा सर्वसाधारण को दिया करते थे। गायन, वादन और नृत्य तीनों का विकास हमें वैदिक युग में मिलता है। वीणा वाद्य का विकास इस युग में हो चुका था। गायन के साथ इसका प्रयोग भी हो चुका था। अधिकतर नारियाँ वीणा-वादन करती थीं। संगीत के विशेष आयोजन होते थे और नर्तकियाँ उनमें खुलकर भाग लेती थीं। समाज में नृत्य का प्रतिष्ठित स्थान था। पुरुष भी नृत्यों में रुचि रखते थे। नृत्य-कला काफी विकसित हो रही थी। इसका प्रमाण ऋग्वेद के श्लोक [5/33/6] में आया है—"नृत्यमनों अमृता"।

आर्य जाति स्वभाव से ही संगीतप्रिय थी। वैदिक युग में सार्वजनिक संगीत-आयोजन और प्रतियोगिताओं का एक मनोरंजक रूप 'समन' के नाम से देखने में आता है। यह समन एक प्रकार से सांगीतिक मेला था, जहाँ आमोद-प्रमोद के लिए युवक-युवतियाँ जाते थे। कुमार और कुमारियाँ वहाँ वर की खोज में जाते थे। इस सांगीतिक उत्सव में कुमारियों की सांगीतिक प्रतिभा की जाँच होती थी और सफल एवं प्रतिभासम्पन्न कुमारियों का चयन विवाह के लिए हो जाता था। यह 'समन' आगे चल कर 'समज्जा' के नाम से प्रस्फुटित हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैदिक काल में संगीत को उच्च सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। इसी युग में वीणा का प्रयोग होने लगा था जो कि पूर्ण सांगीतिक वाद्य-यन्त्र था।

वैदिक युग में चार वेदों तथा उनके विविध अंगों का विस्तार हुआ है। सर्व-प्रथम ग्रन्थ "ऋग्वेद" है जो प्राचीनतम् माना जाता है। इस ग्रन्थ में संगीत-सम्बन्धी प्रचुर सामग्री मिलती है।

ऋग्वेद में संगीत

इस काल में गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों दृष्टियों का पर्याप्त प्रचलन दृष्टि-गोचर होता है। गीत के लिए गीर, गातु, गाथा, गायन्न, गीति तथा साम शब्दों का प्रयोग होता है। ऋग्वेद की रचनाएँ स्वरावलियों में निवद्ध होने के कारण "स्तोत्र" कहलाती थीं। गीत-प्रवन्धों को गाथा कहा जाता था, जो एक विशिष्ट तथा परम्परागत गीत प्रकार है और इन गाथाओं का गायन धार्मिक तथा लौकिक समारोहों पर किया जाता था। इनके गायक "गायत्रिन्" कहलाते थे। गाथा' के लिए 'साम' नाम भी आता है। इन सामों का गायन कुछ विशिष्ट छन्दों के साथ किया जाता था। अन्त्येष्टि के समय पर साम का गायन होता था। वैदिक आर्यों के अनुसार यह गान मृत व्यक्ति को यम-धाम तक सुलभता से पहुँचा सकता है।

ऋग्वेद काल में गायन के साथ ही वाद्य का भी पूर्ण विकास मिलता है। तीनों ही प्रकार के वाद्य अवनद्ध, तन्तु और सुषिर वाद्य, जिसे 'नाण्ठी' कहा जाता था, उनका आविष्कार हो चुका था। अवनद्ध वाद्यों में दुंदुभि, आदंवर, भूमि दुंदुभि, वानस्पति; तंत्र वाद्यों में कांड, वीणा, कर्करी वीणा, वारण्य वीणा और सुषिर वाद्यों में तूणव, नादि और वाकुर आदि का उल्लेख आता है। प्रातःकाल के समय मंगल वाद्य के रूप में वीणादि वाद्यों का वादन किया जाता था।

ऋगवेद में गीत तथा वाद्य के साथ नृत्यकला का प्रचुर अस्तित्व पाया जाता है। नृत्य का कार्यक्रम खुले स्थान में जन-समूह के सामने होता था, जिसमें नर तथा नारी दोनों भाग लेते थे। यह भी उल्लेख मिलता है कि विवाहादि के अवसर पर चार से लेकर आठ तक सुहागिनियों को सुरा पिलाकर चतुर्वार नृत्य करने के लिए प्रेरित किया जाता था। विवाह के अवसर पर पत्नी के द्वारा गायन किये जाने का भी उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है।

यजुर्वेद में सङ्गीत—यजुर्वेद उन मन्त्रों का संकलन है जिनका गायन यज्ञादि के अवसर पर कर्मकाण्ड के लिए होता था। चार गायक होते थे, जिनको क्रमशः होता, अध्वर्यु, उद्गाता तथा ब्रह्मा कहते थे। यज्ञ के कार्यों का संचालन अध्वर्यु नामक ऋत्विज के द्वारा किया जाता था।

यजुर्वेद में मंत्रों के अक्षरों की संख्या निश्चित होती थी। यह मंत्र गद्यात्मक होते थे और अध्वर्यु के द्वारा गाये जाते थे। इन मंत्रों को उपांशु स्वर में उच्चारित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया जाता था। संगीत के विकास की दृष्टि से यजुर्वेद का कोई महत्व नहीं लक्षित होता, तथापि प्राचीन संगीत को जानने के लिए यजुर्वेद का अध्ययन आवश्यक है। यजुर्वेद में विशिष्ट सामों का सम्बन्ध विशिष्ट ऋतुओं से जोड़ा गया है। रथन्तर साम का गायन बसन्त ऋतु में, वृहत्साम का गायन ग्रीष्म ऋतु में, वैरूप का गायन वर्षा ऋतु में तथा शाक्वर और रैवत का गायन हेमन्त ऋतु में होता था।

यजुर्वेद में सामगायक का सर्वप्रधान स्थान है। अनेक वाद्यों का उल्लेख भी इसमें आता है; जैसे—वीणा, वाण, तूणव, दुन्दुभि, भूमि दुन्दुभि, शंख तथा तलव आदि। अश्वमेध आदि यज्ञों में मनोरंजन के लिए गाथागान तथा वीणादि वाद्यों का वादन किया जाता था। वीणा के महत्त्व का गान यजुर्वेद में मिलता है। वीणा राज्यलक्ष्मी का साक्षात् अवतार मानी गई थी तथा यजमान की श्री एवं समृद्धि की द्योतिका मानी गयी थी।

यजुर्वेद काल विशेषकर यज्ञादि का उत्कर्ष काल है, जिसमें आर्यों के यज्ञ सम्बन्धी क्रिया-कलापों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इन यज्ञों में सामगान का अनिवार्य स्थान रहा है। एक ही साम के विभिन्न खण्डों का गायन उद्गाता तथा उसके सहयोगी उद्गाताओं के द्वारा किया जाता रहा। साम उस समय का वैदिक संगीत था और गाथा नाराशंसो आदि लौकिक संगीत थे। गाथादि गीतों में वीर काव्यों की भरमार रहती थी तथा इन गीतों के व्यवसायी गायकों को लौकिक समारोहों पर आमंत्रित किया जादा था। सूत नाम की जाति ऐसे ही गीत तथा नृत्यों का व्यवसाय करती थी। राजसभाओं में इनका प्रतिष्ठित स्थान था।

उस समय की महिलाओं में संगीत कला-कौशल भरपूर पाया जाता है। उच्च वर्ग की महिलाओं को गान तथा वाद्य की शिक्षा दी जाती थी। निम्नकुल की महिलाओं को लोक नृत्य आदि समारोहों पर आमन्त्रित किया जाता था। सिर पर कलश लेकर एक से अधिक नर्तकियाँ वर्त्तुलाकार नृत्य करती थीं और मुँह से गीत के चरणों को गाती थीं।

अथर्ववेद में संगीत

अथर्ववेद का एक विशिष्ट स्थान है। इसमें सामवेद का गान होता है। अथर्ववेद के अनुसार साम यज्ञ-कर्म के लिए ओज, वल तथा मंगल प्रदान करते हैं। अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों में साम के पाँच विभाग---हिंकार, प्रस्ताव आदि का विवरण मिलता है। सामगान अथर्व काल में समृद्धि को पहुँच चुका था एवं विविध क्रिया-कर्मों में उसका स्थान था। पितरों की इष्टापूर्ति में सामगान का गायन होता था।

विशिष्ट सामों के अतिरिक्त गाथा, नारशंसी, रैनी आदि लौकिक गीत प्रकारों का उल्लेख मिलता है। वाद्यों में आघाट, कर्करी तथा दुन्दुभि का उल्लेख उपलब्ध होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथर्वकाल में वैवाहिक जीवन सुखद होने के लिए गन्धर्वों की प्रार्थना की जाती थी।

सामवेद में संगीत

सामवेद पूर्णतया संगीतमय है। साम संगीत से ही भारतीय संगीत का विकास हुआ, ऐसा कहा जाता है। गांधर्व वेद को सामवेद का ही उपवेद माना गया है। संगीत का मूल स्रोत सामवेद है। सामवेद एक ऐसा वेद है जिसके मंत्र यज्ञों में देवताओं की स्तुति करते गाये जाते थे। ऋचाओं के ही संगतिमय परायण से साम-गान का प्रथम विकास ऋषियों द्वारा किया गया। कवि ने इसकी सुन्दर कल्पना की है—"प्रथम साम तब तपोवने" अर्थात् जब माता भारती के ज्ञानाकाश में विविध विधाओं का उषाकालीन प्रकाश प्रस्फुटित हुआ, उसी समय ऋषियों के तपोवन में सामगान के स्वर सुनाई देने लगे। ऋचा सामगान का आधार है, जैसा छांदोग्य उपनिषद् में वर्णित है—

"ऋचि अध्यूढ़ं साम गीयते।"

जिस प्रकार सूर एवं तुलसी के पदों को संगीत के रागों में बाँध कर आज गाया जाता है, उसी प्रकार से साम गान में ऋचाओं का गायन कुछ पद जोड़ कर, जिन्हें स्तोत्र कहा जाता था, किया जाता था। सामगान का सम्बन्ध वेदाध्यायी वर्ग से रहा है।

साम वेद के द्वारा संगीत को नियम और विधान से आबद्ध कर दिया गया। पहले सामगान में केवल तीन स्वर—'उदात्त', 'अनुदात्त' और 'स्वरित' प्रयोग होते थे। आगे चलकर एक-एक करके अन्य स्वरों की स्थापना होती गई और वैदिक काल में ही सामगान सात स्वरों में होने लगा। इसके प्रमाण में—

"सप्त स्वरास्तु गीयन्ते सामपिः साम गावधैः।"

का संदर्भ दिया जाता है। पाणिनि के अनुसार इन तीन स्वरों से ही षड्जादि सात स्वर उत्पन्न हुए—

"उच्चौ निषाद गान्धारौ नीचा ऋषभ् धैवतौ।
शेषास्तु स्वरिता क्षेय षड्ज मध्यम पंचमाः॥"

अर्थात्—

उदात्त	अनुदात्त	स्वरित
नि, ग,	रे, ध,	स, म, प

आज भी संस्कृत विद्यालयों में श्लोकों और वेदों की ऋचाओं का पाठ और समवेत गान उपरोक्त स्वर-क्रम में देखा जाता है।

सामगान में गेय छन्द होते थे। इन छन्दों को एक विचित्र स्वर-विन्यास के साथ गाने की रीति उस समय थी। सामगान के मुख्य तीन भाग होते थे—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्ताव, प्रतिहार और उद्‌गीत । उनके तीन उपांग— हिंकार, उपद्रव व निधान थे । काफी आगे चलकर इन्हीं में से ध्रुपद के चार पद बने ।

साम गायन के निम्नलिखित दो रूप प्रचलित थे—

1—आर्चिक

2—गान संहिता

आर्चिक में ऋग्वेद की ऋचाओं के बोल थे और गान संहिता में केवल गीत के बोल थे । कुशल गायक इन्हें गायन का रूप देने के लिए थोड़ा परिवर्तित कर सकते थे ।

सामवेद आर्यों की संगीतज्ञता का ज्वलन्त उदाहरण है । आर्यों की मान्यता थी कि संगीत लोकरंजन एवं ईश्वर-रंजन के लिए उपयुक्त साधन है । साम गायन के अतिरिक्त "गाथा" नामक रचनाएँ भी उस समय थीं, जो लोकगीत के रूप में थीं और जिनका गायन विवाह आदि अवसरों पर वीणा के सहारे किया जाता था । धार्मिक अवसरों पर भी इनका आयोजन होता था । पर साम के समान शिष्ट या प्रतिष्ठित संगीत-शैली में इन 'गाथाओं' को उच्च स्थान प्राप्त नहीं था । पुरुषों के अतिरिक्त स्त्रियाँ भी सामगान करती थीं ।

वैसे जहाँ तक सामगान के साहित्य का प्रश्न है, यह ऋग्वेद का गेय रूपान्तर मात्र है । विद्वानों के अनुसार सामवेद की आर्चिक संहिता में कुल 8000 (आठ हजार) मंत्र थे और इनके गायन की संख्या 14820 (चौदह हजार आठ सौ बीस) थी । सामगान का महत्व यज्ञयांगों में सर्वोपरि रहा है । जिस प्रकार आधुनिक युग में संगीत शिक्षा के अन्तर्गत दीर्घ श्वास निरोध का अत्यन्त महत्व माना जाता है, इससे गीत के स्वरों में गम्भीरता आती है, जिस प्रकार एक ही साँस में विविध स्वर-समूहों का तथा तानों का गायन दीर्घ एवं दृढ़ तपस्या का फल होता है, उसी प्रकार साम गायन के लिए भी दीर्घ श्वाँस नितान्त आवश्यक माना जाता था ।

सामगान में स्वर का विशेष महत्व था । साम का आरम्भ 'ओम्' स्वर से करने की प्रथा थी—

"ओमिती सामानि गायन्ति ।"

(तैत्तरीय उपनिषद्)

साम गान का अन्त भी ओम् से ही होता था । शेष गायक इसी स्वर के साथ संगति करते थे । इसके लिए स्वर-साधना का नियम था । इसी संगति से मुख्य गायक के मूलभूत स्वर को संगति प्रदान होती थी, उसी प्रकार से— जिस प्रकार कि आधुनिक संगीत में संगति करने वाले सहगायकी तथा प्रमुख स्वरों के वादक वाद्य के द्वारा संगति की जाती है । प्रमुख गायक के साथ तीन से लेकर छः तक उपगायक होते थे जो 'हो' स्वर का गान करते थे ।

सामवेद की सहस्रों शाखाओं में से केवल तीन ही शाखाएँ अब शेष हैं और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्हीं की गान-परम्परा अल्पाधिक मात्रा में भारत के विभिन्न भागों में प्रचलित हैं। ये शाखाएँ हैं—जैमिनीय, कौथुनि तथा राणायनीय। इनके गीतों का संकलन संहिता तथा गान ग्रन्थों में उपलब्ध है तथा इनका यथार्थ स्वरमय रूप गुरू-परम्परा से ही प्रचलित रहा है।

इस प्रकार सामवेद का प्राचीन संगीत की दृष्टि से एक विशिष्ट स्थान है। यही वह ग्रन्थ है, जिसके रूप में भारतीय संगीत-सरिता के अनादि स्रोत का दृश्य स्वरूप हमारे सामने प्रथम वार आता है। वास्तव में साम ही अन्य वेदों के यथार्थ ज्ञान की कुंजी है—

"सामानि यो वेत्ति स वेत्ति तत्वम्।"

श्रीमद्‌भागवत गीता में सामवेद को ईश्वर का अंश माना गया है—"वेदानां सामवेदोऽस्मि।" जैमिनीय सूत्र के अनुसार—"गीतिषु सामाख्या।" अर्थात् जो मंत्र गाये जाते हैं, वहीं साम कहलाते हैं। साम शब्द का मूल अर्थ ही गान रहा है। अधिष्ठान के रूप में ऋचाओं से सम्बद्ध होने के कारण उनके लिए भी 'साम' शब्द का प्रयोग किया जाता रहा। ऋग्वेद के छन्दमय मन्त्रों का ही गायन साम गायन कहलाया। इन्हीं गेय ऋचाओं का संग्रह "सामवेद" कहलाया।

वैदिक काल के ये चारों ग्रन्थ उस समय की स्थिति को वताते हैं। इस काल की विशेषता यह थी कि संगीतज्ञ व्यावसायिक दृष्टिकोण से संगीत न तो सिखाते थे और न उस प्रकार की साधना करते थे। इस काल में संगीत और धर्म का एक ही रूप था। आर्यों का संगीत वास्तव में पवित्रतम् संगीत था। संगीतज्ञ की समाज में प्रतिष्ठा थी।

वैदिक युग में वीणा वाद्य का विशेष महत्व था। वीणा वाद्य के अनेक नाम थे; जैसे—महती, पिनाकी, कात्यायनी, रावणी, मत्त, घोषवती, कच्छपी, कुन्जिका आदि। वीणा के अनेक प्रकार थे; जैसे—गज से बजाने वाली वीणा, पीनाकीनेतर के दण्ड से बजाने की वीणा आदि। वीणा-जैसे उच्चकोटि का वाद्य आज तक नहीं आविष्कृत हो सका है।

वैदिक काल में आर्य अपने देवताओं की उपासना संगीत के माध्यम से ही करते थे। अनेक स्तुतियों एवं प्रार्थनाओं की रचना हुई।

गायन एवं वादन के अतिरिक्त नृत्य में इस युग में अच्छी प्रगति हुई। इस युग में रज्जु नृत्य, सलिल नृत्य, अरुण नृत्य-प्रकृति नृत्य, पुष्प नृत्य, वसन्त नृत्य आदि प्रकार प्रचलित थे।

मूल रूप से वैदिक काल में संगीत का आध्यात्मिक रूप ही प्रखर था। वैदिक दर्शन के अनुसार—देश, जाति, धर्म, व्यक्ति सभी के अन्तरप्राणों में एक वही दिव्य सत्ता 'परमब्रह्म' उपस्थित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैदिक युग में संगीत का जो शास्त्रीय रूप था उसके सामने विश्व के किसी भाग का संगीत उतना उच्च नहीं पाया जाता। भारतीय संगीत सैकड़ों वर्षों की एकान्त-साधना का फल है और यह वैदिक काल की ही मान्यता रही कि 'संगीत की सत्ता से पृथक ईश्वर की सत्ता नहीं है।'' यदि हम ईश्वर तक पहुँचना चाहते हैं तो संगीत के माध्यम को पकड़ लें। ऐसी दिव्य शान्ति संसार के किसी भी संगीत में नहीं मिलती।

पौराणिककाल में संगीत

वैदिक काल की पवित्रता और निर्मलता इस काल के संगीत में नहीं मिलती। फिर भी संगीत का जन-जीवन में महत्व था। समन के स्थान पर 'समज्जा'' का प्रचलन इस युग में हो चला था। पौराणिक युग में वैदिक युग के समान वर-वधू का चुनाव 'समज्जा' के द्वारा होता था। यह पूर्ण संगीतमय उत्सव था। परन्तु ''समज्जा'' में संगीत के शास्त्रीय रूप का स्तर अवश्य ही गिर गया।

पौराणिक युग में वीणा के अतिरिक्त कोई नवीन वाद्य नहीं मिलता। वैदिक युग के ही वाद्य-यन्त्र इस युग में प्रचलित थे। इस काल में मनुष्य अधिक व्यस्त हो गया था। क्योंकि जीवन-निर्वाह के लिए उसे कठिन संघर्ष करना पड़ता था। कंठ संगीत और नृत्य के क्षेत्र में इस युग में अवश्य प्रगति हुई। नाटक की प्रथा भी इस काल में शुरू हो गयी थी, परन्तु इन नाटकों में संगीत का पुट अधिक रहता था। ये नाटक विशेष अवसरों पर प्रदर्शित किये जाते थे। नाटक-मंडलियाँ नाटक और संगीत का प्रचार किया करती थीं। नारियाँ भी पुरुषों के साथ मिलकर नाटकों में भाग लिया करती थीं। नाटक को समाज में गौरवपूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त था। उधर समाज में संगीत की महत्ता भी बढ़ती जा रही थी। परन्तु एक विशेष बात यह थी कि संगीत की विधिवत् शिक्षा की परम्परा थी, जिसके कारण संगीतज्ञ सुशिक्षित हुआ करते थे। सांगीतिक ज्ञान की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था।

वैदिक काल के समान ही इस काल में विद्यार्थियों के लिए संगीत का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक माना जाता था। वैदिक काल के चारों आश्रम इस युग में भी समाज के आवश्यक अंग थे और विद्यार्थी-जीवन का पालन कर ही पुरुष जीविकोपार्जन में अग्रसर होते थे। गृहस्थ-जीवन में संगीत एक आवश्यक अंग था। इस युग में लोकगीत और लोक-नृत्यों का प्रचार बढ़ता जा रहा था।

इस युग में संगीत के प्रचार के लिए अनेक छोटे-छोटे वर्ग बन गये थे। इन वर्गों में संकीर्ण प्रवृत्ति का विकास होने लगा था। इस संकीर्ण प्रवृत्ति के कारण साधारण जनता संगीत से वंचित होने लगी थी। इसका एक कारण यह भी था कि संगीत का मनोरंजक-पक्ष प्रबल हो ताज़ा हो रहा था। संगीत की आत्मिक और पवित्र सुन्दरता का ह्रास होता जा रहा था और संगीत की बाह्य सुन्दरता अधिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रबल होती जा रही थी। सार्वजनिक उत्सवों का प्रचलन अधिक होने लगा था। वीणा-वाद्य का प्रचलन इस युग में अधिक था।

पौराणिक काल में यज्ञ तथा हवन का प्रचलन अवश्य कम हो गया था। अतः संगीत भी यज्ञों में कम तथा मानव-जीवन में अधिक से अधिक व्यक्तिगत जीवन का अंग अधिक बन गया था। संगीत को केवल (मात्र) मोक्ष का साधन न मान उसे जीवन की प्रगति का माध्यम भी समझा जाने लगा।

इस युग में तैत्तिरीय-उपनिषद्, ऐतरेय उपनिषद्, शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थों से संगीत का आभास मिलता है। याज्ञवल्क्य वर्ण, रत्न-प्रदीपिका, प्रतिभाष्प प्रदीप और नारदीय प्रभृति ग्रन्थों में भी संगीत का परिचय मिलता है। इन सभी ग्रन्थों में वैदिक सात स्वरों का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। अन्य पुराण जैसे—मारकण्डेय पुराण, वायु पुराण, विष्णु पुराण आदि में भी संगीत का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इन पुराणों में ग्राम राग, रागिनियों, तीन स्थानों (मन्द्र, मध्य और तार), मूर्च्छना नृत्य, नाट्य, वाद्य आदि का वर्णन प्राप्त होता है।

सामगान की प्रचुर प्रशंसा उपनिषदों में पायी जाती है। गीत, वाद्य तथा नृत्य से प्राप्त आनन्द को अलौकिक माना गया है। ब्रह्मानन्द की सर्वश्रेष्ठता बतलाते हुए संगीत के आनन्द को उसी के सोपान के रूप में माना गया है। उपनिषद् काल में संगीत कला में निपुण वर्ग को स्वर्गीय आनन्द का उपभोक्ता माना जाता था।

इस काल में सामगान का गौरवपूर्ण स्थान रहा। साम केवल यज्ञ आदि अवसरों पर ही, नहीं बल्कि दैनन्दिन जीवन का अभिन्न अंग था।

रामायण काल में संगीत

इस काल में रामायण और महाभारत की रचना हुई और इन दोनों ही ग्रन्थों की रचना-काल 500 ई० पू० से 500 ई० तक माना जाना जाता है। ये दोनों ही ग्रन्थ 'महाकाव्य' माने गये।

रामायण की रचना उत्तर वैदिक काल की एक महत्वपूर्ण एवं अनुपम देन है। ऋषि बाल्मीकि ने रामायण की रचना की। इस काल में संगीत की महान् पावनता के दर्शन होते हैं।

वैदिक काल के सदृश ही इस काल में भी संगीत का यथेष्ट विकास हुआ। रामायण में तत्कालीन समाजविषयक विस्तृत विवेचना प्राप्त है, जिससे हमें उस समय के सामाजिक जीवन में संगीत के स्थान तथा महत्व की पर्याप्त जानकारी उपलब्ध होती है। रामायण के गहन अध्ययन से ज्ञात होता है कि भरत नाट्य-शास्त्र में जिन मूल सिद्धान्तों का वर्णन है उनसे बाल्मीकि भली-भाँति परिचित थे। वाल्मीकि रामायण में विपंची-जैसी प्राचीन वीणाओं एवं शुद्धा सप्त जातियों का वर्णन है। जिससे यह सिद्ध होता है कि चार षड्ज ग्रामिक एवं तीनम ध्यम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जातियों से बाल्मीकि परिचित थे। संगीत के लिए रामायण में गांधर्व संज्ञा उपलब्ध है तथा युद्ध संगीत के लिए कहीं-कहीं 'युद्ध-गांधर्व' संज्ञा भी प्राप्य है। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक संगीत से भिन्न एक गांधर्व संगीत-शैली थी, जिसका सम्बन्ध जन साधारण से था जो उस युग में प्रचलित थी। बाल्मीकि रामायण तथा परवर्ती ग्रन्थों में सामाजिक जीवन के साथ जिस संगीत का सम्बन्ध दिखलाया गया है वही गांधर्व संगीत है। रामायण में संगीतबोधक गांधर्व संज्ञा के साथ-साथ संगीतज्ञ के लिए गांधर्व तत्वज्ञ शब्द भी प्रयुक्त है। गान किस प्रकार होना चाहिए, इस विषय में रामायण में यत्र-तत्र उल्लेख प्राप्त होता है—

"पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाण स्त्रिभिरान्वितम्।
जातिभिः सप्तभिर्बद्धं तन्त्रीलय समन्वितम्॥
रसैः शृंगार करुण हास्य रौद्र भयानकैः।
वीरादिभिश्च संयुक्तं काव्यमेतद् गायताम्।"
(बाल्मीकि रामायण)

अब हम रामायण-काल में संगीत के संदर्भ में आये हुए उदाहरणों का वर्णन करेंगे। रामायण के बालकाण्ड में ही संगीत का वर्णन आता है; जैसे—

"गायन्ता, नृत्य मानाश्च वादयन्तास्तु राघव।
आमोदम् परमम् यन्मूर्वराभरण भूषितः॥"

यहाँ नृत्य, गीत और वाद्य का उल्लेख हुआ है। रामायण में जहाँ रामचन्द्रजी के विवाह और धनुर्भंग का वर्णन है, वहाँ 'गीतवाद्रित', 'ननृतुः' आदि शब्दों के अतिरिक्त 'दुंदुभि' आदि शब्दों का भी उल्लेख है। वैदिक काल की भाँति इस काल में भी हर गृह में ईश्वर-आराधना की संगीतमयी स्तुति प्रातःकाल प्रस्फुटित हो उठती थी। रामायण में वर्णित है कि जब श्रीरामचन्द्र जी चौदह वर्षों के वनवास के उपरान्त अयोध्या आते हैं, तो नारियों ने मंगलगीत गाते हुए उनका स्वागत किया था और जनता ने नृत्य-गान कर।

रामायण-काल में सारे समाज में संगीत वैदिक काल की तरह ही पवित्र हो गया था। संगीत का विकास छोटे-छोटे स्वरों से उठकर विस्तृत रूप धारण करने लगा था। समाज का नैतिक स्तर ऊपर उठने लगा था। सामाजिक जीवन पूर्णतया सुख और शान्ति से परिपूर्ण था। प्रत्येक घर में संगीत का अस्तित्व किसी न किसी रूप में विद्यमान था। प्रातःकाल से ही संगीत के माध्यम से ईश्वरोपासना होने लगती थी। समाज में संगीत के उत्सवों का सार्वजनिक आयोजन होता था। रामायण में श्री रामचन्द्र जी के शुभ विवाह के अवसर पर संगीत का आयोजन हुआ था। स्त्रियों द्वारा मंगल-गान का उल्लेख भी रामायण में प्राप्य है—

"गावहिं मंगल मंजुल बानी।
सुनि कलरव कलकंठ लजानी॥"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीणा तथा मृदंग आदि वाद्य यन्त्रों का वादन किये जाने का भी वर्णन प्राप्त होता है। इसी अवसर पर अयोध्या नगरी में संगीतमय आनन्दोत्सव मनाने का भी उल्लेख हमें रामायण में मिलता है। भगवान राम के चौदह वर्ष के वनवास के बाद लौटने पर अयोध्या में जगह-जगह गाने-बजाने का उत्सव मनाया गया। कहने का तात्पर्य यह है कि रामायण-काल में संगीत चरमोत्कर्ष पर था। संगीतज्ञों की प्रतिष्ठा समाज में वही वैदिक काल के ही समान प्रतिष्ठित थी। दुन्दुभि वाद्य रामायण काल का मुख्य वाद्य था।

अनेक अवसरों पर संगीत का प्रयोग होता था। जैसे युद्ध में जीतकर लौटने पर दुन्दुभि बजाकर उनका स्वागत किया जाता था। रावण स्वयं संगीत-शास्त्र का प्रकाण्ड विद्वान् था। उसके दरबार में नाच-गाने का आयोजन हुआ करता था। संगीतमय वातावरण का आनन्द सब लेते थे। रावण की पत्नी मन्दोदरी स्वयं संगीतज्ञा थी। रावण के दरबार में सभी संगीतप्रिय थे। कहा जाता है कि स्वरसहित पाठ करने का आविष्कार सबसे पहले रावण ने ही किया था। वह स्वयं संगीत का अभ्यास करता था। रावण के द्वारा रचित एक संगीत-ग्रन्थ "रावणीयम्" भी उपलब्ध होता है। उसके अन्तःपुर की सभी रानियाँ सभी प्रकार के वाद्य-यन्त्रों को बजाने में निपुण थीं। भेरी, मृदंग, शंख, मुरज तथा पणव का उस समय विशेष प्रचलन था।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक स्थलों पर संगीतसम्बन्धी उल्लेख मिलते थे। भगवान राम स्वयं संगीतप्रेमी थे। सीताजी भी संगीत-प्रेमिका थीं। वाल्मीकि आश्रम में लव-कुश को भी संगीत की शिक्षा दी गई और रामायण की कथा को उन्होंने गाकर सुनाया था। कहने का तात्पर्य यह है कि रामायण-काल में सगीत के तीनों उपकरणों—गायन, वादन और नृत्य की उन्नति हुई।

राम राज्य में हर पग पर संगीत का बोलबाला था। समय-समय पर संगीत के आयोजन होते रहते थे। युद्ध में संगीत का प्रयोग होता था। रामायण-काल में संगीत का अत्यधिक विकास हुआ। संगीत-शिक्षण की भी परम्परा इस काल में थी। स्त्रियाँ खाली समय में नृत्य और गायन की शिक्षा लेती थीं। अनेक विदेशी साहित्यकारों ने रामायण-काल के संगीत से प्रभावित होकर उसका उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया है।

रामायण वास्तव में एक सुन्दर कृति है, जिसमें भगवान राम के चरित्र को संगीत के माध्यम से घर-घर पहुँचाया जाता है।

महाभारत काल में संगीत

महाभारत का भारतीय साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रहा है। प्राचीन भारत की सांस्कृतिक स्थिति का मानचित्र प्रस्तुत करने के कारण ऐतिहासिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाकाव्य के रूप में इसका सर्वत्र समादर है। महाभारत का निर्माण परम्परागत वीर-गाथाओं के द्वारा हुआ है।

इस काल में भी संगीत नर-नारियों में सामान्यतः प्रचलित था। यों तो पश्चिमी विद्वानों ने (पाश्चात्य विद्वानों ने) महाभारत का काल चार सौ ईसवी पूर्व निर्धारित किया है। किन्तु अनेक भारतीय विद्वान महाभारत का समय आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व मानते हैं। इस काल तक संगीत का अत्यधिक विकास हो चुका था। महाभारत-काल में संगीत का उच्चस्तरीय तथा निम्नस्तरीय प्रयोग मिलता है। एक ओर संगीत ईश्वरोपासना का माध्यम बना तो दूसरी ओर जन-साधारण के मनोरंजन का साधन। संगीत की इस स्थिति का वर्णन अनेक साहित्यिक, धार्मिक तथा पौराणिक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है, जिससे भारतीय संगीत के विकास-क्रम की विस्तारशः जानकारी भले ही प्राप्त न हो किन्तु संक्षिप्त रूप में तो हम जान ही सकते हैं।

वेदव्यासजी ने इस काल में 'महाभारत' की रचना की, जिसमें एक लाख श्लोक उपलब्ध हैं। यह सभी श्लोक संगीतमय हैं।

महाभारत-काल में साम तथा गांधर्व दोनों का विपुल प्रचार दृष्टिगत होता है। गीत, नाट्य तथा नृत्य का विशेष प्रयोग उत्सवों के अवसर पर किया जाता था। रैवतक पर्वत पर आयोजित लोकोत्सव में श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के द्वारा नृत्य-नाट्य देखे जाने का उल्लेख है। खाण्डव-दाह के अवसर पर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ने जल-विहार के साथ गीत, नृत्य तथा पान आदि का आयोजन किया था। द्रुपद की राजधानी में तूर्योघ की ध्वनि सदैव प्रसारित रहती थी। पांचालराज की सभा में गीत तथा नृत्य का स्वर सदैव गूँजता रहता था। महापुरुषों के आगमन के समय संगीत का आयोजन किया जाता था ,जिसमें गायक वर्ग के साथ गणिकाएँ भी योगदान प्रदान करती थीं। महापुरुषों के नगर छोड़ते समय संगीत से विदाई का आयोजन किया जाता था। देवराज इन्द्र की सभा में अर्जुन का गीत, वाद्य, नृत्य से स्वागत किया गया था, जिसमें तुम्बरू आदि गन्धर्वों ने वीणादि वाद्यों के साथ गान किया था तथा अप्सराओं ने नृत्य किया था। महाभारत में तत्, वितत्, घन तथा सुषिर वाद्यों का उल्लेख पाया जाता है। यज्ञ आदि अवसरों पर गायन के साथ सदैव वीणावादन किया जाता रहा।

महाभारत-संग्रह में सप्त स्वरों और गांधार ग्राम का भी वर्णन है। इसी युग में श्री कृष्णचन्द्र संगीत के महान् विद्वान हुए थे। वह वंशीवादन में तो प्रवीण थे ही, इसके अतिरिक्त गायन, वादन, नृत्य आदि में भी पूर्णरूपेण निपुण थे। भिन्न-भिन्न रागिनियों, तीन स्थानों, मन्द्र, मध्य, तार, मूर्च्छना, नृत्य, नाट्य, वाद्यादि का वर्णन भी इसी काल में प्राप्त है। 'हरिवंश पुराण' में एक प्रसंग आया

फा०—2

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है कि महाराज उग्रसेन को राज्य-भार सौंपकर श्रीकृष्ण यादवगण के साथ तीर्थ-यात्रा पर निकले। तीर्थस्थानों पर जल-क्रीड़ा के समय नृत्य-गीत-वाद्य आदि का सुन्दर आयोजन हुआ। अप्सराएँ ताल पर ताल देती हुई नृत्य करने लगीं। उनकी नृत्य-भंगिमा और वेष-भूषा को देखकर यादवगण परम आनन्दित हुए। बलदेव भी रेवती के साथ करताली दे-देकर नाचने लगे।

महाभारत-काल में धर्म और संगीत का घनिष्ठ एवं सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित हो गया था; अतः इस काल के संगीत में धार्मिक भावनाओं के पुट की प्रधानता उपलब्ध है। नारियाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं गणेश आदि देवताओं को पूजने के लिए गाती-बजाती हुई जाती थीं। मंदिरों में वे नृत्य करती थीं।

राजसभा में संगीतज्ञ गुणियों का गौरवपूर्ण स्थान था। गान तथा नृत्य में निपुण पुरुष एवं महिलाओं को राजकलाकार के रूप में नियुक्त किया जाता था, जो समय-समय पर गीत तथा नृत्य के आयोजन प्रस्तुत करते थे। राजस्त्रियों तथा अन्तःपुर की अन्य महिलाओं के लिए संगीत-शिक्षा का विशेष प्रबन्ध था। इस कार्य के लिए वृद्ध तथा गुणी व्यक्तियों की योजना की जाती थी। बड़े नगरों में संगीत-शिक्षा के लिए संगीतशालाओं का प्रबन्ध शासन की ओर से किया जाता था। मत्स्यराज की राजधानी में युवतियों की नृत्य-शिक्षा के लिए ऐसे ही विशाल नृत्य-भवन का निर्माण किया गया था।

महाभारत-काल में श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अर्जुन भी महान् संगीतज्ञ थे। महाभारत में अर्जुन को गान्धर्व विशारद बताया गया है। वे प्रखर वीणा-वादक थे। उन्होंने विराट की पुत्री उत्तरा को नृत्य और संगीत की शिक्षा दी थी। अधोलिखित श्लोक उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

"गीतं नृत्तं विचित्रं च वादित्रं विविधं तथा।
शिक्षयिपयाभ्यहं राजन् विराटस्य पुरस्त्रियः॥"

—महाभारत

उपर्युक्त श्लोक से यह प्रमाणित होता है कि अर्जुन संगीत के कुल जानकार थे तभी तो उन्होंने एक वर्ष तक निरन्तर संगीत का अध्यापन कार्यकुशलतापूर्वक सम्पादित किया। अज्ञातवास में जब पाण्डव विराट राजा की सभा में पहुँचे थे, तब अर्जुन ने संगीत-शिक्षा के द्वारा राजसेवा करने की इच्छा प्रकट की थी। उस समय जन साधारण में भी संगीत-शिक्षा की व्यवस्था थी—

"यदेतन्नर्वतंनागारं मत्स्यराजेन कारितम्।
दिवात्र कन्या नृत्यन्ति रात्रो यान्ति यथा गृहम्॥"

—महाभारत

महाभारत-काल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति श्रीकृष्ण की भगवद्गीता है। यह विश्व का सुप्रसिद्ध काव्य है, जिसमें ज्ञान, योग, भक्ति तथा कर्मयोग का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समन्वय हुआ है। गीता के सभी श्लोक आज भी संगीतमय होकर जन-जन को निष्काम कर्म का उपदेश देते हैं।

अतः हम देखते हैं कि महाभारत-काल में संगीत कला का अत्यधिक प्रचार था। वैदिक तथा लौकिक दोनों संगीत-प्रणालियों का समान रूप से प्रचलन था। लौकिक संगीत प्रायः गांधर्व नाम से व्यवहृत होता था। नृत्य के अन्तर्गत अनेक हाव-भावों का प्रयोग होता था तथा गीत एवं वाद्य के साथ इसकी संगति लोकोत्सवों पर होती थी। वीणा अधिक प्रचलित थी। वीणा के अतिरिक्त वेणु, मृदंग, पणव, पटह, मुरज, भेरी, पुष्कर तथा शंख इत्यादि वाद्यों का प्रचलन था। अवनद्ध वाद्यों के अतिरिक्त हाथ से ताली देने की भी प्रणाली विद्यमान थी। राज्य की ओर से गायकों, वादकों, नर्तकों आदि को प्रोत्साहन दिया जाता एवं पुरस्कृत किया जाता था। महाभारत-काल में संगीत उन्नत अवस्था में था।

पाणिनि युग में संगीत (800 वर्ष ईसा पूर्व)

पाणिनि का समय ईसा से 800 वर्ष पूर्व माना जाता है। पाणिनि द्वारा रचित ग्रन्थ "अष्टाध्यायी" इतिहास में अमर कृति है। यह ग्रन्थ संस्कृत व्याकरण पर लिखा गया है। इस ग्रन्थ के द्वारा हमें भारतीय संगीत का रूप भी ज्ञात होता है। यह वह समय था जब आर्यों का सामाजिक तथा धार्मिक जीवन जटिल हो गया था। इस ग्रन्थ में मन्त्रों के उच्चारण करने की विधि भी बतलायी गयी है। इस समय संगीत पूर्णतः ब्राह्मणों के अधिकार में था और ये ब्राह्मण शिक्षित तथा संगीत के ज्ञाता थे एवं संस्कृत के विद्वान भी थे। यही कारण था कि इस काल के समस्त ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे गये। यज्ञ-हवन इत्यादि के अवसर पर मधुर स्वरों में मन्त्रों का पाठ होता था। मंत्र ब्राह्मणों को कंठस्थ होते थे। ब्राह्मण संगीत की शिक्षा भी देते थे और इसी कारण जन साधारण में संगीत प्रचलित था। अनेक प्रकार के सांगीतिक उत्सव; जैसे—'उद्यान-क्रीड़ा', 'जल-क्रीड़ा', 'पुष्प-चयन' आदि समाज में प्रचलित थे। नृत्य भी काफी प्रचलित था। वाद्यों में विशेषकर वीणा और वंशी का प्रचलन था। परन्तु वाद्यों की अपेक्षा कंठ-संगीत इस काल में अधिक प्रचलित था। संगीत-उत्सवों में विशेषकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यह तीन वर्ग ही उपस्थित रहते थे। पाणिनि-काल की विशेषता थी कि चारों वर्णों के संगीत की धाराएँ अलग-अलग थीं। लोक-संगीत भी शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ प्रचलित था। अधिकतर ग्रामीण लोग ही लोक-संगीत का आनन्द लेते थे। पाणिनि काल में संगीत की पवित्रता और धार्मिकता उच्च कोटि की थी।

पाणिनि-युग के ग्रन्थों में हमें संगीत के सात स्वरों तथा गान्धार ग्राम का वर्णन मिलता है। शास्त्रीय संगीत का प्रचलन इस युग में अधिक था। पुरुष और नारी दोनों ही शास्त्रीय संगीत की शिक्षा ग्रहण करते थे। इस काल की विशेषता रही कि इस समय भक्ति और ज्ञान दोनों का समन्वय हमें मिलता है। संगीत की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पृष्ठभूमि भी मजबूत थी। संगीत का स्वर उच्च कोटि का था। इस काल में गीत, वाद्य तथा नृत्य का आयोजन 'सम्मद'-जैसे आनन्दोत्सवों के अवसर पर होता था। गीत वाद्य तथा नृत्य के साथ ही नाट्य के सामूहिक आयोजन हुआ करते थे।

पाणिनि के समय वैदिक संगीत अपने उत्कर्ष पर था। साम की शाखाओं का प्रचलन भारत भर में था। कुछ चरणों में महिलाओं को भी साम गान की शिक्षा दी जाती थी। सामगान के स्वरों का विभाजन उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित---इन विधाओं में किया जाता था। वाद्य-वृन्द के लिए 'तूर्य' की संज्ञा थी। वीणा इस वाद्य-वृन्द का एक आवश्यक अंग रहती थी। नाट्य-कला को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। गाथा, गीति आदि गीति प्रकारों के साथ हाथ से ताल देने वाला वर्ग 'पाणिक' कहलाता था। इस प्रकार पाणिनि के काल में संगीत उच्च शिखर पर था।

जनपदों के काल में संगीत

जनपद काल में संगीत की विशेष उन्नति नहीं हुई। इस काल में संगीत के आत्मिक सौन्दर्य पर कम बल्कि बाह्य सौन्दर्य पर अधिक ध्यान दिया गया। संगीत को मनोरंजन का साधन समझा जाने लगा। इस काल में वत्सराज उदयन नामक संगीतज्ञ का उल्लेख मिलता है।

वत्सराज उदयन के बारे में कहा जाता है कि इन्होंने राज्य का कार्यभार अपने मन्त्री को सौंप दिया और स्वयं संगीत की साधना में लग गये। इन्होंने संगीत के प्रचार और प्रसार के लिए अनेक प्रयत्न किये। संगीत को मनोरंजन का साधन न मानकर उसके आत्मिक सौन्दर्य पर विशेष बल दिया गया। जनपद-काल में देश छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त होने लगा था। परस्पर एक-दूसरे से ईर्ष्या थी। वत्सराज उदयन संगीत को एकसूत्रता में सबको पिरोने का प्रबल माध्यम मानते थे। उनका मत था कि संगीत के द्वारा परस्पर द्वेष-भाव को समाप्त किया जा सकता है। देश के वातावरण को संगीत के द्वारा शुद्ध और पवित्र बनाया जा सकता है। परन्तु वे अपने ध्येय में सफल न हो सके। संगीत मनोरंजन एवं विलासिता की ओर अग्रसर होता गया।

वत्सराज उदयन को वीणावादन का बहुत शौक था। उज्जैन के महाराजा चण्डमहासेन ने अपनी पुत्री वासवदत्ता को प्रशिक्षित करने के लिए वत्सराज उदयन को फाँसी देने से रोक दिया। वत्सराज उदयन और वासवदत्ता के प्रेम की गाथा 'भास' के प्रसिद्ध नाटक "स्वप्न वासवदत्तम्" में वर्णित है। यह एक संगीतप्रधान नाटक है।

इस काल में संगीत भारतीय सीमा से बाहर पहुँचा। ब्रह्मा, लंका आदि देशों में भारतीय संगीत का व्यापक प्रचार हुआ। भारतीय कलाकार भी संगीत के प्रचार हेतु बाहर गये। इस काल में शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ लोक-नृत्यों का भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रचार हुआ। संगीतमय नाटकों का भी प्रचलन थोड़ी मात्रा में था। हवन, यज्ञ इत्यादि के अवसर पर पुरुष और स्त्रियाँ मिलकर संगीत के माध्यम से देवी-देवताओं की आराधना करते थे। विशेष रूप से नारियों के अन्दर सांगीतिक प्रवृत्ति अधिक दिखलाई पड़ती थी।

जैन युग में संगीत

'जैन युग' में हम विशेपतया ब्राह्मणों, यज्ञों तथा वर्णाश्रमों का विरोध पाते हैं। इस काल में लोगों ने पशुओं के वलिदान और धार्मिक आडम्बरों के खिलाफ आवाज उठानी शुरू की, जिसका श्रेय महापुरुष महावीर स्वामी तथा गौतम बुद्ध को जाता है। इन दोनों महापुरुषों ने एक नयी विचार-क्रान्ति को जन्म दिया। महावीर जी के चलाये हुए धर्म को जैन धर्म कहते हैं। इस काल तक संगीत एक मात्र ब्राह्मणों के हाथ में था। जैन-युग में सर्वसाधारण के हाथों में संगीत पहुँच गया। अभी तक शूद्रों तथा अन्य छोटी-छोटी जातियों को ब्राह्मण संगीत नहीं सिखलाते थे। महावीर स्वामी ने इसके खिलाफ आवाज उठायी और कहा कि छोटे लोग भी ईश्वर-उपासना के लिए संगीत की शिक्षा लेने के अधिकारी हैं। संगीत ब्राह्मणों के अधिकार से बाहर निकल कर जन सामान्य में प्रचलित हुआ। शूद्रों एवं पिछड़ी हुई जातियाँ भी संगीत का कलात्मक ज्ञान लेने लगीं।

संगीत का आधार कुछ सिद्धान्तों पर रखा गया। जैसे यदि संगीत की शिक्षा लेनी हो तो अपने जीवन की बुराइयों से दूर रखो, जीव-जन्तु को मत मारो, धन-दौलत के लालच में मत पड़ो, अपनी इन्द्रियों को वश में रखो तथा मन और वचन से शुद्ध रहो। महावीर स्वामी ने इन सभी सिद्धान्तों पर विशेष बल दिया। उनका मत था कि हिंसा करने वाले व्यक्ति संगीत-जैसी कल्याणकारी कला की साधना नहीं कर सकते। इन सिद्धान्तों ने संगीत का स्तर ऊँचा उठाया और परिणामतः मानवीय नैतिक स्वर भी ऊँचा उठा। संगीत की शिक्षा से अब छोटे-छोटे वर्ग वंचित नहीं रहे। समाज में एकसूत्रता की भावना पनपी। संगीत को आत्मविकास का एक प्रबल माध्यम माना जाने लगा। सार्वजनिक उत्सवों में पुरुष और नारियाँ गा-बजाकर शामिल होते थे।

इस युग में वीणा-वाद्य का विशेष उल्लेख मिलता है। राजा भी संगीत में रुचि लेते थे। संगीत-प्रतियोगिताओं का आयोजन भी इस काल में होता था। सभी संगीतकार एक मंच पर एकत्रित होते थे, जिससे एकता की भावना का भी विकास हुआ। अनेक अच्छे-अच्छे वीणावादक भी इस युग में हुए। संगीत के शास्त्रीय-पक्ष का विकास इस युग में अधिक हुआ। संगीत का मनोरंजन-पक्ष दब गया और संगीत से उच्च आदर्शों का मूल्यांकन होने लगा। मानव सुन्दर आचरण की ओर अग्रसर होने लगे। संगीत साधना का विषय बन गया था। अनेक नयी गायन-शैलियाँ विकसित हुईं। वाद्यों में विशेषकर मृदंग, वीणा तथा दुन्दुभि का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रयोग होने लगा। नृत्य को भी सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। राजदरबारों में संगीत-समारोहों का आयोजन होता था, जिसमें नृत्य भी शामिल होता था। संगीतज्ञ एवं नर्तकियों को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी।

बौद्ध युग में संगीत

भारत की प्राचीन शिल्प एवं चित्रकला में बौद्धकालीन संगीत कला का परिचय उपलब्ध होता है। तिब्बत, चीन तथा हिन्देशिया-जैसे बौद्ध-अनुयायी देशों में आज भी इसी परम्परा को देखा जा सकता है। यह परम्परा भारत की ही देन है।

बौद्ध-काल में तक्षशिला विद्यादान का मुख्य केन्द्र था, जिसमें वैदिक विद्यालय, अष्टादश विद्यालय आदि में पाँच-पाँच सौ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। वाराणसी उस समय का दूसरा विद्या-केन्द्र था, जिसमें संस्कृत के स्वतन्त्र अध्ययन का विभाग था। नालन्दा, विक्रमशिला तथा भदन्तपुरी, जहाँ अन्य विश्वविद्यालयों के समान गन्धर्व का स्वतन्त्र विभाग था तथा इसके विभागाध्यक्ष के रूप में बड़े-बड़े संगीतज्ञों की नियुक्ति हुआ करती थी, संगीत के लिए 'गन्धर्व वेद' संज्ञा थी, जिसके अन्तर्गत गीत, वादन, नृत्य आदि विषय थे।

उस काल में उच्च वर्ग में संगीत की विधिवत शिक्षा का प्रचलन था। गौतम बुद्ध के स्वयं के परिवार में संगीत तथा नाट्यकला के जानकार थे। स्वयं उनकी माता मायादेवी कला-निपुण थीं। गौतम बुद्ध के लिए भी कलाकुशल पत्नी की माँग थी। उस समय के अन्तःपुरी में महती वीणा, मृदंग, पणव, तूर्य, वेणु आदि वाद्यों का वादन तथा गायन मनोरंजन के लिए किया जाता था। बुद्ध के जन्म के शुभावसर पर पाँच सौ वाद्यों का वृन्दवादन हुआ था।

नट, नर्तक, गायक, भेरीवादक तथा नाटककारों के लिए नगर में स्वतन्त्र निवास की व्यवस्था थी तथा नर्तकियों और गणिकाओं का संगीतज्ञ के रूप में विशेष सम्मान था।

बौद्धकाल में संगीत तथा नाट्य को राज्याश्रय प्राप्त था राजसभा में गायक, वादक तथा नर्तक नियुक्त रहते थे। इनको शासन की ओर से समुचित धन दिया जाता था और इन कलाकारों पर शासन का पूर्ण नियन्त्रण रहता था। अनेक उत्सवों का आयोजन होता था और गीत वाद्य तथा नृत्य की त्रिवेणी प्रवाहित हो उठती थी। चीनी-यात्री फाहियान ने ऐसा ही अनेक मगध में होने वाले उत्सवों का वर्णन अपने यात्रा-विवरण में दिया है। ये सामूहिक उत्सव समज्जा या 'समाज' कहे जाते थे। ऐसे अवसरों पर आख्यानों का गान भी किया जाता था।

बौद्धकाल में तत, वितत, धन तथा सुषिर इन चतुर्विध वाद्यों का प्रचुर उल्लेख पाया जाता है। तत वाद्यों में—वीणा, परिवादिनी, विपंची, वल्लकी, महती, नकुली, कच्छपी तथा तुम्ववीणा। वीणा उस समय का प्रियतम वाद्य रहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है । इस वाद्य ने महात्मा बुद्ध को भी प्रभावित किया था । इस काल में वीणाओं की प्रतियोगिताएँ हुआ करती थीं, जिनमें विजेताओं को पुरस्कार तथा राज्याश्रय प्राप्त होता था । अवनद्ध वाद्यों में मृदंग, भेरी, पणव, दुन्दुभि का उल्लेख मिलता है । घनवाद्यों में घण्टा, जल्लली, झल्लरी तथा कान्स्य ताल का निर्देश है । सुपिर वाद्यों में शंख, तूर्य, कुराल, शृंग आदि का उल्लेख है ।

इस काल के संगीत की विशेषता रही कि मानव-कल्याण के हित अनेक गीतों का सृजन हुआ, जिसका श्रेय मुख्यत: भगवान बुद्ध को जाता है । भगवान बुद्ध संगीत को सांसारिक न मानकर उसे कल्याणकारी और मानव की भलाई का साधन मानते थे । संगीत का आधार ही गौतम बुद्ध के उत्कृष्ट आदर्शों पर रखा गया । मानव-कल्याण, संसार में दया, देवताओं और मनुष्य की भलाई, कल्याण और हित के लिए गौतम बुद्ध ने प्रचार शुरू किया । अनेक भिक्षुओं को इस कार्य के लिए भेजा । संगीत में से विलासप्रिय तत्व निकाल कर उसे नैतिकता से पूर्ण माना । उनके अनुसार संगीत मनोरंजन का साधन नहीं है बल्कि मनुष्य को आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर करता है । इसका फल हुआ कि इस काल में संगीत के गीतों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ । शृंगारिक गीतों के स्थान पर अध्यात्म की ओर अग्रसर करने वाले गीतों की रचना होने लगी । इन गीतों में गौतम बुद्ध के जीवन के आदर्शों एवं सिद्धान्तों का वर्णन करता है । ये गीत सरल भाषा में गाये-बजाये जाते हैं, जिनका प्रभाव जन साधारण पर पड़ा । संगीत अनैतिकता को अलग कर गौतम बुद्ध के आदर्शों को सामने लाया । संगीत को ईश्वर के समान पवित्र माना गया । यही कारण था कि इस युग में अनेक संगीतज्ञ नारियाँ हुईं । आध्यात्मिक संगीत का विकास हुआ । गौतम बुद्ध के आदर्श-सम्मान में अनेक सुन्दर गीतों की रचना हुई ।

इसी सन्दर्भ में लंकावतार-सूत्र में वर्णित है कि भगवान बुद्ध के दर्शन होने पर रावण ने अपने स्कन्ध से लटकती हुई वीणा से महासुरों से युक्त गाथा-गान आरम्भ किया । वीणा-वादन इन्द्र नीलमणि दण्ड से किया जा रहा था तथा उस पर स्वरावलि का वादन किया जा रहा था । सड़ज, ऋषभ, गान्धार, धैवत, निषाद, मध्यम तथा कैशिक ।

अनेक भिक्षुणियों ने गा-गाकर गौतम बुद्ध के आदर्शों का प्रचार किया । वास्तव में यह युग संगीत के महान् आदर्शों का था । ज्ञान के उपदेश के साथ-साथ संगीत-कला का परिष्कार हुआ । इसी काल में थेरीगाथा की रचना हुई जो कि बौद्ध-भिक्षुणियों को भाव-प्रवण गीतों का संग्रह है । गीतों के माध्यम से आध्यात्किता के दर्शन होते हैं । यह एक संगीतमय काव्य-संग्रह है जिसमें 522 गीतों का संग्रह है । यह ग्रन्थ भिक्षुणियों के द्वारा ही रचा गया है । यह गीत राग-रागनियों में आबद्ध है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बौद्ध-युग में संगीत-साहित्य का बहुत विकास हुआ। संगीत पर अनेक सुन्दर ग्रन्थ लिखे गये। संगीत के वैदिक और लौकिक दोनों पक्षों का प्रचलन इस युग में रहा। सामवेद का शिक्षा वैदिक अध्ययन के अन्तर्गत मानी जाती थी तथा गान्धर्व का अन्तर्भाव शिल्प में किया जाता था।

संगीत के अन्तर्गत ग्राम, मूर्च्छना के साथ रागों का प्रचलन भी आरम्भ हो चुका था। नाटकों का प्रचलन भी इस युग में था और संगीत को इन नाटकों में विशेष स्थान प्राप्त था। संगीत-कला-विकास इस युग में भावनात्मक और कलात्मक दोनों ही दृष्टियों से हुआ।

मौर्य-काल में संगीत,

इस काल में चन्द्रगुप्त मौर्य का लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष पर शासन था। उसने पंजाब, मालवा, गुजरात, काठियावाड़ और सिंध को जीत कर मगध राज्य में मिला लिया। दक्षिण भारत पर चढ़ाई कर मद्रास तथा मैसूर तक का प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया। इसके काल में सिकन्दर के सेनापति सिल्यूकस ने 305 ई० पूर्व में भारतवर्ष पर चढ़ाई की। किन्तु इस लड़ाई का परिणाम संधि के रूप में हुआ और सिल्यूकस की बेटी का विवाह चन्द्रगुप्त से हुआ। यह तो रही इस काल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि। चन्द्रगुप्त मौर्य संगीत का बड़ा प्रेमी था। उसके दरबार में नित्यप्रति कलाकारों को गाने और नृत्य के लिए आमन्त्रित किया जाता था। कलाकारों को वह पुरस्कृत भी करता था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने संगीत के विकास के लिए बहुत प्रयत्न किया, परन्तु फिर भी संगीत की उतनी उन्नति इस काल में नहीं हुई जितनी कि बौद्ध युग में थी। सामान्य जनता संगीत को उनकी तन्मयता से नहीं सीख पायी बल्कि संगीत का मनोरंजक-पक्ष उभर कर सामने आया। आध्यात्मिक संगीत का जो विकास अभी तक हुआ था वह अब धूमिल पड़ता जा रहा था। संगीत को विलासिता का साधन समझा जाने लगा था। उसका कारण था— विदेशी सभ्यता का हमारी सभ्यता पर प्रभाव। यूनानियों के सम्पर्क से भारतीय संगीत पर गहरा प्रभाव पड़ा। भारतीय संस्कृति और यूनानी संस्कृति में समन्वय भी इसी काल में हुआ।

इस काल में उत्तरी तथा दक्षिणी दो अलग-अलग संगीत-पद्धतियाँ नहीं थीं। दोनों के संगीतकारों में परस्पर आदान-प्रदान होता था। चन्द्रगुप्त के दरबार में दोनों स्थानों के संगीतज्ञ एकत्रित होते थे। परन्तु शास्त्रीय संगीत का विकास इस काल में अधिक नहीं हुआ। लोकगीत एवं लोकनृत्य अधिक विकसित हुए। कारण यही था कि संगीत को मनोरंजन का साधन अधिक माना गया। संगीत के भावपक्ष के स्थान पर उसका कलापक्ष अधिक उभर कर सामने आया। परिणामतः अच्छे संगीत के पदों की रचना इस काल में नहीं मिलती। जहाँ तक संगीत के वाद्यों का प्रश्न है, कोई नया वाद्य नहीं सामने आया। वीणा, मृदंग, मजीरा, ढोल, वंशी, दुन्दुभि,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ढफ आदि वाद्य अधिक प्रचलित हुए। सार्वजनिक रूप से संगीत के आयोजन का प्रचलन काफी था। यूनानी भारतीय संगीत से अत्यन्त प्रभावित हुए और "मेगस्थनीज" ने इस काल के सम्पूर्ण वातावरण पर अपनी पुस्तक "इन्डिका" में प्रकाश डाला है। यूनानी और भारतीय संगीत का समन्वय हुआ और संगीतकारों ने एक-दूसरे देशों के संगीत को समझा।

चन्द्रगुप्त की मृत्यु के बाद उसके बेटे बिन्दुसार ने राज्य का कार्य-भार सँभाला। परन्तु संगीत के क्षेत्र में कोई विशेष परिवर्तन नहीं मिलता।

बिन्दुसार के बाद सम्राट अशोक के काल में संगीत का फिर से आध्यात्मिक रूप सामने आता है। एक छोटे से युद्ध ने सम्राट अशोक को आध्यत्मिक बना दिया सम्राट अशोक ने 262 ई० पू० के लगभग कलिंग के राज्य पर चढ़ाई की, कलिंग के सैनिकों की इसमें हार हुई। लगभग एक लाख आदमी मारे गये और डेढ़ लाख कैद किये गये। इस लड़ाई की विभीषिका को देख कर अशोक बहुत द्रवित हुआ और उसने लड़ाई न करने का फैसला किया। उसने बौद्ध धर्म अपना लिया। अशोक के इस परिवर्तन का प्रभाव तत्कालीन साहित्य और संगीत पर पड़ा। संगीत आध्यात्मिक हो गया और उसका ध्येय केवल मनोरंजन करना ही नहीं, बल्कि मानव मात्र की सेवा करना हो गया। ऐसा कोई भी संगीत इस काल में नहीं मिलता जो मनुष्य के आचरण को नीचे गिराता हो बल्कि आत्मिक विकास के लिए संगीत को माना गया। शृंगारिक गीतों को अधिक बढ़ावा इस काल में नहीं मिला। पुनः "समज्जा" नामक संगीत-उत्सव का आयोजन होने लगा। परन्तु मनुष्यों को नैतिकता से परे आचरण करते देख सम्राट अशोक ने 'समज्जा" को बहिष्कार करने का आदेश दिया। जहाँ भी अशोक को संगीत द्वारा गन्दगी और उच्छृंखलता का आभास हुआ, उसने उसे रोकने का प्रयत्न किया। उसने संगीतकार और साधारण समाज, दोनों के ही लिए नैतिकता और पवित्र आदर्शों को आवश्यक माना। अशोक की पत्नी तिष्यरक्षिता की दासी चारुमित्रा संगीत की विशेषता थी।

अशोक के सिद्धान्तों के अनुसार संगीत द्वारा क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या आदि कुप्रवृत्तियों का दमन किया जाना चाहिए। संगीतकार का चरित्र ऊँचा होना चाहिए। यही कारण था कि मौर्यकाल के प्रथम चरण में संगीतकारों का सामाजिक स्थान नीचा हो गया था, इस काल में फिर ऊँचा उठ गया। संगीतकार के लिए संयम सबसे बड़ा गुण माना गया। सम्राट अशोक के प्रयासों के फलस्वरूप भारतीय संगीत विदेशों में पहुँचा। हमारी संस्कृति और संगीत की महानता का आभास उन्हें हुआ। भारतीय संगीत और भारतीय धर्म का प्रचार करने हेतु गान्धार, कम्बोज, लंका, तिब्बत, चीन, ब्रह्मा, मिस्र में अनेक प्रचारक भेजे गये। लंका में सम्राट अशोक का पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा को भेजा। लंका में भारतीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत की जो भी प्रतिष्ठा बढ़ी, उसका श्रेय उन्हीं दोनों को प्राप्त है। कश्मीर, मिस्र दोनों में भारतीय संगीत की उच्चता को स्वीकार किया गया। यही कारण है कि आज चीन, मिस्र, जापान, यूनान, तिब्बत, सुमात्रा, जावा, कम्बोडिया, इन्डोनेशिया, लंका और वर्मा का संगीत भारतीय संगीत से समानता रखता है। स्याम, सुमात्रा, इन्डोनेशिया के कई नृत्य-प्रकार भारत के नृत्य-प्रकारों के समान हैं। यह सत्य है कि सम्राट अशोक के प्रयासों के ही फलस्वरूप संगीत अन्तर्राष्ट्रीय स्वर पा सका। सम्पूर्ण विश्व ने भारतीय धर्म के साथ-साथ भारतीय संगीत के महत्व को समझा, उसको सराहा और अपनाया। भारतीय संगीत की प्रतिष्ठा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय जगत में उसका मान बढाने के लिए सम्राट अशोक ने जो भी प्रयत्न किये उसका परिणाम आज सम्पूर्ण विश्व के सामने है। पुरानी नींवें आज और भी मजबूत होकर सामने आयी हैं।

शुंग-काल में संगीत

इस काल में संगीत के क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित नहीं हुआ। संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान पातंजलि द्वारा महाभाष्य नामक ग्रन्थ की रचना हुई, जिसमें संगीत के चारों अंगों का उल्लेख उपलब्ध है। वैदिक यज्ञों का पुनः प्रचार इस काल में होने लगा था। इन यज्ञों में मन्त्रों को गा-गाकर प्रस्तुत किया जाता है। गाये जाने वाले पद को गेय कहते थे और गान को गीति, गाने वाले के लिए गायक शब्दों का प्रयोग होता था। वाद्यों में मृदंग को प्रमुख स्थान था। परन्तु शास्त्रीय संगीत विषयक कोई ऐतिहासिक सामग्री उस काल में नहीं उपलब्ध होती है। हाँ, गुजरात प्रान्त में गरवा नृत्य का आविर्भाव इसी काल में हुआ।

कनिष्क-काल में संगीत (783-120 ई०)

इस काल में कुशान जाति ने भारत में प्रवेश किया। इन लोगों ने पश्चिमी चीन से चलकर पूर्वी शाखाओं (चीन) पर प्रभुत्व जमा लिया और ईसा की पहली शताब्दी के लगभग भारत में प्रवेश किया। कुशान वंश का सम्राट कनिष्क बहुत शक्तिशाली राजा था। सम्राट कनिष्क का साम्राज्य उत्तर-पश्चिम भारत तथा बाहरी प्रदेशों तक फैला हुआ था। वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था। कुशान जाति ने भारतीयों पर विजय तो पा ली, परन्तु भारतीय उच्च सभ्यता एवं संस्कृति से वे अत्यन्त प्रभावित हुए और उसे पूर्णतया आत्मसात कर लिया।

वे भारतीय संगीत से भी अत्यन्त प्रभावित हुए। सम्राट कनिष्क स्वयं संगीत का बहुत प्रेमी था। उसके दरबार में अनेक संगीतज्ञ रहा करते थे, जिनका यथोचित आदर-सम्मान होता था। संगीत का आध्यात्मिक पक्ष, जो मौर्य-काल में दुर्बल हो गया था, फिर उभर कर सामने आ गया। संगीतज्ञ संगीत की साधना करते थे तथा प्रशिक्षण देते थे। संगीत का स्तर फिर से एक बार ऊँचा उठा। जो संगीत पहले छोटे-छोटे वर्गों में बँट गया था, पुनः वर्गों के घेरे से बाहर निकल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आया। वाद्यों में वीणा का प्रचलन काफी था। गायन के साथ वीणा से संगत होती थी। अनेक शुभ अवसरों पर गायन-वादन के समारोहों का आयोजन होता था। सर्व-साधारण संगीत में रुचि ले, संगीत की शिक्षा भी ग्रहण करता था। संगीत का स्तर उच्च था। "भाव-नृत्य" और "कल्पना-नृत्य" का अधिक प्रचलन था।

संगीत के विकास में सम्राट कनिष्क ने बहुत योगदान दिया। अनेक नृत्य-गृह तथा नृत्यशालाओं की स्थापना करवायी जो समय-समय पर संगीत-समारोहों में कश्मीर, अफगानिस्तान, चीन तथा मगध से कलाकार एकत्रित होते थे। कलाकारों में परस्पर-प्रेम और सद्भावना का उदय कनिष्क-काल की अनूठी देन है। इसका परिणाम यह हुआ कि विदेशी कलाकार भारतीय संगीत से अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने भारतीय संगीत की अच्छी-अच्छी बातों को आत्मसात किया। इन संगीत-समारोहों से एकरूपता और कलात्मकता को बल मिला। भारत का विदेशी शक्तियों से बराबर सद्व्यवहार बना रहा। संगीतकारों में इसके पहले छोटे-छोटे वर्ग बन गये थे, जिससे उनके अन्दर प्रान्तीयता की भावना पनपने लगी थी। अब इस प्रगतिशील वातावरण का उन पर प्रभाव पड़ा और उनकी संकीर्ण विचार-धारा नष्ट होने लगी। संगीत द्वारा मानवता एवं विश्व-बन्धुत्व की भावना जागृत होने लगी। संगीत का स्तर इन्हीं तत्वों को लेकर बहुत उच्च हो गया था। इस काल की संगीत के विकास की दृष्टि से 'प्रगतिशील युग' कहा जा सकता है।

उत्तर भारत के समान ही दक्षिण भारत का संगीत भी विकास के पथ की ओर अग्रसर था। उत्तर भारतीय एवं दक्षिण भारतीय संगीतज्ञों में परस्पर आदान-प्रदान होता था अन्य प्रान्त जैसे गुजरात, बिहार, बंगाल के संगीतज्ञ भी देश भर के 'संगीत-समारोहों' में शामिल होते थे।

भारतीय संगीत का सम्पर्क मध्य एशिया तथा चीन से हुआ तथा चीन भारतीय संगीत से अत्यन्त प्रभावित हुआ। सम्राट कनिष्क ने अनेक कलाकारों को चीन भेजा, जिसका परिणाम यह हुआ कि चीन ने अधिकाधिक भारतीय संगीत को अपनाया। संगीत के साथ-साथ भारतीय धर्म, सभ्यता, संस्कृति और कला का प्रचार-प्रसार भी चीन एवं अन्य देशों में हुआ। कनिष्क-काल की एक और उपलब्धि रही, वह यह कि भारतीय संस्कृति का सम्बन्ध रोमन-साम्राज्य से हुआ। इस प्रकार भारतीय संगीत विश्व-स्तर पर बहुत लोकप्रिय हो गया।

सम्राट कनिष्क स्वयं तो संगीतप्रेमी था ही, वह अश्वघोष-जैसे महान संगीतज्ञ से अत्यन्त प्रभावित भी हुआ। अश्वघोष ने उच्चस्तरीय संगीत का निर्माण किया तथा एक 'बुद्धचरित' नामक महाकाव्य भी लिखा, जिसमें उच्चकोटि के गीत मिलते हैं। कनिष्क-काल में इन गीतों को जनता बड़े ही प्रेम से गाती-बजाती थी। सम्राट कनिष्क के दरबार में नागार्जुन, जो कि विश्व का महान दार्शनिक था, रहता था। इसी काल में वसुमित, चरक, मातृचेत आदि विद्वान हुए। भारतीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

संगीत के इतिहास में कनिष्क-युग एक बड़ा महत्वपूर्ण काल रहा है। अनेक बड़े-बड़े राष्ट्रों, जैसे—चीन, ईरान से भारत का निकट-सम्पर्क रहा। भारतीय सभ्यता, संस्कृति, साहित्य एवं संगीत का इस युग में विदेशों में अत्यधिक प्रचार हुआ, जिसके ऐतिहासिक प्रमाण आज भी इन देशों के संगीत को देखने से मिलते हैं। इसका कारण यही था कि सम्राट कनिष्क स्वयं संगीत का अच्छा ज्ञाता था और उसने संगीत के विकास के लिए इतने उच्चस्तरीय कदम उठाये। इस काल में संगीत वास्तव में भारतीय सीमाओं से परे अन्य देशों में पहुँचा। यद्यपि सम्राट कनिष्क स्वयं चीन से भारत में आया था, परन्तु भारतीय संस्कृति को उसने मुक्त हृदय से अपनाया। भारतीय ललित कलाओं के विकास में भरपूर योगदान दिया और यही कारण है कि आज भी भारतीय संगीत को विदेशों में महत्ता दिलाने के लिए सम्राट कनिष्क का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है।

नाग-युग में संगीत

[तीसरी शताब्दी ई० पू०]

नाग-युग का विशेष इतिहास नहीं मिलता और इसे 'अन्धकार युग' के नाम से जाना जाता है। जो भी थोड़ा-बहुत उल्लेख मिलता है वह इस प्रकार है कि नाग-जाति के लोग थोड़ी-सी संख्या में भारत में पहले से थे। परन्तु कुषाण जाति अधिक संख्या में भारत में आयी और उसने नाग-जाति पर विजय प्राप्त की; इससे नाग जाति कमजोर पड़ गयी और इनका कुषाणों के सामने अस्तित्व न रहा। किसी मत के अनुसार राजास्वामिन शिवनन्दी नामक एक नाग शासक कुषाणों के आने के पहले मध्य भारत में राज्य करता था। उसकी राजधानी पद्मावती थी, परन्तु कुषाणों के आगमन से वह दुर्बल हो गया। अब जब कि कुषाण वंश का पतन आरम्भ हुआ तो फिर से नाग जाति के लोग अस्तित्व में आ गये। इन्होंने कई भागों पर अपना अधिकार जमा लिया। कई शासक हुए, जिनमें मुख्यतया वीरसेन, भावनाग इत्यादि के नाम प्रमुख हैं। नाग जाति के लोग शिव के अनन्य भक्त थे, कलात्मक रुचि के थे और इनका प्रभाव दूर-दूर तक था। शिव का भक्त होने के कारण वे सर्प-पूजा में विश्वास करते थे। इनकी सर्प-पूजा को बाद में आर्यों ने भी अपनाया। नाग जाति सर्प-पूजा को धार्मिक पर्व के रूप के बड़े उत्साह से मनाती थी। इस पर्व पर नाग लोग गाते-बजाते तथा, नृत्य करते थे। नागों को रागों का ज्ञान था, जिसका आभास उनके संगीत से होता है। सर्प-पूजा के उत्सव को वे संगीतोत्सव के रूप में मनाते थे। नाग-कन्याएँ विशेष रूप से नृत्य में बड़ी प्रवीण होती थीं। वे वीणावादन में भी सिद्धहस्त थीं। इसकी झलक आज भी असम की पहाड़ियों में नागा पर्वतो की तराई में बसे नाग जाति में देखने को मिलती है।

नाग युग की सबसे महत्वपूर्ण घटना भरत मुनि का प्रसिद्ध ग्रन्थ "नाट्य-शास्त्र" का निर्माण होना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाट्यशास्त्र—आधुनिक काल में प्रचलित संगीत का आदि पुरुष कहलाने का अधिकार आचार्य भरत को ही है। क्योंकि संगीत के इतिहास में सर्वाधिक प्राचीन कृति इनकी ही है। 'नाट्यशास्त्र' की रचना इन्होंने तृतीय शताब्दी के लगभग की थी। भरतकृत नाट्यशास्त्र भारतीय संगीत की अनुपम और अद्वितीय देन है। इसको नाट्यशास्त्र, योगशास्त्र अथवा मोक्षशास्त्र भी कहा जा सकता है। श्रुति-विषयक अति सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक विवेचन के कारण यह नाट्य शास्त्र है। अनहद नाद एवं नृत्य का सम्बन्ध योग के साथ बताने के कारण यह योगशास्त्र है। मोक्षशास्त्र इसलिए है क्योंकि अनहद संगीत एवं स्वयंभू नृत्य, ये योग के सर्वोत्तम कारण हैं।

वास्तव में भरत का नाट्यशास्त्र भारतीय साहित्य तथा संगीत का वृहद् कोष है तथा दोनों के सम्बन्ध में प्राचीन और प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करता है। रस, छन्द, भाषा, वेषभूषा, रंगमंच, अभिनय, संगीत तथा नृत्य में से ऐसा कोई विषय नहीं, जिसका विवरण इस ग्रन्थ में न हुआ हो।

नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में इन्द्रध्वज नामक उत्सव के अवसर पर नाट्य-प्रयोग किये जाते समय संगीत के लिए नारदादि गन्धर्वों की वाद्य-विधान के लिए स्वाति-जैसे वाद्य-विशारदों की तथा नृत्य के लिए अप्सराओं की योजना निर्दिष्ट है। नाट्यशास्त्र में गान्धर्व का उल्लेख है। गान्धर्व का सम्बन्ध गन्धर्व से है, जो वैदिक काल से लेकर गान-कला में विशारद रहे हैं। गान्धर्व सम्यक् रूप से गाया जाने वाला गीत है तथा वीणा एवं वंश इसकी शाखाएँ हैं। गान्धर्व के तीन अंगों का उल्लेख इस प्रकार है - (1) स्वर, (2) ताल, (3) पद। गान्धर्व में स्वरों का स्थान प्रमुख है। स्वर-अंग के अन्तर्गत स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना, स्थान एवं साधारण। ये अट्ठारह जातियाँ चार वर्ण, अलंकार तथा गीति का समावेश है। ताल के अन्तर्गत आवाद, निष्काम, विक्षेप, उवेशक आदि अंगों का अन्तर्भाव है। पद अंग के अन्तर्गत स्वर, व्यंजन, वर्ण, सन्धि, छन्द, जाति आदि का समावेश किया गया है।

गान्धर्व मुख्य रूप से गीत का बोधक है जो स्वर तथा ताल से समन्वित पद-समूह पर आश्रित होता है। सार्थक शब्दों का समूह स्वर तथा ताल में निबद्ध होकर गीत कहलाता है। भरत के अनुसार नृत्यकला का समावेश गान्धर्व में नहीं होता अपितु वाद्य-वादन का 'समावेश' होता है।

नाट्यशास्त्र में नाट्य की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर अन्त तक संगीत का प्रयोग बराबर होता रहा है। शंख, दुन्दुभि, मृदंग, पणव इत्यादि तथा वाद्यवृन्द का वादन किया जाना चाहिए। इन वाद्यों की ध्वनि मंगलप्रद मानी गई है।

नाट्य के अन्तर्गत ध्रुवा नामक गीतों का विशिष्ट स्थान है। नाट्य में चार गीतियों का प्रयोग विहित हैं—मागधी, अर्द्धमागधी, सम्भाविता तथा पृथुला।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाट्य का ऐसा एक अंग नहीं जो संगीत के प्रयोग से विरहित हो। नाट्य संगीत में वाद्य-वादन का प्रमुख स्थान है। वाद्यवृन्द के लिए 'कुतुप' संज्ञा है।

भरतकालीन नाट्य में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

संगीत में स्वर एवं श्रुति-व्यवस्था

नाट्यशास्त्र नाट्य का ग्रन्थ है। किन्तु इसके तीन अध्यायों 28, 29, 30 में संगीतसम्बन्धी विषयों का समावेश है।

श्रुति की परिभाषा नाट्यशास्त्र में उपलब्ध नहीं है, परन्तु स्वरं के अन्तर्गत सूक्ष्म ध्वन्यन्तरों का संकेत है। स्वर के लिए वादी, सम्वादी, अनुवादी तथा विवादी संज्ञा है। वादी वह है जो अंशस्वर होने के कारण बहुल रूप से प्रयुक्त होता है।

"तल यो पंत्राशः स तस्य वादी।"

जिन दो स्वरों के बीच में नौ और तेरह श्रुतियों का अन्तराल है वे परस्पर सम्वादी कहे गये हैं।

षड्जग्राम में षड्ज तथा मध्यम षड्ज तथा पंचम, ऋषभ, धैवत, गान्धार तथा निषाद इन स्वर जोड़ों का परस्पर सम्वाद है। मध्यम ग्राम में षड्ज-पंचम सम्वाद को वर्ज्य कर शेष सभी सम्वादी जोड़े षड्ज ग्राम के समान रहते हैं। विवादी स्वर वह है जिनके मध्य में बीस श्रुतियों का अन्तराल है। भरत के अनुसार बीस श्रुतियों का अन्तर रे ग तथा ध नि में होने के कारण ये स्वर परस्पर विवादी हैं।

वादी, सम्वादी तथा विवादी के अतिरिक्त शेष सभी स्वर परस्पर अनुवादी बताये गये हैं।

षड्ज तथा मध्यम दोनों ग्रामों में सात स्वरों के अन्तर्गत कुल वाईस श्रुतियाँ हैं।

षड्ज ग्राम में षड्ज से आगे तार षड्ज तक 3, 2, 4, 4, 3, 2 तथा 4; इस प्रकार प्रत्येक स्वर के श्रुत्यान्तर है। मध्य षड्ज की 4 श्रुतियाँ, ऋषभ की 3, गान्धार की 2, मध्यम की 4, पंचम की 4, धैवत की 3 तथा निषाद की 2 श्रुतियाँ मानी गई हैं। श्रुतियों की सहायकगत संख्या कुल 22 होती हैं।

भरतकालीन ग्राम—नाट्यशास्त्र में दो ग्रामों का नामाल्लेख है—षड्ज तथा मध्यम। तृतीय ग्राम जो कि गान्धार ग्राम के नाम से विख्यात है, इसका उल्लेख भरत ने नहीं किया है।

षड्ज तथा मध्यम दोनों ग्रामों में कुल वाईस श्रुतियाँ हैं तथा इन श्रुतियों का स्वरगत विभाजन दोनों ग्रामों में प्रायः समान है।

षड्ज ग्राम—षड्ज (चतुःश्रुतिक), ऋषभ (त्रिश्रुतिक), गान्धार (द्विश्रुतिक),

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मध्यम (चतु:श्रुतिक), पंचम (चतु:श्रुतिक), धैवत (त्रिश्रुतिक), निषाद (द्वि-श्रुतिक)।

मध्यम ग्राम—मध्यम (चतु:श्रुतिक), पंचम (त्रिश्रुतिक), धैवत (चतु:-श्रुतिक), निषाद (द्विश्रुतिक), षड्ज (चतु:श्रुतिक), ऋषभ (त्रिश्रुतिक), गान्धार (द्विश्रुतिक)।

षड्ज तथा मध्यम ग्राम का अन्तर पंचम स्वर में निहित है। षड्ज ग्राम का पंचम सत्रहवीं श्रुति पर स्थित है। मध्य ग्राम का पंचम सोलहवीं श्रुति पर स्थिति होता है। षड्ज ग्राम के पंचम को एक श्रुति उतारने पर ही मध्यम ग्राम की उत्पत्ति होती है, स्वतन्त्र रूप से नहीं।

भरतोक्त श्रुतिदर्शन विधान
[सारणा चतुष्टई]

षड्ज तथा मध्यम ग्राम का श्रुति अन्तर दिखाने के लिए भरत ने नाट्य-शास्त्र में विधि बतायी है जो श्रुति दर्शन विधान कहलायी। इसी प्रक्रिया के लिए संगीत रत्नाकर आदि मध्यकालीन संगीतविषयक ग्रन्थों में "सारणा" नाम दिया गया है। यह प्रक्रिया निम्नवत है—

दो समान वीणाएँ षड्ज ग्राम में हों; जिनके तार, दण्ड तथा मूर्च्छना एक समान हों। इन दो वीणाओं में से एक को मध्यम ग्राम की कहना चाहिए। जिससे उसके पञ्चम षड्जग्राम के चतु:श्रुतिक प के स्थान पर एक श्रुति उतरने से त्रिश्रुतिक सिद्ध होता है और मध्यम ग्राम की स्थापना होती है।

इन दो पंचमों का अन्तर ही 'प्रमाण-श्रुति' है। इस 'प' के आधार पर पूरी वीणा पर "षड्ज ग्राम" की स्वरावली स्थापित करने से सातों स्वरों की एक-एक श्रुति अपने-आप उतर जायेगी; यही पहली सारणा है।

अब पंचम को फिर से उतार कर उसके अनुपात में चल वीणा पर पुन: षड्ज ग्राम स्थापित करना है। अब चल वीणा में दो श्रुतियाँ उतरी हुई दिखाई देंगी और दो श्रुति वाले ग एवं नि अचल वीणा के 'रे' एवं 'ध' से बिल्कुल मिल जायँगे। यह दूसरी सारणा है।

उपर्युक्त विधि फिर से दोहरायी जाय, जिससे चल वीणा के सभी स्वरों की तीन श्रुतियाँ अपकृष्ट हो जायँगी और उसके 'रे' और 'ध' अचल वीणा के सा एवं प में मिल जायँगे। यह तृतीय सारणा है।

पुन: वही विधि दोहराने से चल वीणा के प्रत्येक स्वर चार श्रुति उतर जायँगे और अब उसके सा, म और प अचल वीणा के नि ग और म से बिल्कुल एकरूप हो जायँगे। यही चतुर्थ सारणा है।

इस रीति से चारों सारणाओं में कुल बाईस श्रुतियों की उपलब्धि हो जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस सारणा-विधि के लिए सूक्ष्म स्वर-ज्ञान परम आवश्यक था। यह सारणा केवल उन्हीं के लिए सम्भव थी जिनको 22 श्रुतियों का ज्ञान था। षड्ज तथा मध्यम ग्राम के पंचम से जिनका परिचय था और स्वर-सम्वाद के आधार पर जो वांछित स्वरावली की स्थापना वीणा पर कर सकते थे।

भरत का मूर्च्छना प्रकरण

भरत के अनुसार षड्ज तथा मध्यम दो ग्रामों को मिलाकर कुल चौदह मूर्च्छनाएँ हैं। षड्ज ग्राम की मूर्च्छनाएँ क्रमशः उत्तरमन्द्रा, रजनी, उत्तरायता, शुद्ध षड्जा, मत्सरीकृता, अश्वक्रान्ता तथा अभिखंडगता नाम से प्रसिद्ध हैं।

मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाएँ क्रमशः सौवीरी, हरिणाश्वा, कलोपनता, शुद्ध-मध्या, भार्गवी, पौरवी तथा हृष्यका हैं।

षड्ज ग्राम की सप्त मूर्च्छनाएँ क्रमशः षड्ज, निषाद, धैवत, पंचम, मध्यम, गन्धार तथा ऋषभ से आरम्भ होती है। मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाएँ क्रमशः मध्यम, गान्धार, ऋषभ, षड्ज, निषाद, धैवत तथा पंचम से प्रारम्भ होती है।

भरतकालीन मूर्च्छना अवरोहीक्रम से स्थापित की जाती थी। सप्तस्वरों का क्रमिक स्थान मूर्च्छना कहलाता है। सामगान के वैदिक संगीत में स्वरों का क्रम अवरोही माना जाता था। सामगान की इसी परम्परा का परिपालन मूर्च्छना की स्थापना में किया जाता होगा।

चौदह मूर्च्छनाओं की स्थापना उन ग्रामों की शुद्ध स्वरावलि पर आधारित है। मूर्च्छना का सम्बन्ध मुख्य रूप से वीणा पर स्थापित किये जाने वाले स्वर-संस्थान से है। भरत-काल में सप्तन्मी तथा नवतन्मी वीणा का प्रचलन था। इन वीणाओं के तारों पर केवल एक विशिष्ट स्वरावलि की स्थापना की जा सकती थी। परन्तु उस स्वरावलि का सम्पूर्ण क्षेत्र उस वीणा पर उपलब्ध नहीं होता था। उन स्वरावलियों के पूर्णरूप को प्राप्त करने के लिए उन-उन स्वरों को आरम्भिक स्वर मानकर सप्तस्वरों को वीणा पर दूसरी वार स्थापित किया जाता था :

जाति तथा जाति राग

मूर्च्छना-प्रकरण के वाद भरत ने जाति का निरूपण किया है। भरत के काल में जो गान-क्रिया प्रचलित रही होगी, जिस प्रकार के गीत प्रयोग नाट्य में होंगे वे सब प्रयोग नाट्यशास्त्र में जाति के अन्तर्गत विभाजित किये जा सकते हैं। भरत द्वारा जाति पर मतंग के वचनों से जो प्रकाश पड़ता है, वह निम्नांकित है—

"श्रुति ग्रह स्वरादिसमूहाज्जायन्त इति जातयः ॥" (वृहद्देशी)

श्रुति और ग्रहस्वरादि के समूह से जो उत्पन्न हो उसे जाति कहते हैं।"

'राग' शब्द पारिभाषिक संज्ञा के रूप में नाट्य-शास्त्र में अपेक्षाकृत न्यून मात्रा में पाया जाता है। परन्तु वह राग-प्रणाली के तत्कालीन अस्तित्व को प्रमाणित करने वाला है। नाट्य-शास्त्र में राग-प्रणाली निम्न प्रमाणों से प्रमाणित हो जाता है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तर ग तथा काकलि नी जैसे स्वरों का विशिष्ट प्रयोग करते हुए भरत कहते हैं कि इन दो साधारण स्वरों का प्रयोग अल्पनिपाद गान्धार जातियों में केवल आरोह में किया जाना चाहिए। इसके विपरीत इन स्वरों का प्रयोग अवरोह में करने के श्रुति भिन्नता के साथ जाति राग की निष्पत्ति होती है। यहाँ जाति तथा जाति राग में भेद है। जाति राग की उत्पत्ति जाति-नियम के उल्लंघन से बतायी गई है। जाति-नियम के परिपालन में रक्त के अभाव और उल्लंघन से जाति राग की उत्पत्ति होती है; अतः जाति राग में जाति का रक्ति-गुण नहीं पाया जाता। जातियों में नियम का परिपालन कठोरता से किया जाता है। जाति राग में नियमों की शिथिलता है। जाति यदि मार्ग-संगीत है तो जाति राग देशी संगीत है। जाति शास्त्रीय नियमों से आबद्ध तथा सीमित है। जाति राग इन नियमों से परे देश-रुचि तथा लोक-रुचि पर आधारित है। जाति समाज की वस्तु है तथा जाति-राग लोक-व्यवहार में प्रतिदिन प्रयोग होने वाली वस्तु है।

अध्याय 33 में मृदंग वाद्य के गुणों का विवेचन करते हुए जाति राग का निम्नवत् उल्लेख प्राप्त होता है—

"एतेषांमनुवादी तु जाति राग स्वरान्वितः।
आलिङ्गे मार्जनं प्राध्य निषादस्तु विधीयते॥"

भरतकृत नाट्यशास्त्र में 32वें अध्याय में ग्राम रागों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यह ग्राम राग सात थे—मध्यम ग्राम, षड्ज, साधारित, पंचम, कौशिक, षाड़व तथा कैशिक मध्यम। यह ग्राम अनादि काल से चले आ रहे थे तथा इनका गायन नाटक में विभिन्न प्रसंगों पर किया जाता था। ग्राम रागों में नियमों का बन्धन कम और रक्ति-गुण का महत्व अधिक था।

जाति तथा ग्राम राग के बीच जन्य-जनक सम्बन्ध भरत को मान्य था। भरत के समय में जाति तथा राग दोनों की परम्परा समानान्तर रूप से प्रचलित थी। जातियों का मूलाधार यद्यपि प्रचलित जन संगीत था; तथापि नियमों के संस्कार एवं परिष्कार के कारण शिष्ट समाज में अच्छा स्थान बन गया था। नाटकों में उनका गायन निश्चित स्वर, ताल, लय, गीति तथा प्रसंग आदि नियमों से नियन्त्रित था। इन नियमों के उल्लंघन से ही जाति राग का निर्माण हो जाता था। संगीत रत्नाकर के अनुसार—

"जिस प्रकार वेदमंत्रों का स्वर, वर्ण आदि के संबन्ध में उल्लंघन करने की सम्भावनाओं से भरा रहता है उसी प्रकार जातियों का प्रयोग भी नियत स्वर, पद तथा ताल के विपरीत नहीं किया जा सकता।"

श्री जे० ग्रोसे का मत है कि भरत-काल में राग-प्रणाली का प्रचलन न था। रागों का स्वरूप जातियों के समान होने के कारण तथा जाति एवं राग दोनों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्देश्य उससे सफल होने के कारण इन रागों ने शनैः-शनैः जाति का स्थान ग्रहण कर लिया ।

जाति गायन

इस पद्धति के अनुसार प्राचीन काल में रागों के स्थान पर जाति गायन की प्रथा प्रचलित थी । रागों के पूर्व रूप को ही जाति कहते हैं । यद्यपि नाट्य-शास्त्र में जाति की परिभाषा नहीं पायी जाती, तथापि भरत मुनि ने अपने ग्रंथ "नाट्य-शास्त्र" में जाति का लक्षण इस प्रकार दिया है—

"स्वरा एवं विशिष्ट सन्निवेश,
भावोरक्ति भद्दण्ठाभ्युदयं ।
च जनयन्ती जाति रित्युक्ताः ॥"

जो श्रुति और ग्रह स्वरादि के समुदाय से उत्पन्न होती हैं, जो जातियाँ राग-जननी होती हैं उन्हें जाति की संज्ञा दी गई है । जातियाँ वे धुन थीं जिनका उद्गम लोक-संगीत में हुआ था । आवश्यक संस्कार और परिष्कार के कारण इनको शास्त्रीय संगीत में स्थान प्राप्त था । वैदिक युग में ये प्रचलित थीं तथा लोकप्रिय धुनें इनका आधार थीं । जातियों की इस प्राचीनता के आधार पर उनकी गणना मार्ग-संगीत में की गई । जातियों का विभाजन उस समय प्रचलित षड्ज ग्राम तथा मध्यम ग्राम दो ग्रामों में किया गया था ।

षड्ज ग्राम से सात और मध्यम ग्राम से 11 जातियों के निर्माण का उल्लेख आचार्य भरत करते हैं ।

षड्ज ग्राम से उत्पन्न सात शुद्ध जातियाँ—षाड्जी, आर्षभी, धैवती, नैषादी, षड्जोदीच्यवती, षड्जकैशिकी और षड्ज मध्यमा ।

मध्यम ग्राम से उत्पन्न 11 विकृत जातियाँ—गान्धारी, मध्यमा, पंचमी, रक्त-गन्धारी, गान्धारोदीच्यवा, गान्धार पंचमी, मध्यमोदीच्वा, आन्ध्री, नन्दयनी, कामरिवी और कैशिकी ।

इन कुल अट्ठारह जातियों में षड्ज ग्राम की सात जातियों में से चार शुद्ध हैं तथा तीन विकृत हैं तथा मध्यम ग्राम की 11 जातियों में 3 शुद्ध हैं तथा 8 विकृत हैं ।

भरत की जातियाँ शुद्ध तथा विकृत दो भागों में वर्गीकृत की जा सकती हैं—

"जातयो द्विवधाः शुद्धाः विकृताश्च ।"

शुद्ध जाति वह है जिसमें विशिष्ट ग्राम के सम्पूर्ण सप्तस्वर विद्यमान हों तथा जाति का नामसूचक स्वर ही उसका अंश, ग्रह तथा न्यास हो । परन्तु जब अंश तथा ग्रह स्वर को बदल कर अथवा एक या दो स्वरों को वर्ज्य कर जाति का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विस्तार किया जाता है तो शुद्ध जाति विकृता बन जाती है। इन अट्ठारह जातियों से ही ग्राम राग और रागों का विकास हुआ। आचार्य भरत के अनुसार—

"जाति सम्भूत्वाद ग्राम रागाणाम्।"

जातियों का स्वर की संख्या के अनुसार नाट्य-शास्त्र में तीन प्रकार से विभाजन भरत ने किया है—

(1) सम्पूर्ण ... सात स्वर वाली।
(2) षाड़व .... छः स्वर वाली।
(3) औड़व ... पांच स्वर वाली।

अट्ठारह जातियों में से चार जातियाँ सम्पूर्ण हैं, चार षाड़व तथा शेष दस औड़व हैं।

जाति के दशविध लक्षण

नाट्यशास्त्र में अठारह जातियों के दशविध लक्षण भरत बताते हैं—

"ग्रहांशों तारमन्द्रों च न्यासोपन्यास एव च।
अल्पत्वं च बहुत्वं च षाडवौऽविते तथा॥"

अर्थात् जाति के दशविध लक्षण निम्नानुसार हैं—ग्रह, तार, मन्द्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाड़वत्व तथा ओडवत्व।

ग्रह स्वर—समस्त जातियों में ग्रह स्वर उस स्वर को कहते थे जिससे जाति का गान आरम्भ होता था। मतङ्ग के शब्दों में—

"तन्नादौ जात्यादि प्रयोगो गृह्यते येनासौ ग्रहः॥"

अंश स्वर—भरत की जातियों में अंश स्वर का सर्वाधिक महत्व है। अंश स्वर निम्न दस लक्षणों से युक्त रहता है—

(1) जिसमें राग का निवास हो;
(2) जिससे राग का आविर्भाव होता है;
(3-4) वह तार तथा मन्द्र अवधि का नियामक हो;
(5) नानाविध स्वर-समूहों में उसका सर्वाधिक प्रयोग हो तथा उसके सम्वादी एवं अनुवादी स्वर भी शेष स्वरों की अपेक्षा प्रबल हों।
(6, 7, 8, 9, 10) जो ग्रह अपन्यास, संन्यास तथा न्यास के माध्यम से समस्त जाति को परिवेष्ठित करता हो।

(3,4) अंश स्वर में ही जाति का राग निहित होना बताया गया है। अंश स्वर में रंजकता, रस और रक्ति गुण का प्राधान्य माना गया है। मतङ्ग के शब्दों में—

"राग जनकत्वाद व्यापक स्वाच्यांशस्यैव प्राधान्यम्।
यस्मि अंशे क्रियमाणे रागानि व्यक्तिर्भवतिसोंऽशः॥"

(3, 4) तार तथा मन्द्र—अंश स्वर से लेकर चौथे, पाँचवें और सातवें स्वर तक तार की गति है। मन्द्र स्थान में स्वरों की गति तीन प्रकार से मानी गई है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(1) अंश स्वर तक; (2) न्यास स्वर तक; (3) अपन्यास स्वर तक।

मन्द्र स्वरों का प्रयोग ग्लानि, चिन्ता, शंका, मूर्च्छा आदि प्रसंगों पर किया जाना चाहिए। भरत ने तार स्वर का सम्बन्ध सिर से बताया है। दूरी पर स्थित व्यक्ति को बुलाने के लिए तार स्वर का प्रयोग किया जाय—ऐसा भरत का आदेश है। तार स्वर वह है जो एक ही सप्तक में होने पर मध्य स्वर से ऊँचा है तथा मन्द्र स्वर वह है जो मध्य स्वर की अपेक्षा निम्न है।

(5-6) न्यास और अपन्यास—न्यास, अपन्यास, विन्यास, संन्यास की परिभाषा नाट्यशास्त्र में उपलब्ध नहीं है तथापि दत्तिल तथा मतङ्ग के आधार पर उनके सम्बन्ध में निम्न परिचय प्राप्त होता है—

"न्यास स्वर वह है जिस पर गीत की समाप्ति है। यह स्वर सम्पूर्ण गीत के अन्त में आता है। शुद्ध जातियों में अंश स्वर ही न्यास स्वर कहलाता है।"

अपन्यास—वह स्वर है जो गीत के मध्य खण्ड के अन्त में प्रयुक्त होता है। न्यास के पहले बीच में कुछ अन्य स्वरों पर ठहरा जाता है; ऐसे स्वरों को अपन्यास कहते हैं। शुद्ध जाति में अंश स्वर ही न्यास स्वर होता है। विकृता जातियों में न्यास स्वर तथा अंश स्वर की अभिन्नता आवश्यक नहीं है। अठारह जातियों में से इक्कीस न्यास के स्वर और छप्पन अपन्यास के स्वर भरत ने बताये हैं।

(7-8) अल्पत्व तथा बहुत्व—जातियों को व्यक्त करने के दो अन्तर-मार्ग भरत ने बताये हैं। "स्वरों का अल्प अथवा बहुल प्रयोग किया जाता है। जाति में अत्यन्त बहुल स्वर अंश स्वर होता है। अन्य स्वरों का प्रयोग अपेक्षाकृत अल्प प्रमाण में किया जाता है।"

अल्पत्व उन स्वरों को कहते हैं जब कुछ स्वरों का प्रयोग अल्प रूप में किया जाये। स्वरों का अल्पत्व दो प्रकार से होता है—

(1) लंघन से; (2) अभ्यास से।

षाड़व तथा औड़व जातियों में विशिष्ट स्वरों के वर्जित होने के कारण ऐसे स्वरों का लंघन ही सम्मत है।

बहुत्व उन स्वरों को कहते हैं जब कुछ स्वरों का बहुल प्रयोग किया जाता है। यह भी दो प्रकार से दिखाया जाता है—

(1) अलंघन बहुत्व; (2) अभ्यास बहुत्व।

(9-10) षाड़वत्व तथा ओड़वत्व—सम्पूर्ण जातियों के अतिरिक्त षाड़व तथा ओड़व जातियों की चर्चा नाट्यशास्त्र में पायी जाती है। षाड़व तथा ओड़व क्रमशः छः स्वरों से युक्त तथा पाँच स्वरों से युक्त स्वरावलियों के निर्देशक हैं। भरत के अनुसार कुल अठारह जातियों में से चार सम्पूर्ण हैं तथा षाड़व जातियों की संख्या चौदह हैं। दस जातियों को ओड़त्व प्राप्त है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाति-लक्षण बताते समय भरत ने स्वरों में परस्पर चार प्रकार के सम्बन्ध बताये हैं—वादी, संवादी, विवादी, अनुवादी। इन सम्बन्धों की स्थापना में 2-2 स्वरों के जोड़ियों की आवश्यकता होती है। भरत के यही चारों सम्बन्ध आज भारतीय संगीत में सर्वमान्य हैं। जिस स्वर को आधार मानकर दूसरे स्वर के साथ संवाद-विवाद या अनुवाद सम्बन्ध स्थापित किया जाय वही आधार स्वर अंश या वादी स्वर कहलाता है।

जाति से रस निष्पत्ति—भरत के अनुसार जातियाँ अंश स्वर के कारण रसात्मकता प्रदान करती हैं। सात स्वरों में से कुछ स्वर विशिष्ट रस के अनुकूल बताये गये हैं।

मध्यम तथा पंचम स्वर से हास्य तथा शृंगार रस की उत्पत्ति, षड्ज तथा ऋषभ से वीर, रौद्र तथा अद्भुत रस, गांधार तथा निषाद से करुण रस की उत्पत्ति मानी गई है। धैवत का बहुल प्रयोग वीभत्स तथा भयानक रस का प्रेषक हैं।

भरत की अठारह जातियों में से षड्जमध्या जाति का रस की दृष्टि से विशिष्ट स्थान है। षड्ज तथा मध्यम के बाहुल्य से वह शृंगार तथा हास्य की सृष्टि करती है।

स्वर तथा जाति एवं रसों का स्पष्टीकरण निम्न तालिका से होगा —

जाति	रस
षडजीदीच्यवती	शृंगार-हास्य
षड्जमध्या	शृंगार-हास्य
आर्षभी	वीर, अद्भुत, रौद्र
षाडवी	वीर, अद्भुत, रौद्र
षड्जकैशिकी	करुण
धैवती	वीभत्स, भयानक
गान्धारी	करुण
रसगान्धार	करुण
मध्यमा	शृंगार-हास्य
पंचमी	शृंगार-हास्य
मध्यमोदीच्यवा	वीर, रौद्र, अद्भुत
कार्माखी	वीर, रौद्र, अद्भुत
आन्ध्र	वीर, रौद्र, अद्भुत
कैशिकी	वीभत्स, भयानक
गांधार पंचमी	वीभत्स, भयानक, हास्य, शृंगार
नैषादी	करुण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाट्यशास्त्र में वर्ण तथा अलंकार

"वर्ण" भरत के संगीत की परिभाषिक संज्ञा है जो गान-क्रिया की द्योतक है—"वर्ण शब्देन गान मुच्यते।"

वर्ण के दो प्रकार हैं—पाठ्यगत के वर्ण एवं संगीत के वर्ण। पाठ्यगत वर्ण उच्चारण की विविध भंगिमा से सम्बद्ध है तथा संगीत के वर्ण स्वरोच्चारण की क्रिया के द्योतक हैं। नाट्यशास्त्र के अनुसार उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा कम्पित ये चार पाठ्यवर्ण हैं। संगीत के चार वर्ण हैं—आरोही, अवरोही, स्थायी तथा संचारी।

वर्णों का विस्तार मन्द्र, मध्य तथा तार तीनों स्थानों में बताया गया है।

स्थायी वर्ण—इसमें स्वरों की स्थिति स्थिर तथा सम रहती है। इसमें गान-क्रिया एक स्वर की एक ही अवस्था तक सीमित रहती है। एक ही स्वर का एक ही स्थान में गम्भीर उच्चारण इस वर्ण की विशिष्टता है। स्वरों का गमकयुक्त अथवा आन्दोलित प्रयोग इसके अन्दर नहीं होता। इस वर्ण के दो रूप हो सकते हैं—

(1) किसी स्वर का दीर्घकाल तक गम्भीर उच्चारण; जैसे—सा ऽ ऽ ऽ, म ऽ ऽ ऽ, प ऽ ऽ ऽ।

(2) किसी स्वर की पुनरावृत्ति; जैसे—सा सा, म म, प प इत्यादि।

एक ही स्वर का दो स्थानों में उच्चारण स्थायी वर्ण के अन्तर्गत नहीं आ सकता; जैसे—सा सां अथवा सा सां।

आरोही वर्ण—स्वरों का आरोहण, चाहे जिस क्रम से हो, आरोही वर्ण कहलाता है; जैसे—स रे ग, स ग प, स म प।

अवरोही वर्ण—स्वरों का अवरोहण चाहे जिस क्रम से हो अवरोहण वर्ण कहलाता है; जैसे—म ग रे सा, म रे सा, म सा।

संचारी वर्ण—संचारी वर्ण में स्वरों का परस्पर संचरण दिखाई देता है। यह क्रमवद्ध भी होता है तथा मध्य के स्वरों को भी इसमें वर्जित किया जा सकता है; जैसे—सा रे ग रे सा सा म प ध प म म ध नि सां नि ध ध।

स्पष्ट है कि इस वर्ण के अन्तर्गत स्थायी, आरोही तथा अवरोही तीनों वर्णों का प्रयोग सम्मिलित रूप से हुआ करता है।

अलंकारों का निर्माण इन्हीं चारों वर्णों पर आधारित है। भरत ने कहा है—"इन अलंकारों का प्रयोग विभिन्न वर्णों के अनुकूल किया जाना चाहिए।" भरत के अनुसार—अलंकारों से विहीन गीत वैसा ही श्रीहीन प्रतीत होता है जैसा चन्द्रमा से रहित निशा, जल से विहीन नदी, पुष्प से विहीन लता तथा अलंकारों से विहीन स्त्री।

नाट्यशास्त्र के अनुसार इन अलंकारों के लक्षण निम्नानुसार हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसन्नानि, प्रसन्नान्त, प्रसन्नद्यन्त, प्रसन्नामध्य सम, बिन्दु, निवृत्त, प्रवृत्त, वेणु, कम्पित, रेचित, प्रेखोलित, तारमन्द्रप्रसन्न, मन्द्रतार प्रसन्न, प्रस्तार आदि।

इन अलंकारों का प्रयोग प्राचीन सप्तगीतों में विभिन्न वर्णों के आधार पर किया जाता रहा।

भरतकालीन गीतियाँ—भरत के अनुसार गीतियों का अन्तर्भाव गान्धर्व के अन्तर्गत है। संगीत रत्नाकर के अनुसार वर्ण, पद तथा लय से समन्वित गान-क्रिया गीति कहलाती है। परम्परा के अनुसार गीतियाँ चार रही हैं—

(1) मागधी, (2) अर्धमागधी,
(3) सम्भाविता, (4) पृथुला।

भरतकालीन वीणावादन एवं वाद्यवृन्द—भरतकालीन वाद्यवृन्द के लिए 'कुतुप' संज्ञा थी। नाट्य के अन्तर्गत कुतुप का तीन प्रकार से विभाजन किया जाता था—

(1) तत कुतुप, (2) अवनद्ध कुतुप, (3) नाट्य कुतुप।

भरतकालीन वाद्यवृन्द का स्थान रंगभूमि पर नेपथ्य के दो द्वारों के मध्य में निर्धारित था तथा इनको प्रेक्षकों के सम्मुख बैठाया जाता था। ततवादकों में वीणावादक का स्वतन्त्र स्थान था। भरतकालीन विशाल कुतुपों में वंशीवादकों का प्रमुख स्थान रहा करता था।

भरतकालीन अवनद्ध वाद्य—गीत तथा वाद्य के साथ ताल एवं लय के प्रदर्शन के लिए इन्हीं वाद्यों का प्रयोग आरम्भ से किया जाता रहा है। मृदंग, पणव तथा दर्दुर जैसें इन वाद्यों के लिए सामान्य संज्ञा "पौष्कर" है। नाट्यशास्त्र में मण्डव विन्यास के प्रसंग पर रंगदेवता के लिए जो आयोजन होता था उसमें शंख, दुन्दुभि, मृदंग, पणव आदि वाद्यों की ध्वनि एक साथ की जाती थी। अवनद्ध वाद्यों के लिए संज्ञा 'भाण्ड' अथवा 'भाण्डवाद्य' है। रंगभूमि पर नर्तकी के प्रवेश पर तन्त्री तथा भाण्डवाद्य दोनों का समुचित प्रयोग किया जाता था।

भरतकालीन नाट्यकला में मृदंगादि वाद्यों का विधान महत्वपूर्ण है। नाट्य के अन्तर्गत वाद्यवृन्द की रचना पर समुचित ध्यान दिया जाता रहा है। इसके अन्तर्गत अवनद्ध वर्ग के विभिन्न वाद्यों में यथायोग्य सामन्जस्य स्थापित किया जाता था।

भरतकालीन ताल-प्रणाली—गीत वाद्य के साथ ताल रखने की परम्परा प्राचीन काल से आज तक रही है। नाट्यशास्त्र में उल्लेख है कि मृक, पाणिका, गाथा तथा उल्लोप्यक आदि प्राचीन सप्तगीत ताल में निबद्ध होते थे।

नाट्यशास्त्र के 33वें अध्ययन में भरत ने पात्र तथा रस के अनुकूल लय तथा मृदंगवादन के सम्बन्ध में पर्याप्त विवेचन किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरतकालीन समस्त ताल दो जातियों के अन्तर्गत आते हैं—चतुरस्र तथा त्र्यस्र। चतुरस्र वह ताल जाति है जिसमें कलाओं का क्रम दो गुरु, एक लघु तथा प्लुत रहता है। त्र्यश्र वह जाति है जिसमें कलाओं का क्रम एक गुरु, दो लघु तथा पश्चात् एक गुरु से नियमित रूप से प्रचलित रहता है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार प्राचीन काल में निम्न तालों का प्रचलन रहा है—चच्चत्पुट, चापपुट, षड्पितापुत्रक, सम्पर्कष्टाक तथा उद्घट्ट।

तालक्रिया दो प्रकार की बतलायी गई है—सशब्द तथा निशब्द। ताल दर्शाने के लिए प्रत्येक अक्षर पर हस्तक्रिया को किस प्रकार किया जाता था, इसका विवरण नाट्यशास्त्र में उपलब्ध है।

भरत के अनुसार तालवाद्यों का समावेश घन वाद्यों के अन्तर्गत है। इन वाद्यों में कांस्य, करताल, झाँझ, मंजरी आदि वाद्य हैं। नाट्यशास्त्र से स्पष्ट है कि प्राचीन गीतों के साथ हाथ से ताल देने की प्रणाली प्रचलित थी।

गायक तथा वादक के गुणावगुण

नाट्यशास्त्र के अनुसार यशस्वी गायक के लिए स्निग्ध, मधुर एवं दृढ़ स्वर की परम आवश्यकता है। लय, ताल, कला तथा प्रमाण आदि का ज्ञान भी गायक के लिए अनिवार्य है।

कण्ठ के गुण और दोषों का विवेचन नाट्यशास्त्र में हुआ है। कण्ठ के छः गुण हैं—श्रावक, घन, स्निग्ध, मधुर, विधानवान तथा त्रिस्थान शोभी।

दोष पाँच हैं– कपिल, अव्यवस्थित, काकी, तुम्बी तथा संदष्टक।

यशस्वी वीणावादक के लिए आवश्यक है कि पाणि, लय, यति इत्यादि तालांगों में विशेषज्ञ हो। यशस्वी वंशीवादक के लिए भी गीत तथा ताल-ज्ञान का होना आवश्यक बताया है। मृदंगवादक के लिए गीत, वाद्य, कला, ग्रह, मोक्ष आदि सभी अंगों में सिद्धहस्त होना आवश्यक है।

भरत की रस-कल्पना

भरत का नाट्यशास्त्र रस-सिद्धान्त का प्रवर्त्तक ग्रन्थ है। भरत के अनुसार प्रत्येक ललित कला का उद्देश्य रसानुभूति है। रससम्बन्धी विवरण 'नाट्यशास्त्र' के अध्याय 6 में प्रमुख रूप से हुआ है। भरत के अनुसार रस के बिना कोई कार्य पूर्ण नहीं होता—

"न हि रसावृत्ते कश्चिदप्यर्थः प्रवर्तते ॥"

नाट्शास्त्र के अन्तर्गत रस को प्रमुख स्थान दिया गया है—भाव, अभिनय, धर्मि, वृत्ति, स्वर, गान, आतोद्य तथा रंग सभी रस-निष्पत्ति के लिए आवश्यक हैं।

उन्होंने नाट्य में आठ रसों की स्थिति बतायी है—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स तथा अद्भुत।

रस निष्पत्ति—उन्होंने बतायी है कि विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से 'रस निष्पत्ति' होती है। इस निष्पत्ति का प्रथम सोपान स्थायी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाव है । स्थायी भाव आठ हैं—रति, हास, क्रोध, उत्साह भय, जुगुप्सा, विस्मय और शोक ।

रसोत्पत्ति के लिए द्वितीय आवश्यक उपादान विभाव है । उसके दो रूप हैं—(1) आलम्बन, (2) उद्दीपन । रस बोध जिस व्यक्ति अथवा वस्तु के सम्बन्ध में होता है वह आलम्बन तथा बाह्य परिस्थितियाँ जो स्थायी भावों को उत्तेजित करती हैं, वह उद्दीपन कहलाती है । इसके अतिरिक्त रस निष्पत्ति की प्रक्रिया में अन्य भावों की स्थिति रहती है जो क्षण-क्षण में परिवर्तित होते रहते हैं; जैसे—संचारी भाव (चिन्ता, शंका, ग्लानि, हर्ष इत्यादि) । इस प्रकार विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों से होता हुआ स्थायी भाव रस-रूप में परिणत हो जाता है ।

भरत के अनुसार नाट्य का प्रत्येक अंग रसोत्पत्ति को लेकर अग्रसर होना चाहिए ।

नाट्य में उत्पद्य रस के अनुकूल उन्होंने पाँच अंगों का भी वर्णन किया है—स्थान, वर्ण, काकु अलंकार तथा अंग । भरत के अनुसार चार वर्ण हैं—उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा कम्पित । इन वर्णों का प्रयोग विशिष्ट रस के अनुकूल सिद्ध हो सकता है ।

काकु एक ऐसा ध्वनि-विकार है जो विभिन्न भावों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होता है । विशिष्ट Pitch तथा Tempo में काकु का प्रयोग विभिन्न रसों की निष्पत्ति में सहायक होता है ।

ध्रुवा नामक गीतों का विवेचन भरत ने नाट्य की आवश्यकताओं को दृष्टि में रख कर किया है । ध्रुवा गीत तथा षड्जादि ग्राम रागों का प्रयोग नाट्य में अभीष्ट रस का पोषक है ।

अध्याय 28 के अन्त में तथा 29 के आरम्भ में जातियों का आठ रसों के साथ सम्बन्ध भरत के द्वारा स्थापित हुआ है । इन जातियों का ज्ञान विशुद्ध अथवा गीत निरपेक्ष न होते हुए भी ध्रुवा गीतों के साथ किया जाना निहित है । जाति गान में उन्हीं ध्रुवाओं का प्रयोग किया जाना चाहिए जो रस, कार्य तथा अवस्था के अनुकूल हैं ।

भरत का रसविषयक विवेचन शब्द प्रधान संगीत के लिए उचित है, न कि उस संगीत के सम्बन्ध में जो आधुनिक परिभाषा में स्वरप्रधान कहा जाता है ।

इस प्रकार नाट्यशास्त्र को आज भारतवर्ष की सभी संगीत-परम्पराओं में गांधर्ववेद के समान प्रमाणभूत माना जाता है । साहित्य तथा संगीत में इस निर्माण की प्रक्रिया के सम्बन्ध में इस ग्रंथ की बहुत बड़ी देन है । भरत की धारणा थी कि संगीत का अंतिम लक्ष्य रसानुभूति है । जो संगीत श्रोताओं को रसमग्न नहीं कर सकता वह संगीत ही नहीं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरत मुनि के "नाट्यशास्त्र" से संगीत-जगत की जो सेवा हुई है, वह किसी से छिपी नहीं है। भरत से पूर्व हमें कोई प्रामाणिक ग्रन्थ संगीत पर नहीं प्राप्त है। आज यह ग्रन्थ समस्त भारतीय संगीत का आधार है। भरत के काल में जातियों का गायन होता था। नाट्यशास्त्र में 'राग' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता।

गुप्तकाल में संगीत

गुप्त-युग भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग है, जिसमें साहित्य, संगीत तथा अन्य ललित कलाओं का सर्वांगीण विकास हुआ। हिन्दू संस्कृति के जागरण का यह युग था। अनेक राजाओं ने संगीत की रुचि के कारण संगीत के उत्कर्ष के लिए प्रयास किये। गान्धर्ववेद के अध्ययन तथा अध्यापन के लिए राजाश्रय ये सम्राट देते थे। संगीत के शास्त्रीय और लौकिक दोनों पक्षों का विकास इस युग में हुआ।

इस युग तक भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध दूर-दूर देशों तक फैल चुके थे। कुची, चीन, जापान, वर्मा तथा अन्य एशियाई प्रदेशों के साथ भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध थे। भारत की नाट्यकला का अनुकरण भी चीन में होने लगा था। चीनी साहित्य में भारतीय नृत्यों की प्रशंसा में अनेक लेख मिलते हैं। भारत तथा चीन के बीच अनेक भारतीय वाद्ययंत्रों का आदान-प्रदान भी हुआ। चीनीयात्री ह्यून-एनत्संग ने अपने वृत्तान्त में गुप्तकालीन कला का उल्लेख किया है। इस युग में बौद्ध धर्म के साथ-साथ भारतीय संगीत का प्रचार भी चीन में हुआ।

गुप्तकाल का सांस्कृतिक आदान-प्रदान 5वीं शताब्दि के बाद भी कई शताब्दियों तक प्रचलित रहा है। इस काल में वैदिक धर्म एवं सनातन संस्कृति का पुनुरुज्जीवन किया गया। गुप्तकाल के पूर्व विदेशियों के आक्रमणों के कारण तथा बौद्धों के सिद्धान्त का प्रचार होने से वैदिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। गुप्तकाल के सम्राटों ने पुनः वैदिक संस्कृति की प्रतिष्ठापना की, वैदिक यज्ञ-परम्परा को पुनर्ज्जीवित किया। इनके द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ में वैदिक गान-परम्परा का अनुसरण किया गया। परम्परागत सामगान को भी पुनर्ज्जीवित किया गया। इस काल के जो भी ताम्रपत्र एवं शिलालेख मिलते हैं उनमें वेदाध्ययन करने वाले ब्राह्मणों का उल्लेख है।

गुप्तकाल के राजाओं में जन्मजात संगीतप्रियता के संस्कार थे। सर्वप्रथम राजा चन्द्रगुप्त प्रथम (ई० 320-335) हुए। इनका विवाह कलात्मक रुचि के ही वंश लिच्छवि की राजकुमारी से हुआ। स्वयं मगध में वैदिक काल के सकण्ठ चारणों को आश्रय दिया जाता रहा। यद्यपि सम्राट चन्द्रगुप्त ने संगीत के विकास में कोई विशेष योगदान नहीं दिया, परन्तु फिर भी उन्होंने संगीत का स्तर गिरने नहीं दिया। उनका अधिकतर समय साम्राज्य स्थापित करने में बीता। इस काल में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमें किसी प्रसिद्ध संगीतज्ञ का नाम नहीं मिलता। यह समय वास्तव में देश के अन्दर अनेक धर्म जैसे बौद्ध धर्म, जैन धर्म तथा हिन्दू धर्मों का प्रचार हो रहा था। जनता में इन धर्मों को ग्रहण करने के लिए उथल-पुथल मची हुई थी। ऐसे में समुचित रूप से संगीत के क्षेत्र में कोई विकास कैसे संभव था। चन्द्रगुप्त प्रथम ने हिन्दू धर्म अपनाकर हिन्दू संस्कृति को आगे बढ़ाया। इसीलिए साधारण जनता ने भी संगीत के क्षेत्र में हिन्दू धर्म को ही मान्यता दी।

चन्द्रगुप्त प्रथम के बाद उसके पुत्र समुद्रगुप्त ने राज्य का कार्य-भार ग्रहण किया। समुद्रगुप्त एक महान् संगीतज्ञ था। उसके दरबार में अनेक संगीतज्ञ और नर्तक भी थे। समुद्रगुप्त ने संगीत के परिष्कार और विकास की ओर विशेष ध्यान दिया। जब समुद्रगुप्त किसी राज्य पर विजय प्राप्त करके आता था तो राज्य में संगीत का आयोजन होता था। समुद्रगुप्त एक कुशल वीणावादक भी था। इस काल में शास्त्रीय संगीत का अधिक प्रचलन था। जन-साधारण में संगीतकारों की प्रतिष्ठा थी। उनका विश्वास था कि कोई भी कला पावन चरित्र के बिना विकास के स्वर्णिम सोपान की ओर प्रयाण नहीं कर सकती। इस काल में ऐसे गीतों की रचना हुई जिसमें वैष्णव धर्म का गुणगान तथा हिन्दू संस्कृति एवं सभ्यता का अधिक प्रचार चित्रण होता था। उत्तर से दक्षिण एवं पूर्व से पश्चिम तक संगीत संगठित हुआ था। इस काल में अनेक राग-रागनियों का प्रचलन था। समुद्रगुप्त के ऐसे भी सिक्के उपलब्ध हुए हैं जिन पर वीणा अंकित है। उनके लोकनृत्य तथा लोक-गीत भी इसी काल में निर्मित हुये। लोक-संस्कृति के इस युग का विकास-चित्र अत्यन्त भव्य एवं प्रगतिपूर्ण है।

समुद्रगुप्त ने स्वयं अनेक सुन्दर गीत रचे थे और उनको स्वरबद्ध भी किया था। वह संगीतज्ञ और कवि दोनों ही था। समुद्रगुप्त के कला-सौन्दर्य की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही कम है। वह विलासप्रिय सम्राट नहीं था। स्वयं उसका निजी जीवन बहुत सादा था। इसीलिए इस काल में विलासप्रिय और शृंगारिक गीतों के स्थान पर सादे सरल गीतों का निर्माण हुआ।

इस काल में जो भी गीत एवं नृत्य प्रचलित थे उनमें भारतीय संस्कृति को पूर्णतया उजागर किया जाता था। सारे लोकनृत्य लोक संस्कृति का चित्रण करते हैं। इस प्रकार से समुद्रगुप्त का काल संगीत की दृष्टि से बहुत भव्य और प्रगतिपूर्ण था।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य—समुद्रगुप्त के बाद चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का काल आता है। ये भी समुद्रगुप्त के सदृश कला प्रेमी थे। इनका समय 375 ई० तथा 380 ई० के बीच का है। वे जब कुर्सी पर बैठे तो उस समय समुद्रगुप्त ने एक सुदृढ़ और विस्तृत साम्राज्य स्थापित कर लिया था; अतः चन्द्रगुप्त को सामाज्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थापित करने के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ा। उत्तर तथा दक्षिण पूर्णतया उनके अधिकार में था।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में ही चीनीयात्री फाह्यान भारतवर्ष आया था यह बौद्ध भिक्षु था। वह 6 वर्ष तक भारतवर्ष में रहा और उसने अपने संस्मरण लिख कर पुस्तक के रूप में छपवाये।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में पूर्ण शान्ति थी और फिर सम्राट स्वयं भी संगीत का अत्यन्त शौकीन था; अतः इस काल में संगीत का विकास बहुत हुआ।

उसके दरबार में अनेक कलाकार, कवि तथा विद्वान रहते थे। संगीत को मनोरंजन का साधन न समझ उसके आध्यात्मिक पक्ष को सामने लाया गया। चन्द्रगुप्त स्वयं एक कुशल वीणावादक था। सम्राट के प्रयासों के फलस्वरूप भारतीय संगीत यूरोपीय देशों में पहुँचा। इसका कारण था कि उस समय भारत और यूरोप के व्यापारिक सम्बन्ध अच्छे थे। रोम, फ्रान्स, इंग्लैंड, आयरलैण्ड, हंगरी विशेषतया वे देश थे जहाँ भारतीय संगीत का अधिकाधिक प्रचार हुआ। इस काल में भारतीय संस्कृति अरब पहुँची। भारतीय संगीत को अरब में बहुत सराहा गया और निश्चय ही उन्होंने इसको अपनाया। यहाँ तक कि भारतीय संगीत की अनेक पुस्तकों का अरबी भाषा में अनुवाद भी हुआ।

सुप्रसिद्ध नाटककार एवं कवि कालिदास इसी युग में हुए। वे सम्राट विक्रमादित्य के दरबार में ही रहते थे और उन्होंने भारतीय साहित्य एवं संगीत को नवीन दशा दी। आज कालिदास को विश्व साहित्य की अनुपम विभूति के रूप में जाना जाता है। कालिदास संस्कृत के महान् नाटककार तथा कवि हो गये हैं। उनके लिखित दो महाकाव्य "कुमारसम्भव" तथा "रघुवंश" आदि भारतीय साहित्य की धरोहर हैं। इन्होंने तीन प्रसिद्ध नाटक लिखे; जैसे—"शकुन्तला," "विक्रमोर्वशीयम्" एवं "मालविकाग्निमित्र"।

इनके लिखित दो गीतिकाव्य भी बहुत प्रसिद्ध हैं; जैसे —"मेघदूत" तथा "ऋतुसंहार"। इनके 'शकुन्तला' नाटक का विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। इनके ग्रन्थों की भाषा सरल है तथा प्रेम और करुणा के भाव इनमें कूट-कूट कर भरे हुए हैं।

विक्रमादित्य के दरबार के वे नवरत्नो में से एक थे।

सुप्रसिद्ध नाटककार भास भी विक्रमादित्य के समकालीन थे। उन्होंने भी भारतीय संगीत को उत्कृष्ट बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया। उनके तेरह नाटक प्राप्त हो चुके हैं जिनमें 'दूत घटोत्कच", "दूत वाक्य", "उरु भंग", "बाल चरित्र" तथा "स्वप्नवासवदत्तम्" अधिक प्रसिद्ध हैं। ये सभी नाटक संगीतमय हैं।

विक्रमादित्य के काल में अनेक सुप्रसिद्ध विद्वान हुए; जैसे—विशाखदत्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और भारवी भी इसी काल में हुए। विशाखदत्त ने प्रसिद्ध नाटक "मुद्राराक्षस" लिखा। शूद्रक ने "मृच्छकटिक" लिखा और वे महान नाटककार कहलाये। ये सभी नाटक संगीत-प्रधान हैं। इन नाटकों में संगीत के मौलिक तत्वों का दिग्दर्शन होता है। वीणा के विविध प्रकारों जैसे—विपंची, परिवादिनी, किन्नरी का उल्लेख हमें इन नाटकों में मिलता है। उस काल के ग्रन्थों से यह स्पष्ट है कि वीणा इस समय का सर्वाधिक प्रचलित वाद्य था। इन सभी नाटकों का अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ और रंगमंच पर खेले गये। इन नाटकों के काव्य संगीतमय हैं। इस काल में काव्य और संगीत की पृथक् धाराएँ नहीं थीं बल्कि एक थीं। नाटकों को समझ कर ही हम इस युग के संगीत को भलीभाँति समझ सकते हैं।

गणित और ज्योतिष के महान विद्वान आर्यभट्ट, बराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त इसी काल में हुए। गणित के वैज्ञानिक रूप से संगीत का विकास किया गया। याज्ञवाल्क्य, नारद, कात्यायन एवं बृहस्पति आदि की स्मृतियाँ भी इसी युग में रची गयीं। भरत पुत्र दत्तिल ने 'दत्तिलम' की रचना इसी काल में की। यह ग्रन्थ भी 'नाट्यशास्त्र' के समान भारतीय संगीत की गौरवशाली रचना है।

भारतीय संगीत के विकास की दृष्टि से गुप्तकाल यथार्थतः उत्कर्ष का प्रतीक है। इस काल में संगीत साहित्य की विशेष उन्नति हुई। यूरोपीय देशों में भारतीय संस्कृति और संगीत की जो प्रतिष्ठा बढ़ी उसका श्रेय गुप्त-युग को ही है। गुप्त काल में शान्ति का वातावरण था। प्रत्येक सम्राट संगीत-ममज्ञ था। इसीलिए उसने संगीत के विकास में इतना योग दिया। गुप्त काल को भारतीय संगीत का स्वर्ण युग कहा जाता है।

गुप्तकालीन संगीत के दृश्यचित्र अजन्ता भित्तिचित्रों तथा शिल्पों से उपलब्ध होते हैं। गुप्तकालीन झूमरा के शिव मन्दिर में संगीत सम्बन्धी कुछ चित्र उपलब्ध हैं।

हर्षबर्द्धन-युग में संगीत
[606-647 ई०]

हर्षवर्धन 606 ई० में राजसिंहासन पर आसीन हुआ था। वह भी संगीत-प्रेमी था। कला और साहित्य के प्रति उसकी विशेष रुचि थी। उसके दरबार में अनेक संगीतज्ञ और विद्वान रहते थे। स्वयं हर्ष ने अनेक सुन्दर नाटक और कविताएँ लिखीं। उसके सभी नाटक संगीत की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। हर्ष का संगीत-ज्ञान उच्चकोटि का था, इसमें सन्देह नहीं। वह गाता भी अच्छा था। उसके नाटक पढ़ने से विदित होता है कि उसे संगीत के शास्त्रीय पक्ष, राग-रागिनियों का अच्छा ज्ञान था।

वाणभट्ट महाकवि उसके दरबारी कवि थे। उन्होंने "हर्षचरित" नामक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रंथ की रचना भी की थी। बाणभट्ट की कविता पूर्णतया संगीतमयी होती थी। उनके रचित गीत को नारियाँ अपने आमोद-प्रमोद के लिए गाया करती थीं। इन गीतों में प्राय: जीवन के सभी अंगों पर प्रकाश डाला गया था।

स्वयं हर्ष ने बाणभट्ट के अनेक गीतों को गाया और हर्ष की बहन राजश्री ने उसका अनेक अवसरों पर साथ दिया। राजश्री भी भाई के समान संगीत और नाटक की प्रेमी थी। उसने हर्ष के साथ अनेक नाटक भी लिखे। कहने का तात्पर्य यह है कि गुप्तकाल के समान हर्ष के काल में संगीत का खूब विकास हुआ। संगीत-समारोहों का आयोजन भी बराबर होता था, जिससे बड़े-बड़े संगीतज्ञ अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। विदेशों में भी भारतीय संगीत बराबर अपनी प्रतिष्ठा कायम किये रहा।

एक और विशेषता इस युग की यह रही कि संगीत-आयोजनों के साथ-साथ नाटकशालाएँ भी कई जगह स्थापित हुईं। इस काल में नाटकों का प्रचलन था। वाद्यों में वीणा का विशेष स्थान था। वीणा के कई प्रकार जैसे—परिवादनी, विपंची, वल्लकी, घोषवती इत्यादि का उल्लेख आता है। नाटकों के माध्यम से संगीत का प्रचार अधिक होता था।

हर्ष के काल में ही चीनीयात्री हुएनसांग भारतवर्ष में आया। वह लगभग 23 वर्षों तक यहाँ रहा और उसने यहाँ के प्रत्येक भाग का भ्रमण किया। वह एक बौद्ध-भिक्षु था। परन्तु उसके लेखन में कहीं भी भारतीय संगीत का विशेष वर्णन नहीं मिलता।

हर्ष-युग संगीत की दृष्टि से विशेष चर्चित रहा। इस काल का संगीत विशेष रूप से नाटकों के माध्यम से ही सामने आता है। अभी तक संगीत का नाटक से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं बन पाया था।

सम्राट हर्ष संगीतज्ञों एवं कला-मर्मज्ञों का बहुत आदर करता था। कहा जाता है कि उसने जयसेन नामक पंडित को 80 गाँव जागीर में दिये। इसी प्रकार से हर्ष अन्य विद्वानों को भी समय-समय पर स्वर्ण-मुद्राएँ और वस्त्र भेंट में देता रहता था। इन्हीं सब कारणों से हर्ष के युग में संगीत की स्थिति विकास की ओर उन्मुख होती रही।

हर्ष के ही काल में महान संगीतज्ञ मतंग हुए, जिन्होंने "बृहद्देशीय" नामक ग्रन्थ लिखा।

मतंग (ई० पू० छठीं शताब्दि)—भारतीय संगीत के ग्रन्थकारों में मतंग मुनि का प्रथम स्थान है। भरत के नाट्यशास्त्र के पश्चात् मतंग मुनि द्वारा रचित ग्रन्थ "बृहद्देशीय" एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसी ग्रन्थ में सर्वप्रथम देशी संगीत का निरूपण किया गया है और रागों की विस्तृत चर्चा की गई है। भारतीय चिन्तक सदैव कीर्ति-विमुख रहे। उन्होंने स्वयं अपने विषय में कुछ नहीं लिखा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिणामस्वरूप इनके काल-निर्णय की समस्या सदैव चर्चा का विषय रहती है। मतंग मुनि के समय के विषय में काफी मतभेद है। सिंह भूपाल ने मतंग को नाट्य के रचयिता भरत के चार पुत्रों में से एक बताया है। महामहोपाध्याय पी० वी० काणे के अनुसार मतंग का काल ईसा से 750 वर्ष पूर्व है। प्रो० रामकृष्ण कवि ने मतंग का समय नवीं शताब्दी माना है। दक्षिण के एक ग्रंथ में और कृष्णामाचारी ने 'History of Sanskrit Literature' में 'बृहद्देशीय' का रचनाकाल पाँचवीं शताब्दी में माना है। मतंग का समय निर्धारित करते समय यह तथ्य भी ध्यान में रखने होंगे कि अभिनव गुप्त ने मतंग को धातु की वंशी का आविष्कारक माना है। नारद मुनि की आज्ञा से मतंग ने बृहद्देशीय की रचना की। कालिदास के 'रघुवंश' (5-5-3) में मतंग का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त रामायण और महाभारत में भी मतंग का उल्लेख मिलता है। इन तथ्यों पर मतंग का समय भरत, दत्तिल और कोहल के पश्चात् है, यह निश्चित है। मतंग कृत "बृहद्देशीय" संगीत का प्रथम ग्रंथ है। मतंग मुनि संगीत के प्रकाण्ड पंडित थे। दामोदर गुप्त ने उन्हें शुषिर वाद्यों में निष्णात कहा है। मतंग चित्रा-वादक थे। चित्रा वीणा में सात तार होते थे। प्रो० रामकृष्ण कवि के अनुसार मतंग ने किन्नरी वीणा का आविष्कार किया। वीणा पर परदे लगाने की योजना सर्वप्रथम मतंग ने ही की।

मतंग द्वारा निर्मित ग्रंथ 'बृहद्देशीय' में आठ अध्याय हैं। परन्तु यह ग्रंथ खंडित रूप में ही प्राप्त है। बृहद्देशीय के रागाध्याय, स्वराध्याय और प्रबन्धाध्याय ही प्राप्त हैं। वाद्य और नृत्याध्याय अप्राप्त है। महाराणा कुंभा को मतंग का वाद्याध्याय प्राप्त था। उन्होंने अपने ग्रंथ संगीतराज में मतंग की किन्नरी वीणा का वर्णन किया है। भरत द्वारा वर्णित विषयों के अतिरिक्त मतंग ने जिन विषयों की चर्चा की है उनमें गंधार-ग्राम का उल्लेख, द्वादश-स्वर मूर्च्छना पद्धति चौरासी मूर्च्छना तानें, जातियों की मूर्च्छनाएँ आदि हैं। मार्ग संगीत के साथ ही मतंग ने देशी संगीत का भी वर्णन किया है। राग शब्द का प्रयोग मतंग के ग्रंथ की महत्वपूर्ण बात है—

राग मार्गस्य यदस्य यन्नोक्त भरतादिभिः।
निरुप्यते तदस्मामि लक्ष्यं लक्षणं संयुतम ॥

(बृहद्देशीय, पृ० 81)

मतंग कहते हैं कि भरत आदि पूर्व आचार्यों ने राग-स्वरूप का वर्णन नहीं किया है। प्रचलित संगीत के आधार पर उसी लक्ष्य और लक्षण का वे भाव-निरूपण कर रहे हैं। मतंग ने रागों के लक्षण और प्रस्तार दिये हैं। जातियों और रागों के चलन से युक्त बंदिशों को मतंग और शारंगदेव जातियों और रागों का प्रस्तार कहते हैं। राग हमारे प्रचलित संगीत के प्राण हैं। बृहद्देशीय में रागों के लक्षण और प्रस्तार से हमारे वर्तमान संगीत की कड़ी सहज ही प्राचीन संगीत से जुड़ती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तात्पर्य यह है कि भरतकालीन जाति गायन विकसित होकर मतंग के समय में राग गायन के रूप में प्रचलित हो गया था। व्युत्पत्ति के क्रम में सामवेद से स्वर, स्वर से ग्राम, ग्राम से मूर्च्छनाओं और मूर्च्छनाओं से जातियों की उत्पत्ति हुई। जातियों का विकसित रूप ही 'राग' कहलाया। मतंग ने ग्राम रागों के अतिरिक्त देशी रागों की भी चर्चा की है। इसके तो ग्रंथ के नाम में ही 'देशी' शब्द संयुक्त है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में ही मतंग ने लिखा है कि—

'देशे-देशे प्रवृत्तोऽसौ ध्वनिर्देशीति संज्ञितः ॥''

अर्थात भिन्न-भिन्न देशों एवं स्थानों में ध्वनि फैलती एवं प्रवृत्त होती है, इसलिए यह 'वृहददेशीय' कहलाती है। स्त्रियाँ, बाल-गोपाल और राजा-महाराजा अपनी-अपनी इच्छानुसार अपने-अपने देश में, जिसे अनुराग सहित गाते हैं, वह 'देशी' है। सार यह है कि—

(1) मतंग ने संगीत उपयोगी ध्वनि को देशी कहा है और साथ ही देशी ध्वनि से रचित जन-मन रञ्जक गीत को भी देशी कहा है।

(2) मार्ग से मतंग का संभवतः नियमबद्ध संगीत से तात्पर्य था।

मतंगोक्त 'मार्गी' से ही संभवतः बाद में मार्गी संगीत देशी संगीत से भिन्न धारा के रूप में माना जाने लगा था। किन्तु मतंग के वचनों से ऐसा प्रतीत होता है कि देशी संगीत और मार्गी में कोई भेद नहीं है। मतंग ने अपने ग्रन्थ में नाद-महिमा बताते समय नृत्य का नाम भी लिया है—

न नादेन बिना गीत, न नादेन बिना स्वराः।
न नादेन बिना नृत्त, तस्मान्नादात्मकं जगत् ॥

उन्होंने नाद के पाँच भेद माने हैं—(1) सूक्ष्म, (2) अतिसूक्ष्म, (3) व्यक्त, (4) अव्यक्त, (5) कृत्रिम।

मतंग ने ग्राम और मूर्च्छना की विस्तृत परिभाषा दी है और गंधार ग्राम का उल्लेख किया है। समवादी स्वरों में 9 अथवा 13 श्रुतियों का अन्तर और विवादी स्वरों में 2 श्रुतियों का अन्तर मतंग को मान्य है। वृहद्देशीय ग्रन्थ में सामगायन के प्रारम्भिक तीन स्वरों के प्रयोग का भी संकेत है।

भरत काल में रागों का अस्तित्व नहीं था। 'राग' का सुस्पष्ट उल्लेख सर्वप्रथम मतंग के 'वृहद्देशीय' में ही उपलब्ध हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि भरत ने जिस राग-मार्ग का उपदेश नहीं दिया था, वे उसकी व्याख्या कर रहे हैं। पहले के मार्गी संगीत की अपेक्षा इस नये संगीत को 'देशी' कहा गया।

मतंग ने रागों का वर्गीकरण मुख्यतः ग्राम राग और भाषा राग अथवा देशी राग—इन दो विभागों में किया है। उनके काल तक रागों का विकास विपुल संख्या में हो चुका था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मतंग ने लिखा है कि उनके समय में जाति के सात प्रकार प्रचलित थे, जिनमें से एक प्रकार 'राग जाति' का भी था। राग जाति के विषय में लिखा है कि—

स्वर वर्ण विशेषण ध्वनि भेदेन वा पुनः।
रम्यते येन पः कश्चित् स राग सप्त सताम ॥

मतंग ने प्रचलित पाँच प्रकार की सांगीतिक रचनाओं का उल्लेख किया है। साथ ही अपनी ओर से दो और शैलियों का भी उल्लेख किया है—शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, वेसरा, साधारणी तथा भाषा और विभाषा। मतंग द्वारा उल्लिखित दुर्गायत्त के उक्त श्लोक को सिंह भूपाल ने अपनी सुधाकर टीका में इस प्रकार दिया है—

"गीतयः पंच विज्ञेयाः शुद्धा भिन्ना च वेसरा।
गौड़ी साधारणी चैव इति दुर्गायते यतम् ॥"

1. शुद्धा—शुद्धा गीतिशैली सम और ललित स्वरों से युक्त संरचना है। इसमें स्वरों का प्रयोग साधारण ढंग से करते हैं। परन्तु स्वरों का प्रयोग आनन्द देने वाला होता है।

2. भिन्ना—भिन्ना शैली वक्र, सूक्ष्म और मधुर गमकों से युक्त संरचना है। इस शैली के गायन में स्वरों में काफी उतार-चढ़ाव करना पड़ता है। इस शैली में वक्र स्वरों से पूर्ण होने के साथ ही स्वर-परिवर्तन की प्रक्रिया का ज्ञान होता है।

3. गौड़ी—गौड़ी मन्द्र, मध्य और तार तीनों स्थानों में अखण्ड रूप से कम्पित गमकों से पूर्ण मनोहारी सूक्ष्म स्वरों से युक्त संरचना है।

4. बेसरा—चारों ही वर्णों में अत्यन्त रंजकतापूर्ण, वेगवान स्वरों में उत्पन्न होने वाली गीतिशैली है।

5. साधारणी—साधारणी शैली में उपरोक्त चारों ही शैलियों की सभी विशेषताएँ सन्निहित रहती हैं। सभी शैलियों की मार्दव कोमल और आनन्दवर्द्धक अभिव्यक्तियों को इसने आत्मसात किया है। सरल, मनोहर, अति सूक्ष्म, मधुर, कोमल और लालित्य से पूर्ण थोड़ा द्रुतलय में नियोजित कोमल प्रयोग से युक्त सभी गीति शैलियों का आश्रय लेकर उत्पन्न साधारणी गीति-शैली है।

सुधाकर टीका के अनुसार चारों ही गीति के लक्षणों से थोड़ा भाग लेकर जो मिश्रित स्वरूप बनता है उसे साधारणी गीति कहते हैं।

"साधारणी ज्ञेया सर्व गीति समाश्रयाः ॥"

उपर्युक्त पांच शैलियों के अतिरिक्त मतंग ने भाषा और विभाषा दो और शैलियों का वर्णन किया है। मतंग के अनुसार ग्राम रागों के आलाय प्रकार ही भाषा और आलाप के ही प्रकारों से उत्पन्न होकर विभाग कहलाते हैं।

फा०—4

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गायन की साधारण शैली जिसका उदारता के साथ गायकों में अधिक प्रयोग होने लगा था, गायकी में ख्याल के नाम से प्रचलित हुई।

भाषा गीति—काकु सहित, सुयोजित, कम्पित, कोमल, दीप्त, सुकुमार स्वर-प्रयोग जिस प्रकार लोकरंजन हो उसी प्रकार इस गीति का प्रयोग किया जाता है।

विभाषा गीति—ललित, दीप्त, कम्पित, तार-विस्तार, मध्यम दीप्ति, गमक से युक्त है। इससे लोकरंजन की दृष्टि से स्वेच्छानुसार इन स्वरों के प्रयोगों का यथास्थान विनियोग किया जाता है।

इन गीतियों के कुछ अवशेष आज भी हमारी राग-परम्परा में विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ, कल्याण, झिझोटी, भैरवी, काफी आदि जैसे रागों में स्वरों का सीधा प्रयोग शुद्ध गीति के अन्तर्गत समझा जा सकता है। दरबारी, मल्हार, पूरिया आदि जैसे रागों में मन्द्र, मध्य स्थान का प्रयोग गौड़ गीति के साथ युक्त किया जा सकता है। वहार, जैजैवन्ती, भैरव, देशी आदि रागों में स्वरों के सूक्ष्म और वक्र प्रयोग से भिन्ना गीति का अस्तित्व प्रदर्शित है। उसी प्रकार अड़ाना, सोहिनी आदि ताल प्रधान रागों में वेसरा गीति दृष्टिगत होती है।

परन्तु इतना तो हम कह सकते हैं कि प्राचीन गीति-व्यवस्था में रागों के गमक-भेद, लय-भेद, स्थान-भेद आदि के वैज्ञानिक नियम आज के रागों में वांछनीय हैं। आज अधिकांशतः रागों को एक ही ढंग एवं विस्तारक्रम से गाने-बजाने का नियम है। रागों की प्रकृति, रस, स्वरोच्चार, स्वरान्तराल की ओर ध्यान न देकर प्रायः एक ही शैली से प्रत्येक में विलम्बित आलाप, बहलावा, बोल-तान का प्रयोग और विलम्बित, मध्य तथा द्रुत सभी लयों का संचार करते हैं। इससे रस एवं भाव भंग होता है। उदाहरणार्थ, क्या तोड़ी जैसे करुण-रस के राग में तानों के प्रयोग से विपरीत रस की सृष्टि नहीं होती? आज भी मतंगकृत "बृहद्देशीय" भारतीय संगीत की अनुपम निधि के रूप में मान्य है।

"बृहद्देशीय" के समय से ही जाति गायन के स्थान पर राग गायन का सूत्रपात हुआ। मतंग ने अपनी जातियों के नाम भी भिन्न-भिन्न दिये हैं। वे निम्नवत हैं—

(1) टकी, (2) सावीरा, (3) मालव पंचम, (4) षाडव (5) वट्टराग, (6) हिंडोलक, (7) टक्क कोशिका।

उपर्युक्त कथित राग ही मतंग के मुख्य ग्राम राग कहे जा सकते हैं, जिनकी उत्पत्ति जातियों से हुई। इन्होंने रागों के तीन मुख्य भेद बतलाये हैं—शुद्ध, छायलग और संकीर्ण। जातियों के उन्होंने दस लक्षण वर्णित किये हैं जो आज भी पूर्णतः मान्य हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि भरत के 'नाटयशास्त्र' की लगभग सभी बातों का उल्लेख 'बृहद्देशीय' में उपलब्ध हैं। अन्तर मात्र इतना है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरत ने गान्धार, ग्राम को स्वर्ग स्थित वर्णित किया है तो मतंग ने गान्धार ग्राम का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त जाति गायन के स्थान पर 'राग' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ में प्राप्त है।

मतंग के 'बृहद्देशीय' ग्रन्थ के अतिरिक्त सातवीं और आठवीं शताब्दियों में नारदकृत "नारदीय शिक्षा" और 'संगीत मकरन्द' ये अन्य ग्रन्थ प्रकाश में आये।

नारदकृत : नारदीय शिक्षा

मतंग के उपरान्त नारद ने ही संगीत का परिचय वैज्ञानिक ढंग से किया है। इनका समय ईसा की 6वीं शताब्दी ई० माना जाता है। संस्कृत वाङ्मय में धर्मशास्त्र, भक्ति, ज्योतिष तथा संगीतादि विषयों के प्रचार में जिन-जिन ऋषियों का योगदान रहा है, उनमें नारद का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। उन्होंने "नारदीय शिक्षा" नामक ग्रंथ की रचना की, जो संस्कृत भाषा में है। यह ग्रंथ "शिक्षा-शास्त्र" पर आधारित है।

जिस प्रकार से ऋगवेद की शिक्षा के लिए "पाणिनीय शिक्षा" यजुर्वेद के लिए 'याज्ञवल्कीय शिक्षा' अथर्वेद के लिए माण्डूकी शिक्षा का निर्माण हुआ, उसी प्रकार सामवेद की उत्तम शिक्षा देने के लिए नारद ने "नारदीय शिक्षा" नामक ग्रंथ की रचना की। "नारदीय शिक्षा" का विषय सामगान है, गान्धर्व गान नहीं। उस काल का शिष्ट या क्लासिकल संगीत "साम" था तो लोक-संगीत था 'गान्धर्व', दोनों धाराएँ समानान्तर प्रचलित थीं। सातवीं और आठवीं शताब्दियों में दक्षिण भारत में भक्ति-आन्दोलन का विशेष प्रभाव था। अतः भक्ति और संगीत के सामंजस्य द्वारा जवाहर कीर्तन एवं भजन गाये जाने लगे। इस काल में धार्मिक भावना के सहयोग से संगीत का यथेष्ट प्रचार हुआ।

"नारदीय शिक्षा" में नारद ने बताया है कि संगीत की शिक्षा और वेदों का पाठ करने की उत्तम शिक्षा कैसे दी जाय। संगीत की दृष्टि से यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है। इस ग्रंथ में सामवेद को ऋचाओं के वर्णोच्चार एवं स्वरोच्चारण के सम्बन्ध में उपदेश दिये गये हैं। मन्त्रों का पठन एवं गायन शुद्ध निर्दोष हो, इस उद्देश्य को पूरा करने के सारे उपाय इस ग्रन्थ में निहित हैं।

"नारदीय शिक्षा" ग्रंथ दो भागों में विभक्त है। प्रत्येक भाग में आठ कण्डिकाएँ हैं। कुल श्लोकों की संख्या 238 हैं। प्रथम भाग को प्रथमाष्टक एवं द्वितीय भाग को द्वितीयाष्टक कहा गया है।

"नारदीय शिक्षा" में स्वर, ग्राम, राग एवं तानादि का विवेचन तथा प्राचीन संगीत की परम्परा का वर्णन है। ग्रंथकार ने बताया है कि वेदों का पाठ करने वाले अपने इष्ट वेदों में किन स्वरों का प्रयोग करते थे। प्रथम कण्डिका में जो श्लोक वर्णित है, उनसे ज्ञात होता है कि ऋगवेद की ऋचाओं का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उच्चारण करने के लिए केवल एक स्वर का ही प्रयोग होता था। वह गायन एक स्वर में था। स्वर-संख्या के आधार पर उसकी जाति का नामकरण आर्चिक हुआ। उत्तरमन्द्रा, अभिरुद्धगता, अश्वक्रान्ता, सौवीरा, दृष्यका उत्तरायता एवं रजनी है। उनके प्रारम्भिक स्वर षड्ज से निषाद तक है। इसी प्रकार देवों की सात मूर्च्छनाएँ एवं पितृगणों की सात मूर्च्छनाएँ उनके विशिष्ट नामों के साथ ग्रन्थों में पायी जाती हैं।

जिन देवताओं को सात स्वर प्रिय है उनका भी उल्लेख ईस ग्रंथ में है। उनके अनुसार षड्ज से देवता तृप्त होते हैं। ऋषभ से ऋषि गांधार से पितृगण मध्यम से गन्धर्व, पंचम से देवता, पितृगण एवं ऋषि, निषाद से यक्षगण एवं धैवत से मनुष्य जाति की तृप्ति होती है। षड्ज से निषाद तक गायक अग्नि, ब्राह्मण आदि बता कर स्वरों के अधिष्ठात्री देवता भी बताये गये हैं।

इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में सामाजिक भेदभाव, बंग, पशु-पक्षियों के स्वर इन सब का सम्बन्ध भी सांगीतिक स्वरों से जोड़ा गया है। ग्रन्थकार ने लिखा है कि मानव-शरीर के भिन्न-भिन्न भागों से भिन्न-भिन्न स्वरों की उत्पत्ति होती है। कण्ठ से षड्ज स्वर की उत्पत्ति, ऋषभ की सिर से उत्पत्ति, गांधार की उत्पत्ति अनुनासिक से होती है।

इन्होंने स्वरों को जातियों में बाँटा है। पंचम, मध्यम एवं षड्ज की ब्राह्मण जाति, ऋषभ धैवत की क्षत्रिय जाति, गांधार निषाद की वैश्य जाति वतायी गई है। न्यून उच्चारित स्वरों की जाति शूद्र बतायी है। इन्होंने स्वरों के रंग भी बताये हैं। षड्ज स्वर का रंग पद्म-पत्र के समान, ऋषभ का रंग पिंजर, गांधार का सुवर्ण-सदृश पीतवर्णी, मध्यम का कुन्द-पुष्प के समान, पंचम का कृष्ण वर्ण, धैवत का पीतवर्ण, निषाद का रक्तपीत, श्वेत वर्ण है। उनके अनुसार षड्ज स्वर मयूर के समान, रिषभ स्वर गाय के समान, गांधार वकरी-स्वर के समान, मध्यम, क्रौंच के समान, धैवत घोड़े के स्वर के समान, निवाद हाथी के स्वर के समान होते हैं।

उस युग में स्वर निश्चित करने के लिए दो स्वरवाद्य थे—वंशी एवं वीणा। सामगायकों का षड्ज स्वर हार्मोनियम के सफेद एक से सफेद चार तक कोई भी स्वर हो सकता है। सामगायक प्रौढ़ पुरुष वर्ग से ही होते थे। स्त्रियों एवं बालकों द्वारा वेदपाठ नहीं होता था।

आगे चलकर ग्रन्थकार ने तीन सप्तकों की उत्पत्ति-स्थानों के सम्बन्ध में बताया है। वे उत्पत्ति-स्थान हैं—उर, कण्ठ एवं सिर। प्रत्येक स्थान से सात स्वर उत्पन्न होने की बात भी कही गई है। यजुर्वेद का पठन दो स्वरों में होता था एवं जाति का नाम 'गाथिक' रखा गया था। सामवेद के गायन में तीन स्वरों का प्रयोग होने के कारण उसे 'सामिक' जाति कहा गया। सामवेद गायन के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर अवरोही "गं रें सां" थे। सामगान के उत्तर काल में सात स्वरों का प्रयोग होने लगा जो संभवत: "तुम्बरु" ऋषि के प्रयासों का फल था।

वैदिक गायन की मूर्च्छना अवरोही थी। वह तार गांधार से अथवा तार मध्यम से प्रारम्भ होती थी। वैदिक युग में वेद-पाठ करने वालों के भिन्न-भिन्न समूह भिन्न शाखा के कारण होते थे। प्रत्येक शाखा के वेद पाठक कुछ नियत स्वरों का प्रयोग करते थे। नारदजी ने "नारदीय शिक्षा" में लिखा है कि कण्ठादि शाखा का पठन करने वाले वेद-पाठक ऋगवेद एवं सामवेद का गायन प्रथम स्वर से करते थे। अन्य मुनियों के कथन के अनुसार ऋगवेद द्वितीय एवं तृतीय स्वर से गाया जाता था।

तैत्तिरीय शाखा के पठन करने वाले द्वितीय, चतुर्थ, मद्र एवं अतिस्वार इन चार स्वरों का प्रयोग करते थे। किन्तु मामगायक वेदपठन करने में प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, कुष्ट एवं अतिस्वार इन सात स्वरों का प्रयोग करते थे।

ये समस्त ऐतिहासिक एवं सांगीतिक सूचनाएँ हमें "नारदीय शिक्षा" की प्रथम कण्डिका से प्राप्त होती हैं।

द्वितीय कण्डिका में ग्रन्थकार द्वारा तीन ग्राम तथा इक्कीस मूर्च्छनाओं का वर्णन किया गया है। इन्होंने षड्ज मध्यम और गांधार तीनों ग्रामों का उल्लेख करके प्रत्येक से सात मूर्च्छनाएँ उत्पन्न मानी हैं। कुल तानें उन्होंने 49 बतायी हैं जिनमें से 20 मध्यम ग्राम की, 15 गांधार ग्राम की एवं 14 षड्ज ग्राम की तानें मानी गई हैं। उन्होंने लिखा है कि षड्ज ग्राम भूलोक से मध्यम ग्राम भूवर्लोक से एवं गांधार ग्राम स्वर्ग लोक से उत्पन्न होता है।

इक्कीस मूर्च्छनाओं को देवी, पितृगणों एवं ऋषियों के मध्य सात-सात के हिसाब से बाँटा है। क्योंकि इस ग्रन्थ को सामवेदीय गायन हेतु लिखा है; अतः स्वर, ग्राम आदि संज्ञाओं का सम्बन्ध देवी-देवताओं से जोड़ा जाना धार्मिक मान्यता को प्रदर्शित करता है। यही कारण है कि संगीत के पारिभाषिक शब्द कई जगह देवी-देवताओं से जोड़े गये हैं। उन्होंने आगे बताया है कि देवों की मूर्च्छनाओं को यक्ष गाते हैं एवं ऋषिगणों की मूर्च्छनाओं को मनुष्य गाते हैं। ऋषिगणों की सात मूर्च्छनाएँ उत्तर-श्रुतियों की व्याख्या भी लेखक ने की है। श्रुतियों की पाँच जातियाँ बतायी हैं—दीप्ता, आयता, करुणा, मृदु, मध्य।

श्रुतियों के विषय में वे लिखते हैं कि जिस प्रकार दधि में घी का अस्तित्व एवं लकड़ी में अग्नि का अस्तित्व स्पष्ट रूप से नहीं दिखता किन्तु घर्षण से स्पष्ट हो जाता है, उसी प्रकार स्वर में श्रुति से सूक्ष्मता से बनी रहती है एवं दृढ़ अभ्यास से समझ में आती है।

इस ग्रन्थ में उन्होंने ग्राम रागों का भी उल्लेख किया है। सात ग्राम रागों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के नाम उन्होंने बताये हैं। ये इस प्रकार हैं—(1) षाडव, (2) पंचम, (3) मध्यम ग्राम, (4) षड्ज ग्राम (5) कौशिक, (6) कौशिक मध्यम, (7) मध्यम ग्राम।

गायक के गुण-दोषों का वर्णन जो नारदीय शिक्षा में दिया गया है, आज भी उतना ही सत्य है। गायक का प्रथम गुण "रक्त" है, आधार स्वर से एकजान होकर गायन करने वाला गायक इस गुण से युक्त माना जाता है।

"पूर्ण" नामक गुण उस गायक का हैं जो स्वर-श्रुति, छन्द एवं पादाक्षरों का पूर्णतः से उच्चारण करता है। "अलंकृत" गुण का अर्थ है—तीनों सप्तकों में सहजता-पूर्वक गायन। "प्रसन्न" से अर्थ है—निःशंक भाव से बिना कपट गाना। "व्यक्त" का अर्थ है पदों को इस प्रकार से उच्चारण करना जिससे श्रोता अर्थ को ग्रहण कर ले।

इसी प्रकार से गायक के अनेक गुणों का वर्णन "नारदीय शिक्षा" में मिलता है। गायक के दोषों का भी वर्णन उन्होंने किया है; जैसे—शंकित, मौनम्, उद्घृष्ट, अनुनासिकम, काकस्वर, शिरार्स, विस्वर, निस्सम आदि।

उन्होंने श्रोताओं के भेदों का वर्णन भी अच्छा किया है। उच्च प्रकार के गायन सुनने के इच्छुक वर्ग को वे 'आचार्य' कहते हैं। 'पंडित वर्ग' वह है जो गायन के पदों एवं छन्दों पर ध्यान देने वाला वर्ग है। स्त्री वर्ग के गायन में मधुरता अच्छी लगती है। कुछ अन्य वर्ग हैं जो उच्च स्वर में गायन पसन्द करते हैं।

लेखक ने बताया है कि सामगायक बनने की इच्छा करने वाले छात्रों का आचरण किस प्रकार हो, इसका पथप्रदर्शन भी बहुत अच्छे ढंग से किया गया है। कण्ठ दोष से बचने के लिए त्रिफलादि औषधि का भी प्रयोग बातया गया है। सामगायकों का आसन कैसा हो, शरीर, वीणा, अंगुलियों का प्रयोग कैसे किया जाय, ये बातें सूक्ष्मतापूर्वक बतायी गई हैं।

इस प्रकार निश्चय ही "नारदीय शिक्षा" समस्त प्राचीन एवं आधुनिक संगीतशास्त्र का आधार-ग्रन्थ है। सामवेदीय सात स्वर क्रुष्ट, मध्यम, प्रथम, द्वितियादि, क्रमशः लौकिक स्वरों "मा ग रे सा नि ध प" के समान हैं जो आधुनिक स्वरों के समान हैं। संगीतशास्त्र में 'नारदीय शिक्षा' का सांगीतिक दृष्टि से महत्व-पूर्ण स्थान है।

संगीत-मकरन्द—यह ग्रन्थ 7वीं शताब्दी का है। इसके भी रचयिता नारद हैं। शास्त्रीय प्रतिपादन की दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत महत्वपूर्ण नहीं है, पर रोचक है। आरम्भ में ही संगीत की परिभाषा दी गयी है।

'गीतं वाद्यं च नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते।'

ग्रन्थ चार प्रकारों में विभक्त है—(1) प्रकार, (2) कम्पन, (3) जाति, (4) समय।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

(1) प्रकार—रागों को नारद ने प्रकार की दृष्टि से स्त्री, पुरुष और नपुंसक वर्गों में वर्गीकृत किया है। इस ग्रन्थ में 'राग-रागिणी' का उल्लेख उपलब्ध है।

इन तीनों प्रकारों के अन्तर्गत रागों के रसानुकूल प्रयोग के सम्बन्ध में नारद ने वर्णित किया है—

"रौद्रेऽद्‌भूते तथा वीरे पुंरागः परिगीयते।
शृंगार हास्य करुणं स्त्रीरागैश्च प्रगीयते ॥
भयानके च बीभत्से शान्ते गायन्नपुंसके ।"

अर्थात् रौद्र, अद्‌भुत तथा वीर रसों के प्रसंग में पुरुष राग, शृंगार, हास्य, करुण में स्त्रीराग और भयानक, बीभत्स, शान्त में नपुंसक राग प्रयुक्त किये जायें। यह विभाजन उस समय के लिए बिलकुल नवीन था। उन्होंने 20 पुरुष राग, 24 स्त्रीराग और 13 नपुंसक राग माने हैं।

स्वरों, रागों में निस्सन्देह रूप से स्त्री-पुरुष वर्ग दृष्टिगोचर होता है। उनके भाव रूप का अनुभव किया जा सकता है। उनकी रस-मूर्ति का दर्शन कर सकते हैं। राग-रागणियों के भाव रूप की स्वीकृति मात्र कोरी कल्पना ही नहीं अपितु सत्य पर आधारित है।

(2) कम्पन— नारद ने कम्पन के दृष्टिकोण के रागों के दो प्रकारों का वर्णन किया है—

(1) मुक्तांक; (2) कम्पविहीन।

(3) जाति—उन्होंने जाति के अनुसार रागों को तीन वर्गों में रखा है—

(1) सम्पूर्ण; (2) षाड़व राग; (3) औडव राग।

(4) गायन-समय—इस दृष्टि से उन्होंने रागों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया है—

(1) प्रातःकालीन राग, (2) सायंकालीन राग, (3) मध्याह्नकालीन राग,

इसके अपरान्त नारद ने अपने ग्रन्थ में 22 श्रुतियों पर भिन्न-भिन्न नाम से स्वर स्थापित किये हैं। भरत के 33 अलंकारों की जगह केवल 19 का ही निरूपण किया है।

इसके अतिरिक्त संगीत-मकरन्द में वीणा के अठारह प्रकार प्राप्य हैं और नाद के पाँच भेद कथित हैं—नखज, वायुज, चर्मज, लोहज, शरीरज। नाद की परिभाषा निम्नवत है—

"नकारः प्राणवीजः स्यात् दकारो वह्नि।
रुच्यते अनाहतो हतश्चैव स नादः द्विविधो मतः ॥"

संगीत-मकरन्द में वर्णित रागों के वर्ग "राग-रागिनी" पद्धति का आधार बने।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजपूत-काल में संगीत

[647 ई० से 1000 ई० तक]

राजपूत अपने को क्षत्रियों के वंशज मानते थे। राजपूत जाति स्वभाव से ही युद्धप्रिय जाति थी। उनमें आपस में अत्यधिक छूट थी, जिसके कारण वे विदेशी आक्रमणों का मिल कर सामना नहीं कर पाये। परिणाम यह हुआ कि भारत अनेक छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गया। मौर्य एवं गुप्तकाल में जो संगीत की स्थिति थी, वह इस काल में न रह सकी। संगीत अनेक वर्गों में विभक्त हो गया। इसके विकास में पृथकता आ गयी। राजपूत कभी भी संगीत के आत्मिक सौन्दर्य को न समझ सके। हाँ, इनकी स्त्रियाँ अवश्य संगीत प्रिय होती थीं। वे अवकाश के समय गाया करती थीं और नृत्य से भी उन्हें प्रेम था।

भारत अनेक छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित हो गया था। संगीत के क्षेत्र में जो "घराने" का क्रम चला, वह राजपूत-काल की ही देन है। इस काल में संगीतकार अपनी कला को इतना गुप्त रखते थे कि वे अन्य जाति को उसका प्रशिक्षण नहीं देते थे। अनेक वर्गों में विभक्त हो जाने से संगीत-विकास के अन्दर पृथकता आ गयी। ये संगीतकार अपने ज्ञान की शिक्षा अपनी सन्तान को ही देते थे; इस संकीर्ण मनोवृत्ति का संगीत के विकासक्रम पर बहुत खराव प्रभाव पड़ा। संगीत का विकास अवरुद्ध हो गया। संगीतकारों में आपस में ईर्ष्या की भावना पनपने लगी थी। एक कलाकार दूसरे कलाकार की उन्नति नहीं देख सकता था। घमंड-अहंकार से वे पूर्ण होते थे। इसीलिए इस काल में संगीत जन-साधारण से भी वंचित होता गया।

नाटककार भवभूति इस काल में हुए। इन्होंने "महावीर चरित" तथा "मालती माधव" आदि नाटक लिखे। यह नाटक पूर्णतया संगीतमय थे। संगीतमय नाटक ही इस युग में अधिक प्रचलित हुए। अनेक अच्छे-अच्छे काव्य भी लिखे गये; जैसे—माघ का "शिशुपाल-वध, भर्तृहरि का "भट्टि काव्य" तथा श्रीहर्ष का "नैषदचरित" बहुत प्रसिद्ध हुए।

जयदेव कृत "गीत गोविन्द"

12वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में "गीत गोविन्द" नामक संस्कृत के एक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना हुई। इसके रचयिता प्रसिद्ध कवि एवं संगीतज्ञ जयदेव थे; जिन्हें उत्तर भारत का गायक कवि होने का सम्मान उपलब्ध है। इनके पिता का नाम मजीयदेव था। बाल्यकाल में माता-पिता की मृत्यु के कारण वह निराश होकर जगन्नाथ पुरी चले गये और पुरुषोत्तम धाम में रहने लगे। कुछ दिन वहाँ रहने के बाद वह तीर्थ-यात्रा पर निकले। उसके पश्चात विवाह कर वह सपत्नीक पुनः भ्रमाणार्थ निकले। उन्होंने "गीत-गोविन्द" की रचना की। युवावस्था में ही पत्नी की मृत्यु हो गई। इन्होंने वैराग्य ग्रहण कर लिया और अपने ग्राम वापस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आ गये। वहाँ उन्होंने साधु-जीवन व्यतीत किया। अपनी जन्मभूमि में ही परलोक-वासी हुए। उस ग्राम में उनकी समाधि है जहाँ प्रति वर्ष मकर-संक्रांति के दिन आज भी मेला लगता है।

"गीत-गोविन्द" में राधा-कृष्ण विषयक प्रबन्ध गीत हैं, जिन्हें आज भी अनेक गायक ताल-स्वरों में बाँध कर गाते हैं। अनेक वैष्णव मन्दिरों में आज भी उनके गीत, राग एवं ताल सहित गाये जाते हैं। दक्षिण भारत के कुछ मन्दिरों में तो नृत्य के साथ इनकी अष्टपदियाँ अभिनीत की जाती हैं, जिनमें ताल और लय के साथ भाव-प्रदर्शन भी होता है।

जयदेव कवि गायन तथा नृत्य के भी प्रेमी थे; अतः "गीत-गोविन्द" में प्रत्येक अष्टपदी पर राग एवं ताल का निर्देश उपलब्ध है। इसमें 12 सर्गों में 28 गीत हैं जिनमें प्रत्येक में 8-8 पद हैं; अतः इन्हें 'अष्टपदी' भी कहते हैं। इनमें कृष्ण, राधा या सखियों की उक्तियाँ हैं। सभी अल्पाधिक मात्रा में एक-दूसरे से संयुक्त हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ में कथा-प्रवाह है। अत्यन्त कर्ण-प्रिय एवं ललित पदों का विन्यास और अनुप्रास की छटा से उत्पन्न जैसा नाद-सौन्दर्य इसमें है, वैसा संस्कृत के काव्य में अत्यन्त दुर्लभ माना जाता है। इसमें शृंगार रस प्रधान है। यदि उन श्लोकों की स्वर-लिपियाँ होतीं तो आज उनके मौलिक स्वरूप का पता लगाया जा सकता था। संस्कृत भाषा में होने के कारण साधारण जनता में इन गीतों का प्रचार न हो सका अन्यथा ये गीत गेय हैं और भाव रस लालित्य में उच्च-कोटि के हैं।

"ललित लवंग लता परिशीलन,
कोमल मलय समीरे।
बिहरनि हरिरिहि सरस वसन्ते ॥"

जयदेव की कोमल कान्त पदावली की मधुरता हृदय को मुग्ध करने वाली है।

'गीत गोविन्द' की विशेषता पर मुग्ध होकर 'Edwrn Arnold' ने अंग्रेजी में इसका अनुवाद 'The Indian Song of Songs' किया, अर्थात गीतों का गीत। यथार्थतः जयदेव की यह अमर कला कृति है। विभिन्न भारतीय भाषाओं में तो इसका अनुवाद हुआ ही है, किन्तु लैटिन, जर्मन, अंग्रेजी आदि में भी इसका अनुवाद हो चुका है। इससे भलीभाँति प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ कितना महत्वपूर्ण है।

श्री रानाडे के अनुसार

"Gita Govind is a series of songs descriptive of the amours of Krishna and belongs to the number of India's lyrical songsters connected with the Bhakti revival. The Gita Govind is a charming lyrical composition, and has been translated under the

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

name of "the Indian song of songs". In these songs Radha pours forth her yearning, her sorrow and her joy and Krishna assures her of his love."

मीरा के सम्मुख गीत काव्य विषयक जो प्रमुख आदर्श था वह महान संगीतज्ञ जयदेव के 'गीत गोविन्द' का ही था; क्योंकि इसके पद अवश्य ही राजस्थान में गाये जाते थे। महाराणा कुम्भ ने उस पर टीका भी लिखी थी।

पंजाब में 15वीं शताब्दी में जयदेव के 'गीत गोविन्द' का भी प्रचलन अत्यधिक रहा। पंजाबियों ने जयदेव के गीतों को बड़े अनुराग से गा-गा कर प्रचार-प्रसार किया और कई गीतों पर नृत्य भी निर्मित किये। जयदेव कृत कतिपय ध्रुपद भी उपलब्ध हैं। परवर्ती प्रबन्धों पर दो रूपों में इसका प्रभाव पड़ा—(1) ध्रुपदों और वैष्णव पद साहित्य में पद-शैली के रूप में, और (2) गीत गोविन्द के आधार पर निर्मित 'गीत गिरीश', 'संगीत गङ्गाधरम्', 'कृष्णलीला तरंगिणी' आदि प्रबन्ध रचनाओं के रूप में।

इस प्रकार 'गीत गोविन्द' के यशस्वी लेखक कवि जयदेव का नाम साहित्य और संगीत-जगत में आदर के साथ लिया जाता है। आप उच्चकोटि के कवि होने के साथ-साथ वाग्गेयकार और संगीतज्ञ भी थे। भारतीय संगीत में आज भी आपको उच्च स्थान प्राप्त है।

इसी काल में राजपूतकालीन राग-रागनियों के कुछ चित्र मिलते हैं। राजपूत कला-प्रेमी थे। इसी युग में मुसलमानों ने भारत में प्रवेश किया। राजपूतों के पारस्परिक विग्रह के कारण ही मुसलमान और ईरानी बादशाहों ने उनकी इस स्थिति का लाभ उठाया था। भारत में इस्लाम धर्म का झण्डा फहराने लगा था। संगीत की दृष्टिकोण से यह काल अधिक अनुकूल नहीं रहा। मुहम्मद गोरी तथा अन्य मुस्लिम शासकों से हिन्दू राजाओं का युद्ध होता रहा, जिसके फलस्वरूप देश में अव्यवस्था फैली रही; अतः संगीत के प्रचार-प्रसार में भी बाधा का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। परिणामस्वरूप, इस संक्रमण काल में भारत की प्रसिद्ध संगीत संस्कृति का यवन-संस्कृति से सम्मिश्रण होने लगा। राजपूत काल में अधिकांशतः संगीत राजाओं के संरक्षण में आगे बढ़ा। अतः वह जन सामान्य के जीवन से विलग होता गया। श्रृंगारपूर्ण संगीत का अधिक निर्माण हुआ। शास्त्रीय संगीत भी इससे प्रभावित हुआ और नैतिकता के पवित्र स्तर का जितना इस युग में पतन हुआ उतना अन्य किसी युग में नहीं। सामान्य जनता ने अपने लिए लोक-संगीत का निर्माण किया।

उत्तरी एवं दक्षिणी संगीत की दो पृथक धाराएँ

इस युग की महत्वपूर्ण घटना है—भारतीय संगीत का उत्तरी हिन्दुस्तानी और कर्नाटकी पद्धतियों में विभाजन का सूत्रपात होना। यथार्थतः उक्त दोनों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद्धतियाँ भारतीय संगीत की ही दो शाखाएँ हैं। इनके लिए भरत एवं शारंगदेव के ग्रन्थ आधारभूत हैं, किन्तु प्रादेशिक भिन्नता के कारण दोनों का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ। ग्यारहवीं शताब्दी में पठानों के आगमन से भारतीय संगीत में एक विशेष परिवर्तन हुआ। मुसलमानों का प्रभाव भारतीय संगीत की पृष्ठभूमि पर गहरा पड़ता गया। दक्षिण भारत इन आक्रमणों से वंचित रहा, इसलिए उसकी संस्कृति भी सुरक्षित रही। प्राकृतिक असुविधाओं के कारण दोनों भागों में पारस्परिक सम्बन्ध नाम मात्र का था। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ एवं नदियों के कारण दक्षिण के संगीत की विदेशियों से रक्षा होती रही। आज भी दक्षिण प्रदेश के संगीत में जितनी भारतीयता की छाप एवं मौलिकता उपलब्ध है, उतनी उत्तर भारत के संगीत में नहीं।

मध्यकाल

ग्यारहवीं शती से मध्यकाल का आविर्भाव होता है। इस काल के प्रारम्भ में उत्तरी तथा दक्षिणी संगीत-पद्धतियाँ पृथक होने लगी थीं। 1300 ई० तक मुसलमानों का सुदृढ़ साम्राज्य भारत में स्थापित हो गया। फारसी सभ्यता, कला एवं संगीत का प्रभाव उत्तरी भारत के संगीत पर पड़ा। मध्यकाल के पूर्व तक ग्राम राग और जातियाँ प्रचलित थीं। पर, मध्यकाल में राग गायन का प्रचलन हो गया। ध्रुपद और ख्याल भी प्रचलित हुए। आक्रमणकारियों के शृंगारिक और भोग-विलासपूर्ण वातावरण का समावेश भारतीय संगीत में होने लगा। मुस्लिम शासकों ने भारतीय संस्कृति के ग्रन्थों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उन्होंने बड़े-बड़े प्रलोभन देकर भारतीय विद्वानों से ऐसे ग्रन्थों की रचना करायी जिनमें मुस्लिम संस्कृति एवं सभ्यता की प्रशंसा वर्णित थी।

यह पहले कहा जा चुका है कि भारत के अनेक देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध थे। उनमें से एक देश अरब भी था। परन्तु इन व्यापारिक सम्बन्धों के परिणाम भारतवर्ष के लिए लाभदायक न हुए। 712 ई० में मुहम्मद-बिन-कासिम ने सिन्ध पर सबसे पहला आक्रमण किया। बहुत से अरब सैनिक भारतीय नारियों से विवाह करके भारत में ही बस गये। धीरे-धीरे मुसलमान अपने धर्म का प्रचार करने लगे। वे भारतीय गायकों, शिल्पियों, दार्शनिकों और विद्वानों से अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने भारतीय विद्याओं को सीखने का भी प्रयास किया। दसवीं शताब्दी में सुबुक्तगीन ने भारत पर दो आक्रमण किये। यहीं से भारत पर मुसलमानों के आक्रमण निरन्तर होते रहे। सुबुक्तगीन के पुत्र महमूद गजनवी ने ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत पर सत्रह बार आक्रमण किया। भारतवर्ष उस समय विदेशों में "सोने की चिड़िया" के नाम से विख्यात था। विदेशी दुश्मन व्यापार के माध्यम से भारतवर्ष में प्रवेश करते और धन लूटते रहे। महमूद गजनवी ने तो भारत की विशाल धन-सम्पत्ति को बहुत लूटा। भारतवर्ष की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आन्तरिक प्रशासनिक स्थिति राजपूतों के हाथों में शिथिल हो चुकी थी। राजपूत न तो शक्ति शाली ही थे और न परस्पर मिलकर रहते थे। इस आपसी फूट का पूरा लाभ मुसलमानों ने उठाया। ऐसी डावाँडोल स्थिति में भारत मुसलमान आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा न कर सका और अन्त में बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक आते-आते दिल्ली मुसलमानों का केन्द्र बन गयी। देश में सर्वत्र इस्लाम धर्म का प्रचार होने लगा। कुछ लोगों को बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया। मुस्लिम संस्कृति ने भारत में अधिकार जमा लिया था। यह वह स्थिति थी जबकि भारतवासी दो संस्कृतियों के मध्य होकर गुजर रहे थे। अनेक व्यक्ति मुस्लिम शासकों के दबाव एवं प्रलोभनों में आकर नैतिक चरित्र से गिरने लगे और मुसलमान धर्म स्वीकार करने लगे। संगीत भी ऐसी स्थिति में पतन की ओर जा रहा था। शृंगारिक वातावरण और शृंगारिक पदों का समावेश होने लगा। भारतीय संगीत इससे प्रभावित हुए बिना न रह सका और उसका आध्यात्मिक रूप समाप्त होने लगा तथा उसकी पवित्रता नष्ट होने लगी। अज्ञानतावश भारतीय संगीतज्ञ भी इस स्थिति से बचे न रह सके। भारतीय संगीत अपनी भारतीयता को अक्षुण्ण न रख सका। फारसी सभ्यता, कला एवं संगीत का प्रभाव उत्तरी संगीत पर पड़ा। मुस्लिम शासकों ने भारतीय संस्कृति के ग्रंथों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उन्होंने बड़े-बड़े प्रलोभन देकर भारतीय विद्वानों से ऐसे ग्रन्थों की रचना करवायी जिनमें मुस्लिम संस्कृति एव सभ्यता की प्रशसा होती थी।

आक्रमणकारियो का प्रभाव उत्तरी भारत पर ही अधिक रहा किन्तु दक्षिण भारत में आन्तरिक हलचल बहुत कम रही। उत्तर में किसी भी प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ की रक्षा न हो सकी। मुसलमान शासकों ने भारतीय साहित्य को मनमाना ढंग से नष्ट किया। संगीत की दृष्टि से यह काल बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण रहा। मुस्लिम शासक भारतीय संगीत और साहित्य के प्रति बहुत संकीर्ण और निम्न विचार रखते थे। भारतीय विद्याओं और कलाओं का पूर्णतः पतन हुआ। मुसलमानों ने भारत की प्रगति को पूर्णरूपेण अवरुद्ध किया। संगीत का जो आध्यात्मिक पक्ष था वह शृङ्गारिक तत्वों से पूर्णतया दब गया। यद्यपि सगीत का प्रचलन था, परन्तु केवल राजाओं एवं दरबारियों के मनोरंजन के लिए।

मुस्लिम प्रवेश-युग भारतीय संगीत के लिए बहुत दुर्भाग्यपूर्ण रहा। भारतीय लोगों की अभिरुचि मुस्लिम संस्कृति की ओर बढ़ने लगी। अनेक हिन्दुओं ने अपना धर्म बदल दिया और मुसलमान बन गये। क्योंकि हिन्दुओं को ऊँचे-ऊँचे पदों का लालच दिया जाता था। वे अपना धर्म बदल कर मुस्लिम संस्कृति और कला संगीत की प्रशंसा करने लग गये। भारतीय संगीत की पवित्रता और उसका प्राचीन सौन्दर्य तो एकदम नष्टप्राय हो गया था। मुस्लिम काल वास्तव में भारतीय संगीत के लिए अभिशाप बन गया। मुस्लिम शासक भारतीय संगीत को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा संगीतज्ञो को अत्यन्त हेय दृष्टि से देखते थे। दरबार में भी उनको स्थान नहीं देते थे उन्होंने भारतीय संगीत-साहित्य को भ' समूल नष्ट कर दिया। शुद्ध रूप मे हिन्दू कहलाने वाली सभी भारतीय कलाओ पर यवन-सस्कृति का प्रभाव पड़ना शुरू हो गया। यह शासक वर्ग था; अतः उसका प्रभाव प्रत्येक क्षेत्र में विशेष रूप से देखने को मिलता है।

मुसलमानों के साथ-साथ भारत में मुसलमान सन्त, जिन्हें सूफी कहते हैं, इस्लाम धर्म के प्रचार में बहुत योगदान दिया। सूफी सन्तों ने उनकी विचारधाराओं ने तथा चिश्ती-परम्परा ने भारत के दीन-हीन, दलित और उपेक्षित हिन्दू-समाज पर गहरा प्रभाव रख छोड़ा था। सूफी लोग संगीत के बहुत प्रेमी थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संगीत पर ईरानी संगीत का प्रभाव 13वीं शताब्दी के प्रारम्भ से दृढ़ रूप मे फैलता चला गया।

श्री चैतन्य देव के अनुसार

"From the last days of Ghaznavi to the coming of Mohammad Ghori in 1911 A. D., the main influence of Islam was in Punjab But by the 13 century almost the whole of the sub-continent was affected more or less by the culture of new Muslim-rulers. Literature, Architecture, Music and Social Life in all venues felt this dominance and very novel trends of positive absorption and militant reaction came to be felt."

आचार्य बृहस्पति लिखते हैं कि "मुसलमान शासकों के दरवार में भी परिस्थिति ऐसी न थी कि विशुद्ध भारतीय भावनाएँ तथा भारतीय कलाएँ उभर सकें।"

मुसलमान शासकों ने मुख्यतया अपने ही सहधर्मियों को दरबार में संगीतज्ञों के पद पर नियुक्त किया। उन्होंने प्राचीन ग्रन्थों पर मनमाने अत्याचार किये। इन ग्रन्थों को समझने में प्रायः असफल ही रहे।

13वीं और 14वीं शताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी के शासन-काल में संगीत का पुनः उत्कर्ष हुआ। वह बड़ा ही महत्वकांक्षी बादशाह था, किन्तु वह संगीत का बहुत प्रेमी था। उसने संगीत-प्रचार एवं प्रसार में बहुत योगदान किया। इनके दरवार में अमीर खुसरो ने उच्च स्थान प्राप्त किया। खुसरो ने भारतीय संगीत के क्षेत्र में क्रान्ति मचा दी। वह स्वयं श्रेष्ठ कवि और संगीतज्ञ था। अमीर खुसरों ने सर्वप्रथम भारतीय संगीत में कव्वाली रीति को अपनाया। कई प्रकार के आधुनिक राग "लिलफ", "साजगिरी", "सरपरदा" आदि को प्रचलित किया। उसने भारतीय संगीत को अमूल्य निधियाँ प्रदान की जो इस प्रकार हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(1) गायन-शैलियाँ—ख्याल, तराना, चतुरंग, त्रिवट आदि ।
(2) ताल—झूमरा, सूल, आड़ा चारताल इत्यादि ।
(3) वाद्य—तबला, सितार आदि ।

उसने हजारों कविताएँ ब्रजभाषा में लिखी हैं । दक्षिणी संगीतज्ञ गोपाल नायक उसका समकालीन था । अमीर खुसरो की गोपाल नायक से सांगीतिक प्रतियोगिता के कई उदाहरण इतिहास में मिलते हैं । ऐसा कहा जाता है कि जब गोपाल दिल्ली के दरबार में आया तो उसने उस श्रणी का गान किया, जिसे गीत कहते हैं । उसके समान योग्य सगीतज्ञ के शक्तिशाली एवं सुमधुर कण्ठ के योग से उस शैली का सौन्दर्य निखर उठा । अमीर खुसरो, जो सिंहासन के नीचे छिपकर संगीत सुन रहा था, बादशाह के आदेश पर उस शैली को याद करने का प्रयत्न करता रहा । एक दिन उससे उसी शैली पर आधारित एक कव्वाली और तराना गाया; फलस्वरूप उसे सम्मान मिला और गोपाल नायक उस सम्मान से वंचित रहा ।

उत्तरी भारत के संगीत में तो फारसी सभ्यता और संस्कृति के कारण नया मोड़ आया, पर दक्षिण भारत में प्राचीन संगीत की सुरक्षा और वृद्धि होती रही । आज भी कई संस्कृत, तेलगु, कन्नड़ और तामिल के संगीत-ग्रन्थ विद्यमान हैं । वहाँ संगीत इतना प्रगतिशील था कि नारी और पुरुष वर्ग के गायकों, संगीतज्ञों तथा उनके ब्राह्मण शिक्षकों को शाही सेना के साथ उत्तर में लाकर बसाया गया ।

शार्ङ्गदेव—दक्षिणी भारत में इसी समय सबसे बड़ा विद्वान पंडित शार्ङ्गदेव था, जिसने "संगीत रत्नाकर" की रचना की । 13वीं एवं 14वीं शताब्दी के मध्य यह संगीत का श्रेष्ठतम उपलब्ध ग्रन्थ है, जिसका उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है । यह ग्रन्थ गत 600 वर्षों से अधिक भारतीय संगीत का आधार-ग्रन्थ रहा है । संगीत-जगत के लिए यह ग्रन्थ बहुमूल्य है, जिसका हम विस्तारशः विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं ।

संगीत रत्नाकर— —शार्ङ्गदेव द्वारा रचित ग्रन्थ "संगीत-रत्नाकर" का काल 1210 से 1247 के मध्य में माना जाता है । रत्नाकर के रचयिता शार्ङ्गदेव के पितामह कश्मीर छोड़कर दक्षिण में जा बसे थे । राजनैतिक उथल-पुथल के कारण उत्तर भारत के अनेक विद्वान बहुमूल्य ग्रन्थों को लेकर दक्षिण में जा बसे । दक्षिण राजाश्रय में उनका भरपूर सम्मान हुआ । ऐसे ही समय में राजनैतिक अस्त-व्यस्तता के कारण बिखरे हुए ग्रन्थों को एकत्र किया पंडित शार्ङ्गदेव ने; उनका अध्ययन और मनन किया तथा उनके सारतत्व को ग्रन्थ का रूप दे दिया । आज के युग में, जबकि भरत से शार्ङ्गदेव तक के व्यापक काल में संगीत का उनके अतिरिक्त एक भी श्रेष्ठ ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, गांधर्व तथा उसके परवर्ती विकास की जानकारी के लिए शार्ङ्गदेव का "संगीत-रत्नाकर" ही आधार-ग्रन्थ है । अपने समय में ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं बल्कि परवर्ती ग्रन्थकारों पर इनका गहन प्रभाव था। उत्तरी तथा दक्षिणी कहीं का ग्रन्थकार क्यों न हो, इनके ग्रन्थ को ही प्रामाणिक मानते थे। "संगीत-रत्नाकर" के श्लोकों का उद्धरण दिये बिना कोई ग्रंथकार अपने विचारों की पुष्टि नहीं करता है। यहाँ तक कि अनेक ग्रंथकारों ने विचार के रूप में शार्ङ्गदेव के श्लोकों को लिख लिया है। "संगीत-रत्नाकर" विस्तृत विषयों पर विवेचित विशाल ग्रंथ है।

'संगीत-रत्नाकर' पर प्रायः सात टीकाओं का सृजन हुआ है, ऐसी जनश्रुति है। किन्तु इस काल में तो संस्कृत की दो ही प्रकाशित टीकाएँ उपलब्ध हैं—एक सिंह भूपाल की और दूसरी कल्लिनाथ की। प्रसिद्ध टीकाकार सिंह भूपाल (14वीं सदी ई०) ने 'रत्नाकर' के महत्व को स्वीकृत करते हुए आचार्य शार्ङ्गदेव के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है और कहा है कि 'रत्नाकर' के महत्व को समझाने वाले उस युग में वे स्वयं ही हैं। "रत्नाकर" के दूसरे टीकाकार "कल्लिनाथ" (15वीं सदी ई०) ने भी "रत्नाकर" की दुरूहता और गम्भीरता को स्वीकृत करते हुए अपने युग में स्वयं को ही 'रत्नाकर' का मर्मज्ञ बताया है। जो सिंह भूपाल और कल्लिनाथ की टीका को समझने योग्य संस्कृत भी नहीं जानते, उनके द्वारा 'रत्नाकर' की संक्षिप्ततम् और सारगर्भित भाषा को समझना संभव नहीं।

'संगीत रत्नाकर' के आरम्भ में ही संगीत की परिभाषा निम्नवत दी गई है—

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते।
मार्गी देशीति तद्देध तत्र मार्गः स उच्यते ॥"
"देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदय रंजकम।
गीतं च वादनं नृत्य देशांत्यभिधीयते ॥"

अर्थात् गीत, वाद्य तथा नृत्य ये तीनों ही संगीत कहलाते हैं। मार्ग और देशी भेद से संगीत दो प्रकार का है—मार्ग वह है जिसे ब्रह्मादि देवताओं ने खोज निकाला है और भारतीय मुनियों ने भगवान शंकर के समक्ष प्रस्तुत किया है। यह संगीत कल्याण देने वाला है जो गीत, वादन और नृत्य के साथ देश-देश में जनरुचि के अनुकूल लोक का हृदयरंजक होता है, वह देशी कहलाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मार्ग का उपयोग देवपूजा में होता है। देशी संगीत की तुलना में मार्गी संगीत कहीं अधिक नियमबद्ध है। वह धार्मिक उद्देश्य से ओत-प्रोत था और लोकरंजन के लिए देशी संगीत का उपयोग होता था।

कतिपय विद्वानों की धारणा है कि शार्ङ्गदेव के समय से ही मार्गी संगीत का ह्रास होना आरम्भ हो गया था। आगे चल कर उसका पूर्णतया लोप हो गया। अब केवल देशी संगीत ही प्रचार-प्रसार में है।

शार्ङ्गदेव स्वकालीन प्रचलित संगीत-पद्धतियों और विचारों का प्राचीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद्धतियों के साथ समन्वय करना चाहते थे। प्राचीन संगीत में जो स्थान नाट्यशास्त्र को उपलब्ध था वही मध्यकालीन संगीत में "संगीत-रत्नाकर" का था। सभी ग्रंथों पर इसका स्पष्टत: प्रभाव दृष्टिगत होता है।

'संगीत रत्नाकर' में सात अध्याय हैं; जैसे—स्वराध्याय, राग विवेकाध्याय, प्रकीर्णाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय एवं नर्तनाध्याय।

ग्रन्थ के शुरू में ही मंगलाचरण है जिसमे लेखक ने अपना परिचय निम्नलिखित रूप में दिया है—

"मेरा वंश कश्मीर का है और उसके मूलपुरुष हैं— वृषगण। उसी वंश के भास्कर नामक एक पुरुष कश्मीर से दक्षिण भारत में चले आये थे। उनके पुत्र ही श्री सोढल राजा सिंहल थे।"

इसके बाद लेखक ने संगीत की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला है। उसके उपरान्त प्रथम स्वराध्याय के अन्तर्गत नाद की उत्पत्ति, स्थान और श्रुति सात शुद्ध स्वर, पांच विकृत स्वर इस प्रकार बारह स्वर, कुल, जाति, वर्ण, दीप, ऋषि, देवता, छन्द, विनियोग, श्रुति, जाति, ग्राम, मूर्च्छना, शुद्ध एवं कूटतान, प्रस्तार, खण्डमेरु, नष्ट, उद्दिष्ट, स्वर साधारण, जाति साधारण, काकली एवं अन्तर का प्रयोग, वर्ण लक्षण, 63 अलंकार, जातियों के ग्रह एवं अंश आदि 13 लक्षण, कपाल, कंवल और अनेक प्रकार की गीतियों का वर्णन किया गया है।

नाद के विषय में लिखते हुए लेखक का मत है कि गीत और वाद्य दोनों ही नादात्मक हैं। नाद की अभिव्यक्ति से ही ये रमणीयता को प्राप्त होते हैं। इन दोनों का अनुकरण करने वाला नृत्य भी नादात्मक है; अत: गीत, वाद्य और नृत्य ये तीनों ही नादात्मक हैं। क्योंकि नाद से वर्ण, वर्ण से पद और पद से वाक्य की अभिव्यक्ति होती है। नाद के दो प्रकार हैं—आहत एवं अनाहत।

इसके बाद लेखक ने ब्रह्मस्वरूप, जीवस्वरूप, सृष्टिक्रम, मनुष्य देह, भावभेद, इन्द्रिय-भेद, गुण-भेद, प्राण-भेद, देह-भेद, अंग-प्रत्यंग, चक्र तथा नाड़ियाँ आदि की परिभाषा पर प्रकाश डाला है:

प्रथम अध्याय के तीसरे प्रकरण में नाद, स्थान, श्रुति, स्वर आदि की परिभाषा दी गई है। उनके अनुसार नादोपासना से ब्रह्मा, विष्णु और मनुष्य स्वयं उपासित होते हैं। क्योंकि ये उस (नाद) से अभिन्न हैं।

श्रुति—नाद के 22 भेद हैं, जिन्हें श्रुति कहते हैं। हृदय में ऊर्ध्व नाड़ी में संलग्न 22 नाड़ियाँ हैं और इतनी ही तिरछी नाड़ियाँ हैं, जिनमें वायु के आघात से उच्च-उच्चतर श्रुतियाँ उत्तरोत्तर उत्पन्न होती हैं।

सारणा—इसी प्रकार कण्ठ तथा सिर में भी 22 श्रुतियाँ हैं। इनको प्रत्यक्ष करने के लिए समान नाद की दो वीणाएँ होनी चाहिए। प्रत्येक वीणा में 22-22 तार होने चाहिए। दोनों वीणाओं पर स्वरों की स्थापना करनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहिए। इनसे उत्पन्न नाद श्रुति कहलाता है। चौथे पर चतुःश्रुति षडज, पाँचवा से तीसरी पर त्रिश्रुति, ऋषभ, आठवीं से दूसरी पर द्विश्रुतिक गांधार, दसवीं से चौथी तन्त्र पर चतुःश्रुति मध्यम, चौदहवीं से चौथी तन्त्री पर चतुःश्रुति पंचम, अठारहवीं से तीसरी तन्त्री पर त्रिश्रुति, धैवत तथा इक्कीसवीं से दूसरी पर त्रिश्रुति निषाद की स्थापना करनी चाहिए।

यहाँ एक वीणा ध्रुव (अचल) तथा दूसरी चल वीणा हो, जिसमें तन्त्रियों की सारणा करना चाहिए।

चल वीणा में सातों स्वर पहले तारों पर ले आना चाहिए, तब इस चल में ये स्वर ध्रुव वीणा के स्वरों की अपेक्षा एक-एक श्रुति उतरे हुए होंगे।

इसी प्रकार अन्य सारणा भी करनी चाहिए। दूसरी सारणा में चलवीणा के गांधार और निषाद दो-दो श्रुतियों के लय होने से ध्रुववीणा में स्थित ऋषभ और धैवत में क्रमशः प्रविष्ट हो जाते हैं। तीसरी सारणा में चलवीणा के ऋषभ-धैवत ध्रुव वीणा के षड्ज-पंचम में प्रविष्ट हो जाते हैं। चौथी सारण में चलवीणा के षड़ज-मध्यम-पंचम में प्रविष्ट हो जाते हैं। चौथी सारणा में चलवीणा के षडज-मध्यम-पंचम क्रमशः ध्रुव वीणा के निषाद-गांधार-मध्यम में प्रविष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार इन चारों सारणाओं के परिणामस्वरूप ध्रुववीणा की श्रुतियों में बाइसों श्रुतियों के लीन होने से यह स्पष्ट होता है कि श्रुतियों की संख्या 22 ही है।

स्वर—श्रुतियों से षडज, गांधार मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद ये सातों स्वर होते हैं। श्रुति के बाद उत्पन्न होने वाला स्निग्ध, अनुरणात्मक स्वंयरंजक नाद स्वर कहलाता है।

श्रुति जातियाँ—दीप्ता, आयता, करुणा, मृदु और मध्या, ये श्रुतियों की पाँच जातियाँ होती हैं। स्वर पर इन जातियों की स्थिति इस प्रकार है—

दीप्ता, आयता, मृदु, मध्या	............षडज
करुणा मध्या मृदु	............ऋषभ
दीप्ता, आयता	............गांधार
दीप्ता, आयता, मृदु, मध्या	............मध्यम
मृदु, मध्या, आयता, करूणा	............पंचम
करुणा, आयता, मध्या,	............धैवत
दीप्ता, मध्या	............निषाद

इन जातियों के भेद भी लेखक ने बताएँ हैं—

तीव्रा, रौद्री, वज्रिका, उग्रा	............दीप्ता

फा०—5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

	………आयता
रोहिणी	……… " करुणा
दयावती, आलापिनी, मदंतिका	… · …मृदु
मंदा, रति, प्रीति, क्षिति	
छंदोवती, रंजनी, मार्जनी, रक्तिका, रम्या, क्षोभिणी	…………मध्या

स्वर-स्थिति—

तीव्रा, कुमुद्वती, मंदा, छन्दोवती	…………षडज पर स्थित है।
दयावती, रंजनी, रक्तिका	…………ऋषभ पर स्थित है।
रौद्री, क्रोधा	…………गांधार पर स्थित है।
वज्रिका, प्रसारिणी, प्रीति, मार्जनी	…………मध्यम पर स्थित है।
क्षिति, रक्ता, संदीपिनी, आलापिनी	…………पंचम पर स्थित है।
मंदती, रोहिणी, रम्या	…………धैवत पर स्थित है।
उग्रा, क्षोभिणी	…………निषाद पर स्थित है।

स्वर-प्रकार—ये सात स्वर मन्द्र, मध्य तथा तार-भेद से तीन प्रकार के हैं। विकृत अवस्था में स्वर 12 बताये गये हैं।

स्वर चार प्रकार के होते हैं—वादी, संवादी, विवादी, अनुवादी। प्रयोग में जिसकी बहुलता हो, उसे वादी कहते हैं। जिन दो स्वरों के मध्य में, आधार श्रुतियों को छोड़कर 12 अथवा 8 श्रुतियाँ हों तो वे स्वर परस्पर संवादी होते हैं।

निषाद और गांधार अन्य स्वरों के विवादी होते हैं अथवा ऋषभ तथा धैवत के ही विवादी होते हैं अथवा निषाद-गांधार के ऋषभ-धैवत विवादी होते हैं। शेष स्वर अनुवादी होते हैं। षडज और ऋषभ का वीर, अद्भुत तथा रौद्र रस में, धैवत का बीभत्स तथा भयानक रस में, गांधार और निषाद का करुण रस में तथा मध्यम व पंचम का हास्य और शृंगार रस में प्रयोग करना चाहिए।

चौथा प्रकरण

ग्राम, मूर्च्छनाक्रम, तान-प्रकरण

ग्राम—शार्ङ्गदेव ने ग्राम की परिभाषा इस प्रकार दी है…"मूर्च्छना आदि का आश्रय स्वर-समूह 'ग्राम' कहलाता है। लोक में ये दो हैं—पहला षडज ग्राम तथा दूसरा मध्यम ग्राम।"

मूर्च्छना—सात स्वरों का क्रम से आरोहण और अवरोहण 'मूर्च्छना' कहलाता है। यह दोनों ग्रामों में 7-7 हैं। ये मूर्च्छनाएँ चार प्रकार की हैं—शुद्धा काकली संहिता, सान्तरा तथा अंतर काकली संहिता। इस प्रकार इनकी संख्या 56 बतायी गयी है।

तान—शुद्ध मूर्च्छनाओं के षाडव तथा औड़व होने से शुद्ध तानों की उत्पत्ति होती है। षडज ग्राम से 28 और मध्यम ग्राम से 21 तानों की उत्पत्ति मानी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गयी है। ये षाडव तानें हैं—इसी प्रकार इन दोनों ग्रामों से औड़व तानें 35 हुई। इस प्रकार कुल औड़व-षाडव तानें मिला कर 84 हुईं। इनसे कूटतानों की उत्पत्ति होती है। एक-एक मूर्च्छना में क्रम से पूर्ण कूटतान 5040 हैं। 5040 कूटतानों में 56 मूर्च्छना-भेदों का गुणा करने से 282240 पूर्ण कूटतानों की निष्पत्ति होती है।

पाँचवाँ प्रकरण

साधारण प्रकरण

साधारण प्रकरण दो प्रकार का होता है—स्वर साधारण तथा जाति साधारण। स्वर साधारण के चार प्रकार हैं—काकली साधारण, अन्तर साधारण षडज साधारण तथा मध्यम साधारण।

एक ग्राम में उत्पन्न समान अंश वाली जातियों में समान गान को आर्यों ने 'जाति साधारण, कहा है। किन्हीं आचार्यों ने रागों को ही 'जाति साधारण' कहा है।

छठा प्रकरण

वर्णालंकार-प्रकरण

वर्ण—गान क्रिया को वर्ण कहते है, जिसके चार भेद हैं—स्थायी, आरोही, अवरोही, और संचारी।

अलंकार—विशिष्ट वर्ण-सन्दर्भ को 'अलंकार' कहते हैं। इसके अनेक भेद हैं; जैसे—स्थायी वर्ण अलंकार, प्रसन्नादि अलंकार, क्रमरेचित, प्रस्तार, स्थायीगत, विस्तीर्ण, निष्कर्ष, गात्रवर्ण अलंकार, विन्दु अलंकार, हसित अलंकार, प्रेखित अलंकार आदि अनेक भेद लेखक ने बताये हैं।

लेखक ने इस अध्याय में कुल प्रसिद्ध 63 अलंकार (6 स्थायी, 12 आरोही, 12 अवरोही, 25 संचारी तथा 6 अन्य) कहे हैं। अलंकार-निरूपण का प्रयोजन रक्ति लाभ, स्वर ज्ञान तथा वर्णांगों की विचित्रता का ज्ञान है।

सातवाँ प्रकरण

जाति-प्रकरण

जाति—सात स्वरों के नाम पर ही सात शुद्ध जातियाँ हैं; यथा—षाड्जी, आर्षभी, गांधारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती, और नैषादी। इन जातियों के लक्षण भी लेखक ने बताये हैं। जिन जातियों का नाम स्वर ही न्यास, अपन्यास, अंश तथा ग्रह होता है और तार में न्यास नहीं होता तथा जो पूर्ण होती है उन्हें शुद्ध कहते हैं। न्यास के अतिरिक्त अन्य लक्षणों से रहित होने पर ये ही जातियाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विकृत कहलाने लगती हैं। विकृत जातियों के परस्पर संयोग से 11 जातियाँ उत्पन्न होती हैं—

ग्रह, अंश, तार, मन्द्र, न्यास, अपन्यास, सन्यास, विन्यास, बहुत्व और अल्पत्व में अन्तरमार्ग के साथ जातियों के लक्षण हैं। कहीं-कहीं षाडव तथा औड़व भी है। जातियों के 13 लक्षण बताये गये हैं।

ग्रह—गीत के प्रारम्भ में जिस स्वर का प्रयोग हो, उसे ग्रह कहते हैं।

अंश—जो गीत में रक्ति का अभिव्यंजक हो, जो न्यास, अपन्यास, विन्यास, सन्यास और ग्रह को प्राप्त होकर व्यापक रूप से सर्वाधिक प्रयोग में आता है, वह अंश कहलाता है।

तार—मध्य सप्तक में स्थित अंश स्वर जब तार में स्थित हो तो उसके आगे के चार स्वरों तक आरोहण करे।

मन्द्र—मध्य स्थान में स्थित अंश स्वर से मन्द्रस्थ अंश तक अथवा मन्द्रस्थ न्यास तक अवरोहण करें।

न्यास—जिस स्वर पर गीत की समाप्ति हो, वह न्यास कहलाता है। यह 21 प्रकार का है।

अपन्यास—जिस स्वर पर विदारी समाप्त हो, उसे अपन्यास कहते हैं।

सन्यास—जो स्वर अंश का संवादी तथा गीत की पहली विदारी को समाप्त करने वाला हो, उसे सन्यास कहते हैं।

विन्यास—जो स्वर अंश का अनुवादी हो तथा विदारी रूप पदों के अन्त में स्थित रहता हो, उसे 'विन्यास' कहते हैं।

बहुत्व—बहुत्व दो प्रकार का होता है—अलंघन से तथा अभ्यास से।

अल्पत्व—अल्पत्व दो प्रकार का बताया गया है—अनाभ्यास तथा लंघन से।

लंघन—किंचित स्पर्श को लंघन कहते हैं।

अन्तरमार्ग—न्यास, अपन्यास, विन्यास, ग्रह तथा अंश के स्थानों के अतिरिक्त बीच-बीच में अंश, ग्रह, अपन्यास, विन्यास और सन्यास स्वरों के साथ अल्प स्वरों की विचित्रता उत्पन्न करने वाली संगति अन्तरामार्ग कहलाती है।

षाड़व—जो 'षट्' अर्थात छः स्वर मिल कर जाति इत्यादि की रक्षा करते हैं उन्हें षाड़व कहते हैं।

औड़व—जो स्वर पाँच की संख्या में हों वे औड़व कहलाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आठवाँ प्रकरण

गीति-प्रकरण

कपाल—कपाल की संख्या सात है। जो शुद्ध जातियों से उत्पन्न होते हैं।

कम्बल—जहाँ पंचम ग्रह, अंश और अपन्यास हो, परन्तु ऋषभ प्रबल हो षड्ज न्यास हो, परन्तु म, ध, और ग अल्प हो, उसे कम्वल कहते है। स्वरों के अल्पत्व और वहुत्व के कारण पूर्व पुरुषों द्वारा इसके असंख्य भेद बताये गये है।

गीति—पद तथा लय से युक्त और वर्ण आदि से अलंकृत गान क्रिया को गीति कहते है। विद्वानों ने इसे चार प्रकार का बताया है। यथा-प्रथम मागधी, दूसरी अर्धमागधी, तीसरी संभाविता, और चौथी प्रथुला। इन सभी गीतियों के लक्षण भी बताये गये हैं।

इस प्रकार प्रथम अध्याय स्वरगत में आठ प्रकरण है।

द्वितीय अध्याय में ग्राम, राग उसके विभाग तथा रागांग, भाषांग शब्दों का स्पष्टीकरण और देशी राग उनके नाम वर्णित है।

तृतीय अध्याय में वग्गेयकार के लक्षण, गीत के गुण-दोष, गायक के गुण और दोष, और स्थायी आदि का विवरण है।

चतुर्थ अध्याय में गान के निवद्ध और अनिवद्ध भेद, धातु, व प्रवंध के भेद, और अगों आदि का विवरण है।

पंचम अध्याय में तालो के विषय में तथा छटे अध्याय में तत, सुषिर, धन और अवनद्ध वाद्यों के भेद, वादन, विधि, वाद्यों और वादकों के गुण-दोष का उल्लेख है।

सप्तम अध्याय में नृत्य, नाटय, और नृत्य का वर्णन है।

संगीत रत्नाकर में कुल 246 रागों का वर्णन है।

संगीत शास्त्र और कला में परागत होने के कारण इनका ग्रंथ मध्यकालीन भारतीय संगीत के लिये प्रमाणिक सिद्ध हुआ। आज भारत में प्रचलित उत्तर हिन्दुस्तानी और दक्षिणात्य पद्धतियों में इस ग्रंथ को समान आदर उपलब्ध है। इस ग्रंथ पर कल्लिनाथ, केशव और सिंहभुचाल ने संस्कृत में टीकाएँ लिखी है। वृजभाषा में रचित 'सेतु' नामक टीका 'संगीत रत्नाकर' की ही है जिसकी रचना रीवा के महाराजा विश्वनाथ सिंह (ई० 1833-54) के दरबारी कवि एवं संगीतज्ञ गंगाराम ने की थी।

इन्होंने रागों का वर्गीकरण 10 रागों में किया है। ग्राम राग, राग, उपराग, भाषा, विभाषा, अन्तंभाषा, उपाग, क्रियांग भाषांग रागांग। उन्होंने कुल 11 विकृत स्वर, सात शुद्ध एवं 18 जातियाँ मानी है। शार्ङ्गदेव के स्वर एवं राग आधुनिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर और रागों से साम्यता नहीं रखते, उसका कारण ये है कि उन्होंने जो श्रुत्यन्तर स्थापित किये थे वह आज के श्रुत्यन्तर से भिन्न है।

भरत कृत नाट्य शास्त्र एवं वृहददेशी के आधार पर शांर्ङ्गदेव ने अपने ग्रंथ का सृजन किया था पर उनके काल में जातियों का लोप हो चुका था रागों ने उनका स्थान ले लिया था। उन्होंने इन्हीं रागों का वर्णन अपने ग्रथों में किया है। उन्होंने प्राचीन जातियों से प्रचलित रागों का सम्वन्ध जोड़ने का प्रयास किया पर वे सफल न हो सके।

आलोचना—जिन व्यक्तियों ने भी मेल-पद्धति या ठाठ पद्धति की ओर आग्रह रखते हुए 'रत्नाकर' को समझने की चेष्टा की है वे असफल रहे हैं। और 'रत्नाकर' पर झुंझलाये। 'संगीत सुधो' के लेखक (तंजोर नरेश रघुनाथ (17वीं सदी ई०) ने तो झुंझला कर कहा है कि (अष्टाध्यायी समझ में नहीं आती, इसलिये वे अपने समय के रागों का निरूपण विधारण्य के मत से कर रहे हैं।

परन्तु हुसेन शाह शर्की के सूवेदार के पत्र से लेकर मुगल-सम्राटों तक ने 'रत्नाकर' का आदर किया है। अनेक ग्रन्थों में 'रत्नाकर' और उसके विषय की चर्चा सम्मान पूर्वक की गई है। और मुगल-सम्राटों को 'रत्नाकर' पर विचार करने वाला और उसका मर्मज्ञ वताया है। तानसेन से लेकर सदारंग और आदारंग तक के ऐसे ध्रुपद मिलते हैं जो ये सिद्ध करते हैं, कि गुणियों की यह परम्परा 'रत्नाकर' के मर्म को पूर्णतया समझती थी।

'रत्नाकर' जैसे ग्रंथों के स्पष्टीकरण के विना हम अपने संगीत का वैज्ञानिक इतिहास नहीं लिख सकते।

तुगलक युग में संगीत

(सन् 1320—1412)

गयासुद्दीन तुगलक, तुगलक वंश का प्रथम सुल्तान था। इनका अधिकतर समय साम्राज्य व्यवस्थित करने में वीता अतः संगीत के विकास के लिये इनको समय नहीं मिला। वे स्वयं भी संगीत में रुचि नहीं रखते थे। इनके शासन काल में संगीत उतना विकसित न हो सका।

इनके बाद इनका वेटा मुहम्मद तुगलक गद्दी पर वैठा। वह वहुत विद्वान और संगीत प्रेमी था। इसने संगीत के विकास में वहुत योग दिया यह दरबार में संगीतज्ञों को राजाश्रय देता था तथा उनका मान सम्मान भी करते रहता था इसके काल में अनेक संगीत समारोहों का भी आयोजन होता था, जिसमें संगीत विषयों पर परिचर्चा भी होती थी। इन संगीत जलसों में हिन्दु-मुसलमानों में कोई भेद नहीं, जातियता का वहाँ प्रश्न ही नहीं था। सब एक ही मंच पर उपस्थित हो कर संगीत के विकास की ओर उन्मुख होते थे। परन्तु हिन्दु-मुस्लिम नारियाँ इन संगीत के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जलसों में खुल कर भाग नहीं लेती थीं। नारियों को संगीत शिक्षा देना भी आवश्यक नहीं समझा जाता था।

इस काल में नाटकों का रिवाज था। उनमें संगीत की प्रधानता होती थी। ये नाटक धार्मिक होते थे। ग्रामों में भी इन नाटकों का प्रचलन था।

लोदी काल में संगीत

(सन् 1414—1526 ई०)

इस काल में संगीत की स्थिति में और सुधार हुआ। अनेक मुस्लिम कलाकार पैदा हुए, उन्होंने जनता में संगीत के प्रति रुचि पैदा की और संगीत के उत्थान के लिये विशेष प्रयास किया। इस कार्य में हिन्दु और मुस्लिम कलाकार एक होकर जुटे रहे। विशेष रूप से लोदी वंश के तीन सुलतान हुए, वहलोल लोदी, सिकन्दर लोदी, इब्राहिम लोदी। इन तीनों को ही संगीत के प्रति प्रेम था।

इस काल में एक ओर तो हिन्दु कलाकारों का यह प्रयास रहा कि भारतीय संगीत के प्राचीन सौन्दर्य को विकृत न किया जाये, उसका धार्मिक रूप बना रहे, दूसरी ओर मुसलमान संगीतज्ञ अरबी संगीत का भारतीय संगीत में मिश्रण करते रहे। वे भारतीय संगीत पद्धति को अपने संगीत पद्धति में ढ़ालना चाहते थे—इसी तरह का वाद विवाद होता रहा। अनेक संस्थायें बनी, जिन्होंने भारतीय संगीत के प्राचीन और धार्मिक रूप को कायम रखने का प्रयास किया। इस काल तक देश भर में नयी गायन शैलियों जैसे कव्वाली, गजल, ख्याल ठुमरी का खूब प्रचलन होने लगा था। "समुह-गान" और नृत्यों का भी खूब विकास हुआ।

नाटक भी खेले जाते थे, और वे पूर्णतयः संगीतमय होते थे। सिकन्दर लोदी ने विशेष रूप से संगीत के विकास की ओर ठोस कदम उठाये। वह भारतीय संगीत से भी प्रेम करता था, सुनता था और उसकी अच्छाइयों को समझने की कोशिश करता था। वह भारतीय संगीतज्ञों और विद्वानों का आदर करता था, और उसने भारतीय संगीत की उन्नति में विशेष योगदान दिया। अनेक नये-नये संगीतज्ञ हुये और कई पुस्तकों की रचना भी इनके काल में हुई।

लोचन कृत "राग तंरगिणी"

मुसलमानों के काल का सर्वप्रथम उपलब्ध संगीत-शास्त्र है "राग-तरंगिणी।"

"राग तंरगिणी" - इस ग्रन्थ के रचयिता लोचन पण्डित हैं। यह मिथिला के निवासी थे। इस ग्रन्थ की रचना 15वीं शताब्दी के आस-पास हुई। थाट राग वर्गीकरण के बीजारोपण के लिये समस्त संचार लोचन पण्डित का ऋणी है। लोचन ने इस ग्रन्थ में प्राचीन राग-रागिनी पद्धति के स्थान पर थाट पद्धति अपनायी है।

सर्वप्रथम उन्होंने इस ग्रन्थ में गायन के दो प्रकार बताये हैं।

(1) निबद्ध गान।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(2) अनिबद्ध गान।

उसके बाद उन्होंने श्रुति का उल्लेख किया है। अपने पूर्व ग्रन्थकारों के समान वह भी एक सप्तक में 22 श्रुतियाँ मानते हैं। श्रुति विभाजन भी सात स्वरों के मध्य में—"चतुश्चतुश्चतुरचैव षड्ज, मध्यम, पंचम"—ही मानते हैं। स्वर भी अपनी अन्तिम श्रुति पर प्रकट होता है।

लोचन के विकृत स्वर इस प्रकार हैं।

छठवीं	श्रुति	पर	कोमल रे
दसवीं	,,	,,	तीव्र गंधार
ग्यारहवीं	,,	,,	तीव्रतर गंधार
बारहवीं	,,	,,	तीव्रतम गंधार
तेरहवीं	,,	,,	अति तीव्रतम गंधार
पन्द्रहवीं	,,	,,	तीव्रतम म
सोलहवीं	,,	,,	अति तीव्रतम म
उन्नीसवीं	,,	,,	कोमल ध
इक्कीसवीं	,,	,,	तीव्र धैवत
बाइसवीं	,,	,,	तीव्रतर धैवत
पहली	,,	,,	तीव्र नी
दूसरी	,,	,,	तीव्रतर नी
तीसरी	,,	,,	तीव्रतम नी

सातों शुद्ध स्वर क्रमशः 4, 7, 9, 13, 19, 20, 22 हैं। कुछ स्वरों को उन्होंने 2-2 नामों से सम्बोधित किया है। तेरहवीं श्रुति पर शुद्ध म और अति तीव्रतम गन्धार तथा बाइसवीं पर शुद्ध नी और तीव्रतम धैवत है।

लोचन ने अपना शुद्ध थाट वर्तमान काफी थाट के सदृश माना है। उनके शुद्ध 'ग' और शुद्ध 'नि' हिन्दुस्तानी पद्धति के कोमल 'ग' और कोमल 'नि' हैं।

उन्होंने निम्न बारह थाट माने हैं और अपने 75 अन्य रागों का वर्गीकरण भी इनके अन्तर्गत करते हैं।

1. भैरवी	7. सारंग
2. तोड़ी	8. मेघ
3. गौरी	9. धनाश्री
4. कर्णाट	10. पूर्वी
5. केदार	11. मुखारी
6. ईमन	12. दीपक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन थाटों का उन्होंने वर्णन भी किया है। जैसे भैरवी का वर्णत निम्नवत है—

"शुद्धाः सप्तस्वरा रम्या वादनीयाः प्रयत्नतः।
तेन वादनमात्रेण भैरवी जायते शुभा ॥

इसी प्रकार अन्य थाटों का भी उल्लेख है। लोचन के बारहों थाट हिन्दुस्तानी स्वरों के नामों में इस प्रकार लिखे जा सकते है :

1. भैरवी—सा, रे शुद्ध, ग कोमल, म शुद्ध, प शुद्ध, ध शुद्ध नि कोमल।
2. तोड़ी—सा, रे कोमल, ग कोमल, म शुद्ध, प शुद्ध, ध कोमल, नि कोमल।
3. गौरी—सा, रे कोमल ग शुद्ध, म शुद्ध, प शुद्ध, ध कोमल, नि शुद्ध।
4. कर्णाट—सा, रे शुद्ध, ग शुद्ध, म शुद्ध, प शुद्ध, ध शुद्ध, नि कोमल।
5. केदार—सा, रे शुद्ध, ग शुद्ध, म शुद्ध, प शुद्ध, ध शुद्ध, नि शुद्ध।
6. ईमन—सा, रे शुद्ध, ग शुद्ध, म तीव्र, प शुद्ध, ध शुद्ध, नि शुद्ध।
7. सारंग—सा, रे, शुद्ध, म शुद्ध और तीव्र, प शुद्ध, नि कोमल और शुद्ध।
8. मेघ—सा, रे शुद्ध, ग शुद्ध, म शुद्ध, प शुद्ध, नि कोमल और शुद्ध।
9. पूर्वी—सा, रे शुद्ध, ग शुद्ध, म तीव्र, प शुद्ध, नि कोमल और शुद्ध।
10. धनाश्री—सा, रे कोमल, ग शुद्ध, म शुद्ध प शुद्ध ध कोमल, नि शुद्ध।
11. मुखारी—सा, रे शुद्ध, ग कोमल, म शुद्ध, प शुद्ध, ध कोमल, नि कोमल।
12. दीपक—है ही नहीं।

इन 12 थाटों से उन्होंने 75 जन्य रागों का वर्गीकरण किया है। जैसे—

(1) भैरवी—भैरवी, नीलांबरी,
(2) तोड़ी—तोड़ी।

इस प्रकार अन्य वर्गीकरण हैं। तरंगिणी के जितने भी जन्य राग हैं आज हिन्दुस्तानी संगीतज्ञों को उनका ज्ञान है। इसीलिये यह ग्रन्थ उनके लिए सर्वाधिक ऐतिहासिक महत्व का है। इन जन्य रागों में से अनेक स्वर यवन काल में परिवर्तित कर दिये गये।

इन रागों का गायन समय भी लोचन पण्डित ने "राग तंरगिणी" में वर्णित किया है। यह गायन समय हिन्दुस्तानी रागों पर भी अत्यधिक प्रकाश डालता है—

राग	:	गायन-समय
भैरव और रामकली	:	प्रातःकाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गौरी	:	संध्या काल
विलावली	:	दिन के प्रथम प्रहर में
कल्याण	:	रात्रि के प्रथम प्रहर में
तोड़ी और सुहा	:	पूर्वाह्न
सारंग	:	मध्याह्न
कानड़ा	:	मध्यरात्रि में
अड़ाना	:	रात्रि के तृतीय प्रहर में
मेघ	:	वर्षाऋतु

"राग तरंगिणी" में विद्यापति के गीतों पर भी विवेचन है।

पं० कल्लिनाथ ने 1500 के लगभग "संगीत रत्नाकर" पर विस्तारशः टीका लिखी, जिससे भारतीय संगीत को अत्यधिक नव शक्ति उपलब्ध हुई और उसका शास्त्रीय संगीत निखर आया।

मध्य-युग में संगीत शिक्षा

मध्य-युग में संगीत शिक्षा प्राप्त करना अत्यन्त कठिन था। घरानेदार कलाकारों को अपने घराने की विद्या पर गर्व था। किसी को संगीत सीखना हो तो वर्षों उस्ताद के घर सेवा करनी पड़ती थी।

इसके पीछे संकुचित मनोवृति के साथ दूसरा प्रमुख कारण यह भी था कि अधिकांश गुरू अनपढ़ थे और अपने शिष्यों को मौखिक शिक्षा देते थे। जब वे शिष्यों की योग्यता से सन्तुष्ट होते थे, तभी विद्या देते थे। वे अपने शिष्यों की कठोर परीक्षा लिया करते थे। इन अशिक्षित कलाकारों की संकीर्ण मनोवृत्ति के फलस्वरूप संगीत का विकास अवरुद्ध हो गया और उसके धार्मिक व सनातन सिद्धान्तों को गहरी क्षति पहुँची। जबकि इन कलाकारों के पास विद्या का जो भण्डार था, बन्दिशों की जो विपुलता थी, दीर्घ साधना का जो तेज था, कला के प्रति समर्पण की जो भावना थी, तथा अपने घराने के प्रति जो गर्व था, वह सचमुच अप्रतिम था।

कुछ घरानेदार कलाकारों को छोटी-मोटी रियासतों के राजा, महाराजा, उमराव नवाव ठाकुरों ने अपने-अपने शौक के अनुसार दरबारी कलाकार के रूप में आश्रय दिया। इन रजवाड़ों के कारण हमारी संगीत-कला कुछ सम्मानित रूप से सुरक्षित रह सकी है। घरानों के संरक्षण और विकास के पीछे उन राजा नवाबों का योगदान अमूल्य है। इस आश्रय के कारण जीवन-निर्वाह की छोटी-मोटी चिन्ताओं से मुक्त होकर कलाकार पूर्ण निश्चितता से कला साधना में निमग्न रहता था। सस्ते मनोरंजन के भी उस युग में, इन्हीं घरानेदार संगीतज्ञों ने अपनी कठोर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधना, दीर्घ तपस्या आसीम गुरू-भक्ति तथा सही तालीम से संगीत को जीवित कर रखा था।

यह तो रही मध्य-काल में संगीत के क्रियात्मक रूप की स्थिति, दूसरी ओर मध्य-काल में हम अमीर खुसरो के संगीत के प्रति योगदान को नहीं भूल सकते, उन्होंने अनेक प्रकार से भारतीय संगीत को समृद्धशाली बनाया।

मुगल साम्राज्य का प्रारम्भ
(1526 ई० से 1556 ई०)

मुगल साम्राज्य का प्रारम्भ सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुआ था। इसके पूर्व संगीत विकास के चरम स्तर पर पहुँच चुका था, नये सिद्धान्तों के मिश्रण से भारतीय संगीत में एक नवीन मोड़ आ गया था। लगभग सभी मुस्लिम नरेशों ने संगीत कलाकारों को प्रोत्साहित कर उन्हें राजाश्रय दिया।

सबसे पहला मुगल सम्राट बाबर था जो स्वयं बड़ा संगीतज्ञ था। वह 1526 में इब्राहिम लोदी को हराकर दिल्ली की कुर्सी पर आरूढ़ हुआ। उसका हृदय बहुत भावुक था, वह कविता लिखता था। संगीत से उसे बहुत प्रेम था। उसकी लिखी हुई "बाबरनामा" आत्मकथा बहुत प्रसिद्ध है। वह अच्छे-अच्छे संगीतज्ञों को दरबार में रखता था और सम्मानित करता था। वह संगीत को एक महान शक्ति मानता था और मानव को परिवर्तन करने के लिए संगीत को सशक्त माध्यम मानता था। उसने जीवन पर्यन्त संगीत को ऊँचा स्थान दिलाने का प्रयत्त किया। उसके दरबार में शाह कुली और गुलामशदी कलाकार थे, जिन्होंने नये-नये रागों और धुनों की रचना की। बाबर को अपने युग का संगीत महारथी भी कहा गया।

वह स्वयं कई संगीत गोष्ठियों में गया, जैसे ग्वालियर, जहाँ उसने अनेक गायकों और वादकों को सुना। उसने वहाँ के कलाकारों को अपने यहाँ आमंत्रित किया, और इस प्रकार ग्वालियर के कलाकारों का सम्पर्क मुगल साम्राज्य से हुआ।

बाबर के काल में ख्याल, कव्वाली इत्यादि का प्रचलन रहा। श्रृंगारिक रचनाएँ तो इनके काल में हुई पर साथ ही साथ भारतीय संगीत के प्राचीन स्वरूप को भी विकृत नहीं किया गया, श्रृंगारिक रचनाओं का प्रयोग युद्ध से लौटे हुए सैनिकों के लिए किया जाता था। सामान्य रूप से संगीत के आयोजन भी होते रहे।

1500 के लगभग पं० कल्लिनाथ ने "संगीत रत्नाकर" पर विस्तारशः टीका लिखी, जिससे भारतीय संगीत को अत्याधिक नयी शक्ति उपलब्ध हुई और उसका शास्त्रीय स्वरूप निखर आया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी समय जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की "1458-1499 ने ख्याल गायकी तथा अनेक नवीन रागों की रचना की —जैसे—जौनपुरी, तोड़ी, सिन्धु, भैरवी, रसूल तोड़ी; 12 प्रकार के श्याम, सिन्दूरी इत्यादि। वे संगीत के अत्यन्त प्रेमी थे, कुछ विद्वानों के अनुसार सुल्तान हुसैन शर्की ने ख्याल का आविष्कार नहीं किया, बल्कि ख्याल के समान गाना पहले से समाज में प्रचलित था, उन्होंने तो केवल उस गायकी को पसन्द कर गायकों को प्रोत्साहित किया। इससे ख्याल गायन का भरपूर प्रचार हुआ।

इसी समय उत्तरी भारत में भजन-कीर्तन के रूप में संगीत का स्थान-स्थान पर उपयोग होने लगा, साथ ही बंगाल के चैतन्य महाप्रभु एवं अन्य भगवत भक्त ने संकीर्तन का प्रचार किया। उसका प्रभाव यह पड़ा कि भारतीय संगीत की अध्यात्मिक भूमि सुदृढ़ हो गई। ऐसे में सन्तों ने संगीत को ब्रह्म तक पहुँचाने का माध्यम समझा।

भक्ति को संगीत की शक्ति माना गया, उसी विचारधारा के अनुयायी हुए चैतन्य महाप्रभू, जिन्होने कीर्तन-भजन के द्वारा भारतीय संगीत को शक्ति प्रदान की। उनके अनेक अनुयायी हुये, और सामान्य व्यक्ति भी उनसे प्रभावित हो संगीत प्रेमी हो गये। एक ओर मुस्लिम शासकों द्वारा संगीतज्ञों को राजाश्रय प्रदान किया जा रहा था, संगीत का शृङ्गारिक रूप विकसित हो रहा था तो दूसरी ओर इन भारतीय वैष्णवों और भक्त संगीतज्ञों द्वारा भारतीय संगीत का पुनरुत्थान हो रहा था। अनेक भक्त संगीतज्ञ हुए, और शुद्ध भारतीय संगीत का विकास हुआ। इस प्रकार से मुगल-काल में संगीत के दोनों रूप विकसित होते रहे। एक ओर चैतन्य महाप्रभू द्वारा भजन-कीर्तन तो दूसरी ओर मुसलमान संगीतज्ञों द्वारा ख्याल और कव्वालियों का गायन वास्तव में यह काल इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण रहा। अनेक सगीत रत्न पैदा हुये, संगीत ग्रन्थ भी लिखे गये और संगीत की अनेक प्रकार से सेवा हुई। संगीत का शास्त्रीय रूप उभर कर सामने आया।

इसी सन्दर्भ में 1550 ई० के लगभग कर्नाटकी संगीत का एक प्रसिद्ध ग्रंथ लिखा गया, जिसके रचनाकार थे, दक्षिण के श्री रामामात्य। इस ग्रन्थ का वर्णन इस प्रकार है।

स्वर मेल कलानिधि

रामामात्य कृत "स्वर मेल कलानिधि" की गणना दक्षिणात्य पद्धति के आधारभूत ग्रन्थों में की जाती है। यद्यपि उत्तर भारत की संगीत पद्धति से इसका सीधा सम्बन्ध नहीं है, फिर भी ऐतिहासिक दृष्टि से 'स्वर-मेल कलानिधि' का अध्ययन संगीत के जिज्ञासुओं के लिये आवश्यक समझा जाता रहा है। दक्षिणी संगीतज्ञों का यह कथन उचित ही है कि उन्होंने अपनी संगीत पद्धति को प्राचीन ग्रन्थों से सम्बद्ध रखा है। वे यह दावा करते हैं कि हम आज भी शांर्ङ्गदेव का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत गाते हैं। उनके कुछ राग हमारे उत्तरी रागों में भी मिश्रित कर लिये गये हैं।

दक्षिण ग्रन्थों की इसी शृंखला में रामामात्य कृत "स्वर-मेल कला-निधि" है। सन् 1650 ई० के लगभग यह ग्रन्थ रचा गया। इस ग्रन्थ में बहुत से रागों का वर्णन उपलब्ध हैं। इस छोटे से ग्रन्थ में पाँच प्रकरण हैं वे अधोलिखित हैं—

(1) उपोद्घात—प्रकरण
(2) स्वर—प्रकरण
(3) वीणा—प्रकरण
(4) मेल—प्रकरण
(5) राग—प्रकरण

उपोद्घात प्रकरण में पुस्तक की भूमिका है। स्वर प्रकरण में लेखक ने संगीत को "गंधर्व" और "गान" नामक दो भागों में विभाजित किया हैं और उसकी शास्त्रीय परिभाषा निम्नवत् दी है :

"गंधर्व वह संगीत है जो हमारे यहाँ अति प्राचीन काल से प्रचलित रहा है। इसका उद्देश्य केवल मानव को मुक्त कराना है। यह गांधर्वों द्वारा गाया-बजाया जाता है।"

"गान वह संगीत है जिसका निर्माण हमारे विद्वानों द्वारा हुआ है और जिसमें आधुनिक नियमों का पालन होता है। जिसे हम देशी रागों के द्वारा प्रदर्शित करते हैं, इसका उद्देश्य मनुष्यों का मनोरंजन करना है।

'गांधर्व' संगीत के नियम कठोर थे किन्तु 'गान' संगीत के नियम ऐसे नहीं थे।

इसके उपरान्त रामामात्य ने बाइस श्रुति और सात शुद्ध स्वरों का वर्णन किया है। प्राचीन विभाजन के अनुसार ही उन्होंने श्रुति स्वर को विभक्त किया है। वे सात शुद्ध और सात विकृत स्वर मानते हैं। इनके संगीत की यही उपयोगिता है कि वह अपने कुछ विचारों को शार्ङ्गदेव से संयुक्त करने का प्रयत्न करते हैं।

रामामात्य के चौदह स्वर निम्नवत् हैं।

(1) शुद्ध षड्ज
(2) शुद्ध ऋषभ,
(3) शुद्ध गंधार या पंचश्रुति ऋषभ,
(4) साधारण गंधार या षटश्रुति ऋषभ
(5) अंतर गंधार
(6) च्युत मध्यम गंधार
(7) शुद्ध मध्यम,
(8) च्युत पंचम मध्यम,
(9) शुद्ध पंचम,
(10) शुद्ध धैवत,
(11) शुद्ध निषाद या षटश्रुति धैवत,
(12) कौशिक निषाद या षटश्रुति धैवत
(13) काकली निषाद,
(14) च्युत षड्ज निषाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीणा प्रकरण में उन्होंने वीणा पर अपने शुद्ध और विकृत स्वरों का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त वीणा के चार तार कैसे मिलाये जाते थे और उनके नीचे पर्दे किस प्रकार बाँधे जाते थे इसका भी उल्लेख है।

"मेल प्रकरण" में रामामात्य अपने रागों के वर्गीकरण के लिये बीस थाटों की स्थापना करते हैं। उनके बीस थाट निम्नलिखित हैं।

मुखारी, मालव गौल, श्री सारंग नट, हिंदोल, शुद्ध राम क्रिया, देशाक्षी कंनड गौल, शुद्ध नाट, आहीरी, नादरामकी, शुद्ध वराली, रीति गौड़, वसंत भैरवी, केदार गौड़, हिज्जुज्जी, सामवराली, रेव गुप्त, सामत काँभोजी।

'राग प्रकरण" में उन्होंने इन 20 थाटों के अन्तर्गत अपने 63 रागों का वर्गीकरण किया है। इसके उपरान्त राग तथा जनक थाटों की संख्या विषयक मतभेदों को स्पष्ट करते हैं।

इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद भी हुआ है।

अब हम विस्तारपूर्वक स्वर-मेल कलानिधि के कुछ प्रकरणों का वर्णन करेंगे।

स्वर-प्रकरण

स्वर-प्रकरण के अन्तर्गत रामामात्य ने गीत-प्रशंसा लिखी है। उनके अनुसार ब्रह्माजी ने सामवेद से संगीत उत्पन्न किया। पार्वती पति महादेव गीत से अत्यन्त सन्तुष्ट होते हैं। गोपी पति (भगवान कृष्ण) जो अनन्त हैं। वे भी गीत ध्वनि के वशीभूत हैं ब्रह्माजी सामगीत-रत्त है। सरस्वती देवी वीणा पर आसक्त हैं।

इसके उपरान्त गीत की परिभाषा इस प्रकार दी गई है, "गांधर्व स्वर-समुदाय को गीत कहते हैं।" गीत के दो भेद होते हैं पहला गन्धर्वं, दूसरा गान।

जो अनादि सम्प्रदाय है, जिसका प्रयोग गन्धर्व करता हैं, ऐसा गीत "गंधर्व" होता है।

जिसे पंडितों ने नाना प्रकार के लक्षणों से रचकर तैयार किया है। जिसमें देशी रागादिकों का समावेश है, तथा जो जन रंजक हैं, उसे "गान" कहते हैं।

इसके उपरान्त रामामात्य ने नाद के पाँच नाम वताये हैं।

(1) अति सूक्ष्म,
(2) सूक्ष्म,
(3) पुष्ट,
(4) अपुष्ट,
(5) कृत्रिम,

व्यवहार में नाद तीन प्रकार का माना गया है। हृदय का नाद "मन्द्र", कंण्ठ का "मध्य", तथा मस्तक का "तार" जानना चाहिये।

नाद के बाइस भेद हैं वे सभी नाद स्पष्ट सुने जा सकते हैं, अतः उन्हें "श्रुति" कहते हैं। हृदय स्थान में बाइस नाड़ियाँ लगी हुई हैं। उन्हीं से बाइस श्रुतियाँ उत्पन्न होती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हृदय, कंण्ठ तथा शीर्ष—ये जो तीन स्थान माने गये हैं, उनमें से प्रत्येक स्थान में बाइस श्रुतियाँ हैं। इन बाइस श्रुतियों से षड्ज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत, तथा निषाद ये सात स्वर उत्पन्न होते हैं।

श्रुति के पश्चात् तुरन्त उत्पन्न होने वाला नाद "स्वर" कहलाता है।

चौथी श्रुति पर षड्ज, सातवीं पर ऋषभ, नवीं पर गन्धार, तेरहवीं पर मध्यम, सत्रहवीं पर पंचम, बीसवीं पर धैवत, बाइसवीं पर निषाद इस प्रकार स्वरों की उत्पत्ति समझनी चाहिये।

रामामात्य के अनुसार ये सात स्वर शुद्ध हुए। विकृत स्वर भी उन्होंने सात ही माने, अतः उनके अनुसार कुल चौदह स्वर हुये। उन सात विकृत स्वरों के नाम हैं।

(1) च्युत षड्ज
(2) च्युत मध्यम
(3) च्युत पंचम
(4) साधारण गन्धार
(5) अंतर गंधार
(6) कौशिक निषाद
(7) काकली निषाद

षड्ज स्वर जब अपनी चौथी श्रुति को छोड़कर तीसरी श्रुति पर आता है तब उसे च्युत षड्ज संज्ञा प्राप्त होती है।

इसी लक्षण को लगाकर च्युत मध्यम व च्युत पंचम – इन स्वरों की जगह समझ लेनी चाहिये।

गंधार जब मध्यम की पहली श्रुति लेता है। तब उसे साधारण गन्धार कहते हैं, ऐसे ही वह जब शुद्ध 'म' की दो श्रुतियाँ लेता है तब वह अन्तर गन्धार कहलाता है।

निषाद स्वर जब षड्ज की पहली श्रुति लेता है, तब वह कौशिक संज्ञा ले लेता है। वही निषाद जब षड्ज की पहली श्रुतियाँ लेता हैं, तब काकली होता है। इस प्रकार से सात ही विकृत स्वरों के लक्षण हुए।

रामामात्य के अनुसार प्रत्येक 'मेल' में सात से अधिक स्वर नहीं आते हैं।

मेल प्रकरण

रामामात्य ने मेल प्रकरण के अन्तर्गत क्रम से राग-मेल कहे हैं। मेलों के नाम उन्होंने कहे हैं। सभी राग मेलों में "मुखारी" मेल पहला माना गया है। मुखारी-मेल में सातों ही स्वर शुद्ध लगते हैं। इसी से मुखारी राग तथा अन्य कुछ ग्राम राग निकलते हैं।

जिस मेल में 'सा रे म प ध' ये स्वर शुद्ध है। च्युत मध्यम गन्धार च्युत षड्ज निषाद—ये स्वर भी हैं, उस मेल को रामामात्य ने "मालवा-गौड़" कहा है। हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति का यह भैरव थाट होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मालवा गौड़ से उत्पन्न होने वाले रागों के नाम हैं—

(1) मालवा गौड़
(2) ललिता
(3) वहुली
(4) सौराष्ट्र
(5) गुर्जरी
(6) मेच बौली
(7) फल मंजरी
(8) सिंधु राम की
(9) गुड़करी
(10) छाया गौल
(11) कुरंजी
(12) कन्नड़ बंगाल
(13) मंगल कौशिक
(14) मलहरी

श्री राग-मेल के स्वर इस प्रकार हैं—

(1) शुद्ध षड्ज
(2) पंचश्रुतिक श्रृषभ
(3) साधारण गन्धार
(4) शुद्ध मध्यम
(5) शुद्ध पंचम
(6) पंचश्रुतिक धैवत
(7) कौषिक निषाद

श्री राग-मेल से जो राग उत्पन्न होते हैं उनके नाम ये हैं।

श्री राग, भैरवी, गौली, धंन्यासी, शुद्ध भैरवी वेलावली, मालवश्री, शंकराभरण, हिंदोली, देवगंधारी, मध्यमादी।

रामामात्य के कहे हुये "सारंग नाट" मेल में शुद्ध षड्ज, पंचश्रुति श्रृषभ, च्युत मध्यम गंधार, शुद्ध मध्यम, शुद्ध पंचम, पंचश्रुति धैवत, च्युत षड्ज निषाद ये स्वर लगते हैं इस मेल से जो अन्य राग निकलते हैं वे हैं—

सांरगनाट, सावेरी, सांरग-भैरवी, नटनारायणी शुद्धबसन्त, पूर्व गौल, कुन्तलवराली, भिन्न षड़ज, नारायणी।

श्री राग मेल के ही लक्षण हिन्दोल मेल के भी है, परन्तु हिन्दोल मेल में धैवत शुद्ध है। वे राग ये हैं।

(1) हिन्दोल
(2) मार्ग हिन्दोल
(3) भूपाल तथा अन्य कुछ राग

जिसमें 'सा रे प ध' ये स्वर शुद्ध है, च्युत पंचम मध्यम, च्युत मध्यम गन्धार तथा च्युत षड़ज निषाद—ये स्वर भी लगते हैं, उसे 'शुद्ध राम क्रिया' मेल समझना चाहिये।

(1) शुद्ध राम क्री
(2) बौली
(3) आर्द्रदेशी
(4) दीपक

जिस मेल में षटश्रुतिक श्रृषभ, षड़ज शुद्ध, मध्यम व पंचम शुद्ध, पंचश्रुति, धैवत, च्युतषड़ज निषाद, च्युतमध्यम गंधार, ये स्वर लगते हैं, उसे रामामात्य "देशाज्ञी" मेल कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिसे मेल में 'स, म, प शुद्ध हो, षटश्रुति ऋषभ धैवत हो, षटश्रुति धैवत हो, उसे "शुद्ध नाट" मेल माना गया है।

जिस मेल में 'स, म, ध, रे, ये स्वर शुद्ध हो, साधारण गांधार तथा च्युत षड़ज निषाद, ये स्वर भी लगते हो, उसे नादरामक्री मेल कहते हैं।

जिस मेल में स रे, म, प, ध, ग –ये स्वर शुद्ध हों, च्युत षड़ज निषाद तथा च्युत पंचम मध्यम ये स्वर भी लगते हों, उसे शुद्ध वराली मेल कहते हैं।

जिसमें सा, रे, ग, म, प, ये स्वर शुद्ध हो, पंचश्रुति धैवत तथा कौशिक निषाद ये स्वर भी हो, उसे 'रीतिगौल' मेल कहा गया।

जिसमें स, म, प शुद्ध है, पंचश्रुतिक रे, ध, च्युत मध्यम गांधार तथा च्युतषड़ज निषाद ये स्वर भी है। उसे "केदार-गौल" मेल समझना चाहिये।

इस प्रकार ये पन्द्रह मेल कहे गये है। इनमें काकली तथा अन्तर स्वर नहीं है।

राग प्रकरण

इन्हीं 15 मेलों से जो जन्य राग निकलते हैं, उनके उत्तम, मध्यम तथा अधम ये तीन वर्ग माने गये हैं, वे राग अब सविस्तार कहे गये हैं।

मुखारी, शुद्ध नाटी, मालव, शुद्ध वराली गुर्जरी, ललित, शुद्ध राम क्रिया, शुद्ध वसन्त, भैरवी आदि।

उपरोक्त वर्ग उत्तम वर्ग के रागों का है। अन्य पन्द्रह राग मध्यम वर्ग के है जो निम्नलिखित है।

केदार गौल, कांभोज, बंगाल, वेलावली, मध्यमादि, नारायणी, रीतिगौल, नादराम क्रिया, पाड़ी, भुपाली, रेवशुद्ध, गुण्डक्रिया, हिजुजी, बसन्त भैरवी, सामवराली।

ये आगे के राग अधम माने गये हैं जैसे सौराष्ट्र, मैंचबोली, छायागोल, कुरंजी, सिंधुराम क्रिया, गोडी, देशी, मंगल-कौशिक, पूर्वगोड, सोमराग इत्यादि।

ये तीनों वर्ग के रागों में संकीर्ण रागों का भी समावेश है।

सभी देशी राग षड़ज ग्राम से ही उत्पन्न होते हैं, अतः उनके ग्रह, अंश न्यास, मन्द्र, षाडवत्व, औड़वत्व, सम्पूर्णत्व इत्यादि प्राचीन राग लक्षण शास्त्रों के अनुसार होंगे।

हुमायूं
(1550—1556)

बाबर की मृत्यु के बाद उसका बेटा नसिरूद्दीन हुमायूं सन् 1530 ई० में गद्दी पर बैठा उसकी आयु 23 वर्ष की थी, यह वह समय था, जबकि उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खानदान में एक ओर अशान्ति पनप रही थी और दूसरी ओर अफगानों ने फिर से अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। हुमायूँ ने अनेकों युद्ध किये और अन्त में सफलता प्राप्त कर दिल्ली के तख्त पर आसीन हुआ।

बाबर के समान उसका बेटा हुमायूँ भी संगीत का प्रेमी था। उसने संगीतज्ञों के गायन सुनने के लिए हफ्ते में कुछ दिन निश्चित कर रखे थे। उसके दरबार में अनेक संगीतज्ञ थे, जिनका वह आदर करता था। हुमायूँ के चरित्र पर सूफी विचारधारा का प्रभाव पड़ा, इसका परिणाम यह हुआ कि वह संगीत को ईश्वर प्राप्ति का आवश्यक माध्यम समझने लगा। इस काल में अनेक सूफी भक्त हुए। ये सूफी सन्त भारतीय संगीत का भी विकास करते रहे, और इससे भारतीय संगीत की दार्शनिक भूमि सुदृढ़ होती गई। सर्वसाधारण के सामने भी सूफी भक्त संगीत का प्रदर्शन करते थे, इससे जनता में संगीत के प्रति अभिरुचि उत्पन्न होना स्वाभाविक था। कहने का तात्पर्य यह है कि हुमायूँ के राज्यकाल में सूफी सन्तों का संगीत के विकास में बहुत सक्रिय योगदान रहा। सूफी सन्त अपने सिद्धान्तों को बहुत सुन्दर ढंग से गा-गा कर जनता के सामने रखते थे।

हुमायूँ संगीत के दार्शनिक पक्ष से अधिक प्रभावित था, वह जब भी संकट-ग्रस्त होता, संगीत तन्मयता से सुनता उसे संगीत से बहुत प्रेम था। कहते है कि मरते दम तक उसने संगीत को नहीं छोड़ा।

इस काल में भजनों का अत्यधिक जोर रहा, भजनों के माध्यम से ही आम जनता में संगीत के प्रति रुचि उत्पन्न होने लगी। ये भजन ईश्वर की आराधना हेतु गाये बजाये जाते थे जिनका प्रभाव आम जनता पर होता था। संगीत का प्रचार भी इन भजनों के माध्यम से खूब हुआ, नैतिकता को बल मिला और समाज का स्तर नैतिक रूप से अवश्य ऊँचा उठा। संगीत की साधना का क्रम भी चला। वास्तव में सूफी सन्तों और भक्तों के संगीतमय प्रवचनों का साधारण जनता पर असर हुआ और भारतीय संगीत का आध्यात्मिक रूप पुनः जाग्रत हो उठा।

अकबर का काल
(1556 – 1605)

हुमायूँ के पुत्र अकबर को बहुत छोटी उम्र में राज्यभार सँभालना पड़ा, क्योंकि हुमायूँ को कुटुम्ब और अफगानों दोनों ओर से कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, और वह फारस चला गया। अकबर ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करने हेतु शत्रुओं का दमन किया और विजय प्राप्त की पश्चिमी सीमा के कन्धार से, पूर्व में आसाम तक और उत्तर कश्मीर से दक्षिण में अहमद नगर तक उसने साम्राज्य स्थापित किया। अकबर एक अत्यन्त कुशल शासक था साथ ही उदार हृदय और समाज सुधारक भी था। उसका जीवन पर्यन्त यही ध्येय था कि हिन्दू

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुसलमानों में जात-पात का कोई भेद न रहे वे एक होकर प्रेम से रहें, उसने स्वयं हिन्दु कन्या से विवाह कर इस बात को साबित कर दिया। हिन्दु संस्कृति और धर्म की वह बहुत इज्जत करता था। अकबर आगे चलकर एक महान शासक हुआ।

उसकी उदार प्रियता के कारण ही हम अकबर काल में हिन्दुस्तानी संगीत में आश्चर्यजनक स्थिति पाते हैं। भारत में मुसलसान विजेताओं की सभी कलाओं का पतन हुआ, किन्तु अकबर के समान उदार सम्राट कोई नहीं हुआ। अकबर स्वयं कला प्रिय थे, इसलिये उन्होंने भारत की सभी कलाओं के उत्कर्ष के लिये प्रयास किया। कलाकारों एवं विद्वानों को दरबार में उच्च पद व सम्मान दिया। उनके दरबार में नवरत्न थे, जिनमें तानसेन का नाम आज भी गौरव से लिया जाता है। तानसेन उन नवरत्नों में सर्वश्रेष्ठ थे। उन्होंने तानसेन को "काष्ठाभरण वाणी विलास" की उपाधि से विभूषित किया। यह प्रमाणित करता है कि हिन्दुओं के प्रति अकबर कितने उदार थे। अकबर दरवार में अन्य कलाकारों में रामदास, शुवहन खाँ, मियाँचाँद, वीरमण्डल खाँ, सरोद खाँ; मियाँलाल, चाँद खाँ, वीणा वादक, शहाब खाँ, इत्यादि थे। अनेक कलाकार मुस्लिम संगीत में भी निपुण थे। उनके दरवार में दक्षिण के संगीत ग्रन्थकार भी थे, पुण्डरीक विट्ठल इसी वर्ग के पण्डित थे।

अकबर के दरबार में मेल पद्धति की व्याख्या करने वाला एक "राग सागर" नामक ग्रंथ भी रचा गया, इस ग्रन्थ में राग रागनियों के ध्यान भी दिये हुए है।

अकबर क्योंकि स्वयं कला प्रेमी थे, अतः उन्होंने विद्वानों और संगीतज्ञों को उचित सम्मान दे, क्रियात्मक व शास्त्रीय दोनों पक्षों में निपुणता प्राप्त करने का अवसर दिया, वे स्वयं विद्वानों से संगीत विषयक चर्चा करते थे। अनेक नये-नये ग्रन्थ लिखे गये। 'संगीत रत्नाकर' जैसे ग्रन्थों का विद्वान मनन करते थे। और मूर्च्छना-पद्धति के सिद्धान्त के रहस्य को समझने का प्रयत्न करते थे। ऐसा था अकबर के दरवार का संगीतिज्ञ परिवेश।

अकबर के काल को संगीत की दृष्टि से स्वर्ण युग कहा गया। इस युग में भारतीय-संगीत की लगभग सभी प्रवृत्तियाँ सुचारु ढंग से विकसित हुई। अकबर के दरबार में 36 संगीतज्ञ थे।

उन्होंने राजा मानसिंह को प्रधान मन्त्री नियुक्त किया।

मानसिंह तोमर—मानसिंह तोमर संगीतज्ञों का बहुत सम्मान करते थे और उनके अपने दरबार में अनेक संगीतज्ञ रहा करते थे। वैजु बावरा भी अनके राज्य काल में हुए। कहते है कि वैजु के सहयोग से ही मानसिंह ने ध्रुपद शैलि का परिष्कार कर ध्रुपद का प्रचार प्रसार किया। मानसिंह तोमर की पत्नी मृगनयनी थी, जिनको वैजु ने प्रशिक्षण दिया। मानसिंह और उनकी रानी मृगनयनी ने मिलकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत के क्षेत्र में जो किया, वह आज भी प्रमाणित रूप में गवलियर में है। ग्वालियर के किले के अन्दर "मान मन्दिर" और "गुजरी" हिन्दु वास्तु कला के अत्यन्त सुन्दर प्रतीक है। ग्वालियर की ध्रुपद, गायकी तथा ग्वालियर का विद्यापीठ आज भी मशहूर है।

राजा मानसिंह का राज्य काल उथल-पुथल का था, परन्तु फिर भी उन्होंने संगीत के विकास में विशेष योग दिया वे सार्वजनिक रूप से संगीत आयोजन भी करते थे, जिसमें वे बाहर से कलाकारों को बुलाते थे।

ग्वालियर में आम जनता में संगीत के प्रति बहुत जागृति थी। घर-घर में संगीत की मधुर झन्कार सुनाई देती थी। नारियाँ भी संगीत की शिक्षा लेती थी और सार्वजनिक संगीत सम्मेलनों में भाग लेती थी।

ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने परम्परागत प्रबन्ध गान-शैली के आधार पर ही एक नवीन शैली का स्वरूप सामने रखा। यह नवीन शैली आगे चलकर ध्रुपद कहलायी, ध्रुपद के भी दो स्वरूप प्रचलित हुए, पहला—मन्दिरों आदि में भक्त कवियों द्वारा गाये जाने वाले गीत के प्रकार के रूप में—यह गीत प्रकार विष्णु-पद कहलाये। दूसरा प्रकार वह था जो राजदरबार में प्रचलित था—यह पद ध्रुपद कहलाये। मुगल बादशाहों ने ध्रुपद गायन शैली को मान्यता दी, जिसके कारण इस शैली को सामाजिक प्रतिष्ठा मिली। ध्रुपद गाने वालों को कलावन्त कहा जाता था, और समाज में बहुत आदर की दृष्टि से देखा जाता था। लगभग इसी समय से ख्याल गायन शैली भी प्रचार में आने लगी थी।

जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की स्वयं एक अच्छे संगीतज्ञ थे, ख्याल गायन शैली के प्रचार में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। समाज में ख्याल शैली धीरे-धीरे बढ़ती गई और ध्रुपद का स्थान कम होता गया। उस काल में गायकों के तीन वर्ग थे, कलावन्त वर्ग, जो ध्रुपद गायन शैली का पोषक था, दूसरा कव्वाल वर्ग, यह लोग कव्वाली के साथ-साथ ख्याल भी गाते थे। एक तीसरा वर्ग और था जो ध्रुपद के स्थायी अन्तरा तथा अलाप बढ़त और कव्वाली की तान बढ़त के मिश्रण से ख्याल के नवीन स्वरूप को विकसित कर रहा था। ये गायक सन्त कवियों की रचनाओं को ख्याल का रूप देते थे और यह रचनायें लोकप्रिय भी हो रही थी।

अकबर के युग में भक्ति-रस के अनेक कवियों ने जन्म लिया जिसमें संत तुलसीदास, भक्त सूरदास, भक्त मीराबाई तथा संत कबीर जैसे नाम प्रसिद्ध है। अकबर एक शान्तिप्रिय सम्राट थे, जो संगीत को पवित्र, पूज्य और साधना की कला मानते थे। इसलिए उन्होंने भक्त गायकों का बहुत सम्मान किया, वे स्वयं उनसे मिलने जाते थे।

अकबर के काल में भारतीय संगीत का प्रसार देश के कोने-कोने में हुआ और भारतीय संगीत की जो पवित्रता तथा निर्मलता थी, वह स्थिर रही। संगीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के शिल्पक आत्मिक एवं कलात्मक ज्ञान की अभिवृद्धि अपनी पराकाष्ठा की सीमा स्पर्श कर रही थीं। अकबर चित्रकला का भी प्रेमी था। उसने धर्म का प्रचार संगीत-कला के माध्यम से करना श्रेयस्कर समझा।

एक अरबी विद्वान के शब्दों में "अकबर के काल में भारतीय संगीत अपने पूर्ण यौवन पर था। संगीतज्ञों को समाज में अत्याधिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी। हिन्दू संगीतज्ञ संगीत की साधना तपस्वी की भाँति करते थे। वे संगीत को मोक्ष का साधन समझते थे मुसलमानों ने इतनी गम्भीरता से संगीत को ग्रहण नहीं किया था।"

इस काल के भारतीय संगीत पर दृष्टि डालने से हम पाते हैं, कि संगीत में दो स्पष्ट धारायें हो गई थी पहली धारा उत्तरी भारत में मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव में पनप रही थी, दूसरी ओर दक्षिण में संगीत अभी भी प्राचीन रूप में था वहाँ प्राचीन भारत का उज्जवल एवं पावन रूप था, प्राचीन भारतीय संगीत की उच्च परम्परा दक्षिणात्य संगीत में देखा जा सकता था। मन्दिरों में देवदासी प्रथा प्रारम्भ हो गई थी, ये देवदासियाँ जीवन पर्यन्त कुवाँरी रहकर भगवान की सेवा में अलौकिक नृत्य और गान करती थी। दक्षिण के संगीत विकास में इन देवदासियों का बहुमूल्य योगदान मिलता है। उनका जीवन त्यागमय होता था।

उधर उत्तर भारतीय संगीत में विदेशी प्रभाव रहा, जिससे वह निश्चित ही लाभान्वित हुआ। लगभग एक हजार वर्षीय हिन्दु और मुसलमानों के सांस्कृतिक सम्पर्क से भारतीय संगीत में इतनी परिपक्वता आ गई थी कि विश्व में उसकी तुलना नहीं की जा सकती।

संत संगीतज्ञ स्वामी हरिदास

अकबर कालीन हिन्दू संत संगीतज्ञ स्वामी हरिदास यमुना नदी के तट पर वृन्दावन में निवास करते थे। यह तानसेन के गुरू थे और उस समय के सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ। एक बार वह अपने शिष्यों के साथ एक बाग से होकर गुजरे जिसकी रखवाली तन्ना (बालक तानसेन) किया करता था। उन्होंने तन्ना को पशु-पक्षियों की नकल करते सुना, और वे उससे बहुत प्रभावित हुए, उन्होंने उस बालक को संगीत शिक्षा के लिए मांग लिया और वृन्दावन ले गये। उन्होंने 10 वर्ष तक बालक तन्ना को संगीत शिक्षा दी और संगीत में निपुण किया, यही बालक आगे चलकर तानसेन कहलाया।

स्वामी हरिदास के और भी शिष्य हुये, जैसे बैजु, गोपाल लाल, मदन लाल रामदास, सोमनाथ पंडित आदि।

स्वामी जी ने अनेकों ध्रुपद, धमार, तराने, त्रिवट, रागमालायें, चतुरंग तथा कई राग बनाये। स्वामी जी के शिष्यों ने देश के कोने-कोने में जाकर संगीत का प्रचार-प्रसार किया। तानसेन तो अकबर के दरबार में चला गया। अकबर, तानसेन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के संगीत से इतना प्रभावित हुआ कि उसने स्वामी जी से मिलने की इच्छा व्यक्त की। छद्म भेष में तानसेन के साथ वे वृन्दावन गये और वहाँ उन्होंने स्वामी जी का गायन सुना और उनके संगीत के दिव्य सौन्दर्य पर मुग्ध हो गये। "स्वामी जी की काफी रचनाएँ संगीत कल्पद्रुम" में मिलती हैं। वे 95 वर्ष की आयु तक जीवित रहे।

तानसेन—अकबर के दरबार के महान् रत्न तानसेन ने भारतीय संगीत की अभिवृद्धि के लिये प्रवल प्रयास किये। गायन कला की नैपुण्यता के कारण ही उन्हें उक्त काल में संगीत सम्राट की मान्यता उपबव्ध हुई है। भारतीय संगीताकाश में उनकी कीर्ति कौमुदी की प्रतिभा आज भी वैसे ही प्राप्त है।

अबुलफजल ने 'आइने अकबरी' में वर्णित किया है कि "तानसेन के प्रथम गायन पर ही सम्राट अकबर ने उन्हें 2 लाख का पुरस्कार दिया था।

तानसेन की प्रमुख रचना ध्रुपद है जो लिखित रूप में "राग कल्पद्रुम" एवं अन्य संगीत के ग्रन्थों में सुलभ है। उनके लगभग 300 ध्रुपद तो ग्रन्थ में उपलब्ध है तथा अलिखित ध्रुपद पुराने घरानों से सम्बद्ध कलावंतो को कंठस्थ है।

उनके तीन गंथ हैं—

(1) संगीत सार, (2) रागमाला तथा (3) गणेश स्त्रोत।

"तानसेन के समान कलाविद इस धरती पर न तो पहले हुआ और न इस समय है और न भविष्य में होने की सम्भावना है।"

"वीर भानूदय काव्यम्"

उनकी गायन कला की प्रशंसा में अनेक किवदंतियाँ भी प्रख्यात हैं। उनकी प्रचलित राग :दरबारी कान्हड़ा, मियाँ की मल्हार, मेघ आदि विशेषत: प्रसिद्ध हैं।

'सह सरस' के अनुसार "तानसेन का कंठ स्वर अत्यन्त पुष्ट और पाटदार था। स्वर और वाणी की देवी सरस्वती हैं। तानसेन उस वाणी के विलास थे, जो उनके कंठ का आभरण थी, अत: अकबर ने उन्हें "कण्ठाभरण वाणी विलास" की उपाधि से विभूषित किया था। वे मूर्च्छना पद्धति के भी कुशल ज्ञाता थे और मुकाम पद्धति के भी।

अकबर का काल संगीत और भक्ति-काव्य के लिये भी विशेषत: प्रसिद्ध था। भारतीय संगीत की दार्शनिक पृष्ठभूमि इस काल में भी पर्याप्त मात्रा में विकसित हुई।

भक्त कवियों का योगदान

16वीं शताब्दी का काल भक्ति काव्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। अकबर के काल में इस भक्ति-साहित्य का बहुत योगदान रहा। इस काल में भक्ति आन्दोलन अपने चरम उत्कर्ष पर था, इसी समय निगुण संतभक्ति,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेममार्गी सूफी-भक्ति, कृष्ण भक्ति तथा राम भक्ति की प्रेरणा से भक्त कवियों का निर्माण हुआ। इनके प्रभाव से संगीत तथा अन्य ललित कलायें पूर्ण विकसित हुई। अकबर के काल के भक्त गायकों द्वारा प्रसारित जीवन के मूल्य और मर्यादाएँ आज तक लोक में प्रतिष्ठित हैं। क्योंकि सभी संत गायक समान रूप से सांसारिक भोग को हेय दृष्टि से देखते हैं।

मध्यकाल में संगीत अपनी स्वर्णिम अवस्था को पहुँच गया था, क्योंकि संगीत पूरी तरह से भक्तिपूर्ण हो गया था। मध्यकाल या अकबर का काल संगीत की दृष्टि से स्वर्ण युग है, क्योंकि इसी युग में भक्त कवियों की वाणी ने संगीत को और अधिक निखारा तथा उसकी आध्यात्मिक और धार्मिक पृष्ठभूमि का और अधिक दृढ़ता प्रदान की। इस समय एक ओर तो शास्त्रीय संगीत का स्वरूप मुस्लिम दरबारों में सँवरा तो दूसरी ओर भक्त कवियों ने अपने काव्य या पदों से भक्तिमय संगीत का वातावरण तैयार किया। भक्त कवियों में, मीरा, सूर, तुलसी, कबीर परमानन्ददास, कुँभनदास आदि नाम आते हैं। जिनका वर्णन हम करेंगे।

सूरदास—अकबर के काल में भक्त कवियों की शृंखला में सूरदास संगीतज्ञ एवं भक्त कवि हुये। सूरदास ने संगीत के तीन पक्षों गायन, वादन और नर्तन को अपनाया और अपने युग में प्रचलित प्रायः सभी राग रागनियों को स्थान दिया है। इनका 'सूर सागर' अत्याधिक विख्यात ग्रंथ है। सूरदास के काल में 'ध्रुपद' और 'ख्याल' दोनों का प्रचार समान रूप से था। ध्रुपद यहाँ की प्राचीनतम शैली थी और "ख्याल आधुनिकतम इसी के साथ एक अति प्राचीन काल से चली आ रही पारस्परिक लोक संगीत की शैली भी थी। महाकवि सूरदास इन सभी शैलियों से परिचित थे और इनका उपयोग इन्होंने अपने काव्य में किया था। ख्याल गायन की दृष्टि से इनके पद बड़े अच्छे बन पड़े हैं।

सूरदास के पदों में प्रयुक्त-तालों में एक-ताल, झपताल, चचरी ताल, ध्रुव ताल, धमार ताल प्रमुख है। इनके काव्य में अनेक वाद्ययन्त्रों का प्रयोग मिलता है जैसे—पंचशब्द, रुंज, मुरज, ठफताल, बाँसुरी, झालरी, बीन, खाव, किन्नरी, सुरमंडल मजीरा, डिमडिम, शंख, भेरी, पखावज, मुरली वीणा आदि।

महाकवि सूर ने अपने पदों में 'रास-नृत्य' का भी वर्णन किया है, जिसके अन्तर्गत तांडव और लास्य नृत्य का मनोरम चित्रण मिलता है। "सूर सागर" में 87 राग-रागनियों का प्रयोग मिलता है जैसे आसावरी, सूहा, विलावल, सारंग, कान्हरा, घनाश्री, मारू, रामकली, केदार, मल्हार आदि।

सूरदास इन रागों को गाया भी करते थे। इनके गायन की प्रशंसा सम्राट अकबर के कानों तक भी पहुँची थी और अकबर के समक्ष इन्होंने दो पद भी गाये थे।

सूरदास के पदों से दार्शनिकता की भावना झलकती है। सम्राट अकबर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को अपना एक भजन 'मना रे करिमाधौ सौ प्रीत" सुनाकर ही सूर ने अपने संगीत ज्ञान से चकित कर दिया था। ऐसा लगता है कि सूरदास जन्मजात संगीत के सुर और ताल के मर्मज्ञ पैदा हुए थे, जिन्होंने अपने काव्य में 'छहों रागों, छत्तीस रागनी, 'इकइक नीको गावरी' कहकर अपने संगीत विषयक ज्ञान को प्रदर्शित किया।

अकबर के काल में सूरदास के पद जनसाधारण में बहुत प्रचलित हुए। इन पदों में सूर ने भारतीय संगीत की उच्च स्तरीयता एवं पावनता को अक्षुण्ण रखा। मुगलकाल में भारतीय संगीत के पावन सौन्दर्य की रक्षा इन पदों से हुई। सर्वप्रथम इन्होंने संगीत का सम्बन्ध मानव-जीवन से जोड़ा, अतः मानव, जीवन, संगीत से ओत-प्रोत हो गया। शान्त, शृंगार, वात्सल्य, करुण, भक्ति, वीर, आदि रसों में उन्होंने अपने पदों की रचना की। प्रातः कालीन कृष्ण की लीलाओं का वर्णन उन्होंने प्रातः गेय रागों में ही निबन्धित करने का निर्देश दिया। संध्याकालीन लीलाओं का उन्होंने सायंकालीन गाये जाने वाले रागों में बाँधने का निर्देश दिया है। इससे प्रमाणित होता है कि वह संगीतज्ञ थे। उनके पदों में संगीत के सभी आवश्यक तत्वों का समावेश उपलब्ध है।

मीरा (1955)—भरत, नारद, मतंग जयदेव आदि अनेक प्राचीन एवं मध्यकालीन पुरुष संगीतज्ञ हुये हैं, पर उच्चकोटि की नारी संगीतज्ञों में दो चार नाम भी नहीं उपलब्ध है। मीरा बाई गायन, वादन नृत्य में निपुण थीं। उन्होंने संगीत साधना से संगीत-संसार को पर्याप्त समृद्ध किया बाल्यावस्था से ही वह कृष्ण भक्त थीं। उन्होंने गायन तथा नृत्य, इन दो अंगों का पूर्ण अभ्यास किया था। साज, करताल एकतारी, इत्यादि वाद्य तथा नृत्य के समय गायन, इनका संगम मीराबाई की ही संगीत साधना में प्राप्त होता है। मीरा का लक्ष्य एक ही था, और वह था अपने प्रियतम कृष्ण का रंजन कर, उसको ही प्राप्त करना। वह अपने प्रियतम के लिये ही थी। कृष्ण के साथ उसके मन की स्थिति कभी वियोग तो कभी संयोग की थी। अपने अनुभव को व्यक्त करने के लिये उन्होंने काव्य और संगीत को माध्यम चुना था। पति की मृत्यु के बाद तो कृष्ण की भक्ति में अत्याधिक तन्मय हो गईं।

मीरा भक्त थी और उनकी भक्ति का माध्यम था भजन या कीर्तन। उनकी दृष्टि के सामने 'गीतगोविन्द' गीत काव्य का प्रमुख आदर्श था। महाराणा कुंभा ने इस काव्य पर एक अभ्यासपूर्ण टीका भी लिखी थी। मीरा के पदों में प्रेम तथा विरह इन दो भावों का सामंजस्य दिखाई देता है। इन पदों को नृत्य करते-करते गायन का आकार रूप देकर अपने ईष्ट देवता को प्रसन्न करना मीराबाई का लक्ष्य रहा है। ससुराल तथा घर छोड़ने के बाद वे वृन्दावन में रहने लगी। उन दिनों संगीत को महत्वपूर्ण स्थान देने वाली दो जगह थी—एक ग्वालियर और दूसरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृन्दावन। वृन्दावन के बाद मीराबाई गुजरात में चली गई और उधर ही उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया। गुजरात तथा राजस्थान लोक गीतों की दृष्टि से उच्चतर था। मीराबाई का लक्ष्य इन लोकगीतों की ओर गया और उन्होंने उनको शास्त्रीय रूप दिया, इसलिये उनके गीतों में हम कम से कम साठ राग-रागनियों का प्रयोग मिलता है। राजस्थानी, व्रज तथा गुजराती इन तीन भाषाओं में मीरा ने पद रचे। उनकी गायन शैली में शास्त्रीय संगीत की राग-रागनियों तथा लोक गीतों की धुनों का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है। उनके पदों में हमें लगभग 90 राग-रागनियों का प्रयोग मिलता है। मीराबाई के बहुतेरे राग राजस्थान, ब्रज तथा गुजरात में प्रचलित है—जैसे मांड इत्यादि।

मीराबाई ने गरवा गीत की प्रथा डाली जो आज भी गुजरात में दिखाई देती है। मीरा के पदों में संगीत का पुट अधिक है। अकबर के काल में भारतीय नारियों में नारित्व की उच्च गरिमा जागृत कराने का श्रेय मीरा को ही है। मुस्लिम प्रभाव से प्रभावित नारियाँ मीरा के संगीत श्रवण से पथ भ्रष्ट होने से बच गई। मध्यकाल के कलाकारों में मीराबाई का स्थान अद्वितीय है। निःसंदेह मीरा का नाम भारतीय संगीत के इतिहास में सदैव अमर रहेगा।

तुलसीदास—तुलसीदास जितने सफल भक्त कवि थे, उतने ही सफल संगीतज्ञ भी। अकबर के काल में उन्होंने जनसाधारण को एक नवीन दृष्टि दी। तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस'' पूर्णतया संगीतमय है। उन्होंने इसमें संगीत का पुट देकर राम के निर्मल एवं पावन चरित्र की विचारधाराओं को घर-घर पहुँचा दिया। संगीत को वह जीवन से पृथक नहीं समझते थे। दोनों को साथ लेकर वह विकास के पथ पर अग्रसर हुए।

अकबर के काल में इस महान कवि ने जितना संगीत का प्रचार प्रसार किया, उतना शायद तानसेन भी नहीं कर पाये होंगे। क्योंकि इनकी दृष्टि में संगीत और काव्य का रूप एक ही था। तुलसीदास जी की रामायण को हम मानव जीवन के विभिन्न दृष्टिकोणों की सुन्दरतम एलबम कह सकते हैं। इसमें हमें मानव जीवन के यथार्थ को समझने के लिये सब कुछ मिलेगा। तुलसीदास का जन्म मुगल काल में हुआ था और उस समय सामाजिक स्थिति सुधारने में इनका महत्वपूर्ण योगदान था। अकबर के दरबार में अनेक संगीतज्ञों के होने के उपरान्त भी भारतीय संगीत की अध्यात्मिक पृष्ठभूमि उतनी उत्कृष्ट न हो सकी थी जितनी कि इस महान कवियों की कृतियों से हुई। आज तुलसीदास जी की रामायण अनेक देशों की भाषाओं में अनुवादित हो चुकी है। साहित्य के साथ-साथ भारतीय संगीत के क्षेत्र में भी इन्हें उच्च स्थान प्राप्त है।

तुलसीदास का युग संगीत का स्वर्ण-काल है। तुलसीदास जी पर शास्त्रीय संगीत का भी प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपनी गीति कृतियों में इक्कीस राग-रागनियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का समावेश किया है। "कृष्ण गीतावली" में ये दस राग है।" आसावरी, कान्हण केदार, गौरी, धनाश्री, नट, विलावल, मल्हार, ललित तथा सोरठ।

'गीतावली' में इक्कीस रागों की चर्चा की गई है। असावरी, जयंतश्री, विलावल, केदार, सोरठ, धनाश्री, कान्हण, कल्याण, ललित, विभास, नट, तोड़ी, सारंग सूहा, मल्हार, गौरी, मारू, भैरव, चचरी बसंत तथा रामकली।

संगीतज्ञ महाकवि तुलसीदास ने सोच समझ कर राग-रागनियों की चर्चा अपने गीति-ग्रंथों में की है। उन्होंने अपने गीतों में कोमल स्वर वाले रागों को ही नियुक्त किया है, इसलिए सर्वथा भक्ति-रस के अनुकूल ही राग-योजना है।" "गीतावली" के रूप-वर्णन में कान्हरा, सारंग, केदार आदि रागों की चर्चा है।" "श्री कृष्ण गीतावली" में इन्द्रकोप के कारण वर्षा-वर्णन कवि ने मल्हार राग में बाँधा है। इसी तरह करुणा प्रधान गीतों को सौरठ राग में बाँधा है।

महाकवि तुलसीदास अपने अराध्य के प्रति पूर्णतया समर्पित थे। इसलिये प्रातःकालीन राग विलावल, विभास भैरव आदि से लेकर रात्रि के अन्तिम प्रहर वाले रागों-वसंत ललित आदि तक में उन्होंने गीत बाँधे।

उन्होंने गीतों को सुगम ढंग से तालबद्ध भी किया है। "विनय पत्रिका" में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि तुलसीदास जी शास्त्रीय संगीत के जानकार थे। उन्होंने अपने 'मानस में भक्ति के प्रकार वताए हैं। जिनमें सवसे अधिक महत्व भजन तथा कीर्तन को दिया है।

आज भी इन भक्त कवि की रचनाएँ लोगों के कंठों में सुरक्षित है इन भक्त कवियों के कारण मध्यकाल (अकबरी काल) संगीत की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण युग माना जाता है। इस काल में मथुरा वृन्दावन से लेकर गुजरात, महाराष्ट्र तक भक्ति-संगीत का अपूर्ण वातावरण बन चुका था। इसमें संदेह नहीं कि मध्यकाल केवल संगीत साहित्य में ही नहीं अपितु समस्त हिन्दी साहित्य में इन्हीं कवियों की वाणी से आज तक अक्षुण्ण व स्मरणीय बना हुआ है। उसका कारण इनके पदों की गेयता है कबीर, रैदास, दादू, मलूकदाख आदि संतों ने अपनी 'सधुक्कड़ी' बोली में जो कुछ भी उपदेश दिया, उसमें भी संगीत की गेयता को नकारा नहीं जा सकता है। आज भी यह भजन संगीत गायकों के लिये आधार स्तम्भ बने हुए हैं।

इसी काल में सूफी गायकों पीरों आदि ने भी संगीत कला को बहुत कुछ योगदान दिया। ये लोग संगीत-प्रेमी होते थे। इनके एक एक पद में आत्मा-परमात्मा का दर्शन, उनका वृक्ष स्वरूप प्राप्त होता है। संगीत के माध्यम से उन्होंने आध्यात्मिक दर्शन को सरलता से लोगों के समक्ष रखा। 'कव्वाली' शैली इन सूफी संतों के हाथों में आकर निखर गई और अधिक यह शैली शृंगारिक हुई।

बल्लभाचार्य के पुष्टि मार्गीय भक्तों ने भी कृष्ण भक्ति-संगीत के माध्यम से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की कृष्ण का बालरूप, शृङ्गार शयन, रासलीला आदि सभी को स्वर और लय बद्ध कर उन्होंने गाया।

झालर, वीन, रवाब, मुँहचंग जैसे वाद्यों को इन्हीं भक्त कवियों ने उपयोग किया, आज यह वाद्य अब नहीं दिखाई पड़ते। कृष्ण रासलीला का विकास भी सबसे अधिक इसी काल में हुआ। इन्हीं भक्त कवियों के पदों में नृत्य के भी शास्त्रीय रूपों का वर्णन प्राप्त होता है। "सूर सारावली" जैसे ग्रन्थों में संगीत के अनेक शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख मिलता है जैसे—अंग, नाद, ग्राम, 22 श्रुतियाँ इक्कीस मूर्च्छनायें, सप्त स्वर आरोही, अवरोही आदि।

इन भक्त कवियों के योगदान को कभी नहीं भुलाया जा सकता आज भी इनके भजन और गीत जन-साधारण को कंठ ग्रस्त है।

कबीर—अकबर कालीन कबीर का आविर्भाव देदीप्यमान ज्योति रूप में हुआ जिन्होंने अपनी साखियों द्वारा भारतीय संगीत की अतुलनीय सेवा की। उनके पदों में हमें 24 रागों का वर्णन मिलता है। मुस्लिम काल में मानव जीवन पर जो असमयता एवं उच्शृंखलता का मोटा आवरण पड़ा हुआ था, वह उनके गीतों में विनष्ट हो गया। जनता ने इनके पदों को गा-गा कर रस लिया। उन्होंने संगीत के माध्यम से सामाजिक सुधार किया। यदि उनके पद सरल और संगीतमय न होते तो जीवन का रहस्य मानव जीवन में नहीं उतर सकता था।

भारतीय संगीत के इतिहास में कबीर का स्थान उच्चकोटि के संगीतज्ञों के अन्तंगत आता है।

पंडित पुण्डरीक विट्ठल (1600 के लगभग)—सन् 1599 के लगभग कर्नाटक पं० पुण्डरीक विट्ठल द्वारा रचित संगीत के चार ग्रन्थ प्राप्य हैं :—

(1) सद्राग चन्द्रोदय (3) राग मंजरी

(2) राग माला (4) नर्तन निर्णय

पं० पुण्डरिक विट्ठल खानदेश के राजा बुरहान खाँ की सेवा में रत थे। पुण्डरीक अकबर के ही समकालीन थे। वह देश के ऐसे क्षेत्र से आये थे जहाँ कर्नाटक पद्धति ही प्रचलित थी; उन्होंने जो चारों ग्रन्थ संगीत पर रचे हैं—उनमें जिस पद्धति पर अपने शुद्ध सप्तक को स्थापित किया है, वह दक्षिण का मुखारी मेल अथवा कनकांगी मेल ही है। परन्तु उनके रागों से उत्तरी संगीत की भी झलक मिलती है अतः उन्नें हम उत्तरी भारत के सगीत विशारदों में ही मान सकते हैं। उनके ग्रन्थों में पूर्ण स्पष्टता है। उनका सप्तक निम्नवत है—

स रे रे म प ध ध सां

उपर्युक्त ही आज के दक्षिणी संगीत का भी शुद्ध सप्तक है।

सद्राग चन्द्रोदय—सर्वप्रथम 22 श्रुतियों को पण्डितजी ने स्वीकार किया है। ध्वनि के तीन स्थान मन्द्र, मध्य और तार माने हैं। प्राचीन ग्रन्थकारों के समान ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

22 श्रुतियों पर शुद्ध स्वरों का विभाजन किया है। शुद्ध स्वर भी अन्तिम श्रुति पर माने हैं। परन्तु पण्डित जी का शुद्ध सप्तक दक्षिणी है। स्वरों के नाम और कुछ परिभाषिक शब्द उत्तरी पद्धति से भिन्न हैं।

पंडित जी ने 7 शुद्ध स्वर और 7 विकृत स्वर स्वीकृत किये हैं। विकृत स्वरों के नाम निम्नलिखित हैं :

स्वर नाम

1—लघु षड्ज
2—लघु मध्यम
3—लघु पंचम
4—साधारण गन्धार
5—अन्तर गन्धार
6—कौशिक निषाद
7—काकली निषाद

पुण्डरीक की वीणा भी हमारी आधुनिक वीणा के सदृश थी। परदे और तार मिलाने का ढंग भी एक समान था। पुण्डरीक ने 19 थाटों का उल्लेख किया है जो निम्नलिखित हैं—

1—मुखारी
2—मालव गौड़
3—श्री
4—शुद्ध नाट
5—देशाश्री
6—कर्णाट गौड़
7—केदार
8—हिजेज
9—हमीर
10—कामोद
11—तोड़ी
12—आभीरी
13—शुद्ध वराटी
14—शुद्ध कामक्री
15—देवकी
16—सारंग
17—कल्याण
18—हिंदोल
19—नाद रामक्री

इन्हीं 19 थाटों में पुण्डरीक ने अपने जन्य रागों का वर्गीकरण किया है, जिनमें बहुत से राग उत्तरी रागों से साम्य रखते हैं। अत: यह ग्रंथ उत्तरी संगीत के लिए ऐतिहासिक महत्व का है।

रागमाला—पुण्डरीक ने 'रागमाला' में लोकप्रसिद्ध और परम्परागत पद्धति से भारतीय रागों का राग-रागिनी और पुत्र रागों में वर्गीकरण किया है। अन्तर केवल इतना है कि इनका विभाजन अधिक तर्कपूर्ण और बुद्धिगामी तथ्यों पर आधारित है। उनके 6 राग निम्नवत है :

"शुद्ध भैरव हिंदोलों देशिकारस्ततः परम् ।
श्री रागः शुद्ध नाटश्च नट्ट नारायणैव च।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1 – शुद्ध भैरव	4—श्री राग
2—हिंडोल	5—शुद्ध नाट
3—देशकार	6—नट्ट नारायण

यह पाँच पुरुष राग है। इनकी पांच-पाँच भार्या और पांच-पांच पुत्रों के नाम भी पुण्डरीक ने 'राग माला' में वर्णित किये हैं। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति पूर्णतया उक्त कथित राग प्राप्त हैं। अनेक रागों का स्वरूप भी प्राचीन पद्धति के समान ही है। "रागमाला" में प्रत्येक राग का थाट वर्णित करते हुये पुण्डरीक ने अनेक बातों पर प्रकाश डाला है। प्रथम यह है कि रागों का देवात्मक स्वरूप, अर्थात् राग चित्र और दूसरे रागों के गायन-स्वरूप को भी स्पष्ट कर दिया है।

उदाहरणार्थ, भैरव का राग चित्र—

सद्यो जातोद्धावोड्य प्रथम गतिर्गान:
सत्तिकोरि: कपर्दारक्त: श्यामस्त्रिसूली सिततरवसनो
भस्मदेहस्तिनेत्र: । कंठे श्रृङ्गि दधान: श्रवणयुग-
लतो मुद्रिके चन्द्रजूटो, हैमंतेऽपि प्रभाते
विलसति वृषभे भैरव: शुद्ध पूर्व: ॥

भैरव के मुख्य देवता के रूप में उन्होंने महादेव जी का वर्णन किया है।" "रागमाला" में भी पुण्डरीक द्वारा श्रुति, श्रुति स्वर स्थान, शुद्ध सप्तक "सद्राग चन्द्रोदय" के समान कथित हैं, जिनका वर्णन हम पूर्व ही कर चुके हैं। परन्तु विकृत स्वरों के नाम पुण्डरीक ने "रागमाला" में सद्राग चन्द्रोदय से भिन्न वर्णित किये हैं। विकृत स्वरों के लिए पुण्डरीक ने यहाँ "गीत" शब्द का प्रयोग किया है, जो निम्नलिखित हैं।

विकृत स्वर

पहली श्रुति पर	एकगतिक नि
दूसरी श्रुति पर	द्विगतिक नि
तीसरी श्रुति पर	त्रिगतिक नि
आठवी श्रुति पर	प्रथम गतिकरे
नवीं श्रुति पर	द्विगतिक रे
दसवीं श्रुति पर	एकगतिक गंधार
ग्यारवीं श्रुति पर	द्विगतिक गंधार
बारहवीं श्रुति पर	त्रिगतिक गंधार
तेरहवीं श्रुति पर	चतुर्गतिक गंधार
चौदहवीं श्रुति पर	एकगतिक मध्यम
पन्द्रहवीं श्रुति पर	द्विगतिक मध्यम
सोलहवीं श्रुति पर	त्रिगतिक मध्यम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इक्कीसवीं श्रुति पर	एकगतिक ध
बाइसवीं श्रुति पर	द्विगतिक ध

ग्रंथकार ने स्वरों के स्थान वर्णन करने के उपरान्त वादी, सम्वादी, अनुवादी विवादी ग्रह, अंश और न्यासी की भी परिभाषा वर्णित की है।

राग मंजरी

पुण्डरीक का तृतीय ग्रन्थ "राग मंजरी" है। इस ग्रन्थ में भी लेखक ने शुद्ध सप्तक का सहारा लिया है। "रागमाला" के समान ही शुद्ध और विकृत स्वरों के नाम उपलब्ध हैं।

"रागमाला" के सदृश ही वादी, सम्वादी की परिभाषा भी वर्णित है। समस्त रागों को मात्र षड्ज ग्राम पर आधारित किया है। मूर्च्छना और वर्ण के प्रश्न पर पुण्डरीक ने "रत्नाकर" के लेखक पंडित शार्ङ्गदेव का उदाहरण प्रस्तुत किया है अकबर के दरबार में संगीत के आयोजन भी होते थे, संगीत का जितना विकास अकबर के काल में हुआ, उतना किसी अन्य सम्राट के राज्य काल में नहीं हुआ। वैदिककाल और गुप्तकाल के बाद संगीत फिर से एक बार अपनी स्वर्णिम अवस्था तक पहुँचा। अकबर के काल में स्त्रियाँ भी खुलकर संगीत आयोजनों में भाग लेती थी। भक्त कवियों के कारण गीत और भजन जन-मानस में खूब प्रचलित थे। जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों को गीत की लड़ियों में पिरो दिया गया। गीत और भजन बहुत मार्मिक और भावपूर्ण होते थे। अच्छे-अच्छे नृत्यों का भी खूब प्रचलन था। इस काल में वास्तव में नारियों में संगीत के प्रति अनुराग था। मीरा सूर तुलसी के पद घर-घर गाये जाते थे।

इस काल में वीणा के स्थान पर सितार का उपयोग भी होने लगा था यद्यपि उच्च वर्ग की नारियां अभी भी वीणा वादन करती थी। मृदंग के स्थान पर तबले का प्रयोग होता था। मध्यम वर्ग के लोग ख्याल गायन और उच्च वर्ग के लोग ध्रुपद गायन में रुचि रखते थे। संगीतज्ञों का समाज में मान होता था। उनको राज्य की ओर से पुरस्कृत भी किया जाता था। संगीत साधना की वस्तु थी। परन्तु मुस्लिम संगीतज्ञ अभी भी संगीत के शृंङ्गारिक पक्ष को ज्यादा महत्व देते थे। अकबर स्वयं कला प्रेमी था उसे संगीत के साथ-साथ चित्रकला का भी शौक था। वह धार्मिक संगीत को बहुत महत्व देता था और ईश्वर की प्राप्ति का साधन मानता था। वह अपने दरबार में सभी ललित कलाओं के विशेषज्ञों को रखता था।

पुण्डरीक ने इस ग्रन्थ में अपने जन्य रागों का वर्गीकरण 20 थाटों में किया था। जिनमें बहुत से हिन्दुस्तानी स्वर नामों से साम्यता रखते हैं। इस ग्रन्थ के अन्त में उन्होंने कुछ ऐसे फारसी के रागों का भी उल्लेख किया है। जिनका प्रचलन यवनों द्वारा हिन्दुस्तानी संगीत में किया गया था। उदाहरणार्थ, हुसैनी, यमन,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सरपरदा, हिजाज, मुश्क इत्यादि। पुण्डरीक का उत्तर भारतीय संगीत पर भी पूर्णतः अधिकार था। उन्होंने उत्तर भारत के संगीत परिष्कार में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

भारतीय संगीत की दृष्टि से अकबर का काल स्वर्ण-युग कहा जा सकता है, क्योंकि इस काल में भारतीय संगीत की लगभग सभी प्रवृत्तियाँ सुचारु रूप से विकसित हुई। इस काल में अनेक संगीतज्ञ उत्पन्न हुए, गौरवशाली ग्रन्थो की रचना हुई और संगीत का प्रसार देश के कोने-कोने में हुआ। इस काल का संगीत धर्म के समान ही पवित्र और दिव्य रूप में विकसित हुआ था। इसी काल में सितार का उपयोग वीणा एवं मृदंग का तबले के स्थान पर प्रयोग होने लगा था। अकबर की मृत्यु 1605 ई० में हुई और उसी के साथ संगीत का स्वर्णिम काल भी समाप्त हो गया।

जहांगीर—(1605-1627) अकबर का पुत्र जहांगीर अपने पिता के तुल्य ही कला और साहित्य का अनुरागी था। परन्तु इस काल में शृंङ्गारिक साहित्य का अधिक निर्माण हुआ। जहांगीर के दरबार में विलास खाँ, छत्तर खाँ, खुर्रम दाद, मक्खु, परवेज दाद और हमजान प्रसिद्ध गवैये थे। इस काल में सोमनाथ का संगीत ग्रन्थ 'राग विबोध" निर्मित हुआ।

राग विबोध—इस संस्कृत ग्रन्थ के प्रवेता आन्ध्र प्रदेश निवासी पंडित सोमनाथ हैं। इस ग्रन्थ की रचना 1610 ई० में हुई। दक्षिण प्रदेश में यह ग्रन्थ अत्यन्त रोचक माना जाता है। "राग विबोध" में उत्तर और दक्षिण दोनों पद्धतियाँ के स्वर नामों का प्रयोग रचयिता ने किया है। उन्होंने अपने पूर्व ग्रन्थ-कारों के सदृश ही बाईस श्रुतियां तथा स्वरो के श्रुतियों पर आधारित नियम स्वीकार किये। किन्तु उन्होंनें वीणा के दंड पर बाईस श्रुतियों की स्थापना के लिये जो ढंग अपनाया था, वह पं० शार्ङ्गदेव से मिला था। उन्होंने वीणा के तारों के नीचे बाईस पर्दे लगा कर उनसे बाईस श्रुतियों को उत्पन्न किया था। तारों की सम्पूर्ण लम्बाई के आधार पर स्वर "मन्द्र षड़ज" की ध्वनि देते थे।

इसके उपरान्त पं० सोमनाथ 15 विकृत स्वरों का वर्णन करते हैं, जो निम्नवत् हैं :

विकृत स्वर

पहली श्रुति पर	:	कौशिक नि या तीव्रतम ध
दूसरी श्रुति पर	:	काकली नि
तीसरी श्रुति पर	:	मृदु स
आठवीं श्रुति पर	:	तीव्र रे
दसवीं श्रुति पर	:	साधारण ग या तीव्रतम रे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्यारहवीं श्रुति पर	:	अन्तर ग
बारहवीं श्रुति पर	:	मृदुम या तीव्रतम ग
सोलहवीं श्रुति पर	:	मृदु प या तीव्रतम म
इक्कीसवीं श्रुति पर	:	तीव्र ध
बाईसवीं श्रुति पर	:	तीव्रतर ध

इनमें पांच विकृत स्वर ऐसे हैं, जिनके दो-दो नाम हैं। इस आधार पर 10 विकृत स्वर ही अशुद्ध कहे जा सकते हैं। तीव्रतम् रे, तीव्रतम रे, तीव्रतम ग, तीव्रतर ध और तीव्रतम ध-क्रम से वही स्वर हैं जो शुद्ध ग, साधारण म, शुद्ध म, शुद्ध नि और कौशिक नि हैं।

सोमनाथ ने 23 थाटों में अपने जन्य रागों को वर्गीकृत किया है, जिनमें अधिकांश आज के प्रचलित रागों के सदृश्य हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से 'राग विवोध' उत्तरी संगीतज्ञों के लिये महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

जहांगीर के समय में ही भारतीय संगीत पद्धति पर 1625 ई० में पं० दामोदर ने "संगीत दर्पण" नामक ग्रन्थ का निर्माण किया।

संगीत दर्पण

इस ग्रन्थ की रचना पं० दामोदर मिश्र ने 1625 के लगभग की थी। यह ग्रन्थ फारसी भाषा में अनुवादित हुआ है। इस ग्रन्थ में "संगीत रत्नाकर" के भी बहुत से श्लोक कुछ परिवर्तन के साथ प्राप्त है। "राग-रागनियों" के 'ध्यान' अत्यन्त आकर्षक व मनोरंजक है।

दामोदर पंडित के समय वे जो संगीत प्रचलित था, उसकी रूपरेखा भरतादिक प्राचीन ग्रन्थकारों के युग से कुछ भिन्न हो गई थी, इसी से दामोदर पंडित ने प्राचीन संगीत की व्याख्या न करके अपने समय के संगीत का उल्लेख किया है।

दामोदर पंडित, लक्ष्मीधर के पुत्र थे, ऐतिहासिक दृष्टि से 'संगीत-दर्पण' अवश्य महत्वपूर्ण माना जा सकता है। इस ग्रन्थ में दो अध्याय हैं। प्रथम स्वराध्याय एवं द्वितीय रागाध्याय।

प्रथम अध्याय

सर्वप्रथम दामोदर पंडित ने प्रथम अध्याय में ब्रह्म एवं महादेव की वंदना की है, और संगीत की उत्पत्ति देवी-देवताओं से माना है। उन्होने पहले ही भरत जैसे प्रकांड विद्वानों के मत का समर्थन किया है। यद्यपि उन्होंने अपने पूर्ववर्ती विद्वानों के ग्रन्थों का परिश्रम पूर्वक अध्ययन किया था, परन्तु उन्होंने अपने समय के प्रचलित संगीत का ही वर्णन किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्होंने संगीत की परिभाषा इस प्रकार दी है 66 गीत, वाद्य तथा नृत्य, इन तीनों कलाओं का समुदाय वाचक नाम संगीत है। मार्गी तथा देशी, संगीत के ये दो भेद माने गए हैं।"

उन्होंने मार्गी एवं देशी संगीत की व्याख्या की है। इसके बाद उन्होंने नाद की उत्पत्ति एवं परिभाषा दी है। उनके अनुसार, "जिसमें नाद उत्पन्न होता है वह शारीर नाद की उत्पत्ति, स्थानों श्रुति तथा सात शुद्ध स्वर, 12 विकृत स्वर तथा वादी संवादी इत्यादि जो चार प्रकार हैं, वे सभी राग उत्पन्न करने के कारण है।

उनके समय में कुल 19 स्वरों पर (6 शुद्ध—12 विकृत) संगीत आश्रित था।

इसके उपरा . न्होंने कुल, जाति, वर्ण, द्वीप, ऋषि, देवता, छन्द, विनियोग स्वरों की श्रुतिजाति, ग्राम, मूर्च्छना, शुद्ध तथा कूट तान, संख्या, प्रस्तार, खंडमेरु, स्वर साधारण, जाति-साधारण, काकली तथा अन्तर स्वरों का प्रयोग, वर्ण लक्षण, 63 अलंकार, 13 प्रकार के जाति लक्षण, ग्रह-अंश इत्यादि भेद बताये हैं।

नादोत्पत्ति—उनके अनुसार सब गीत नाद पर अवलंबित हैं, वाद्य नाद का स्पष्टकर्त्ता है। नृत्य, गीत तथा वाद्य के आधार से होता है, अतः ये तीनों कलाएँ नादाधीन' मानी गई हैं।

उन्होंने नृत्य का स्थान गीत तथा वाद्य से निम्न ... है। नाद के योग से वर्णों का उच्चार होता है, वर्ण पद की सिद्धि होती है, ... भाषा होती है भाषा के होने से ही जगत के सब व्यवहार चलते हैं, अतः सम्पूर्ण जगत नादाधीन हैं।

उन्होंने नाद के दो प्रकार माने हैं।

(1) आहत (2) अनाहत

नाद के भेद बताने के उपरान्त उन्होंने श्रुति का स्वरूप वर्णित किया है। "प्रथमाघात से अनुरणन हुए बिना जो ह्रस्व नाद उत्पन्न होता है, उसे श्रुति समझना चाहिए।" श्रुति के बाईस भेद हैं।

स्वर-लक्षण—उन्होंने स्वर के लक्षण भी बताये है "जो नाद श्रुति उत्पन्न होने के पश्चात् तुरन्त निकलता है तथा जो प्रतिध्वनि रूप प्राप्त करके मधुर तथा रंजन करने वाला होता है, उसे स्वर कहते हैं।"

उन्होंने सात शुद्ध स्वरों को मान्यता दी है तथा 12 विकृत स्वर माने हैं। उनके विकृत स्वर निम्नलिखित हैं—

1. षड्ज साधारण
2. निषाद काकली
3. षड्ज साधारण

फा०—7

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

4. मध्यम साधारण
5. अन्तर प्रसंगे विकृत गांधार
6. मध्यम साधारण—च्युत मध्यम
7. अन्तर गांधार प्रसंगे—अच्युत मध्यम
8. मध्यम ग्राम—विकृत—पंचम
9. मध्यम साधारण प्रसंगे—विकृत-पंचम
10. मध्यम ग्राम विकृत—धैवत
11. षड्ज साधारण प्रसंगे विकृत—'निषाद'
12. काकली निषाद प्रसंगे विकृत-'निषाद'

वादी संवादी इत्यादि भेदों से उन्होंने चार प्रकार के स्वर माने हैं जिन स्वरों के योग से राग उत्पन्न होता है, उसे वादी स्वर माना है।

ग्राम विषय

'ग्राम' स्वरों का समुदाय है। 'ग्राम' का आधार 'मूर्च्छनाएँ' हैं। ग्राम दो है, षड्ज ग्राम और मध्यम ग्राम।

उन्होंने ग्राम की परिभाषा इस प्रकार दी है, "नियमित अन्तर के, सात शुद्ध स्वरों के समूह को ही ग्राम कहते हैं" अर्थात् प्रथम स्थापित सात स्वरों की रचना को ही ग्राम कहते हैं।

ग्राम की रचना से अर्धान्तर स्वर कायम होते हैं, विभिन्न ठाठों को उत्पन्न करने के लिए मूर्च्छनाओं का योग किया जाता है:

जब पंचम स्वर अपनी चौथी श्रुति के ऊपर स्थिर रहता है तब उस सप्तक को 'षड्ज ग्राम' कहते हैं। और वह जब तीन श्रुतियों का होता है। तब उसे मध्यम ग्राम मानते हैं।

'उन्होंने गांधार-ग्राम को' देवलोक स्थित माना हैं। तीनों ग्रामों में षड्ज ग्राम मुख्य है। इसी कारण से प्रथम स्वर षड्ज है।

तीनों ग्रामों के क्रम से ब्रह्मा, विष्णु, और महेश ये तीन देवता है, और षड्ज मध्यम के ही कुल में उत्पन्न हुआ है, इसलिए देवलोक में गांधार स्थित माना गया है।

इसके उपरान्त उन्होंने क्रम से स्वरों के देवता वताये हैं।

मूर्च्छना

'सात स्वरों का क्रम से आरोह तथा अवरोह करना मूर्च्छना कहलाता है। तीन ग्रामों की प्रत्येक की सात-सात मूर्च्छनाएँ है। तीन स्थानों के संयोग से मूर्च्छनाओं का आरम्भ होता है। मध्यस्थान के षड्ज स्वर से षड्ज की पहली और षड्ज स्वर के नीचे के निषादादि स्वरों से अन्य मूर्च्छनाओं का प्रारम्भ होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्होंने मूर्च्छनाओं की महत्ता और उपयोग पर भी प्रकाश डाला है। षड्ज ग्राम के समान ही मध्यम ग्राम की पहली मूर्च्छना मध्यम स्वर से शुरू होती है। और जो शेष छह है, वह मध्यम स्वर के नीचे के स्वरों से प्रारम्भ होती है।

प्रत्येक मूर्च्छना के चार-चार प्रकार होते हैं। मूर्च्छना की संख्या 56 होती है।

जब शुद्ध मूर्च्छनाओं को षाड़व और औड़व किया जाता है, तब उन्हें शुद्ध-तान कहते हैं मूर्च्छना में हमेशा सात स्वर होते हैं।

शुद्ध तानों में स्वर का क्रम नहीं टूटता, क्रम टूटने पर कूट ताने होती है।

कुल शुद्ध ताने उन्होंने 84 मानी है तथा 282240 कूट ताने मानी है।

स्थायी इत्यादि वर्ण

गायन-क्रिया को ही वर्ण कहते हैं। वर्ण के चार प्रकार कहे हैं—स्थायी, आरोही, अवरोही और संचारी। उनके लक्षण भी बताये हैं। एक ही स्वर के बार-बार प्रयोग को स्थायी वर्ण और तीनों वर्णों के मिश्रण को संचारी वर्ण कहते हैं।

ग्रहादि स्वरों का वर्णन

गीत के प्रारम्भ में ही जो स्वर स्थापित किया जाता है उसे ग्रह स्वर कहते हैं। गीत की समाप्ति जिससे होती है, उसे न्यास स्वर कहते हैं प्रयोग में जो स्वर बारंबार आता हैं उसे अंश कहते हैं।

अलंकार लक्षण

नियमित वर्ण समुदाय को अलंकार कहते हैं एक-एक मूर्च्छना से पंडितों ने 63 अलंकार कहे हैं।

जाति लक्षण

ग्रह, अंश, तार, मंद्र, न्यास, अपन्यास, सन्यास, विन्यास, बहुत्व और अल्पत्व—अन्तरमार्ग—ये जाति के लक्षण हैं।

ग्रंथकार ने जाति-प्रकरण का कही भी उपयोग नहीं किया है।

उन्होंने श्रुतियों से सात स्वर उत्पन्न माने हैं। मयूर, चातक, बकरा, क्रौंच, कोकिल, मेढक और हाथी ये क्रम से स रे ग म प ध नी—इन सात स्वरों का उच्चारण करते हैं।

दूसरा अध्याय

(रागाऽध्यायः)

"योऽयं ध्वनि विशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषितः
रंजको जन चित्तानामं स रागः कथितोबुधैः।

"वह नियमित ध्वनि विशेष जो स्वर तथा वर्ण से मंडित है और जो सर्व-साधारण का मनोरंजन करता हैं—उसे पंडितों ने राग कहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रागांग राग—जिसमें ग्राम राग की छाया हो—भाषांग राग—जिसमें भाषा राग की छाया हो। जिससे थकी हुई इन्द्रियों को उत्साह प्राप्त होता है, वह क्रियांग तथा जिसमें राग की छाया बहुत ही थोड़ी होती हो उसे 'उपांग' कहते हैं।

राग के तीन भेद हैं—शुद्ध, छायालग तथा संकीर्ण।

शुद्ध राग वे हैं, जिनका शास्त्र रीति से गायन हो, छायालग राग वे हैं जिनमें दो रागों का मिश्रण होकर रंजन होता है। संकीर्ण राग में शुद्ध राग तथा 'छाया राग' इन दोनों का मिश्रण होकर आनन्द प्राप्त होता है।

पाँच स्वरों के राग को औड़व, छह स्वरों के राग को 'षाड़व' और सात स्वरों के राग को 'संपूर्ण समझना चाहिये। राग 20 कहे जाते हैं।

शिव तथा शक्ति इन दोनों के योग से राग उत्पन्न हुए। महादेव जी के पाँच मुखों में से पाँच रागऔर छठा राग पार्वती के मुख से निकला। यह हमारे संगीत की उत्पत्ति कही गई है।

उन्होंने राग, रागनियों, उनके गायन समय, ऋतु, स्वरूप, स्वर सब पर प्रकाश डाला है।

छह राग—श्री, वसंत, भैरव, पंचम, मेघ तथा वृहन्नाट—ये 6 पुरुष राग हैं।

इसके बाद उन्होंनें 6 पुरुष रागों की रागनियाँ भी बतायी हैं। उदाहरण के लिए 'मालश्री, त्रिवेणी, गौरी, केदारी, मधुमाधवी और पहाड़ी—ये श्री राग की रागनियाँ हैं। इसी प्रकार अन्य रागों की भी बतायी है।

उन्होंने रागों का गायन समय भी बतलाया है जैसे देशकारी प्रातःकालीन, गुर्जरी, कौशिक आदि प्रथम प्रहर के बाद, वैराटी, तोड़ी, कामोदी आदि दिन के द्वितीय प्रहर में, श्री राग मालव गौरी आदि मध्यरात्रि के राग हैं।

कुछ राग जैसे श्रीराग तथा उसकी रागनियाँ शिशिर ऋतु के राग हैं। वसंत राग तथा उसका परिवार वसंत ऋतु में गाया जाता है आदि।

ग्रंथकार ने चारों मतों शिवमत, हनुमन्मत, रागर्णव मत तथा भैरव मत के राग-रागनियों का वर्णन किया है। इन रागों के ध्यान भी उन्होंने वर्णित किये हैं, जैसे भैरव राग का ध्यान—

"जिसके मस्तक से गंगा बहती है, कपाल पर चन्द्र-कला का तिलक है। जिसके तीन नेत्र हैं। जिसके शरीर पर सर्प शोभायमान है। जिसने अपने शरीर पर हस्ति-चर्म धारण कर रखा है। जिसके हाथ में भासित त्रिशूल है, गले में मुंडमाल है तथा जिसके वस्त्र श्वेत हैं। ऐसा आदिराग भैरव हैं।"

भैरव राग में 'धैवत' स्वर अंश, ग्रह, न्यास है। 'रे प' स्वर वर्जित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धैवत की मूर्च्छना में से उत्पन्न होता है। इनमें विकृत धैवत लिया जाता है और यह राग औड़व है।

इसी प्रकार उन्होंने सभी रागों एवं रागनियों के लक्षण एवं ध्यान:बताये हैं। इस दृष्टि से यह ग्रंथ अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।

जहाँगीर की सन् 1627 में मृत्यु हुई। उसके बाद उसका पुत्र शाहजहाँ गद्दी पर आसीन हुआ।

शाहजहाँ—(1627-1658) शाहजहाँ भी अपने पिता के समान ही संगीत प्रेमी था। वह संगीतज्ञों का बहुत आदर करता था। उसके दरबार में अनेक संगीतज्ञ रहते थे जैसे हैदर खाँ, लाल खाँ, रामदास, भट्टाट्टेर तथा जगन्नाथ आदि। शाहजहाँ स्वयं भी एक कुशल गायक था। कहते हैं वह सितार-वादन में भी प्रवीण था। उसने अपनी पत्नी मुमताज के सौन्दर्य की प्रशंसा में अनेक गीतों का निर्माण किया था।

इस काल में ध्रुपद शैली का अत्यधिक प्रचार-प्रसार था। गुजरात और महाराष्ट्र के नृत्य विकसित होते रहे। मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से यह नृत्य पूर्णतः अछूते थे। शाहजहाँ को धार्मिक संगीत से प्रेम था और वह ऐसे संगीतज्ञों को अपने दरबार में बुलाकर उनका सम्मान करता था। इस काल में संगीत की बागडोर ब्रह्मणों के हाथों में थी। संगीतज्ञों का इतना अधिक आदर सम्मान होने के उपरान्त इस काल में संगीत उच्च वर्ग से निकलकर निम्न अशिक्षित जातियों में हस्तान्तरित हो चुका था। एक ऐसा वर्ग संगीतज्ञों का निर्मित हो गया था, जो मात्र संगीत से ही अपना जीवन-यापन करता था और संगीत को पूर्णतया व्यवसाय के रूप में देखता था। नृत्य और गायन गणिकाओं ने हस्तगत कर लिया। इसका कारण यह था कि मुस्लिम काल में संगीत प्रशिक्षण के लिये किसी जाति-विशेष पर प्रतिबन्ध नहीं रह गया था। इन अशिक्षित संगीतज्ञों का राग-रागनियों का ज्ञान भी अत्यल्प था। अकबर के काल में जो संगीतज्ञों का नैतिक स्तर निर्मित हुआ, इस काल में उसका ह्रास हुआ। कलाकार कला की साधना से विमुख होने से विलासी हो गया। अधिकतर मुस्लिम कलाकार शराबी हुआ करते थे। वे दरबार में शराब पीकर गायन किया करते थे।

इसके विपरीत कतिपय हिन्दु संगीतज्ञ भारतीय संगीत के प्राचीन रूप को सुरक्षित रखने का प्रयत्न कर रहे थे, पर सम्भव नहीं था क्योंकि मन्दिरों में भी संगीत पवित्र न रह सका। वहाँ नृत्य और गायन निरन्तर चला करता था। भजनों का स्थान गजलों ने ग्रहण कर लिया। शाहजहाँ ने कभी भी भारतीय संगीत की पवित्रता एवं निर्मलता पर ध्यान नहीं दिया। मुस्लिम संगीत का एक मात्र उद्देश्य मानव को मनोरंजन प्रदान करता था। और इसी उद्देश्य के अनुकूल भारतीय संगीत भी ढलता गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"कत्थक नृत्य" मुगलयुग के बहुत पूर्व से ही भारत में "कृष्ण नृत्य के नाम से प्रचलित था। किन्तु यह नृत्य भी मुस्लिम युग में परिवर्तित हो गया जिस प्रकार हमारा शास्त्रीय गान ध्रुपद ख्याल में तथा मृदंग वाद्य "तबली" में परिवर्तित हो गया था, उसी प्रकार "कत्थक नृत्य" का विकास शृंगारिक उत्तेजक एवं आकर्षक बनाने के लिये हुआ। कत्थक नृत्य उक्तकाल में सर्वाधिक प्रचलित रहा।

औरंगजेब (1658-1707 ई०)—संगीत जबकि अपनी निम्नावस्था प्राप्त कर चुका था, उसी समय औरंगजेब दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। उसे भारतीय संगीत की उत्कृष्टता का अनुभव नहीं था, उसने मुस्लिम युग में संगीत का मात्र शृंङ्गारिक रूप ही अवलोकन किया था। अतः वह संगीत से अत्याधिक घृणा करता था। उसकी यह धारणा थी कि मनुष्य के चरित्र को भ्रष्ट करने का एक मात्र साधन संगीत है। इस दृष्टिकोण से उसने समस्त दरबारी गायकों को सेवामुक्त कर दिया था।

औरगंजेब की इस कठोरता से संगीतज्ञ असंतुष्ट हो गये। उसने संगीत विषयक सभी समारोहों पर प्रतिबन्ध लगा दिया और संगीतज्ञों के वाद्ययन्त्र जलवा दिये।

यदि औरगंजेब को संगीत की यर्थाथ पृष्ठभूमि का अल्प ज्ञान होता तो वह कदापि भारतीय संगीत के प्रति इतना कठोर कदम न उठाता। उसने अनैतिक संगीत के रूप को यर्थाथ समझा यही कारण था कि संगीत के प्रति उसके संकीर्ण विचार थे। यही भारतीय संगीत के लिये सर्वाधिक हानिप्रद हुआ। वह बहुत ही सादा और सरल प्रकृति का व्यक्ति था किन्तु संगीत के विलासमय रूप को देखकर ही उसे घृणा उत्पन्न हो गई। परन्तु फिर भी औरगंजेब के काल में ही उत्तर भारत में सर्वाधिक लोक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ "संगीत पारिजात" की रचना हुई।

संगीत पारिजात (1650 ई०)— इस ग्रंथ के रचयिता थे पं० अहोबल। संगीतशास्त्र की दृष्टि से यह प्रमाणित ग्रन्थ है और "संगीत रत्नाकर", "संगीत मंजरी", "संगीत कल्पद्रुम", "नाट्यशास्त्र", राग विबोध आदि ग्रन्थों की भाँति ही यह ग्रंथ गणमान्य है।

यह ग्रन्थ कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अहोबल ही सर्वप्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने अपने ग्रन्थ में वीणा पर स्वर-स्थान निर्धारण की एक नवीन पद्धति अपनाई। वीणा पर बजने वाले तार पर भिन्न-भिन्न नाप से उन्होंने अपने शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना की है। अहोबल का शुद्ध थाट भी आजकल के प्रचलित काफी थाट के समान है। इस पद्धति के द्वारा एक साधारण व्यक्ति भी स्वर की स्थापना उचित ढंग से कर सकता है।

इस ग्रन्थ की रचना संस्कृत में हुई तथा मंगलाचरण के बाद पाँच अध्याय है जिन्हें प्रकरण कहा गया है। इनका विषय-क्रम निम्नवत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1. स्वर प्रकरण
2. मूर्च्छना प्रकरण
3. स्वर विस्तार प्रकरण
4. गमक प्रकरण
5. समय प्रकरण

मंगलाचरण से ही यह ग्रन्थ प्रारम्भ होता है। इसके अनुसार यदि विष्णु भगवान के पवित्र नाम सुन्दर स्वरों में गाये जायें तो यह समावेद श्रृचाओं के समान फलदायक होते हैं। लेखक ने 'नाद' 'ब्रह्म' या 'स्वर' से ईश्वर की समानता का निरूपण किया है। राक्षसों की संहारक भगवती दुर्गा संगीत में ही सदैव निमग्न रहती है। ग्रन्थकार ने भगवान विष्णु के उस कथन को दोहराया है जिससे उन्होंने नारद से कहा है कि न तो मैं वैकुण्ठ में निवास करता हूँ और न योगियों के हृदय में बल्कि मेरे भक्तजन जहाँ वास करते हैं। मैं भी वहीं निवास करता हूँ।

"नाऽहं वसामि वैकुण्ठें योगिनां हृदये न च भद्रक्ता यत्र गार्यान्त तत्र तिष्ठामि नारदः।"

जो व्यक्ति वीणा-वादन के महत्व को समझता है श्रुति और स्वरों की जाति-भेद का ज्ञाता है तथा लय-ताल का जानकार हैं पुरुष विना योग-साधना के मोक्ष प्राप्त करता है। लेखक ने संगीत के दो प्रकार वर्णित किये है—

(1) मार्गी (2) देशी

ग्रन्थकार ने आगे वर्णित किया है कि शरीर में कुछ विशिष्ट नाड़ियाँ होतीं है और अनेक चक्र होते हैं। संगीत साधना से यह चक्र जागृत हो जाते हैं। इस प्रकार इससे मोक्ष प्राप्त होता है। नाड़ियों से नाद की उत्पत्ति, स्वरों का स्पष्टीकरण आदि होता है। रागों में प्रयुक्त वादी, सम्वादी, विवादी, अनुवादी इनके गोत्र हैं, उनके पृथक्-पृथक् देवता है। छन्द, नवरस, तीन ग्राम, उसकी 21 मूर्च्छनायें, सरल और कूटतान इत्यादि के वर्णन से उनका मंगलाचरण अध्याय समाप्त होता है।

(1) स्वर प्रकरण—अहोवल ने उल्लेख किया है कि श्रुति और स्वर में उतना ही भेद है जितना कि सर्प और उसकी कुंडली में। कानों द्वारा गृहीत ध्वनि श्रुति कहलाती है। पं० अहोवल ने 22 श्रुतियों के नाम परम्परागत वर्णित किये हैं। इन श्रुतियों की 5 जातियाँ निम्नवत कथित हैं—

(1) दीप्ता
(2) आयता
(3) करूणा
(4) मृदु
(5) मध्या

जिस प्रकार गन्ना रस से परिपूर्ण होता है उसी प्रकार श्रुति के अन्दर जाति व्याप्त होती है। शुद्ध स्वर सात माने हैं। उन्होंने स्वर को इस प्रकार परिभाषित किया है कि "जो स्वतः सुनने वाले के चित्त को आकर्षित करे वह स्वर है।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पं० अहोबल ने 22 विकृत स्वर माने हैं। कुछ स्वरों के नाम एक से अधिक माने हैं। उनके विकृत स्वर और स्थान निम्नलिखित है—

विकृत स्वर

पहली	श्रुति पर	:	तीव्र
दूसरी	" "	:	तीव्रतम
तीसरी	" "	:	तीव्रतम निषाद
पांचवी	" "	:	पूर्व श्रृषभ
छठी	" "	:	कोमल श्रृषभ
सातवीं	" "	:	पूर्व गंधार
आठवीं	" "	:	कोमल गंधार या
नौवीं	" "	:	तीव्रतर श्रृषभ
दसवीं	" "	:	तीव्र गंधार
ग्यारहवीं	" "	:	तीव्रतर गंधार
बारहवीं	" "	:	तीव्रतम गंधार
तेरहवीं	" "	:	अति तीव्रतम गंधार
चौदहवीं	" "	:	तीव्र मध्यम
पन्द्रहवीं	" "	:	तीव्रतर मध्यम
सोलहवीं	" "	:	तीव्रतम मध्यम
अठारहवीं	" "	:	पूर्व धैवत
उन्नीसवीं	" "	:	कोमल धैवत
बीसवीं	" "	:	पूर्व निषाद
इक्कीसवीं	" "	:	कोमल निषाद या तीव्र धैवत
बाइसवीं	" "	:	तीव्रतर धैवत

इस प्रकार इन विकृत स्वरों में कुछ दो एक ही स्थान पर हैं। वादी सम्वादी स्वरों के मध्य 8 अथवा 12 श्रुतियों का अन्तर होता है। वादी को राजा, सम्वादी को मन्त्री, अनुवादी को सेवक और विवादी को शत्रु के समान माना है। स, म, प, को ब्राह्मण, रे ध को क्षत्रिय, ग नि को वैश्य और विकृत स्वरों को शुद्ध कहा है। इन स्वरों के रंग भी लेखक ने वर्णित किये हैं। जैसे—

स—गुलाबी	प—श्याम
रे—हरा	ध—पीला
ग—पीला	नी—बहुरंगी
म—सफ़ेद	

इसके बाद लेखक ने 7 स्वरों के पृथक्-पृथक् देवता वर्णित किये हैं।

षड्ज का अग्नि देवता

ऋषभ का ब्रह्म,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गन्धार की देवी सरस्वती आदि सप्त स्वरों के रस और छन्द का भी उल्लेख किया है। जैसे—

षड्ज-गंधार	—	हास्य रस,
ऋषभ-मध्यम	—	शृङ्गार रस
पंचम	—	भयानक
धैवत	—	वीभत्स
निषाद	—	करुण रस

विकृत स्वरों के रस एवं शुद्ध तथा विकृत स्वरों की आंदोलन संख्यायें भी वर्णित की है—

षड्ज	:	240
कोमले ऋषभ	:	$254 \frac{2}{17}$
ऋषभ	:	270
तीव्र गन्धार	:	$301 \frac{17}{8}$
गंधार	:	288
तीव्र मध्यम	:	$337 \frac{1}{2}$
पंचम	:	360
कोमल धैवत	:	$381 \frac{3}{7}$
धैवत	:	405
निषाद	:	432
तीव्र निषाद	:	$301 \frac{17}{43} \times \frac{8}{2}$

अहोवल ने स्वग्रन्थ में 122 रागों का वर्णन किया है।

(2) ग्राम-मूर्च्छना प्रकरण—विशिष्ट स्वरों के समूह ग्राम कहलाते हैं। ग्राम तीन माने गये हैं: षड्ज, मध्यम और गंधार। षड्ज ग्राम सबसे उत्तम है।

उन्होंने मूर्च्छना को इस प्रकार परिभाषित किया है कि जब स्वरों का आरोहण और अवरोहण एक निर्धारित क्रम से और एक निश्चित स्थान से होता है तो उसे मूर्च्छना कहते हैं। उनके अलग-अलग नाम है: उत्तर मंद्रा, रजनी, उत्तरायता आदि।

ग्रन्थकार ने शुद्ध सम्पूर्ण, षाडव और औड़व तीनों जाति की मूर्च्छना की उत्पत्ति का भी उल्लेख किया है।

(3) स्वर-प्रस्तार प्रकरण—खण्ड मेरू ढ़ग की स्वर रचना का वर्णन किया है। चार प्रकार के वर्ण स्थायी, आरोही, अवरोही एवं संचारी तथा उन्हीं वर्णों पर आधारित 63 प्रकार के अंलकारों का उल्लेख किया है। 7 अलंकार स्थायी वर्ण के 12 अलंकार आरोही वर्ण के 12 अवरोही वर्ण के 25 संचारी वर्ण के और अन्य 12 अलंकार इन वर्णों से वर्णित किये हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ अलंकारों के साथ-साथ तालों के नाम भी, उल्लेख किये हैं। शुद्ध जातियां चार मानी हैं, किन्तु उनका उल्लेख मात्र किया है।

(4) गमक प्रकरण—कम्पित, स्फुरित, प्रत्याहत, तीरिप और फुम्फित इत्यादि गमकों की व्याख्या की है। इसके बाद उन्होंने संगीत के इतिहास में सर्व प्रथम वीणा के तार पर स्वर की स्थापना की है। यह वर्णन पूर्णतः स्पष्ट नहीं है। अतः इस संदर्भ में अहोवल का नामोल्लेख नहीं होता, जबकि श्री निवास का नाम उभर कर सामने आता है। "संगीत पारिजात" के दस वर्षों के उपरान्त 1660 में श्रीनिवास ने पूर्णतः अहोवल के समान 12 स्वरों की स्थापना का वर्णन किया है। सभी मेलों की संख्या 21, 340 होगी।

उन्होंने पाँच गीतियां स्वीकार की है। शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, वेसरा, साधारणी इन गीतियों के लक्षण भी उन्होंने वर्णित किये हैं।

(5) समय प्रकरण—रागों के गायन समय पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है। कुछ रागों को सर्व-कालिक मान्यता भी दी है। जैसे मेघमल्हार। उसका आरोह अवरोह भी वर्णित किया है।

सा रे म प ध सां

सां ध प म रे सा

वर्षा ऋतु में किसी भी समय इसे गाया-बजाया जा सकता है। उन्होंने सभी रागों के गायन समय को भी प्रतिपादित किया हैं।

"संगीत परिजात" में कुल 500 श्लोक उपलब्ध है।

हृदय कौतुक और हृदय प्रकाश—"संगीत परिजात" के पश्चात हृदय नरायण देव ने "हृदय कौतुक" और हृदय प्रकाश दो लघु एवं रोचक ग्रन्थ प्रस्तुत किये हैं।

हृदय कौतुक—इस ग्रन्थ के स्वर प्रकरण के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उसे वाह्य रूप से "राग तरंगिणी" से ग्रहण किया गया है। इस ग्रन्थ का महत्व यह है कि ग्रन्थकार ने शुद्ध और विकृत स्वरों के स्थान यथार्थंतः निर्धारित किये हैं। इन का विवरण उन्होंने वीणा के तार पर अभिव्यक्त किया है। इसलिये गणित की सहायता से उनके कथित स्वरों की यथार्थंतः स्थिति ज्ञात हो जाती है। पं० अहोवल ने भी "संगीत परिजात" में इसी प्रकार व्यक्त किया है। ग्रन्थकार ने अपने स्वर प्रकरण के अनेक श्लोक लोचन की 'राग तरंगिणी, से गृहीत किये है। इन्होंने एक नवीन राग "हृदय रामा" की रचना की है। इसमें इन्होंने दो नवीन स्वर त्रिश्रुति 'म' और त्रिश्रुति 'नि' को समाविष्ट किया है।

पुराने वारह थाट उन्होंने "राग तरंगिणी" से ही ग्रहण किये हैं। दीपक थाट के विषय में उन्होंने उल्लेख किया है।

"ठाठ-प्रकरणे दीपक संस्थान लेख्यम" इससे ज्ञात होता है कि उनके काल में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस राग का प्रचलन नहीं था। उन्होंने रागों को चार काल्पनिक भागों में बाँटा है।

एतासु सकला रागा जायंते वादन-क्रमाः ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यः शूद्रस्ते स्युश्तुर्विद्या सम्पूर्ण ब्राह्मणाः प्रोक्ता क्षत्रियः षाडव मताः औडव कथित वैश्याः शूद्रा-स्वदितरे क्वचित "हृदय कौतुक" में जन्य रागों का पूर्ण विवरण उपलब्ध है।

हृदय प्रकाश—यह लेखक की द्वितीय कृति है। इस ग्रन्थ में उन्होंने वीणा के तारों की लम्बाई की ध्वनि के आधार पर शुद्ध और विकृत स्वरों के स्थानों का प्रतिपादन किया है। रागों का वर्गीकरण भी अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है।

"हृदय प्रकाश" के स्वर प्रकरणम" मे स्वरों के स्थान उत्तरी संगीत पद्धति के आधार प्रस्तुत किये गये हैं अर्थात स्वरों को जव एक, दो अथवा तीन और चार श्रुतियों से चढ़ा देते हैं तब स्वर विकृत हो जाते हैं। जब स्वर दो श्रुति चढ़ जाता है तो तीव्रतर, तीन श्रुति चढ़ने पर तीव्रतम एवं एक श्रुति कम होने पर कोमल हो जाता है।

स्वर संज्ञा प्रकरण के उपरान्त रचयिता ने वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी की व्याख्या की है उसने वादी, संवादी के जोड़े भी वर्णित किये हैं।

सा	पं
रे	ध
ग	नि
म	सां

लेखक ने आगे बताया है कि राग में कम से कम पाँच स्वर अवश्य होने चाहिये।

"पंचोनेभ्य स्वरेभ्यश्चनस्या द्रागस्य संभव" तान में स्वरों की संख्या पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है। इसके पश्चात् उन्होंने वीणा के तार पर स्वरों की स्थिति का उल्लेख किया है। तार की पूर्ण लम्बाई 36" स्वीकृत की है।

उनके स्वर-स्थान निम्नलिखित हैं :—

स्वर	तार की लम्बाई	कम्पन-संख्या
सा	36"	240
रे	32"	270
ग	30"	288
म	27"	320
प	24"	360
ध	$21\frac{1}{2}$"	405
नी	20"	432
सा	18"	480

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह आधुनिक हिन्दुस्तानी, संगीतज्ञ का यथार्थंत काफी थाट हैं। 'हृदय प्रकाश' में सप्तक के स्वरों को स्पष्टत: रखकर उन्होंने समस्त संगीत प्रेमी संसार का अत्यन्त उपकार किया है। कतिपय विद्वानों का आरोप है कि इन्होंने अहोवल के "संगीत परिजात" से ही इसे ग्रहण किया है।

इन्होंने 'राग तरंगिणी' के 12 थाटों को स्वीकार किया है। किन्तु उन्होंने थाटों को उनके विकृत स्वरों के अनुसार भिन्न-भिन्न समुदाय में व्यस्थित किया है। इसके उपरान्त उन्होंने जन्य रागों को विकृत स्वरों के अनुसार विभक्त किया है। प्रत्येक राग के लक्षण की व्याख्या करते हुए उन्होंने एक छोटा—स्वरों का मेल प्रस्तुत किया है। जो, राग के आरोह-अवरोह को प्रकट कर देता है।

इस ग्रन्थ के बाद औरंगजेब के काल में ही भाव भट्ट ने संगीत के तीन ग्रन्थों की रचना की थी।

'अनूपे विलास' 'अनूपांकुश' एवं "अनूप संगीत रत्नाकर" (1674-1709)।

भाव भट्ट बीकानेर के राठौर राजा करन सिंह के पुत्र राजा अनूप सिंह के यहां नौकर थे। उन्होंने संगीत के तीन ग्रन्थों का सृजन किया था।

(1) 'अनूप विलास— इस कृति में रचयिता ने सम्पूर्ण स्वराध्य 'शार्ङ्गदेव' के संगीत रत्नाकर से ग्रहण किया है। उन्होंने नाद की उत्पत्ति, बाईस श्रुतियाँ और उन पर स्वर स्थापना के क्रम की व्याख्या की है।

सप्तक के स्वरों में प्रत्येक का चिह्न और उनके देवता का सविस्तार वर्णन किया है। जाति मूर्च्छना, ग्राम, वर्ण तान, अलंकार, शुद्धतान, कूटतान की परिभाषायें 'संगीत' रत्नाकर और 'संगीत पारिजात' में सदृश ही हैं।

भाव भट्ट का शुद्ध थाट 'मुखारी' पुण्डरीक के समान वर्णित हैं। उन्होंने 22 श्रुतियों पर 42 स्वरों की स्थापना के क्रम को प्रदर्शित किया है।

रागाध्याय में भाव भट्ट ने संगीत रत्नाकर के 234 रागों के नामों का उल्लेख किया है। 'अनूप विलास' में उन्होंने 70 रागों का उल्लेख किया है—किन्तु उन्होंने रागों के थाट व स्वरों का वर्णन नहीं किया है।

अनूप संगीत रत्नाकर

इस ग्रन्थ के स्वराध्याय में भाव भट्ट ने पुनः श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, तान, वर्ण, अलंकार विषयक कोई मौलिक उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने आलप्ति, कुआंड और ध्रुपद को अवश्य ही परिभाषित किया है।

इसके उपरान्त कल्याण, विलावली, तोड़ी, गौरी, गौड़, वरारी, आसावरी केदार, विहागड़ा, सारंग, भैरव, कामौद, गुर्जरी, सैंधवी और मल्हार आदि के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन किया है। भाव भट्ट ने भिन्न-भिन्न रागों के सैकड़ों प्राचीन ध्रुपदों का भी उल्लेख किया है। किन्तु उनकी स्वर-लिपि का वर्णन नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi.

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया है। उन्होंने 'रागमंजरी' से उसके थाटों, स्वरों व जन्य रागों को ज्यों का त्यों ले लिया है।

अनुपांकुश—यह लघु ग्रन्थ है। श्रुति, की परिभाषा उन्होंने निम्नवत दी है।

स्वरूपमात्र श्रवणान्नादोऽनुखनं बिना
श्रुतिरित्युच्यते भेदास्तस्या द्वाविंशतिर्यता:

भाव भट्ट ने संगीत अनुपांकुश के राग अध्याय में राग के वर्गीकरण को संगीत दर्पण के अनुसार वर्णित किया है। रागों को परिभाषित करते हुए विभिन्न ग्रन्थों का उद्धरण प्रस्तुत किया है। अनेक परिभाषाएँ परस्पर विरोधी भी है।

यह सभी ग्रन्थ बीकानेर की "पैलेस लाइब्रेरी' में सुरक्षित हैं। उन्होंने जिस प्रकार रागों का वर्गीकरण किया है, उससे यह प्रमाणित होता है कि उनका सम्बन्ध किसी दक्षिण परिवार से था। उनके ग्रन्थों का महत्व इसीलिये अत्यधिक बढ़ जाता क्योंकि उनमें उत्तरी भारत के पतनोन्मुख संगीत को व्यवस्थित करने का प्रयास हुआ था।

इसी काल में प्रसिद्ध विद्वान व्यंकटमुखी दीक्षित ने दक्षिणी पद्धति पर आधारित, संगीत का एक ग्रन्थ 'चतुर्दण्डि प्रकाशिका' निर्मित किया।

चर्तदण्डि प्रकाशिका
(1640-1650)

बहत्तर मेलकर्ताओं के अविष्कारक व्यंकटमुखी ने तंजोर नरेश विजय राघव के अनुरोध से 1660 ई० में 'चर्तुदण्डि प्रकाशिका का सृजन किया। इस समय औरंगजेब के शासन का आरम्भ हुआ था। गोलकुण्डा पर अब्दुल्ला कुतुबशाह शासन कर रहा था। व्यंकटमुखी पर अनेक देशीय प्रभाव थे। उनका कथन था कि देश अनेक हैं शासक अनेक हैं, निवासी भी अनेक हैं। उनकी रुचियां भी भिन्न-भिन्न हैं। अनेक रागों का सृजन हो चुका है, अनेक राग निर्मित हो रहे है। अनेक रागों का निर्माण होगा। उन सभी रागों के वर्गीकरण के लिये मैं बहत्तर मेलों की सिद्धि कर रहा हूँ।

नाना देशीय रागों में व्यंकटमुखी ने पन्तु वराली (हिन्दुस्तानी तोड़ी के स्वर) और कल्याणी (हिन्दुस्तानी कल्याण थाट के स्वर) की गणना की है।

व्यंकटमखी दक्षिण लेखक थे। आज दक्षिणी में उनका ग्रन्थ 'चर्तुदण्डि प्रकाशिका' अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखा जाता है। इस ग्रन्थ में गणितानुसार सप्तक के 12 स्वरों से 62 मेल अर्थात 1 थाट से 484 रागों की उत्पत्ति सिद्ध की गई है। 72 थाटों में से 19 थाट आज भी प्रयुक्त किये जाते हैं। व्यंकटमखी ने सर्वप्रथम अपने ग्रन्थ में पाँच विकृत स्वरों को स्वीकार किया है। जो निम्नलिखित हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1. साधारण गंधार
2. अंतर गंधार
3. वराली म
4. कौशिक नि
5. काकली नि

व्यंकटमखी का 'वराली म' नया नाम है, यह सोमनाथ का 'मृदु प' था। यह पंचम की तीसरी श्रुति पर स्थित था।

राग विवोध का तीव्रतम म इससे भी एक श्रुति नीचा था। उनके काल में शुद्ध 'रे' और शुद्ध 'घ' को कभी भी तीन श्रुति का नहीं माना जाता था और न ही इन स्वरों के अन्य नाम होते थे। वह सदैव शुद्ध 'रे' और शुद्ध 'घ' ही रहते थे।

'चर्तुदण्डि प्रकाशिका' में व्यंकटमखी ने वादी, संवादी स्वरों के उचित स्थान पर प्रयोग के विषय में बताया है। उनके अनुसार विवादी स्वरों के प्रयोग से राग का सौन्दर्य बढ़ जाता है।

व्यंकटमखी की 72 ठाठ अपनाने की कठिन प्रणाली सभी को मान्य है और दक्षिणी प्रांत में खूब प्रचलित है परन्तु उन्होंने उन सारे 72 ठाठों का प्रयोग अपने जन्य रागों के वर्गीकरण में नहीं किया है। वे केवल 19 का ही प्रयोग करते हैं। यह 19 मेल निम्नलिखित हैं—

1—मुखारी
2—सामवराली
3—भूपाल
4—हेजुज्जी
5—वसंत भैरवी
6—गौल
7—भैरवी
8—आहारी
9—श्री
10—कांभोजी
11—शंकराभरण
12—सामंत
13—देशाशी
14—नाट
15—शुद्ध व राली
16—पंतु व राली
17—शुद्धराम क्री
18—सिंहरव
19—कल्याणी

हिन्दुस्तानी पद्धति के लगभग दसों ठाठ इनमें पाये जाते हैं। पंडित व्यंकट-मखी ने सिंहरव मेल नवीन माना है। इसके बारे में वे कहते हैं :

"मेल : सिंहरवे रागे वेंकटाध्वरिकल्पिते।

पंडितजी द्वारा प्रचलित किया गया यह एक नवीन राग है। हिन्दुस्तानी संगीत में जिस राग में 'ग' और 'नि' कोमल लगते हों, उसमें तीव्र 'म' कुछ उपयुक्त नहीं होता, किन्तु पंडितजी ने इसके लिए भी एक मेल बना दिया है।

वेंकटमखी ने अपने रागों का वर्गीकरण इस प्रकार से उन्नीस ठाठों में किया है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेल जनक	जन्य राग
1. मुखारी	1. मुखारी
2. सामवराली	1. सामवराली
3. भूपाली	1. भूपाल, 2. भिन्न षड़ज
4. वसंत भैरवी	1. वसंत भैरवी
5. गौल	1. गौल 2. गुंडक्रिया, 3. सालंगनाट 4. नादरामक्रिया 5. ललिता, 6. पाडी 7. गुर्जरी 8. बहुली, 9. मलहरी, 10. सावेरी 11. छाया गौल 12. पूर्वगोल 13. कर्णाट बंगाल 14. सौराष्ट्र
6. आहरी	1. आहरी
7. भैरवी	1. भैरवी
8. श्री	1. श्री 2. सालंग भैरव 3. धन्यासी 4. मालवश्री 5. देवगांधार 6. आंधाली 7. वेलावली 8. कन्नड़ गौल
9. हेजुज्जी	1. हेजुज्जी 2. रेवगुप्त
10. कांभोजी	1. कांभोजी 2. केदारगौल 3. नारायण गौड़
11. शंकराभरण	1. शंकराभरण 2. आरभी 3. नागध्वनि 4. साम 5. शुद्ध वसंत 6. नारायण देशाक्षी 7. नारायणी
12. सामंत	1. सामंत
13. देशाक्षी	1. देशाक्षी
14. नाट	1. नाट
15. शुद्ध वराली	1. शुद्ध वराली
16. पंतुवराली	1. पंतुवराली
17. शुद्धराम क्रिया	1. शुद्धराम क्रिया
18. सिंहरव	1. सिंहरव
19. कल्याणी	1. कल्याणी

व्यंकटमखी का यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें वर्णित 72 थाटों को भातखण्डेजी ने थाट वर्गीकरण के लिये आधार माना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग तत्व विबोध (12वीं शताब्दी का पूर्वाद्ध)—पं० श्रीनिवास द्वारा रचित यह एक रोचक एवं लघु ग्रन्थ है। उत्तरी भारत के मान्य ग्रन्थों में इसकी गणना होती है। संगीत के इतिहास में यह ग्रन्थ कई दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ में श्रीनिवास ने वीणा के खुले तार पर, जिसकी लम्बाई उन्होंने 36" स्वीकार की है, शुद्ध और विकृत स्वरों की स्थापना की है। श्रीनिवास ने अहोबल के 'संगीत पारिजात" से प्रेरणा ग्रहण कर सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वरों की स्थापना वीणा के खुले तार पर प्रस्तुत की है।

उन्होंने वीणा में मेरू और घुड़च के मध्य खुले हुए तार की लम्बाई 36" स्वीकृत की। उन्होंने यह स्वीकार किया कि वीणा के खुले तार से षड़ज स्वर भी निकलता है।

(1) तार सां की स्थापना—मेरू से 18" की दूरी पर तार सां स्थापित हुआ।

सां 18"
|
मेरू————————————————घुड़च
36"   36"

$36 \div 2 = 18''$ सां

(2) पंचम की स्थापना—घुड़च से पंचम 24" की दूरी पर रखा।

प 24"   सां
| |
मेरू————————————————घुड़च

(3) मध्यम स्वर की स्थापना—घुड़च से मध्यम 26" पर स्थित किया है।

(4) गंधार की स्थापना—श्रीनिवास का यह गंधार वर्तमान प्रचलित कोमल गंधार है। गंधार घुड़च से 30" की दूरी पर स्थित है।

(5) ऋषभ की स्थापना—श्रीनिवास अपने शुद्ध ऋषभ की स्थापना अहोबल से पृथक रखते हैं। मेरू से 4" की दूरी पर ऋषभ की स्थापना की है।

(6) धैवत की स्थापना—इसकी स्थापना पूर्णत स्पष्ट नहीं है। घुडच से धैवत $21\frac{1}{2}$ पर स्थित हुआ।

(7) "निषाद—श्रीनिवास का यह निषाद हमारा कोमल निषाद है। मेरू से 20" की दूरी पर निषाद को स्थापित किया।

स्वर	तार की लम्बाई		आन्दोलन संख्या
	शुद्ध स्वर	विकृत स्वर	संख्या
षडज	36"		240
सां	18"	—	480
मं	26"	$25\frac{8}{9}$	320
प	24"	—	360

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग	30"	$28\frac{2}{3}$	320
रे	32"	$33\frac{1}{8}$	272
ध	$21\frac{1}{2}$"	$22\frac{2}{9}$	405
नि	20"	$19\frac{1}{9}$	432

इसके पश्चात उन्होंने अपने मेल अथवा थाट एवं उनके उपविभागों की परिभाषा की है।

"मेल उस स्वर-समूह को कहते है जिसमें राग उत्पन्न करने की शक्ति हो।"

एक मेल में जब समस्त शुद्ध स्वर आ जायें तो उसे सम्पूर्ण और उसमें 6 स्वर आ जायें तो उसे षाड़व और जब उसमें 5 स्वर आ जायें तो उसे औडव कहा जाता है। मेल का निर्माण करते समय उसमें विकृत स्वर भी प्रयोग में आते है।

राग मेल से ही उत्पन्न होता है परन्तु उसमें आरोह और अवरोह भी होता हैं। ज्यों ही मेल को आरोह अवरोह दे देते हैं वह तुरन्त राग निर्मित हो जाता है। प्रत्येक सम्पूर्ण मेल में औडव, षाडव और सम्पूर्ण के सिद्धान्त से आरोह-अवरोह का प्रयोग करने पर 486 राग उत्पन्न होते हैं। यथार्थतः इस सिद्धान्त पर कर्नाटक संगीत का राग सिद्धान्त भी आधारित है। श्रीनिवास की कथित विधि की आज भी मान्यता है।

श्रीनिवास ने ग्राम, मूर्च्छना आदि प्राचीन विषयों का अल्प वर्णन किया है मूर्च्छना रागों की उत्पत्ति विशेष महत्व की समझी जाती है। जिस स्वर की जो मूर्च्छना हुई, उस मूर्च्छना का वही नामकरण होता हैं। श्रीनिवास के समय में केवल एक ग्राम ही प्रयोग में था।

राग की उत्पत्ति के लिये मूर्च्छना का होना अनिवार्य है। यह मेल और राग के मध्य की स्थिति है। मेल में कोई परिवर्तन नहीं है, केवल मूर्च्छना में परिवर्तन करने से ही विभिन्न राग उपलब्ध होते हैं।

रागाध्याय में श्रीनिवास ने अहोबल का अनुसरण करके राग में 4 भाग प्रस्तुत किये हैं।

उदग्राह स्थायी, संचारी, युक्तयी।

बाद में शनैः शनैः मूर्च्छना और मेल का भेद समाप्त होने लगा और राग का "उदग्राह" पर भी प्रतिबन्ध समाप्त हो गया। सम्भवतया उस समय राग के आरोह-अवरोह को प्रकट करने के लिये ही मूर्च्छना का प्रयोग होता था। वह सदैव षड़ज से ही प्रारम्भ होता है। आज भी दक्षिणी संगीत में मूर्च्छना का तात्पर्य केवल आरोह-अवरोह को प्रकट करने के अतिरिक्त अन्य कुछ तात्पर्य नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके प्रारम्भ का स्थान सदैव षडज मेल के समान होता है। आज की उत्तरी अथवा हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में मूर्च्छना का प्राचीन महत्व नष्ट हो गया। यह अत्यन्त विचित्र बात है कि आज के कुछ व्यवसायी मुसल-मान कलाकार 'गमक' की भाँति इसका प्रयोग करते देखे गये है।

श्री निवास ने अपने ग्रन्थ में मेल सृजित करते समय बारह से अधिक श्रुतियों को कभी स्थान प्रदान नहीं किया। अन्य श्रुतियों को उन्होंने कभी-कभी महान स्वर की भाँति या सौन्दयवर्धक स्वरों के रूप में भले ही प्रयोग कर लिया हो। उनके काल में कतिपय ऐसे भी संगीतज्ञ थे जो एक सप्तक में चौबीस श्रुतियों के प्रयोग का निर्देश करते थे।

मध्यकालीन ग्रन्थकारों में श्रीनिवास ही अन्तिम ग्रन्थकार हैं; जिन्होंने संगीत को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया और भारतीय संगीत में एक नवीन युग की स्थापना की।

इस काल में राग-रागिनी पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ जिनमें निम्नांकित चार मत प्रचलित हुऐ :

(1) शिव या सोमेश्वर, (2) भरत मत, (3) कृष्ण या कल्लिनाथ मत, (4) हनुमत मत।

औरगजेब भले ही संगीत के पक्ष में न रहा हो पर उसके काल में संगीत के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गये, जितने कि किसी अन्य काल में नहीं। औरंगजेब की मृत्यु सन् 1707 में हुई, इसके साथ ही हम अठारहवीं शताब्दी में पदार्पण करते हैं।

आधुनिक काल

(1800 से अब तक)

इस काल को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं।

(1) पूर्वार्द्ध आधुनिक काल (1800 से 1900 तक)

(2) उत्तरार्ध आधुनिक काल (1900 से अब तक)

पूर्वार्द्ध आधुनिक काल

मुहम्मद शाह रंगोले—(1719—1748) बहादुर शाह का पोता मुहम्मद शाह 1719 में गद्दी पर बैठा। यह मुगल काल का अंतिम बादशाह था, परन्तु वह साम्राज्य ठीक से संभाल न सका, फलतः सब छिन्न-भिन्न हो गया। यह स्वयं बहुत विलासप्रिय और आमोदप्रिय था, इसके राज्यकाल में सभी लोग आमोद-प्रमोद में डूबे रहते थे, इसी कारण जब फारस के बादशाह नादिर शाह ने सन् 1739 में हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की तो रंगीले के राज्य के लोग उसका सामना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न कर सके और सम्राट को स्वयं जीवन के अन्तिम दिनों तक युद्ध का सामना करना पड़ा।

परन्तु मुहम्मदशाह संगीत कला का अत्यन्त प्रेमी था, इसी कारण उसका नाम "रंगीला" पड़ा। वे अपने नाम के अनुरूप रंगीली मनोवृति के श्रृंगारप्रिय वादशाह थे। उनका शासनकाल संगीत, कला एवं साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। उनके दरबार में आलम और धनानन्द जैसे उच्चकोटि के कवि तथा महाकवि और सदारंग जैसे संगीत शिरोमणि थे।

रंगीले का शासन काल सांगीतिक दृष्टि से क्रान्तिकारी माना जा सकता है, क्योंकि ध्रुपद, धमार, गायकी के स्थान पर ख्याल, ठुमरी, दादरा, कव्वाली, जैसी गायन शैलिया तथा वीणा के स्थान पर सितार जैसे नवीनतम ततुवाद्य का प्रचार एवं विकास इसीकाल में हुआ। इसी सम्राट के दरबार में प्रसिद्ध गायक और रचयिता अदारंग और सदारंग ने समृद्धि पाई।

"सदारंग"—उ० नेमत खाँ "सदारंग" संगीत के युग के पुरुष थे। वे परमील खाँ के पुत्र खुसरो खाँ के अग्रज तथा फिरोज खाँ "अदारंग" के चाचा, श्वसुर एवं गुरू थे। सदारंग ने ख्याल गायकी को नवीन शैली तथा नया रूप दिया। उन दिनों गायकों के दो वर्ग प्रचलित थे।

(1) कलावन्त, (2) कव्वाल

नेमत खाँ "सदारंग" यद्यपि परम्परा से कलावन्त एवं वीणा वादक थे, किन्तु तातार कव्वाल के शिष्य होने के कारण तथा विरोधियों को पराजित तथा वादशाह मुहम्मद शाह रंगीले को संतुष्ट करने के लिये उन्होंने सहस्त्रों ख्यालों की रचना की। उन्होंने कव्वाली की परम्परा की ख्याल गायकी को एक नया रूप दिया तथा नवीन शैली दी जिससे ख्याल की विषय वस्तु में भारतीय श्रृंगार आ गया।

अदारंग—रंगीले के दरबारी गायक फिरोज खाँ "अदारंग" भी उच्चकोटि के कलाकार थे, उन्होंने भी अनेक ख्यालों की रचनायें की, जो आज भी खूब प्रचार में है। यद्यपि वे स्वयं ध्रुपद गाते थे। और अच्छे वीणा वादक थे।

ख्याल गांयकी का प्रचार इस युग में खूब हुआ। गायन की शैलियों के उपरान्त तंतुवाद्यों के क्षेत्र में भी परिवर्तन का प्रारम्भ हो चुका था। वीणा के स्थान पर सितार की झंकार "रंगीले" के दरबार में सुनाई देने लगी थी। खुसरों खाँ ने तीन-तार, नवीन तंतुवाद्य "सहतार" के तारों पर, स्वर की गूजों को जिन्दा करने का प्रयास किया था। सह तार के साथ संगत के लिये तबले का प्रवेश हुआ। खुसरों खाँ ने तबले पर सितार खानी ठेके का प्रचार किया।

"टप्पा" गायन शैली का प्रारम्भ भी इसी काल में गुलामनवी शोरी के द्वारा हुआ। ये पंजाब के रहने वाले थे। और अच्छे गायक भी थे। आजकल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'टप्पा' अत्यन्त लोकमान्य शैली हैं। इनके टप्पे खमाज झिझौंटी, भैरवी, सिन्धु जैसे रागों में उपलब्ध है। शोरी मियां के गाने का ढंग निराला था, उसमें प्रयुक्त होने वाले तान, कंपन गिटकिरी इत्यादि अनोखे थे। टप्पा गायन शैली अन्य शैलियों से भिन्न है। इसका गायन संक्षिप्त तथा चंचल प्रकृति का होता है इसके लिये गले की तैयारी की आवश्यकता है।

भारतीय और फारसी संगीत पद्धतियों का सुन्दर सम्मिश्रण मुसलमान काल की विशेषता थी। शास्त्रीय संगीत के कतिपय प्रकार फारसी में रहे और कुछ को पूर्णतया नये नाम प्रदान किये गये—जैसे ख़िवत, तराना, गजल, रेवता कव्वाली, कलवाना इत्यादि। इस काल में स्त्री और पुरुष दोनों वर्गों के कतिपय ऐसे संगीतज्ञ हुऐ जिन्हें शास्त्र का कोई ज्ञान नहीं था, पर कंठ माधुर्य, कमनीयता एवं कुशलता इनमें इत्याधिक थी, अतः वे योरोप के प्रथम श्रेणी के चारणों से टक्कर ले सकते थे।

इस काल में ठुमरी का भी सर्वाधिक प्रचलन था, घर घर में ठुमरी अत्याधिक गाई जाती थी। जिन रागों में टप्पे होते है। उन्हीं रागों में ठुमरी गाई जाती है।ठुमरी में पंजाबी, अद्दा, कव्वाली आदि तालें। लखनऊ की ओर ठुमरी का प्रचलन अत्यन्त लोक- प्रिय हुआ। भारत में ठुमरी का गायन कोठे पर होने के कारण कुशल एवं उत्तम गायक ठुमरी गाना निम्नकोटि का मानते थे।

इस काल में सुगम संगीत का भी प्रचलन हो रहा था। जनता ने सुगम संगीन को शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा अधिक अपनाया।

अतः हम देखते हैं कि रँगीले का राज्यकाल शासन की दृष्टि से तो अवनीत की दशा की ओर जा रहा था। जबकि संगीत के क्षेत्र में संगीतज्ञों के नये नये नागों की खोज हों रही थी। और ऐसी गायन शैली का प्रचार हुआ जिसके कारण प्राचीन प्रतिष्ठित गायन शैली ध्रुपद भी प्रचार में अधिक न रही। क्योंकि रँगीले के शासन काल में आम जनता रसिक थी, जो ख्याल कव्वाली तथा नयी-नयी रचनाओं में अधिक रूचि लेती थी। गायिका तथा नर्तकियाँ भी विधिवत गायन वादन और नृत्य की शिक्षा लेती थी और शृंगार के सभी भेदों को भली-भाँति समझती थी।

रँगीले के बाद नवाब शुजोउदौला (1756-1775) का शासन काल रहा। इन्होंने अंग्रेजों से समझौता कर फैजाबाद को अपनी राजधानी बना लिया। परन्तु ये नवाब अत्यन्त विलास प्रिय थे। इन्हें स्वभाव से ही सुन्दर स्त्रियों और नाँच गाने से प्रेम था। जब शासक का यह हाल था तो तमाम जनता क्यों पीछे रहती। सन् 1775 ई० में इनकी मृत्यु हुई इसके उपरान्त उनके उत्तराधिकारी नवाब आसफ उद्दौला बने। ये भी संगीत-प्रेमी थे और अत्यन्त विलासी। नवाब आसफ उद्दौला के बाद उनका भाई सआदत अली खाँ (1798-1818) गद्दी पर बैठा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनके शासन काल में खुशी महाराज उत्तम नृत्यकार थे। 12 जुलाई 1814 को नवाब सआदत अली खाँ का पुत्र गाजीउद्दीन हैदर कुर्सी पर बैठा, इनके काल में रजबअली और फजलअली अद्वितीय ख्याल गायक थे। इसी काल में दुर्गा प्रसाद और ठाकुर प्रसाद की बहुत ख्याति रही। दुर्गा प्रसाद के बेटों में कालका और बिदादीन प्रसिद्ध हुये। नवाब आसफ उद्दौला के शासन काल में फारसी भाषा में (उसूल-उलनगमात-उल-आसाफिया) नामक पुस्तक संगीत पर लिखी गई है।

सन् 1846 से 1856 ई० तक वाजिद अली शाह नवाब रहे।

इनकी स्वाभाविक रुचि विलासिता और ललित कलाओं की ओर थी। इन्होंने स्वयं गाना बजाना सीखा।

वाजिदअली शाह के शौक को देखते हुये सन् 1852 ई० में सैयद आगा हसन अमानत ने "इंदर सभा" नाटक लिखा। इसमें संगीत के नियमो के अनुसार बड़ी कर्णप्रिय और मधुर धुनें बजाई गई थी। यह नाटक पूर्ण संगीतमय था और इसमें नवाब स्वयं भी गाता बजाता था।

वाजिदअली शाह के दरबार में अहमद खाँ, ताज खाँ, गुलाम हुसैन खाँ, और, दुल्ली खाँ उत्तम गायक थे। स्त्रियों में जोहरा, मुश्तरी, हेदरी, श्रेष्ठ संगीतज्ञ थी। मुहम्मद जी तबले का अच्छा वादक था।

कई संगीतज्ञ वाजिदअली शाह की बेगमों को नियमित रूये से संगीत की शिक्षा दिया करते थे। स्वयं वाजिदअली शाह ने अपने दरबारी नर्तक ठाकुर प्रसाद व उनके भाई दुर्गा प्रसाद जी से नृत्य की शिक्षा ली थी। वाजिदअली शाह उत्तम गायक व वग्गेयकार थे। उन्होंने "अख्तर" उपनाम से अनेक सादरे, ख्याल, ठुमरियों और गजलों की रचना की। जैसे प्रचलित खमाज का सादरा 'सुध बिसर गई आज अपने गुनन की' और बहार का प्रसिद्ध ख्याल फूलवाले "कत मैका गडुवा मोल ले दे रे" उनकी लोकप्रिय रचनाएँ हैं। भैरवी की प्रसिद्ध ठुमरी "बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाये" उन्हीं की रचना है।

उस समय कुतुबद्दौला अच्छे सितार वादक थे। प्यारे खाँ, जाफर खाँ, हैदर खाँ, बासत खाँ अच्छे गायक थे। छोटे और बड़े मुन्ने खाँ अच्छे तबला वादक थे।

मुगल साम्राज्य के अंतिम सम्राटों में अहमदशाह के दरबार में 'सुरभावन' और 'आलम' ध्रुपदकार थे।

अब मुगल शासन के अंतिम बादशाह बहादुर शाह 'जफर' का राज्यकाल आता है। इस समय तक अंग्रेजों का अधिपत्य पूरी तरह हो चुका था और संगीत के लिये परिस्थितियाँ संतोषजनक नहीं थी, अतः दिल्ली के अधिकांश कलाकार देश की विभिन्न रियासतों में जाकर बस गये जहाँ नवाबों और राजाओं ने इन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीतज्ञों को आश्रय दिया, अतः संगीत अब रामपुर, अवध, पटियाला, हैदराबाद, बनारस आदि शहरों में केन्द्रित हो गया।

इधर मुगल साम्राज्य का पतन हुआ, उधर ध्रुपद शैली और बीन वादन का पूरी तरह ह्रास हुआ। यद्यपि बहादुर शाह 'जफर' ने कलाकारों को बहुत मान-सम्मान दिया और स्वयं भी अच्छा शायर था। वह गाता भी सुन्दर था। परन्तु उसका जीवन संकट ग्रस्त रहा और अन्त में अंग्रेजों की पूर्ण विजय हुई।

मुगल शासकों के उपरान्त ब्रिटिश काल का प्रारम्भ हुआ। इस काल के प्रारम्भ में संगीत कतिपय प्रमुख रियासती राजाओं के दरबार तक सीमित रह गया। यूरोप-वासियों ने भारतीय संगीत को एक अर्द्ध विकसित कला के रूप में देखा। कुछ यूरोपीय विद्वान जैसे सर विलियम जोन्स, डॉ० ग्रिफिथ्स आदि ने भारतीय संगीत का अध्ययन किया, पर उनका कार्य-मात्र भारतीय विवेचन और प्राचीन अन्वेषण तक ही सीमित था। ब्रिटिश काल में भारतीय संगीत को कोई संरक्षण नहीं उपलब्ध हुआ, फलस्वरूप संगीत की अवश्य ही अवनति हुई। यूरोपीय काल के 30-35 वर्ष पूर्व से ही भारतीय संगीत की अवस्था पूर्णतः शोचनीय हो गयी थी।

यूरोपीय काल में हमें भारतीय जनता में संगीत के प्रति अरूचि दृष्टि-गोचर होती है। क्योंकि इस काल के आगमन के पूर्व ही कुछ मुगल शासकों ने संगीत विद्या की पावनी धारा को अध्यात्मिकता से विमुख कर मनोरंजकता और विलासिता की ओर मोड़ दिया था। अतः संगीत को जनसाधारण से किसी प्रकार का संरक्षण न प्राप्त हुआ। कुछ देशी राजदरबारों में ही इसे शरण मिली यह जन सामान्य से पृथक हो गया। सौभाग्यवश एक ओर समाज के सुशिक्षित वर्ग के कतिपय विद्वानों ने इसके महत्व को समझा तो दूसरी ओर कुछ अंग्रेज विद्वानों ने भी भारतीय संगीत का अध्ययन कर इससे सम्बन्धित पुस्तकों का प्रकाशन किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि सामान्य जनता ने संगीत के प्रति पुनः रुचि दिखाई। इधर राजदरबार के संगीतज्ञों में एक विचित्र-सी हलचल उत्पन्न हुई। फलस्वरूप राजाओं एवं दरबारियों के सम्मुख संगीतज्ञों में परस्पर होड़ की भावना जागृत हो गयी। विदेशी सत्ता के अन्तर्गत दरबारियों की संख्या कम हो हो गई थी। किन्तु संगीत की संख्या में कोई कमी नहीं आयी थी। इस स्थिति में प्रतियोगिता में विजयी होने के उपरान्त ही इन्हें आश्रय मिलना सम्भव था। अतः संगीतज्ञ अपनी-अपनी कला के अभ्यास में निरन्तर रत रहते थे जिसके फलस्वरूप संगीत की क्रियात्मक शैली में तो परिपक्वता आयी किन्तु शास्त्रीय संगीत की शैली विलुप्त-सी हो गई। संगीतज्ञ प्रतियोगिता के कारण इसके कलाकार शिक्षार्थियों को अपनी कला का प्रशिक्षण प्रदान करने से इन्कार करने लगे। अब वे अपने सगे-सम्बन्धियों को ही अपनी कला का प्रशिक्षण देने लगे थे। इस प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भिन्न-भिन्न घरानों की स्थापना हुई और प्रत्येक घरानें की कुछ मौलिक विशेषताएँ थीं। यह तो हुआ संगीन का क्रियात्मक पक्ष। शास्त्रीय पक्ष का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि समाज के कतिपय सुशिक्षित वर्ग के लोगों एवं कुछ अंग्रेज विद्वानों द्वारा भारतीय संगीत पर सृजित ग्रन्थों द्वारा जनता में शास्त्रीय संगीत के प्रति पुनजागृति हुई।

निम्नलिखित भारतीय संगीत शास्त्रीयों ने संगीत के शास्त्रीय पक्ष को विशेषतः योगदान दिया।

मुहम्मद रजा—सन् 1883 में मुहम्मद रजा ने जो राजा एम० एम० ठाकुर के अनुसार पटना के निवासी थे 'नगमाते आसफी' नामक एक ग्रन्थ का सृजन किया। ऐसा लगता है कि रजा उस समय के राग-रागनियों एवं पुत्र रागों के असंगत और अर्थहीन वर्गीकरण से पूर्णतः असंतुष्ट थे। अतः उन्होंने बुद्धिगम्य सिद्धान्तों के आधार पर संगीत को पुनः प्रतिप्ठित करने का बीड़ा उठाया। चारों मतों (भरत मत, हनुमत, कल्लिनाथ मत, सोमेश्वर मत,) के अनुसार उस समय जिन्हें समुचित प्रतिष्ठा उपलब्ध थी उसकी उन्होंने निर्भयतापूर्वक कटु आलोचना की। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि उस काल की आवश्यकता के अनुसार उनकी अब कोई उपयोगिता और सार्थकता नहीं रह गई थी। उनका मत निम्नवत है।

राग-नाम	रागिनी-नाम
1. भैरव	भैरवी, रामकली, गुर्जरी, खट, गंधारी, आसावरी।
2. मालकौंस	वागेश्वरी, तोड़ी, देशी, सूहा, सुघराई, मुलतानी।
3. हिण्डोल	पूरिया, बसन्त, ललित, पंचम धनाश्री मारवा।
4. श्री	गौरी, पूर्वी, त्रिवेणी, मालश्री, जेतश्री।
5. मेघ	मधुमास, गौड़, शुद्ध, सारंग, बडहंस, सामंत, सोरठ।
6. नट	धायानट, हमीर, कल्याण, केदार विहागड़ा, यमन।

जिस सिद्धान्त पर उन्होंने अपने राग और रागनियों का वर्गीकरण किया, उसका मूल आधार यही था कि राग और रागनियों में कुछ समान अवयव हों। इसे कोई अस्वीकार नहीं करेगा कि उनका वर्गीकरण इस सिद्धान्त की पुष्टि करता है। रजा निःसंदेह एक प्रतिभाशाली संगीतज्ञ थे।

"नगमाते-आसफी" में प्रथम वार शुद्ध सप्तक के रूप में विलावल का उपयोग पूर्णतः हुआ। यही सप्तक आज के हिन्दुस्तानी संगीत का आधार है। यह सप्तक यूरोपीय "C Major" सप्तक से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। केवल अन्तर इतना ही है कि हिन्दुस्तानी शुद्ध सप्तक का छठा स्वर यूरोपीय सप्तक के उसी स्वर से कुछ ऊँचा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"नगमाते आसफी" अयोध्या के नवाब आसफुद्दौला के समय निर्मित हुई थी। 'नगमाते आसफी' के कुछ रागों की परिभाषायें आज भी हमारे हिन्दुस्तानी संगीतज्ञों के लिये महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

रानाडे के अनुसार :

'Naghmate-Asafi' of Muhammad Raja is yet another work of the same type and was Compiled by its another about the year 1813. Thoroughly dissatisfied with the absurd and meaningless Raga-Ragini classification of his time, Raja took it into his head to introduce some sort of intelligent principal in classification. The central principal upon which he based his own Mata or system was that between every Raga and its Raginees, there must be some similarity or common featnres.

देश के उत्तरी भाग में संगीत के विकास के लिये कदम उठाये जा रहे थे। उधर पश्चिमी भारत में भी वैसे प्रयत्न किया गया था। जयपुर के महाराजा प्रतापसिंह देश ने जो सन् 1779 ई० से 1804 तक उस नगर के शासक थे। अपने संगीतज्ञों एवं प्रवीण कलाकारों को बुलाकर उनकी राय से हिन्दुस्तानी संगीत पर एक आदर्श ग्रन्थ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया था। उस ग्रन्थ का नाम उन्होंने "संगीत सार" रखा।

संगीत सार—इस ग्रन्थ में 'रत्नाकर' 'दर्पण' 'रागमाला' 'अनूप विलास' और 'परिजात' आदि कई उत्कृष्ट प्रमाणिक ग्रन्थों का उल्लेख है। इस ग्रन्थ का निजी महत्व है। राजा प्रतापसिंह ने इस ग्रन्थ में विलावल को शुद्ध सप्तक स्वीकार किया है। और अपने काल के संगीतज्ञों का उल्लेख किया है।

"राग-कल्पद्रुम"—उन्नीसवीं शताब्दी का दूसरी महत्वपूर्ण ग्रन्थ कृष्णानन्द व्यास-कृत "राग कल्पद्रुम" है। ग्रन्थ का प्रकाशन कलकत्ते में मई 1842 में हुआ था। श्री व्यास ने "रागाध्यायों को एक साथ रखा है। इसके उपरान्त उन्होंने हिन्दी के उपलब्ध उत्कृष्ट गीतों का संकलन किया है। उन्होंने मात्र गीतों के शब्द तो दिये हैं; किन्तु स्वरलिपि प्रदान नहीं की है। अतः गायकों को उनसे कोई सुविधा उपलब्ध नहीं है। यद्यपि मूल गीतों की शाब्दिक शुद्धता की दृष्टि से ग्रन्थ का बहुत महत्व है। कृष्णानन्द व्यास का शुद्ध सप्तक भी विलावल है।

सौरेन्द्र मोहन टैगोर—उन्नीसवीं सताब्दी के उत्तरार्द्ध में बंगाल के सर एस० एम० टैगोर ने संगीत में कई उत्तम ग्रन्थों का सृजन किया। इनका लिखा हुआ "The Universal History of Music" नामक ग्रन्थ अत्यधिक प्रचलित हुआ। इन्होंने भारतीय संगीत कला के लिये जो कुछ किया आगामी कई वर्षों तक उसकी समता नहीं हो सकती है। इनके ग्रन्थों की संख्या अत्याधिक होने के कारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन सबका उल्लेख करना सम्भव नहीं है। "कण्ठ-कौमुदी" 'संगीत सार' 'यंत्रक्षेत्र दीपिका' आदि उनके कतिपय प्रमुख प्रकाशन अपने युग का स्वतः प्रदर्शन करते है।

बंगाल के संगीतज्ञों ने, जिनमें राजा एस० एम० टैगोर भी सम्मलित हैं, अपने रागों का विभाजन राग-रागिनी के पुत्र आदि के ढंग पर किया है।

रानाडे के अनुसार :

"Sri Sourindra Mohan Tagore is another greate figure of those days and is well-known for his Patronage to music. Between 1867 and 1896, he published a number of books on music among which "The Universal history of music" needs special mention.

बंगला का एक अन्य विशेष रूप से उल्लेखनीय ग्रन्थ "गीत सूत्रसागर" है जिसमें श्री कृष्णधन बनर्जी ने यूरोपीय स्वर लिपि पद्धति में सैकड़ों ध्रुपद और ख्याल को बड़ी कुशलता से लिपिवद्ध किया है।

उत्तरार्द्ध अथवा वर्तमान आधुनिक काल

(1900 से लेकर अब तक)

भारत के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल को अत्यन्त महत्वपूर्ण युग कहा जा सकता है। 1850 से 1909 तक, भारत के क्षितिज पर ऐसे अनेक महापुरुषों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने जीवन के सभी क्षेत्रों में भारतीय राष्ट्र में नये प्राण फूंकने और नई शक्ति के संचार का प्रयत्न किया है। महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक बंगाल में स्वामी विवेकानन्द और श्री अरविन्द घोष, पंजाब में लाला लाजपत राय और स्वामी रामतीर्थ और दक्षिण में सर एम० विश्वेश्वरैया तथा कस्तूरी रंग अयंगार आदि कुछ ऐसे व्यक्ति हुए हैं जो इस नव-जागरण के पथ-प्रदर्शक थे।

वास्तव में यह युग भारत के पुनर्जागरण का युग था, ब्रिटिश शासन की नींव मजबूत होती जा रही थी। उनके द्वारा प्रचलित पद्धति के माध्यम से भारत भारत का बुद्धिजीवी वर्ग पाश्चात्य विचारों के सम्पर्क में आता जा रहा था।

देश के विचारक और नेतागण भारत के प्राचीन गौरव के पुनरुत्थान के साथ-साथ समाज की विचारधारा में नई क्रांतिपूर्ण 'भावनाओं का संचार कर रहे थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये शिक्षण साहित्य, रंगमंच और सांस्कृतिक कलाओं (संगीत) का उपयोग करना आवश्यक हो गया था।

संगीत को राष्ट्रीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग समझा जाने लगा और उसका पूर्व गौरव पुनः स्थापित हो जाय, ऐसा प्रयत्न किया जा रहा या। उस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समय संगीत कल्पनाहीन अशिक्षित वर्ग के हाथों में पड़ गया था। और सम्पन्न वर्ग के कुछ सीमित संख्या के लोगों की पहुँच ही उस तक थी। पुनरुत्थान और सुधार की भावना से इस स्थिति में इन्होंने सुधार का प्रयत्न किया। इस आन्दोलन के नेता दो उत्साही युवक थे—विष्णु नारायण भातखण्डे और विष्णु दिसम्बर पलुस्कर। दोनों विष्णुओं ने संगीत की उन्नति के लिये अपना जीवन अर्पित कर दिया इन दोनों संगीतज्ञों ने संगीत की कला और प्रतिष्ठा के उत्थान के लिये दृढ़ संकल्प होकर अटल उत्साह से काम किया। यह उनके लिये प्रशंसा की बात है कि वे अपने जीवन काल में ही अपने उद्देश्य को पूरा कर सके।

पं० विष्णुनारायण भातखण्डे

गीता में श्री भगवान ने स्पष्ट शब्दों में कहा है।

"धर्म-संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।

देश, काल और पात्र भेद से संगीत में समयानुकूल परिवर्तन हुये हैं। प्रायः एक शताब्दी पूर्व ही संगीत की गति अवरुद्ध पुरुत्थान हो गयी थी, और युग धर्मानुसार उसका पुनरुत्थान होना परमाश्यक माना गया, ऐसी परिस्थिति में 10 अगस्त, 1860 ई० को श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन एक साधारण परिवार में भातखण्डे जी का जन्म हुआ जिनके द्वारा भारतीय संगीत का पुनरुत्थान हुआ। इस दृष्टि से 19वीं शती के अन्तिम पचास वर्ष को भारत के संगीत के पुर्नजागरण का काल कहा जा सकता है।

औरगंजेब के शासनकाल के पश्चात् शताब्दियों तक भारतीय संगीत से अनभिज्ञ होने के कारण यवनों ने संस्कृत ग्रन्थों और उन पर आधारित शास्त्रीय पक्ष की उपेक्षा की। दरबारों में ईरानी, फारसी संगीत का प्रचलन हुआ, धीरे-धीरे मुगलकालीन पद्धति प्रचलित होती गई और ब्रिटिश काल के साथ प्राचीन भारतीय गायन शैली विस्तृत होती गयी। जो कुछ भी संगीत था, वह केवल कुछ हिन्दू तथा मुसलमान अल्प संख्यक कलाकारों तक ही सींमित था। ऐसी विषम परिस्थिति में यत्र-तत्र विकीर्ण संगीत कलाकारों से सम्पर्क स्थापित करना तथा उनके द्वारा स्वरांकित गीत रचनाओं को प्राप्त करना सहज कार्य नही था। किन्तु श्री भारतखण्डे जी ने अपने अविराम प्रयत्नों के फलस्वरूप उन दुष्प्राप्य रचनाओं का संकलन का उसे एक वृहद ग्रन्थ का आकार प्रदान कर आधुनिक संगीत जगत को अत्याधिक समृद्ध किया। प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन एवं गायन पद्धति की जानकारी के लिए स्वयं संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया।

प्राचीन काल में गुरू-शिक्षा प्रणाली के द्वारा रागों का अध्ययन और अध्यापन दीर्घकालिक एवं श्रमसाध्य था। ऐसे स्नातक लकीर के फकीर की भाँति गीतों का प्रदर्शन करते वे। श्री भातखण्डे जी के कलात्मक काल में सभी दोषों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वथा निराकरण हुआ। उन्होंने आधुनिक संगीत के सिद्धान्तों के शास्त्रीय विवेचन तथा क्रियात्मक संगीत की स्वर-तालबद्ध रचनाओं के एक वृहद भावी संगीत के स्वरूप को मनीषियों के सम्मुख रखकर अपनी गौरव-शालिनी भारतीय प्रतिभा एवं विद्वता का परिचय दिया।

भरत, मतङ्ग, शार्ङ्गदेव के प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के सदृश्य ही प० भातखण्डे के आधुनिक मराठी ग्रन्थ को सर्वमान्य प्रतिष्ठा उपलब्ध हुई, इसमें सन्देह नहीं। इन सबके लिये उन्हें बहुत श्रम करना पड़ा। वकालत उत्तीर्ण करने के उपरान्त उन्होंने देखा कि भारतीय संगीत का साहित्य भारत के तमाम प्रान्तों की भिन्न-भिन्न भाषाओं में विखरा पड़ा है तो उसके अध्ययन हेतु सन् 1892 में उन्होंने भ्रमण करना आरम्भ किया। 1904 में दक्षिण भारत का दौरा करने निकले। मद्रास, मथुरा रामनाथ, रामेश्वरम्, त्रिचनापल्ली तथा तंजोर के वाचनालयों में संगीत की पुस्तकों का अध्ययन किया एवं वहाँ के स्थानीय कलाकारों से सम्पर्क स्थापित किया। उन्होंने उत्तर भारतीय संगीत की जानकारी प्रदान की। तब सिंघ कच्छ, लाहौर, राजकोट, अहमदाबाद, बड़ौदा आदि का दौरा किया। 1907 में उन्होंने गया, बीकानेर, भावनगर, जामनगर, ग्वालियर जयपुर, आगरा, लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस, रामपुर आदि स्थानों का भ्रमण कर संगीतज्ञों से परिचय प्राप्त किया।

भारत भ्रमण कर पण्डितजी ने अपना संशोधन-कार्य प्रारम्भ किया। उस उस समय हमारा संगीत सर्वथा अव्यव्स्थित था। एक ही राग को प्रायः भिन्न-भिन्न रीति से गायक गाया करते थे। भ्रमण करने के पश्चात् उन्होंने लगभग 1908 में प्राचीन एवं प्रचलित संगीत की उपलब्ध जानकारी द्वारा सरल एवं सुबोध प्रणाली में बाँधकर जनता की सेवार्थ ग्रन्थ-लेखन आरम्भ किया। उन्होंने एक सरल स्वर-लिपि पद्धति का निर्माण किया। "स्वर मालिका" "श्रीमलक्ष्य-संगीतम" "क्रमिक पुस्तक-मालिकाएँ" आदि कई पुस्तकों का सृजन किया।

इस सरल स्वरलिपि-पद्धति के द्वारा वह संगीत को घर-घर पहुँचाने में समर्थ हुए। यह स्वरलिपि अत्यन्त सुगम और सहज वोधगम्य शैली में थी। इसी से यह अधिक लोकप्रिय हुई। श्री भातखण्डे जी के त्याग और तपस्या के फलस्वरूप भारतीय संगीत, जो शतव्दियों पूर्व एक निम्न वर्ग के हाथों में होने के कारण घृणास्पद समझा जाता था। आज समस्त भारतीय विद्यालयों के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत अधिकृत होकर उच्च वर्ग के व्यक्तियों द्वारा समादृत हो रहा है।

थाट-राग वर्गीकरण—राग-रागिनी वर्गीकरण के स्थान पर पं० भातखण्डे ने दक्षिण की मेल-पद्धति के आधार पर 10 थाट चुनकर भारतीय रागों को उनमें वर्गीकृत किया। फिर प्रत्येक थाट से आश्रय राग वर्णित किये जिसके कारण अंशतः राग-रागिनी-वर्गीकरण का भी समर्थन होता है। किसी थाट में अनेक भिन्न-भिन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंगों को लेकर राग बनते हैं, वह भी उन्होंने समझाया है। जैसे खमाज थाट में खमाज अंग, झिझोटी राग में देश अंग। काफी थाट में काफी अंग, धनाश्री अंग, मल्हार अंग, कान्हणा अंग, आदि। रागों के अनुसार थाटों में उत्पन्न होने वाले रागों के उपवर्ग भी उन्होंने वर्णित किये।

ग्रन्थ संग्रह—पण्डित जी ने संगीत संग्रह का अति वृहद्ध ग्रन्थ सर्वप्रथम प्रस्तुत किया है।

(1) "स्वर मालिका" नामक ताल-वद्ध सरगमों की पुस्तक गुजराती में सृजित की।

(2) "हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति" मराठी में 1909 में प्रकाशित हुई।

(3) इस बीच "लक्षण-गीत संग्रह" नामक पुस्तकमाला में तीन भागों में विलावल कल्याण एवं खमाज थाट के रागों में उक्त रागों के लक्षण समझाते हुये स्वरलिपि सहित गीत प्रकाशित किये। उसके पश्चात् "अभिनव राग मंजरी" एवं "अभिनव ताल मंजरी" नामक प्रसिद्ध मासिक पत्रिका निकाली।

1918 में पण्डितजी ने स्वर्गीय माधव महाराजा सिंधिया, ग्वालियर नरेश की सूचना पर ग्वालियर के "माधव-संगीत महाविद्यालय" की स्थापना की। इसके लिये उन्हें पाठ्यक्रम लिखने की आवश्यकता पड़ी, अतः पंडित जी ने 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका" नामक ग्रन्थ रचा। इसके चार भागों में उत्तर भारतीय संगीत के 45 लोकप्रिय एवं लोक प्रचलित रागों के ध्रुपद, धमार विलम्बित एवं द्रुत ख्याल तरानें तालबद्ध, सरगमें तथा लक्षण गीतों की स्वरलिपि देकर 1922 में इसे प्रकाशित किया। पाँचवें और छटे भाग में उन्होंने लगभग 150 अप्रचलित रागों का संग्रह किया।

1926 में पण्डित जी ने श्री राय रामेश्वर वली, श्री राय उमानाथ वली और ठाकुर नवाब वली की सहायता से लखनऊ में "मैरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्युजिक" की स्थापना की और विद्यालय के प्रधानाचार्य के पद को उनके सबसे सुयोग्य शिष्य श्री श्रीकृष्णराताजकर ने सूशोभित किया।

शास्त्रीय तथा ऐतिहासिक ज्ञान से ये पुस्तकें सम्पूर्ण होने के कारण इनको संगीत का "ज्ञान कोश" भी कहा जाये तो अतिश्योक्ति न होगी।

1904-5 के लगभग बम्बई में कुछ मित्रों के सहयोग से "गायन-उत्तेजन मंडली" के नाम से एक संस्था स्थापित की। देश के प्रायः सभी उच्चकोटि के खानदानी गायकों के जलसे वहाँ होते थे। इन उत्सवों में संगीत विषयक गंभीर से गंभीर वाद-विवाद होते थे। अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं का निराकरण कुशल एवं योग्य व्यक्ति द्वारा होता था। पण्डित जी के व्यक्तित्व तथा कार्य का प्रभाव उन पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पड़ता था और गायक स्वयं ही उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लेते थे। प्रख्यात सारंगी-वाद वुन्दु खाँ को पण्डित जी के सैकड़ों "लक्षण गीत" बजाते हुये तथा गाते हुये देखा गया। पण्डित जी ने उस समय के बड़े-बड़े उस्तादों को अपने "लक्षण-गीत" द्वारा रागों एवं शास्त्र से परिचित कराया।

पण्डित जी न केवल शास्त्रकार ग्रन्थकार वग्गेयकार गायक, महाकवि तथा प्रचारक ही थे, अपितु वे तो उत्तर भारतीय सगीत के उद्धारक षोषक एवं संवर्धक थे।'

गीत ग्लानि-विनाश्कं सुचरित
वाग्येयकार मुनिम्।
वन्दे विन्णु-विभुं वरं गुणमयं
नारायणांश शुभम्॥

पण्डित जी ने एक ऐसा प्रशस्त मार्ग निर्मित किया, जिस पर चल कर प्रत्येक कलाकार संगीत के उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता था। उनकी कोई भी रचना हम ले लें, राग की सम्पूर्ण पूर्ति हम उसमें पायेंगे। गम्भीर विषय के लिये ध्रुपद शैली का ही उपयोग किया गया है, सरल विषय के लिये ख्याल को वे पसन्द अवश्य करते थे परन्तु उन्होने ध्रुपद गायन को ही देश का सर्वोत्तम संगीत माना है।

संगीत कला का विशेष ज्ञान प्राप्त कराने एवं उसके प्रचार के लिये उन्होंने विविध स्थानों में संगीत सम्मेलन कराये।

1915-16 में बडौदा में एक विशाल संगीत सम्मेलन किया, जिसका उदघाटन महाराजा बडौदा द्वारा दुआ। इस सम्मेलन में एक "All India Mus'c Academy" की स्थापना का प्रस्ताव पारित हुआ। इसके बाद दिल्ली, बनारस और लखनऊ में उन्होंने संगीत सम्मेलन किये। इसके अतिरिक्त कई स्थानों पर उन्होंने Music Colleges भी स्थापित किये, जिनमें लखनऊ का "मेरिस कालेज आफ म्युजिक", बड़ौदा का "म्युजिक कालेज" तथा ग्वालियर का "माधव संगीत विद्यालय" विशेषतः उल्लेखनीय हैं। इन कालेजों में उन्हीं की स्वरलिपि-पद्धति के अनुसार शिक्षा प्रदान की जाती है।

पण्ढित जी का एक योगदान और है, उन्होंने रागों के समय की नियम-स्थापना की। प्राचीन समय के हिन्दुस्तानी रागों के गाने-बजाने के समय बँधे हुऐ थे। भैरवी प्रात.काल गायी जाती थी, पूर्वी सांयकाल। सारङ्ग मध्याङ्ग में गाया जाता था तो विहाग मध्यरात्री में। किसी भी शास्त्र में समय के बन्धन का कोई कारण नहीं वतलाया गया है। वह एक निराधार कल्पना जान पड़ती थी। परन्तु पण्डितजी ने रागों का तुलनात्मक अध्ययन करके देखा कि विशेष स्वरों के राग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष समय पर गाये जाते हैं और वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने रागों के समय के नियम की स्थापना की।

उन्होंने हिन्दुस्तानी संगीत के क्रमिक विकास का विशद स्पष्टीकरण किया है, जो उन्हें "Comparative Study of the Music Systems in 15th 16th 17th and 18th Conturies" और हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" के पढ़ने से प्राप्त हुआ था।

इनके महान कार्य को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं। मुस्लिम युग में विशेष उन्नति पर पहुँचे हुये संगीत का नवीन शास्त्र बनाना प्रथम अंग है। दूसरा उन्होंने विविध खानदानी गायकों के गाने सुनकर उनकी स्वरलिपियाँ तैयार की तथा उन्हें "क्रमिक पुस्तक-मालिका के रूप में प्रकाशित' किया। तीसरा महान कार्य उन्होंने सरल स्वरलिपि-पद्धति का निर्माण किया—आज भरत वर्ष में Notation करने की इतनी सीधी और सरल पद्धति अन्य कोई नहीं है।

पण्डित जी को आर्थिक सहायता किसी से उपलब्ध नहीं हुई। पुस्तकों के मूल्य उन्होंने नाम मात्र के ही रखे थे। उसके विक्रय से जो रूपया आता था, वह उनके पुनः प्रकाशन में व्यय होता था। गीतों और ग्रन्थों के अन्वेषण में उन्हें दर-दर की खाक छाननी पड़ी, अपमान सहन करना पड़ा। पर पण्डित जी का कितना अदम्य उत्साह था, कितनी अडिग लगन थी, कैसी दृढ़ साधना थी, सब कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर उन्होंने अपने व्रत को पूर्ण किया। भारत के ही संगीत के इतिहास में नहीं, किन्तु संसार में इतना कार्य किसी ने किया हो, जितना पण्डित जी ने किया, ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। भारतीय संभ्रान्त कुलों में संगीत के प्रति प्रेम का संचार कराया। श्री भातखण्डे यथार्थतः आज अपनी कृतियों द्वारा भारत की अमर आत्माओं में गणनीय है।

परम्परागत रूढ़ि से हटकर ग्रन्थगत राग स्वरूपों को प्रचलित करना संगीत जैसी क्रियासिद्ध वस्तु के विषय में असंभव था। भरत मुनि के समय का संगीत भावी चरित्र के लिये कहाँ तक उपयोगी होगा यह नही कहा जा सकता। आज के गायक वादक अपनी परम्परागत गायन शैली को, अपने परम्परागत रागदारी गीतों को तिलांजलि देकर भरत, शाङ्गदेवादिकों का प्राचीन संगीत गाने-बजाने को स्वीकार करेगें, यह विश्वास भातखण्डेजी को नहीं था। उन्तोंने आज के प्रचलित संगीत को ही स्पष्ट करना अपना कर्तव्य समझा सर्व-साधारण संगीत-प्रेमी जनता को उससे क्या, कौन सा और कितना लाभ हुआ, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। इतनी बात तो निश्चित है कि बिखरी हुई संगीत सम्पत्ति को एकत्रित करने के लिये किसी न किसी का जीवन अवश्य ही लगता है। किन्तु परमात्मा ने पण्डित भातखण्डे जी को इसके लिये चुना और उन्होंने अपना कार्य सफलतापूर्वक सम्पादित किया 19 सितम्बर 1936 के गणेश चतुर्थी के दिन प्रातः 5 बजे नश्वर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शरीर को त्याग कर वे देवलोग सिधार गये। भारत को इस महान, संगीतज्ञ, संगीत-निर्माता पर गौरव है, युगों-युगों तक उनकी गौरवमयी धवल कीर्ति चिरस्मरणीय रहेगी और उनका नाम भारतीय संगीत के इतिहास में स्वर्णिम पृष्ठ पर अंकित रहेगा।

पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर—यदि शास्त्र पक्ष की ओर जन-साधारण का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय भातखण्डे जी को उपलब्ध है तो पण्डित विष्णु दिगम्बर जी के योगदान को संगीत संसार कभी नहीं विस्मृत कर सकता है कहा गया है।

"क्रिया सिद्ध : सत्वे भवति महत्ता नोपरणों"

अर्थात महापुरुषों के कार्य की सिद्धि किन्हीं विशिष्ट गुणों से युक्त अपने निजी सत्व में होतीं है। जो अनन्य साधनों उपकरणों आदि से प्रभावित नहीं होता। महापुरुषों के व्यक्तित्व, उनके जीवन के आदर्श और मानवी दैवी गुणो से सम्पन्न उनके जीवन की घटनाएँ व्यक्ति की महत्ता का कारण होती है। इन आदर्शों के आलोक में भक्त गायको में महर्षि स्वर्गीय पण्डित विष्णु दिगम्बर जी पलुस्कर का व्यक्तित्व अत्यन्त गौरवमय रहा हैं।

यह संगीत सूर्य सन 1872 ई० में कुरुन्दवाड़ रियासत के वेलगाँव में श्रवणी पूर्णिमा के दिन उदय हुआ। पलुस्कर जी ने पं० वालकृष्ण वुआ जी से संगीत शिक्षा ग्रहण की। उत्कृष्ट माधुरी का उदाहरण प्रस्तुत करके आपने लोगों के हृदय में संगीत के प्रति रुचि एवं श्रद्धा जागृत की। अल्पकाल में ही कुशाग्र बुद्धि होने के कारण एक आश्चर्यजनक प्रतिभा के साथ संगीत शिक्षा ग्रहण कर सभी को प्रभावित किया। उनके गायन की ख्याति दूर-दूर तक प्रसारित होने लगी। स्वतः मिरज नरेश प्रभावित हुये और उन्होंने उन्हें राजाश्रय दिया।

पंडित जी की कला तो उच्चकोटि की थी ही, उनमें अदभुत आकर्षण था। उनके गायन में इतना रस, भाव दैवी प्रभाव था, कि सम्पूर्ण श्रोता मण्डली अपना अस्तित्व विस्मृत कर आन्नद विभोर होकर स्वर लहरी में बहने लगती। उनका कण्ठ अत्यन्त सुमधुर था, उच्च व्यक्तित्व, गायन में रस और भाव, आलाप, जोड़, तानें, क्या नहीं था उनके गायन में। भावहीन कला को वह अर्थहीन और अपूर्ण मानते थे।

वैसे तो पंडित जी ग्वालियर घराने के शिष्य होकर ग्यालिये थे, परन्तु फिर भी ध्रुपद के भी वे अद्वितीय गायक थे। उनका गाया हुआ धमार 'या ब्रज में धूम मचाई" आज भी गायकों के मुख से सुनने को मिलता है। ध्रुपद अंश, पर वे बहुत जोर देते थे। यही कारण है कि उनके शिष्यों में स्वर साधन और सुरीलापन पूर्ण रूपेण होता था।

वह सन 1896 में संगीत का प्रचार-प्रसार करने के लिये घर से निकल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पड़े। बड़ौदा, ग्वालियर, मथुरा, जालन्धर, जोधपुर, मांटगोभरी, अहमदाबाद कलकत्ता, प्रयाग, कांगड़ा आदि स्थानों का भ्रमण किया। इन्होंने अनुभव किया कि समाज में गायकों की स्थिति बड़ी दयनीय है। संगीतज्ञों को समाज में जैसी प्रतिष्ठा मिलनी चाहिये वैसी नहीं है। उच्च वर्गीय जनसमुदाय में संगीतज्ञों के प्रति उत्तम धारणा नहीं है। इन अरुचिकर परिस्थितियों से वह अत्याधिक प्रभावित हुये और उन्होंने निश्चय किया कि "संगीतज्ञों को भिखारी और नवाबों को मनोरंजन का साधन नहीं रहने दूंगा।" संगीत प्रचार और आत्म सम्मान के उन्होंने अन्त तक नहीं छोड़ा। संगीत के पथ के प्रशस्त करने के लिए उन्होंने अन्त तक नहीं छोड़ा सगीत के पथ को प्रशस्त करने के लिये उन्होंने गीतों में शृंगार रस के अशलील और गन्दे शब्दों को परिवर्तित कर भक्ति रस को स्थान प्रदान किया। सूर, मीरा, कबीर, तुलसी आदि की भक्ति रस प्रधान रचनाओं को रागदारी में बाँधकर अपने पाठ्यक्रम में उन्हें समाविष्ट किया। फलतः आज विष्णु दिगम्बर स्कूल के रागों और स्वरों में मीरा, तुलसी, सूर और कबीर आदि के भजन रेडियो पर घर-घर सुने जाते हैं।

उन्होंने यूरोपियन काल में जकड़े हुये संगीतज्ञों को चेतावनी दी और उनको प्राचीन भारतीय संगीत के प्रति चैतन्य किया। उनका कहना था कि जिस कला का सम्बन्ध नारद, भगवान कृष्ण, ब्रह्मा और शिव से संयुक्त किया जाता रहा हो जिस विद्या के लिये माँ शारदा की उपासना करते रहे हो, आज हम उसी कला के महत्व को नहीं समझ पा रहे हैं, क्योंकि हम दासता के बँधन में जकड़े हुये हैं। उन्होंने महिलाओं की पर्दा प्रथा की भी आलोचना की। उनके अनुसार आज भारतीय संगीत की जो अवनति हुई वह मात्र कुपात्रों, आदर्शहीन और अनपढ़ के हाथों में जाने से हुई है। वह कहते थे कि संगीत कला जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। समस्त जीवन में संसार में एक ही सत्य है, उसी में आन्नद है उसी में मुक्ति है।" उसी से उनका तात्पर्य 'भगवान' से था। यह उनका महान सन्देश था जो वह भारतीय जनता को दे गये।

कार्य—उन्होंने जो कार्य संगीत क्षेत्र में किये, वह इतने महान, विशाल और विविध हैं कि इस प्रकार की कला-विभूतियां सम्पूर्ण संसार के इतिहास में कदाचित नहीं मिलेगी। उन्हीने संगीत विषयक अनेक पुस्तकों का सृजन किया जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं।

"संगीत बालबोध" "भारतीय संगीत लेखन पद्धति" संगीत तत्वदर्शक" अंकित अलंकार" राग प्रवेश" नारदीय शिक्षा सटीक" टप्पा गायन" एवं अन्य पुस्तकें। ये गणना लगभग 40 हैं।

तत्कालीन उस्तादों की भाँति मृत्यु के साथ विनष्ट करने की अपेक्षा पं० विष्णु दिगम्बर ने जीवन में सपरिश्रम से एकत्रित ज्ञान गरिमा को पुस्तकों के रूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में जन-साधारण में वितरित कर दिया। न तो इतना तपस्वी कोई हुआ है, न है और न होगा ; न शास्त्रीय एवं व्यवहारिक ज्ञान की ऐसी दुर्लभ पुस्तकें अभी तक प्रकाशित हुई है।

उन्होंने भारतवर्ष के अनेक भागों में संगीत विद्यालयों की स्थापना करवायी, कुछ जगह उन्होंने शिष्य भेजे तो कहीं स्वयं गये। लाहौर का "गांधर्व महाविद्यालय" सर्वप्रथम 5 मई सन् 1901 ई० में स्थापित हुआ। बम्बई का गांधर्व महाविद्यालय बाद में स्थापित हुआ। और यही मुख्य केन्द्र होगया। इसके अतिरिक्त इलाहाबाद में प्रयाग सङ्गीत समिति की स्थापना की और बनारस, कानपुर, अहमदाबाद नासिक आदि स्थानों में संस्थाएँ खोली। लाहौर में प्रोफेसर कशालकर और ओंकार नाथ ठाकुर को भेजा। कशालकर को बाद में इलाहाबाद भी भेजा। पण्डित जी के कार्य में वृद्धि एवं प्रसारण के लिये उनके शिष्यों के सामुहिक प्रयत्न से ' गांधंव महाविद्यालय मण्डल" की स्थापना हुई।

उन्होंने प्रो० राय मोरेश्वर खरे को महात्मा गाँधी के आश्रम में भेजा जिन्होंने "आश्रम भजनावली" निकाली।

सङ्गीत जगत की सेवा के साथ आप काँग्रेस अधिवेशनों में उपस्थित रहते थे तथा राष्ट्रीय "वन्देमातरम" गान का संचालन स्वयं करते थे। जन-गण-मन की लोकप्रिय धुन बाधने में इनका बड़ा हाथ था। 'रघुपति-राघव-राजाराम" तो इनके जीवन का मूलमन्त्र था। उसकी हृदयग्राही धुन ने महात्मा गाँधी को मंत्रमुग्ध कर लिया। उन्होंने इन्हीं पक्तियों के आगे "ईश्वर अल्ला तेरो नाम, सबको सन्मति दे भगवान" से और संयुक्त किया।

पण्डित जी राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत थे। उनके जीवन-काल में अंग्रेजीशासन था, ब्रिटिश सरकार ने उन्हें धमकी दी कि उनके संगीत-केन्द्रों को सरकारी अनुदान बन्द कर दिया जायेगा परन्तु पण्डित जी अपने निश्चय से अडिग न हुए। जब अंग्रेजों ने इलाहाबाद से परिवर्तित, कर लखनऊ राजधानी बनाई तो पण्डित जी ने प्रयाग को ही अपना केन्द्र चुना। उन्होंने किसी भी संस्था का नामकरण अंग्रेज गवंनर या अधिकारी के नाम पर नहीं किया।

सभ्य समाज में कला के प्रसारण के लिये उन्होंने तन, मन, धन सब कुछ अर्पण कर दिया। जीवन के अन्त समय में वह साधु हो गये और भजन-कीतन करने लगे। प्रोफेसर डी० वी० पलुस्कर जो एक अच्छे गायक थे, उनके ही पुत्र थे।

उन्होंने वाद्य-निर्माण एवं मरम्मत का कारखाना भी स्थापित किया। साथ ही पुस्तकों के मुद्रण के लिये "संगीता प्रिंटिंग प्रेस" नामक मुद्रणालय भी स्थापित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया। जिस समय लाहौर में उन्होने "गांधर्व महाविद्यालय" की स्थापना की, उस समय समाज में संगीत व्यवसायिक लोगों के हाथ में था। ये लोग नशीली वस्तुओं का प्रयोग करते थे। एवं प्रत्येक वस्तु को मात्र मनोरंजन के लिये गाते थे।

पण्डित जी ने जब यह देखा तो उन्होंने देश का भ्रमण किया। शिष्यों के सहयोग से उन्होंने पाठ्यक्रम का निर्धारण किया। रागों में ख्याल, ध्रुपदादि की बंदिश और भक्ति साहित्य का समावेश करके गायन प्रशिक्षण प्रारम्भ किया। ये सब प्रयास उन्होंने किये। इसके लिये उन्होंने स्वर लिपि पद्धति का निर्माण किया। यह पद्धति भातखण्डेजी की स्वरलिपि से भिन्न है। उनके विद्यालय की पद्धति प्राचीन गुरूकलों पर आधारित थी, जिसमें शिष्य गुरूकुल में ही निवास कर शिक्षा ग्रहण करते थे। विद्यालयों में कठोर अनुशासन था। निर्धारित समय से पूर्व कार्य के लिये तैयार रहना, नशीली चीजों का सेवन न करना समय से अभ्यास करना, भोजन, अध्ययन का क्रम अनुशासित तथा नियमित होना—यह नियम थे पण्डित जी के विद्यालय के।

उन्होंने शिष्ट एवं सात्विक परम्परा के प्रचार के लिये अनेक कुशल कलाकार शिष्यों को प्रशिक्षित किया, जिनमें संगीत मार्तण्ड पं० ओंकारनाथ ठाकुर पं० विनायक राव पटवर्धन आदि के नाम प्रमुख हैं।

पण्डित जी ने अपने जीवन के अन्तिम दिन महात्माओं की भाँति व्यतीत किये और 21 अगस्त सन् 1931 को महाराष्ट्र के मिरज नगर में वे परलोकवासी हुए। दिगम्बर जी के महान एवं गौरवपूर्ण कार्य भारतीय संगीत के इतिहास में उच्च एवं सम्मानीय स्थान रखते हैं।

मिस्टर रानाडे ने लिखा है :

"In more recent years, notable contribution towards the study of Music was made by men like late Pandit Vishnu Digamber of country wide fame fand a learned disciple of the famous Balkrishna Buwa, It was really he who rescued music from the clutches of its vulgar caterer and popularised it among the educated classes, prepared the way for the theories of Pandit Bhatkhande and others. He also dvised a system of music—notation which is capable of recording old songs in a very faithful manner. The chief merit of the Pandits work lies in the fact that he published in notation the songs with all their progressions, embelishments, rhythmic variations and has thus left to

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

posterty the complete units of continuous and whole performance as it were, of old classical songs.

बालकृष्ण बुवा : आप एक उच्च श्रेणी के गायक थे। आपका जन्म सन् 1849 में चन्दर नामक ग्राम में हुआ था। इन्होंने भाई बुवा, देवजी बुवा, हस्सु खाँ आदि विद्वानों से ध्रुपद, धमार, ख्याल और टप्पा की शिक्षा पाई, वे अपने परिश्रम द्वारा कुछ समय बाद ही गायनाचार्य बन गये। इन्होंने देश विदेश का भ्रमण कर अनेक संगीत सम्मेलनों में भाग लिया। बम्बई में उन्होंने गायन-समाज की स्थापना की तथा 'संगीत दर्पण' नाम का एक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया। उन्होंने संगीत के विकास के लिये अद्धितीय कार्य किया, इन्ही के प्रयास से ब्रिटिश शासन काल में भी संगीत जारी रहा।

राजा नवाब अली—आप जिला सीतापुर के अकबरपुर के रईस थे, और जीवन पर्यन्त उन्होंने संगीत कला की साधना की। आप ठाकुर नवाब अली खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुए। आप भातखण्डे जी के सम्पर्क में आये। इन्होंने उर्दुभाषा में संगीत की एक पुस्तक "मुआरिफुन्नगमात" लिखी जो तीन खंडो में प्रकाशित हुई। प्रथम खण्ड में रागों के 'लक्षणगीत' है, द्वितीय और तृतीय खण्डों में ध्रुपद व होरी के गीतों का संकलन है। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी संगीत कार्यालय हाथरस द्वारा प्रकाशित हुआ है।

राजा नवाव अली ने भातखण्डे जी की पूर्ण संगीत पद्धति को स्वीकार कर लिया था। वे संगीत के बहुत प्रेमी थे। ठाकुर साहब की प्रारम्भिक संगीत शिक्षा लाहौर के काले खाँ से प्रारम्भ हुई थी। इसके उपरान्त आपने उस्ताद नजीर खाँ और मुहम्मद अली खाँ से शिक्षा प्राप्त की थी। वे हारमोनियम बजाने में निपुण थे, उन्होंने सितार भी सीखा और नियमित रूप से सितार का अभ्यास भी किया। परन्तु उनकी विशेष रूचि संगीत की विविध गायन शैलियों की ओर थी, और उन्होंने ध्रुपद धमार जैसी प्राचीन प्रतिष्ठित शैली का खूब अभ्यास किया। आपने रामपुर के उस्ताद मुहम्मद अली खाँ से सैकड़ों वन्दिशें सीखी और उन सभी का संकलन "मुआरिफुन्नगमात" मे किया है।

उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना का जो उद्देश्य रखा, वह था कि संगीत के नियम व्यवस्थित हों और संगीत शास्त्र सरल रूप में आम लोगों तक पहुँज जाये।

वे स्व: भातखण्डे जी के बहुत निकटतम मित्रों में से थे। स्व: भातखण्डे को गीतों के संकलन में इन्होंने बहुत सहायता की। जब लखनऊ के "मैरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्युजिक" की स्थापना हुई तो ठाकुर साहब ने उनकी बहुत मदद की। वे लखनऊ के राय उमानाथ वली के भी मित्र थे।

ठाकुर साहब द्वारा लिखित ग्रंथ "मुआरिफुन्नगमात" संगीत का एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महत्वपूर्ण ग्रंथ है, क्योंकि इसमें बड़े बड़े उस्तादों और संगीतज्ञों की तमाम चीजों का संकलन है। यह ग्रंथ आज के संगीत कलाकारों के लिये विशेषलाभदायक है, इसमें रामपुर सदारंग परम्परा में गाई जाने वाली बहुत सी बन्दिशें मिलती है। इस पुस्तक का महत्व संगीत क्षेत्र में हमेशा बना रहेगा।

ठाकुर साहब ने अनेक संगीत की गोष्ठियां भी की, जिसमें संगीत सम्बन्धी वाद विवाद होते थे, इन वाद विवादों का परिणाम यह हुआ कि संगीत सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियां दूर हुईं। भारतीय संगीत की विशुद्धता और उत्कृष्ट रूप को संगीतकारों ने समझा और निश्चित ही संगीत का आदर जन समाज में बढ़ा।

पं० रामकृष्ण—इनका जन्म सन 1871 ई० में सावन्त वाड़ी के ओंक्रा नामक ग्राम में हुआ था। वाल्यकाल से ही संगीत में इनकी रूचि थी। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा बलवन्त राव पोहरे नामक दरवारी गायक से हुई। इसके उपरान्त आपने विठौवा अन्ना हड़प के पास रहकर उनकी गायकी सीखी। वारह वर्ष की आयु में ही इनका विवाह हो गया। आर्थिक तंगी के कारण आप पैदल बम्बई पहुँचे और गा-गाकर 10-12 रु० कमालिये। इसके बाद इन्दौर पहुँचे और वहाँ नानासाहब पानसे से संगीत की शिक्षा ग्रहण करने लगे। कुछ समय उपरान्त आप ग्वालियर चले गये। आर्थिक संकट से वह बराबर ग्रस्त रहे। ग्वालियर में खाँ साहब निसार हुसैन से इन्होंन काफी दिनों तक संगीत शिक्षा प्राप्त कीं। इनका कटु अनुभव यह था कि उस्ताद संगीत शिक्षा देने में वहुत संर्कीण मनोवृति के होते थे। अतः उन्होंने यह संकल्प किया कि वे संगीत की शिक्षा देने हेतु संगीत संवन्धी पुस्तकें प्रकाशित करवायेंगे। संगीतकारों की संकुचित प्रवृत्ति के खिलाफ इन्होंने आवाज उठाई और अन्त में 5 मई 1945 ई० को पूना में चिर निद्रा में सो गये।

राजा भैया पुंछ वाले—राजा भैया का जन्म लश्कर में श्रवण कृष्ण 14 सम्वत् 1939 में हुआ। वे ग्वालियर के श्री रामचन्द्र राव के पौत्र थे। बहुत कम उम्र में ही आप लकवे के शिकार हो गये थे, जिसकी वजह से आपका एक पैर कुछ अपंग सा हो गया था। उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा खाँ साहब मेंहदी हुसैन के शिष्य श्री बलदेव जी से प्राप्त की। यह हारमोनियम बजाने में निपुण थे। उन्होंने कुछ समय तक ग्वालियर संगीत नाटक मंडली में हारमोनियम बजाया। परन्तु वे आर्थिक रूप से वरावर तंग रहे। अप्रैल 1956 में इन्हें 'संगीत नाटक अकादमी' द्वारा पुरुस्कृत किया गया। और "राष्ट्रपति पदक" मिला। परन्तु पुरुस्कृत होंने के पूर्व ही आप इस दुनिया को छोड़ चुके थे। वे अपने समय के गायनाचार्य और शास्त्रकार थे। भारतीय संगीत की इन्होंने जो सेवा की है वह सदा स्वर्ण अक्षरों में लिखी जावेगी।

श्री डी० वी० पलुस्कर—आप श्री विष्णु दिगम्बर जी के पुत्र थे, वे पिता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के समान सुमधुर गायन करते थे और कई बार गाने के निमन्त्रण को स्वीकार करके चीन भी गये। उन्होंने संगीत की उन्नति के लिये बहुत प्रयास किया नये-नये कलाकारों को संगीत शिक्षा दी। वे शिक्षा को भी संगीत शिक्षा का आवश्यक अंग मानते थे। उनका कहना था कि शिक्षित कलाकार ही संगीत के वास्तविक सौन्दर्य को ग्रहण कर सकता है।

वे अत्यन्त सुन्दर गाते थे, अपने पिता के समान शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाना चाहते थे, परन्तु कम समय में देहान्त हो जाने से आप संगीत जगत की उतनी सेवा नहीं कर सके। वे जीवन पर्यन्त नम्र रहे और सारे व्यवसनों से दूर रह कर आदर्शों का पालन करते रहे।

"गायन समाज"—सन 1874 ई० में पूना में एक सुप्रसिद्ध संगीत संस्था की स्थापना हुई, जिसका नाम था "गायन समाज"। पूना में इस संस्था को इतनी सफलता मिली, कि मद्रास में भी इस संस्था की स्थापना हुई। संगीत के क्षेत्र में इस संस्था ने पूना और दक्षिण में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया। आम जनता में संगीत के प्रति रुचि उत्पन्न की। राजा महाराजा और अनेक संगीत विद्वान इस "गायन समाज" के सदस्य थे। संगीत सम्बन्धी साहित्य और पत्रिकाओं का प्रकाशन भी इस संस्था के द्वारा हुआ। "राधा गोविन्द संगीत सार" जैसी पत्रिका ने संगीत के सम्बन्ध में फैली अनेक भ्रान्तियाँ दूर की। इस संस्था में किसी संकुचित विचारधारा का निर्माण नहीं हुआ, बल्कि घराना परम्परा को तोड़कर इस संस्था के सदस्यों ने संगीत के विस्तृत क्षेत्र को और ज्ञान को फैलाया। संगीत सेवी समाज के लिए यह संस्था वरदान-स्वरूप थी।

भारतीय संगीत सेवियों के अतिरिक्त कुछ अंग्रेजी विद्वान भी ऐसे थे जिन्होंने भारतीय संगीत के महत्व को स्वीकारा और उसके लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। यह विद्वान थे मिस्टर क्लीमेन्ट, मिस्टर डेनेलू आदि।

मिस्टर क्लीमेन्ट—वे भारतीय संगीत के हिमायती थे, और इन्होंने इसकी पूर्ति के लिए अनेक संगीत सम्बन्धी पुस्तकों का सम्पादन किया। वे स्वयं Indian Civil Service के retired officer थे। उन्होंने भारतीय संगीत के ग्रन्थों का अध्ययन कर उसके मूल तत्वों को समझा और जन समाज के सामने अपने ज्ञान को रखा। इन्होंने भारतीय संगीत पर अनुसंधान भी किया। वे राग रागनियों को समझते थे और अनेक राग-रागनियों को प्राचीन पुस्तकों से खोज निकाला। वे संगीत के प्रचार-प्रसार हेतु यह आवश्यक समझते थे कि संगीत सम्बन्धी पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रौर देश-विदेश में लोग उसे पढ़े. ताकि यूरोप के लोग भारतीय संगीत की मूल धारा से परिचित हों और वे अपने उद्देश्य में सफल भी रहे। वे अन्य अंग्रेजों के समान भारतीय संगीत को तुच्छ नहीं समझते थे, बल्कि उच्च दृष्टि से वह उसका मूल्यांकन करते थे। यह था उनके अन्दर का कलाकार जिसने उन्हें कला का मूल्य करना सिखाया। उन्होंने भारतवर्ष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में दौरे किये, पुस्तकालयों में जाकर पुराने ग्रंथों का अध्ययन किया और भारतीय संगीत के वैदिक कालीन आध्यात्मिक महत्व को स्वीकार किया।

वे इस बात की कड़ी निंदा करते थे कि भारतीय संगीत के महत्व को समझे बिना युरोपियन देश उसे हेय दृष्टि से देखें। वे भारतीय संगीत को समझने के लिए संस्कृत का अध्ययन आवश्यक समझते थे। वास्तव में उनके योगदान को भारतीय संगीत में कभी नहीं भुलाया जा सकता।

मिस्टर डेनेलू—मिस्टर क्लीमेन्ट के समान ही मिस्टर डेनेलू भी भारतीय संगीत के प्रेमी थे। वे एक विद्वान संगीतज्ञ एवं कला विशेषज्ञ थे। उन्होंने 1943 ई० में "Indian Society of Londan" से एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसका नाम था। "An Introduction of the study of Musical Scales" यह पुस्तक उन्होंने स्वयं लिखी थी। वे पश्चिमी संगीत के भी ज्ञाता थे, पर भारतीय संगीत को भी अच्छी दृष्टि से देखते थे। इनके विचारों में क्रान्ती थी और उन्होंने उन युरोपीय विद्वानों के विरुद्ध खुलकर आवाज उठाई जो भारतीय संगीत को हेय दृष्टि से देखते थे। यही कारण था कि यूरोपीय देशों में भारतीय संगीत का मान बढ़ा।

उन्होंने भारतीय संगीत को सीखने के लिए कठोर मेहनत की, देश भर में भ्रमण किया, ग्रन्थों का अध्ययन किया, अनेक कष्ट सहे। इन्होंने भारतीय संगीत पर एक अन्य पुस्तक लिखी जिसका नाम है "उत्तर भारतीय संगीत"। इस पुस्तक में उन्होंने भारतीय संगीत के विकास क्रम पर ऐतिहासिक रूप से लिखा है। इस पुस्तक का विशेष महत्व उन यूरोपीय लोगों के लिए है जो भारतीय संगीत को सीखना चाहते हैं। भारतीय संगीत और संस्कृति का अच्छा चित्र इस पुस्तक में मिलता है।

इन विद्वानों के अतिरिक्त जिन संगीत विद्वानों का संगीत के क्षेत्र में विशेष योगदान रहा, उनके नाम है संगीत मार्तण्ड पं० ओंकार नाथ ठाकुर, अब्दुल करीम खाँ, श्रीमती इन्द्राणी रहमान, श्रीमती सुमति मुटाटकर, उस्ताद विलायत खाँ, इलियास खाँ, बिसमिल्ला खाँ, विख्यात संगीतज्ञ रातन्जन्कार, सुप्रसिद्ध वेला-वादक बी० जी० जोग, महान संगीतज्ञ उस्ताद बड़े गुलाम अली, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ विनायक राव पटवर्धन, सितार वादक पं० रविशंकर, बी० आर० देवधर, बसन्त राव राजो वाध्ये; श्री दिलीप चन्द्र, वेदी, सुप्रसिद्ध संगीतज्ञा केसरबाई केरकर, श्री सामता प्रसाद, पं० भीमसेन जोशी, इत्यादि अनेक संगीतज्ञों ने संगीत को पुर्नजीवित करने का प्रयास किया। ब्रिटिश काल जहाँ संगीत के लिए अभिशाप बनकर रहा, वहाँ इसके साथ-साथ इस काल में अनेक सुन्दर एवं उच्चकोटि के कलाकार भी पैदा हुये।

इन कलाकारों द्वारा संगीत की सेवा तो हुई ही साथ ही स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत सरकार ने भी संगीत के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय संगीत का पुनरूत्थान

[REVIVAL OF INDIAN CLASSICAL MUSIC]

भारतीय संगीत जो विश्व संगीत में अति श्रेष्ठ माना गया, जिस संगीत के माध्यम से योगी तपस्वी शिव ने अपने तांडव से, गणेश ने लोकमंगलकारी लय एवं ताल से, योगी कृष्ण ने अपनी मधुर मुरली से तथा वीर अर्जुन ने अपनी संगीत रचनाओं से तथा सरस्वती ने अपनी सुरीली वीणा के स्वरों से प्रकृति एवं प्राणियों को, लोक जीवन को आन्नद प्रदान किया, उसी संगीत का वैज्ञानिक और आधुनिक विकास वर्षों तक अवरुद्ध रहा। ऋषियों मुनियों तथा मनीपियों की श्रमसाध्य विद्या-संगीत का क्रमशः वाजारू एवं व्यवसायिक रूप वनता गया। संगीत की शुद्धता समाप्त होने लगी, फिर भी कलाकारों की साधना चलती रही। एक वार फिर से भारत की देशी रियासतों के राजा-महाराजाओं ने संगीत को भारतीय संस्कृति को अनमोल निधि समझ कर इसके पुनःरुद्वार एवं सुरक्षा की व्यवस्था की।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के वाद ही भारत में आकाशवाणी, दूरदर्शन, सिनेमा संगीत सम्मेलनों ने एक साथ मिलकर संगीत को पुर्नजीवित किया। श्रोता व कलाकार मैंच एवं महफिल, शास्त्र एवं विद्यालय, सभी ने एक साथ मिलकर संगीत के पुर्नरुत्थान की प्रतिज्ञा ली। नवीन अनुसंधान ने भारतीय संगीत की खोई मान्यता को प्राप्त कर पुनः नये सिरे से भारतीय संगीत को आम जनता में पहुँचाने में मदद की। रजवाड़ों, नगरों, संगीत-प्रेमियों और साधकों के सहयोग से घरानेदार तथा परम्परागत गायकी एवं स्वतन्त्र वादन का विकास हुआ। साथ ही विश्व के विभिन्न देशों के वीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान चलते रहे।

स्वतन्त्रता के पश्चात् सरकार ने भी संगीत के पुर्नजागरण की ओर ध्यान दिया है। रेडियो, विभिन्न संगीत सम्मेलनो शिक्षा के पाठ्यक्रम में संगीत को एक विषय स्वीकार कर उसकी प्रगति और विकास की ओर भारत सरकार ने कदम उठाये है। शास्त्रीय संगीत के शिक्षण के हेतु संगीत के प्रथम विद्यालय की स्थापना वड़ौदा में सन् 1886 ई० के फरवरी माह में महाराजा, सियाजी एवं गायकवाड़ के द्वारा हुई। इसकी स्थापना के पश्चात् लाहौर का "गाधर्व महाविद्यालय," (सन् 1913) ग्वालियर का "माधव संगीत महाविद्यालय" (सन् 1918 ई०) लखनऊ का "मैरिस कालेज आफ म्युजिक" (1925 ई०) तथा पुणे का "भारत गायन समाज" अस्तित्व में आया। इस संगीत विद्यालय में गायन, तन्त्रवादन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पखावज एवं तबला आदि का प्रशिक्षण दिया जाने लगा। उन्हीं दिनों वहाँ से संगीत को अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई। आज बड़ौदा का "महाराजा सियाजी राव म्युजिक कालेज" अपने एक अलग ही ढङ्ग का एक संगीत प्रशिक्षण केन्द्र है। "प्रयाग संगीत समिति" इलाहाबाद, इन्द्रकला संगीत विश्वविद्यालय खेरागढ़, गांधर्व विद्यालय दिल्ली आदि प्रमुख केन्द्र है जो संगीत के पुर्नजागरण का सक्षम प्रमाण है इन सभी संस्थाओं के के लिये भारत सरकार की ओर से अनुदान की आवश्यकता है। इन संस्थाओं के अतिरिक्त भारत के लगभग सभी स्थानों पर विभिन्न संगीत संस्थायें सुचारू ढङ्ग से संगीत सेवा कर रही है। इन्हीं सब कृतियों के फलस्वरूप आज संगीत की झन्कार प्रायः प्रत्येक घर में गूंज रही है। संगीत सम्मेलनों आकाशवाणी, एवं संगीत नाटक अकादमी में संगीत के शास्त्रीय सिद्धान्त और गायन वादन के उत्थान के लिये जो प्रयत्न हो रहे हैं उससे देश के सगीत के उज्जवल भविष्य की आशा है। मधुर संगीत की जो दिव्य स्वर लहरियाँ किसी समय केवल राज्य सभाओं में ही सुलभ थीं, आज आकाशवाणी की कृपा से जन साधारण में नित्य प्रति मानस को तरगित कर रही है।

जो संगीत कुछ समय पहले तक रिसायती राजाओं के संरक्षण में पनप रहा था, उसी का संरक्षण स्वतन्त्र भारत की सरकार ने किया है। कला और संस्कृति का विकास हुआ है। इसके लिये सरकार ने ठोस कदम उठाये है जैसे सन् 1952 ई० में भारत सरकार ने संगीत कला को प्रोत्साहन देने के लिये राष्ट्र-पति पदक प्रदान करने आरम्भ किये सन् 1953 ई० में "संगीत नाटक अकादमी" की स्थापना की तथा उसी क्रम में सन् 1954 ई० में "ललित कला अकादमी" की स्थापना की। इन संस्थाओं के माध्यम से कलाकारों को आगे बढ़ने का प्रोत्साहन मिला। संगीत के विकास के पुर्नजागरण का काल एक बार फिर शुरू हो गया। एक तरह से कहा जाये तो भारत सरकार ने भारतीय संगीत की काया पलट की है।

"संगीत नाटक अकादमी" ने समय-समय पर राष्ट्रीय संगीत महोत्सवों का आयोजन किया और संगीत और नृत्य पर राष्ट्रीय पुरूस्कार दिये हैं। यहाँ तक कि कलाओं की उन्नति के लिये कलाकारों को नामजद करने का अधिकार दिया गया है। अनेक बड़े-बड़े कलाकारों को समय-समय पर राष्ट्रीय उपाधियों से विभुषित किया जाता रहा है।

इस सन्दर्भ में एक और महत्वपूर्ण कदम जो भारत सरकार ने उठाया है वह है भारत वर्ष के साथ अन्य देशों से सांस्कृतिक सम्बन्ध सुदृढ़ करने का। इस प्रयास के हेतु यहाँ से बराबर सांस्कृतिक ग्रुप बाहर के देशों में जाते हैं और उनके ग्रुप को भारत सरकार अपने यहाँ आमंत्रित करती है। कितने ही भारतीय गायक, नर्तक वादक कलाकार आदि विदेशों में अपने संगीत कार्यक्रमों से विदेशी जनता को मंत्रमुग्ध कर आये हैं। वहाँ सांस्कृतिक संस्थाओं की स्थापना की है, स्वयं अनेक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलाकार वहाँ आवास कर रहे हैं और प्रशिक्षण दे रहे हैं जैसे पं० रविशंकर, अली अकबर खाँ आदि ।

संगीत के इस पुर्नजागरण के प्रयास में निश्चय ही संगीत को प्रोत्साहन मिला है । संगीत का प्रचार एवं प्रसार द्रुत गति से देश में बढ़ रहा है, जगह-जगह स्कूल एवं कालेजों बच्चे संगीत शिक्षा ग्रहण कर रहे है। आम जनता में संगीत का स्तर ऊँचा उठा है । संगीतज्ञों का मान सम्मान बढ़ा है। अच्छी-अच्छी पुस्तकें संगीत के ऊपर प्रकाशित हुई हैं । अकाशवाणी एवं टेलीवीजन के द्वारा शास्त्रीय संगीत का अधिक से अधिक प्रचार बढ रहा है। संगीत को प्राचीन स्थान दिलाने के लिये अनेक संस्थायें जी तोड़ कर प्रयास कर रही है। पुराने जमाने में संगीत केवल मनोरंजन का ही साधन नहीं माना जाता था, बल्कि उसका एक भावपूर्ण अध्यात्मिक रूप था । ईश्वर प्राप्ति का संगीत एक सबल साधन था, आज फिर हम जगह-जगह भक्ति संगीत का बहुलता का जो प्रचार देख रहे है, अच्छे-अच्छे भजनों के कैसेट, टेलीविजन में रामायण जैसे सीरियल जो पूर्णतयः संगीतमय है निश्चय ही संगीत के वैदिक रूप को फिर तरोताजा कर देते है ।

एक अन्तर यह अवश्य हुआ हैं कि संगीत पहले राजा महराजा, दरबारों तक ही सीमित रहता था पर अब संगीत साधारण जन समुदाय' में पहुँच कर प्रतिष्ठित हो रहा है ।

संगीत सम्मेलनों की प्रथा दिन व दिन बढ़ रही है, नये-नये होनहार कलाकार भी सामने आ रहे हैं, शास्त्रीय संगीत के पुनरूत्थान के लिये स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जो प्रयत्न हुऐ है, इसका पूर्ण श्रेय संगीत की उन महान विभूतियों को है, जिन्होंने संगीत को अंधकार से बाहर निकाल जन समाज में प्रतिष्ठित किया । इनके समय में संगीत एक विलासिता प्रियवर्ग विशेष के विश्राम कक्षों में अधिक पनप रहा था । स्वर्गीय विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने संगीत की इस वर्ण संकींणता को संगीत के विकास में कलंक माना और संगीत को दायरे से बाहर निकालने का अथक प्रयास किया । पलुस्कर जी के इस कार्य को स्वर्गीय पंडित बी० एन० भातखंडे जी ने आगे बढ़ाया और नवीन स्वरलिपि का निर्माण किया । इन दोनों महापुरुषों ने भारतीय संगीत के पुनरूत्थान के लिये जो महान कार्य किया, जो प्रशस्त कदम उठाया, वह भारतीय संगीत में बड़ा ही महत्वपूर्ण है। संगीत कला को पतन की ओर जाते देख उसका पुर्नजीवति करने की लगन से इन दोनों ही संगीत विद्वानों ने संस्कृत के मूल ग्रन्थों का अध्ययन किया, भारत भर में भ्रमण कर उस्तादों से मिले, संगीत सम्बन्धी साहित्य की खोज की । विविध कलावन्तों से उन्होंने बहुत से गाने सीखे और प्राचीन तथा अप्रचलित रागों के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की । इन दोनों ही महापुरुषों ने सुशिक्षित समाज के लिये अनेक ग्रन्थ लिखे । भातखण्डे जी ने साधारण जनता के लिये "हिन्दुस्तान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत पद्धति" के चार भाग प्रशनोत्तर रीति से मराठी भाषा में लिखे और "क्रमिक पुस्तक मलिका" 6 भागों में लिखी। मुस्लिम काल में विशेष उन्नति पर पहुँचे हुये संगीत का नवीन शास्त्र बनाना उनके कार्य का महत्वपूर्ण अंग रहा। विविध खानदानी गायकों के गाने सुनकर उनकी स्वरलिपियाँ तैयार की। उन्होंने एक सरल स्वरलिपि पद्धति का निर्माण किया, और संगीत कला की क्षत—विक्षत पद्धतियों के स्थान पर आधुनिक थाट पद्धति का निर्माण किया, जिससे संगीतज्ञ एक नियम बद्ध प्रणाली से गाने वजाने लगे।

उसी प्रकार विष्णु दिगम्बर जी ने भी संगीत के पुनरुत्थान के लिये महान कार्य किया। इन्होंने देखा कि संगीतज्ञें को उच्च वर्ग के लोग अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे, उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे संगीत को सभ्य समाज में प्रतिष्ठित करायेगें। उन्होंने गीतों में से अश्लील शब्दों को हटाकर भक्ति रस को स्थान दिया जो समाज में काफी प्रचलित हुये इनके प्रयत्नों से समाज में संगीत के प्रति लालसा उत्पन्न हुई और संगीत के कई विद्यालय उत्पन्न हुये जिनमें लाहौर का "गान्धर्व महाविद्यालय" सर्व प्रथम 5 मई सन 1901 ई० को स्थापित हुआ। वम्वई का "गान्धर्व महाविद्यालय" भी स्थापित हुआ। और उनके शिष्यों ने वाद में "गान्धर्व महाविद्यालय मंडल की स्थापना की, जिसके माध्यम से संगीत का विकास क्रम सुचारू ढंग से चला।

उन्होंने अपने गीतों में भक्ति के साथ साथ राष्ट्रीय भावना को भी समन्वित किया, जिससे जनता जाग्रत हो सकें। उन्होंने अनेक कुशल कलाकार तैयार किये और संगीत के विषय में लगभग 250 पुस्तकें लिखी। उन्होंने स्वरलिपि पद्धति का निर्माण किया।

इन दोनों ही महापुरूषों ने संगीत को पवित्र एवं सुन्दर बनाने का जो कार्य किया, उससे संगीत पुनः समाज में प्रतिष्ठित स्थान पा चुका है।

इनके अतिरिक्त राजा नवाव अली ने भी संगीत के पुनरूत्थान में वहुत सहयोग किया। भारतीय संगीत को उत्कृष्ट रूप दिलाने में इन सभी विद्वानों ने अथक प्रयास किया।

भारत के सांगीतिक पुनरूत्थान के प्रति जागरूक संस्थाओं में "संगीत नाटक अकादमी" ने जो महत्वपूर्ण कार्य किया है उसकी चर्चा हम उपर कर आये है। आज भारत में आकाशवाणी एवं टेलीविजन भी इस उद्देश्य में अंग्रणी है। आकाशवाणी से शास्त्रीय संगीत की विभिन्न धाराएँ एक नियोजित क्रम में प्रसारित होती रहती है। कर्नाटक और हिन्दुस्तानी संगीत स्कूलों में रागों के साम्य से सम्बन्धित संगीत-समारोह, संगीत के राष्ट्रीय कार्य क्रम तथा रेडियों संगीत सम्मेलन इस दिशा में विशिष्ट प्रयास है। वड़े-वड़े संगीतज्ञों की स्मृति में जयन्ती मनाने का कार्यक्रम भी इस दिशा में एक सफल प्रयास है जैसे "स्वामी हरिदास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयन्ती'' ''तानसेन समारोह'' ''विष्णुदिगम्बर जी और भातखण्डे जी जैसे संगीतज्ञों की स्मृति में वार्षिकोत्सवों का आयोजन बहुत महत्वपूर्ण है। उन उत्सवों में अभी चन्द माह पूर्व लखनऊ में ''राय उमानाथ वली'' जयन्ती के उपलक्ष में आयोजन हुआ, जिसमें संगीत के उच्चरोत्तर विकास की ओर महत्वपूर्ण कदम उठाये गये। इसी प्रकार प्राचीन शैली ध्रुपद की पुनः प्रतिष्ठा पर भी विशेष जोर दिया जा रहा है, ''वृन्दावन'' में आयोजित ''ध्रुपद मेला'' इसी प्रयास की एक कड़ी है। इसका श्रेय जाता है ''संगीत नाटक अकादमी'' के राष्ट्र समारोह में आचार्य पंडित ए० सी० पांडेय को जिन्होंने ध्रुपद को पुर्नजीवित करने पर विशेष बल दिया।

परन्तु शास्त्रीय संगीत के उचित प्रोत्साहन एवं पुनरूत्थान के लिये आवश्यक है कि श्रेष्ठ संगीतकारों के संगीत को सुरक्षा प्रदान की जाये इन्हें आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाय जिससे संगीतकार निश्चित हों संगीत की साधना कर सकें। रियासती राज्य दरवार ने संगीतकारों को जो आश्रय प्रदान किया, उसका एक यही अच्छा पक्ष था कि संगीतकारों को जीविकोपार्जन के लिये इधर उधर नहीं जाना पड़ता था और वे संगीत की साधना को लग्नता से करते थे, परन्तु आज स्थिति भिन्न है। रोज़ी रोटी का प्रश्न इतना आवश्यक है कि संगीत जैसी विद्या की साधना में व्यवधान आना आवश्यक है। अतः भारत सरकार एवं संगीत की संस्थाओं का यह कर्तव्य होना चाहिये कि संगीत साधक को चिंता मुक्त रखा जाय। भारत सरकार ने अपने रेडियों विभाग एवं शास्त्रीय संगीतकारों को आर्थिक सहायता पहुँचाकर महत्वपूर्ण कदम उठाया है। कलाकारों को उनके प्रसारण के लिये पारिश्रमिक मिलता है, जिससे अवश्य ही नये-नये कलाकारों को प्रोत्साहन मिलता है सरकार की ओर से संगीतकारों को आर्थिक सुरक्षा के लिये उन्हें पुरूस्कार या पेंशन आदि की व्यवस्था भी समय समय पर की जाती रही है। इससे न केवल शास्त्रीय संगीत के साधकों एवं श्रोताओं की संख्या में वृद्धि हुई है प्रत्युत इससे शास्त्रीय संगीत के प्रचार एवं प्रसार में प्रर्याप्त सहायता मिली है।

गत पचास वर्षों में महिला कलकारों की संख्या में भी वृद्धि उल्लेखनीय है एक समय महिलाओं का मंच पर आना अपमानजनक समझा जाता था, आज अभिभावक चाहते हैं कि उनकी लड़कियाँ मंच पर कला प्रदर्शन करें। अभिभावक अपनी लड़कियों की सांगीतिक प्रतिभा बढ़ाने में सक्रिय योग भी देते हैं। सारंगी शहनाई, घटम जैसे वाद्य एक समय पुरुषों के ही वाद्य समझे जाते थे, किन्तु महिलायें आज दक्षता के साथ इन्हें वजा रही हैं। महिलायें आज अनुसंधान कार्य में रत है, गोष्ठियों में प्रबन्ध प्रस्तुत करती है और कार्यक्रमों के लिये मुक्त भाव से यात्रा करती है। वास्तव में महिलायें सभी स्तरों पर सक्रिय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज वास्तव में एक प्रकार का मंथन हो रहा है। आकाशवाणी से संगीत पाठ भी प्रसारित होते हैं, हफीज अहमद खाँ ने भी अपने साप्ताहिक रेडियो—संगीत पाठ में प्रसारण के जरिये प्रतिष्ठित संगीतज्ञों से संगीत पाठ प्रसारित करवायें। सरिता और सायंकालीन शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों के श्रोताओं की संख्या काफी बड़ी है।

गत कुछ शताब्दियों में स्वरलिपि सह संगीत की उपलब्धि में भारी वृद्धि हुई है। पं० भातखण्डे ने, जिनका देहान्त पचास वर्ष पूर्व हुआ, हिन्दुस्तानी शैली की हजाओं बन्दिशों को एकत्र कर व्यवस्थित कर उन्हें छपवाया। उसी प्रकार दक्षिण में संगीत के मुद्रित साहित्य में वृद्धि हुई। यद्यपि संगीत की मौखिक शिक्षा देने की परम्परा जारी है, फिर भी उनके संरक्षण में मुद्रित साहित्य की भूमिका है।

सन् 1980 को एक प्रगति का प्रतीक माना जा सकता है। हिन्दुस्तानी और कर्नाटक संगीत एक दूसरे के निकट आये और कलाकार एक दूसरे के निकट आये और एक दूसरे की जटिलाओं को समझने की कोशिश करने लगे। "स्पिक मेकी" (Society for the promotion of Indian Classical Music and Cultures Among youth) के रूप में इस दिशा में होने वाले विकास को देखा जा सकता है।

आज ऐसे अनेक कलाकार है, जिन्होंने यद्यपि गुरूमुख से विद्या ग्रहण की है, किन्तु साथ ही ने आधुनिक माध्यमों में भी प्रशिक्षित है। और वे आज वर्तमान पीढ़ी के समक्ष प्राचीन संगीत की व्याख्या नये ढङ्ग से कर सांस्कृतिक, पीढ़ीगत एवं प्रवृत्तिगत खाई को पाट रहे हैं।

आज फिर से हम देखते है कि पुरानी बन्दिशों और प्रशिक्षण की परम्परागत प्रणाली का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। ध्रुपद पद्धति को आज फिर सरकार द्वारा संरक्षित किया जा रहा है, जिसमें रिकार्ड का विशेष योगदान है। अनेक संस्थायें "ध्रुपद मेला" जैसे आयोजन का संरक्षण कर रही है, फिर एक बार हमारे कलाकार मान रहे है कि ध्रुपद से ध्वनि-परिष्करण में सहायता मिलती है, लय पर नियंत्रण बढ़ता है और ख्याल गायन के लिये भी ध्रुपद का अभ्यास आवश्यक है। इसी दृष्टि से "कलकत्ता संगीत रिसर्च अकादमी" में उस्ताद निसार हुसैन खाँ के द्वारा ध्रुपद प्रशिक्षण प्रारम्भ किया गया है।

जुगलबंदियों का प्रचलन फिर से एक बार बढ़ रहा है, जिसमें उत्तर और दक्षिणी दोनों ही पद्धतियों को उजागर किया जा रहा है। मुद्रण वीडियों आदि रिकार्डिंग से संगीत-संरक्षण मे सहायता पहुँच रही है। आज फिर से विचित्र वीणा इस राज, गोटु वाद्यम—जैसे वाद्यों की रिकार्डिंग का संरक्षण सम्भव है। कम्प्यूटर के द्वारा संगीत के वैज्ञानिक तत्वों को समझने का प्रयास हो रहा है। कहने का तात्पर्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है कि प्रत्येक दृष्टि से आज का युग शास्त्रीय संगीत की समृद्धि की ओर ही अग्रसर है। व्यावहारिक दृष्टि से प्राचीन परम्परा निर्वाह करते हुए, बड़ी ही सफलता से आज के कलाकार शास्त्रीय संगीत को समृद्ध कर रहे हैं यह तो निश्चित ही कहा सकता है।

शास्त्रीय संगीत के पुनःरूत्थान के लिये इतने प्रयास हो रहे हैं। फिर भी आम जनता शास्त्रीय संगीत की ओर से उदास है। शायद उसका कारण है बढ़ते हुए विदेशी संगीत का प्रभाव एवं सामाजिक एवं राजनैतिक व आर्थिक परिस्थितियाँ। फिल्मीसंगीत से प्राप्त होने वाले तक सस्ते मनोरंजन का भी प्रभाव कुछ सीमा तक पड़ा है, ऐसे में शास्त्रीय संगीत के लिये सभी संगीत प्रेमी एक हो मिलकर प्रयास करें तो बहुत हद तक इस समस्या का निदान किया जा सकता है।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि संगीत एक आदि कालीन कला है, जिसके जीवन गाथा के ऐतिहासिक प्रमाण "आर्यकाल" से भी पूर्व "सिन्धु घाटी की सभ्यता" से प्राप्त होते है। इस कला का कई बार उत्थान एवं प्रतन हुआ है। इसके पतन का कारण सदैव अशलीलता रही है और इसका पुनरूत्थान सदैव महान सन्त कवियों एवं सन्त संगीतज्ञों द्वारा ही हुआ, जिन्होंने समय-समय पर इसे भक्ति रस की रचनाओं से अलंकृत किया। आज भी प्रातः और सायः मन्दिरों के अन्दर और बाहर संगीत की मधुर ध्वनि गूँजती हुई इस तथ्य की पुष्टि करती है। श्रीमती गांधी ने संगीत की महत्ता पर बल देते हुए ठीक ही कहा था—

"In olden days, music and art were used as forms of worship and therefore the best were found in or around the temples. N ow the emphasis has changed but they stiil serve to leaft our minds and sprits above the mundance routine of our daily lives and brings uew dimensions into our lives."

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय संगीत के विकास और प्रचार में आधुनिक विज्ञान का प्रभाव

IMPACT OF MODERN SCIENCE IN THE DEVELOPMENT AND PROPOGATION OF MUSIC

बीसवीं शताब्दी का आरम्भ केवल भारत के स्वतन्त्र युग का ही क्रांति काल नहीं है, अपितु संगीत कला की दृष्टि से भी एक अनोखी क्रांति का युग माना जा सकता है। आज संगीत का क्षेत्र विस्तृत हो गया है, अधिक लोग उसे सुनते, समझते हैं तथा सीखते हैं। संगीत महफिल, संगीत सम्मेलन, आकाशवाणी दूरदर्शन, रिकार्ड और टेपरिकार्ड के कारण अत्यंत सहज होकर घर-घर फैल गया है। आज संगीत पर अनेक पुस्तकें लिखी जा रही है। वन्दिशों की स्वरलिपियाँ नृत्य के तोड़े टुकड़े तथा तवला पखावज की वन्दिशें बनती जा रही हैं। जिस गायकी या साज को सुनने के लिए आज से 40 वर्ष पूर्व तक एक घराने दार कलाकार को राजी करना कठिन था, आज उसी गायकी या वाज को हम सहज रूप से रेडियो, टेलीविजन या रिकार्डों में बार-बार सुनते हैं।

आज संगीत सीखना सरल हो गया है। 'संगीत' मासिक (हाथरस) तथा 'संगीत कला बिहार' (मिरज) जैसी पत्र पत्रिकाओं के कारण घर बैठे बिठाये संगीत की जानकारी होने लगी है। अनेक श्रेष्ठ पुस्तकों एवं ग्रंथों का प्रकाशन हुआ है यह तो मानना पड़ेगा कि संगीत के क्षेत्र का अधिक विस्तार हो गया है और श्रोतागणों की संख्या भी बढ़ गई है। यह संगीत के व्यापक प्रचार का ही फल है। संगीत के लिये लोगों में उत्साह भी बहुत बढ़ गया है। कुछ लोग अभी भी प्राचीन शास्त्रीय संगीत को किसी ऊँचे गुरू या उस्ताद से सीखते हैं, परन्तु आम तौर से लोग आजकल की संगीत शिक्षा की नई, आधुनिक पद्धति का ही पालन करते हैं, और यह अब उसके व्यापक प्रचार का उपयुक्त साधन बन गई है।

आकाशवाणी : संगीत-प्रचार व प्रसार का मुख्य साधन

संगीत के विकास और प्रचार में आधुनिक वेज्ञानिक साधनों में आकाशवाणी एक मुख्य साधन है। रेडियों संगीत के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ है। आज घर घर में संगीत के प्रचार का व्यापक साधन रेडियों ही है। उच्च कोटि के संगीतज्ञ भी रेडियो, टेपरिकार्डर इत्यादि की उपयोगिता स्वीकार कर चुके हैं। शास्त्रीय संगीत को जन सुलभ व लोकप्रिय वनाने में जो महत्वपूर्ण भूमिका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकाशवाणी निभा रही है, उसके महत्व को भुलाया नहीं जा सकता। संगीतज्ञों को रेडियो के माध्यम से अन्तप्रेरणा मिलती रही है। विज्ञान ने अन्य किसी क्षेत्र में शायद ही इतने कम समय में इतनी प्रगति की हो, जितनी प्रसारण के क्षेत्र में की है। सर्वप्रथम 16 मई 1924 ई० में रेडियों के माध्यम से संगीत प्रसारण शुरू हुआ, दो घंटे प्रतिदिन शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम प्रसारित किये जाते थे। स्कूली शिक्षा और पाश्चात्य संगीत के कार्यक्रम भी इस अवधि के अतिरिक्त प्रसारित होने शुरू हुये। यह प्रसारण 1938 तक चलता रहा। मद्रास, लाहौर, इलाहाबाद, पेशावर व देहरादून आदि स्थानों से सर्वप्रथम संगीत के कार्यक्रम प्रसारित हुये। 23 जुलाई 1927 में बम्बई में आकाशवाणी केन्द्र से प्रसारण शुरू किया, उसके बाद कलकत्ता केन्द्र की स्थापना हुई, उसके बाद दिल्ली पूना, श्री नगर जम्मू, राजकोट, जयपुर, इन्दौर, शिमला केन्द्र, भोपाल, गोहाटी, राँची आदि आकाशवाणी केन्द्रों से भी शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों का प्रसारण होने लगा। 'विविध-भारती' आकाशवाणी का एक कार्यक्रम 3 अक्टूबर, 1956 को प्रारम्भ किया गया और बंगलौर, इन्दौर, कटक, जयपुर, कलकत्ता आदि केन्द्रों से विविध भारती के कार्यक्रम प्रसारित होने शुरू हो गये।

आज संगीत प्रसारण आकाशवाणी का मुख्य आकर्षण है, वस्तुतः आज अधिकांश समय संगीत के विभिन्न कार्यक्रमों को ही दिया जाता हैं। रेडियों के माध्यम से शास्त्रीय संगीत का प्रचार करने हेतु समय समय पर योजनायें बनती रही है। 1950-51 में तत्कालीन सूचना व प्रसारण मंत्री श्री आर० देवघर ने आकाशवाणी के दिल्ली, बम्बई, मद्रास, कलाकत्ता, व नागपुर केन्द्र के सदस्यों तथा संगीत कलाकारों की एक सभा बुलाई, जिसमें शास्त्रीय संगीत के उत्कृष्ट प्रस्तुतीकरण के लिए ठोस निर्णय लिए गए। संगीत के लिए अलग स्टाफ की व्यवस्था की गई, कुछ मंचीय कलाकारों की आकाशवाणी केन्द्र पर नियुक्ति की तथा कुछ कलाकारों को नियत समय के लिए ही नियुक्त किया गया। फलस्वरूप आज अनेक सांगीतिक कार्यक्रम आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किए जा रहे हैं। आडीशन सिस्टम, रेडियो संगीत-सम्मेलन भारतीय संगीत पर परिचर्याएँ, सांगीतिक प्रतियोगिताएँ, रविवारी संगीत कार्यक्रम, संगीत सम्मेलनों का प्रसारण शास्त्रीय संगीत का दैनिक प्रसारण इन गतिविधियों द्वारा सांगीतिक प्रचार व प्रसार में अवश्य सहायता मिली है। ख्याति प्राप्त कलाकारों के सहयोग से ही भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रचार संभव हो सका है। आम जनता में सुगम व शास्त्रीय संगीत के प्रति आकर्षण पैदा करके संगीत के प्राचीन गौरव को पुनः प्रतिष्ठापित किया है। रेडियो में आडीशन बोर्ड की स्थापना की गई, दो या तीन विशेषज्ञ मिलकर शास्त्रीय संगीत के प्रसारण के लिए कलाकारों का चयन करते हैं कलाकारों को भिन्न-भिन्न श्रेणियों में विभाजित किया जाता है, इसी श्रेणी के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आधार पर उन कलाकारों को वेतन दिया जाता है, श्रेणी पद्धति के अन्तर्गत कलाकारों को 'ए-ग्रेड' 'बी-हाई' व 'बी ग्रेड' प्रदान किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त 'उच्चश्रेणी' का दर्जा उन गिने-चुने प्रतिष्ठित कलाकारों के लिए होता है, जो दक्ष है। शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ उपशास्त्रीय संगीत व सुगम संगीत के कलाकारों के लिए भी श्रेणी है।

प्रतिवर्ष आकाशवाली की ओर से 'रेडियों संगीत-सम्मेलन' का आयोजन किया जाता है आकाशवाणी के सभी केन्द्रों पर आमन्त्रित श्रोताओं के समक्ष यह कार्यक्रम होते रहते हैं रेडियों के ये सम्मेलन जनता में सांगीतिक जागृति लाकर समस्त भारत में शास्त्रीय संगीत का प्रचार करते हैं। संगीत संवन्धी परिचर्याएं भी आयोजित होती रहती है। इसके अतिरिक्त नवोदित कलाकारों को खोज कर उन्हें प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से आकाशवाणी द्वारा, अखिल भारतीय 'संगीत प्रतियोगिता' का भी आयोजन प्रतिवर्ष होता है। इस प्रतियोगिता में कंठ, वाद्य और समूह गीतों की प्रतियोगिताएं होती हैं।

रेडियो पर "संगीत-कक्षाएँ" कार्यक्रमों के अन्तर्गत स्टूडियो के अन्दर ही किसी शिक्षक की विद्यार्थियों के साथ क्लास लगाई जाती है। 'प्रश्न-मंच' के कार्यक्रम भी होते रहते हैं। इसके अतिरिक्त 'रविवारीय-संगीत-सभा' का कार्यक्रम प्राय: सभी केन्द्रों से प्रसारित किया जाता है दिल्ली 'ए' केन्द्र से रविवार रात्रि को प्रसारित होने वाला 'चयन' कार्यक्रम भी काफी लोकप्रिय हुआ। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मंगलवार को राष्ट्रीय कार्यक्रम का आयोजन होता है।

भारत में विभिन्न स्थानों पर होने वाले कुछ सांगीतिक-सम्मेलनों का प्रसारण भी आकाशवाणी से किया जाता है। पं० भातखंडे व पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर की पुण्य तिथि पर आयोजित कार्यक्रमों का प्रसारण भी किया जाता है।

दैनिक प्रसारणों की संख्या भी काफी बढ़ रही है। दिल्ली रेडियो के चेनल 'ए' से तो शास्त्रीय संगीत कई घंटे प्रतिदिन प्रसारित होता रहता है। इस प्रकार एक वेज्ञानिक साधन के रूप में रेडियों आज घर-घर में संगीत का व्यापक प्रचार व प्रसार कर सकने में समर्थ है।

दूरदर्शन से भी अखिल भारतीय संगीत और नृत्य के कार्यक्रम प्रसारित होते रहते है।

आधुनिक युग में हिन्दुस्तानी संगीत का जैसा व्यापक और महान प्रचार हुआ है। वह पचास-साठ वर्ष पहले कभी नहीं हुआ। नये नये वैज्ञानिक साधनों से यह प्रचार किया गया है। हिन्दुस्तानी संगीत को निश्चय ही उससे उन्नति हुई है। उसकी शिक्षा प्राप्त करने वालों की संख्या बहुत बढ़ गई है। और हजारों की संख्या में लोग राग-रागनियों को सीखने लगे हैं। जो विद्या पहले पेशेवर, उस्तादों और गुरुओं के पास थी, उसकी जानकारी अब आम जनता को होने लगी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। इस वड़े प्रचार से लोगों को संगीत का सामान्य ज्ञान हो गया है।

आज किसी विद्यार्थी को संगीत सीखने के लिए गुरू के घर रह कर उनकी सेवा करना आवश्यक नहीं, आज अलग-अलग घरानों की विद्या एक ही मंच पर सुनने को मिल जाती है।

परन्तु संगीत का स्तर धीरे-धीरे गिर रहा है। आज का विद्यार्थी जीवकोपांजन की भाग दौड़ के कारण दिन में 10 घंटे अभ्यास करने में असमर्थ हैं। आज परिस्थितिवश संगीत शिक्षा प्रणाली में जो परिवर्तन हुआ है उससे प्राचीन गुरू शिष्य परम्परा लुप्त होती जा रही है। संगीत विद्यालयों में एक साथ दस वीस विद्यार्थियों को गुरू न तो सच्ची तालीम दे सकता है और न ही शिष्य ग्रहण कर सकता है। ऐसे में पुस्तकें पढ़कर कलाकार बनना कठिन है। पुराने जमाने में शिष्य, गुरू के घर रह कर वर्षों पर्यन्त तालीम लिया करते थे, उन दिनों कलाकारों को राज्य-दरबारों में आश्रय मिला करता था अतः आर्थिक जिम्मेदारियों से मुक्त रह कर वे विद्यादान और अभ्यास में पूरा ध्यान लगा सकते थे।

यद्यपि आज विद्यार्थी अधिक कुशाग्र है वह शिक्षित भी है और प्रत्येक बात को वैज्ञानिक कसौटी पर कस कर ही ग्रहण करता है, किन्तु संगीत के क्षेत्र में कलाकार बनने के लिये कोरे वैज्ञानिक सिद्धान्त ही काफी नहीं है। संगीत तो भावना प्रधान, भक्ति प्रधान और मधुर भावनाओं की कला का है, बुद्धि तत्व की प्रधानता से भावता का हनन अवश्य होगा, विज्ञान के इस चमत्कार से संगीत सिर्फ कसरत बन जायेगा। संगीत का प्रचार यद्यपि घर-घर में हो गया है और अनेक महाविद्यालय मुक्त रूप से संगीत शिक्षा दे रहे है, परन्तु फिर भी मुक्त वातावरण में संगीत की सूक्ष्मताओं तथा गहनताओं से यह विद्यालयीन छात्र अवगत नहीं है, उनका स्तर धीरे-धीरे गिरता जा रहा है, विष्णुद्वय पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने अपने घोर परिश्रम और कठोर साधना के द्वारा संगीत को अपने सीमित दायरों से बाहर निकाल कर आम जनता में संगीत सुलभ अवश्य किया है, समाज में संगीत को सम्मानीय स्थान भी दिलाया है, किन्तु घरानेदार गायकी के अभाव में क्या हम आधुनिक शिक्षा पद्धति से उच्च-कोटि के कलाकार पैदा कर सकते है—शायद कभी नहीं। जिस युग में वैज्ञानिक उपकरण 'रेडियो' 'टेलीविजन' 'रिकार्डर' 'टेपरिकार्डर' या पुस्तक जैसी कोई सुविधा उपलब्ध नहीं थी, उस युग में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कलाकार उत्पन्न हुए, जो संगीत के विद्वान हुए और उसी कंठग्रस्त संगीत के माध्यम से उन्होंने अनेक उच्च-कोटि के शिष्य बनाये।

आज विज्ञान की सुविधाओं के कारण हम इन श्रेष्ठ कलाकारों में से कुछ की गायकी सुनने में समर्थ अवश्य है, पर शायद कलाकार उत्पन्न करने में नहीं। उस युग में शिष्यों की योग्यता सिद्ध हो जाने पर ही गुरू उन्हें विद्यादान देते थे,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु आज विद्यालयों की शिक्षा प्रणाली में जहाँ एक घन्टे में 20-25 विद्यार्थियों को एक साथ शिक्षा दी जाती है, वहाँ कलाकारों की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। न न वह भक्ति और निष्ठा भाव है, गुरू के पास शिष्य को सिखाने के लिये उतना समय भी नहीं है। वास्तव में पुरानी गुरू-शिष्य प्रणाली ही उत्तम शिक्षा के लिये सर्वश्रेष्ठ है।

आधुनिक युग में यदि संगीत का स्तर ऊँचा उठाना है तो ऐसी संगीत संस्थाओं की स्थापना होनी चाहिये, जिसे सरकारी आर्थिक सहियोग प्राप्त हो, कलाकारों को वहाँ आर्थिक रूप से राजी-रोटी की चिन्ता न करनी पड़े और उन्हें आश्रय प्रदान हो। ऐसी संस्थाओं में प्रतिभावान विद्यार्थी श्रेष्ठ गुरूओं से तालीम लेकर अच्छे कलाकार बन सकते है। व्यक्तिगत और परम्परागत शिक्षा ही ऐसी संस्थाओं का लक्ष्य हो। शिष्यों के लिये छात्रवृत्ति का प्रवन्ध हो, ऐसा ही प्रयास कलकत्ते की 'आई० टी० सी० रिसर्च अकादमी' द्वारा हो रहा है और वहाँ से अनेक अच्छे-अच्छे कलाकार निकल भी रहें हैं। ऐसी संस्थाओं के माध्यम से पुनः एक बार गुरू शिष्य परम्परा सजीव हो सकती है तथा विद्यार्थियों का विकास सही दिशा में किया जा सकता है। जब शिष्य गुरू के व्यक्तिगत सानिध्य में रहेगा तब गुरू तथा शिष्य के बीच स्नेह एवं श्रद्धा का नाता भी बना रह सकेगा, जो संगीत शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग है। इस प्रकार की संस्थाओं की आवश्यकता है, तभी उच्चकोटि के कलाकार उत्पन्न हो सकेंगे और संगीत की परम्परा संस्कृति कायम रह सकेगी।

वर्तमान काल में घरानों की तोड़, फाड़, रेडियों, रिकार्डिंग, टेप आदि का प्रभाव शास्त्रीय संगीत के विकास में सहायक नहीं है, ऐसा निश्चय रूप से कहा जा सकता है। स्वरलिपि का तरीका भी है, पर स्वरलिपि से गाना अवश्य आ जाता है, परन्तु स्वर की सच्चाई या ठीक श्रुति ज्ञान सम्भव नहीं है। कौन नहीं जानता कि जौनपुरी, दरवारी, आसावरी, तोड़ी और मुल्तानी में अलग-अलग गंधार लगते हैं, किन्तु ये सूक्ष्म वातें गुरू शिष्य परम्परा की शिक्षा से ही उपलब्ध हो सकती, आज के वैज्ञानिक उपकरणो से नहीं। इन वैज्ञानिक उपकरणों ने एक दूसरी शैली की विशिष्टता के सम्मिश्रण के अवसर उत्पन्न कर दिये है, पर राग ज्ञान और शैली विशेप का ज्ञान श्रवणदर्शन द्वारा सम्भव नहीं हो पा रहा है। एक दूसरी शैली की विशिष्टता की सुन्दरता को अपनाना कला की उन्नति, निखार, विविधता मोहकता की दृष्टि से बुरा भी नहीं है, लेकिन उनके शुद्ध रूप का ज्ञान कराने में शायद ही ये वैज्ञानिक सुविधायें सक्षम हो पाती हों।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग वर्गीकरण

सदैव यह बात कही जाती है कि विभिन्न कालों में जनरुचि में परिवर्तन के अनुसार संगीत में बदलाव आता है अर्थात् संगीत परिवर्तनशील है। सम्भवतः इसी कारण प्राचीन काल से आधुनिक काल तक देश काल तथा परिस्थितियों के आवर्तन और अनुवर्तन के फलस्वरूप रागों का वर्गीकरण भी भिन्न रूपो में होता आया है। समय के प्रवाह के साथ ही रागों का बाह्य रूप बदलता रहा है। गायन शैलियाँ बदलती रही हैं। संगीत के इतिहास का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि भिन्न-भिन्न विद्वानों ने रागों का विभिन्न ढङ्ग से वर्गीकरण किया है।

राग वर्गीकरण के इतिहास को हम तीन कालों में बाँट सकते हैं।

(1) प्राचीन काल

(2) मध्य काल

(3) आधुनिक काल

अब हम क्रमशः इनका विस्तृत वर्णन करेंगे।

प्राचीन काल—इस काल में तीन विद्वानों के संगीत विषयक ग्रन्थ उपलब्ध हैं :

(a) भरतकृत 'नाट्य शास्त्र'

(b) मतंगकृत 'वृहददेशी'

(c) नारदकृत (1) 'नारदीय शिक्षा'
(2) 'संगीत मकरंद'

भरत कृत नाट्य शास्त्र—यह ग्रन्थ भारतीय साहित्य तथा संगीत का वृहद्ध कोष है, तथा प्राचीन एवं प्रमाणिक सामग्री प्रस्तुत करता है। यह ग्रन्थ लगभग द्वितीय शताब्दी में लिखा गया। आचार्य भरत ने स्वयुग में प्रचलित समस्त गीत शैलियों को जो गायन योग्य थीं, उन सभी का विभाजन 'जाति' के अन्तर्गत किया है। जैसे—

"यत्किंचियद गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम"

जाति गायन पद्धति—इस पद्धति के अनुसार प्राचीन काल में रागों के स्थान पर जाति गायन की प्रथा प्रचलित थी। रागों के पूर्व रूप को ही जाति कहते हैं। भरतमुनि ने अपने ग्रन्थ "नाट्यशास्त्र" में जाति का लक्षण इस प्रकार दिया है :

"स्वरा एवं विशिष्ट सन्निवेश भाजोरक्तिभदृष्ठाभ्यदयं
च जनयन्ती जाति रिव्युक्ता ।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो श्रुति और ग्रह स्वरादि के समुदाय से उत्पन्न होती है। जो जातियाँ राग जननी होती हैं उन्हें जाति की संज्ञा दी गई है। जातियाँ वह धुने थीं जिनका उद्गम लोक संगीत में हुआ था। आवश्यक संस्कार और परिष्कार के कारण इनको शास्त्रीय संगीत में स्थान प्राप्त था। वैदिक युग में ये प्रचलित थीं तथा लोकप्रिय धुने इनका आधार थीं। जातियों की इस प्राचीनता के आधार पर उनकी गणना मार्ग संगीत में की गई। सामायण काल में 7 शुद्ध जातियाँ प्रचलित थीं और उनकों क्लासिकल या उच्चक्षेत्रीय संगीत में निरन्तर स्थान प्राप्त था।

आचार्य भरत षड्ज ग्राम से सात और मध्यम ग्राम से कुल अठारह जातियों के निर्माण का उल्लेख करते हैं जिनके नाम हैं :

षड्ज ग्राम से उत्पन्न सात शुद्ध जातियाँ—षाड्जी, आर्षभी, धैवती, नैषादी, षड्जादी च्यवा, षड्ज कैशिकी और षड्जमध्या ।

मध्यम ग्राम से उत्पन्न 11 विकृत जातियाँ—गांधारी, मध्यमा, गांधरोदी-च्यवा, पंचमी, रक्तगांधारी, गांधार, पंचमी, मध्यमोदीच्यवा, नन्दवती, कार्मारवी, आंध्री तथा कैशकी,

षड्ज ग्राम	मध्यम ग्राम
1. षाड्जी—शुद्ध स्वर युक्त	1. गांधारी—शुद्ध स्वर युक्त
2. आर्षभी...शुद्ध स्वर युक्त	2. मध्यमा—साधारण स्वर युक्त
3. धैवती—शुद्ध स्वर शुद्ध	3. पंचमा—साधारण स्वर युक्त
4. नैषादी—शुद्ध स्वर युक्त	4. रक्त गांधारी—शुद्ध स्वर युक्त
5. षड्ज—कैषिकी स्वर युक्त	5. गांधारोदीच्यवा—शुद्ध स्वर युक्त
6. षड्जोदीच्यवाती—शुद्ध स्वर युक्त	6. गांधार पंचमी—शुद्ध स्वर युक्त
7. षड्जमध्या—साधारण स्वर युक्त	7. मध्यमोदीच्यवा—शुद्ध स्वर युक्त
	8. आंध्री—शुद्ध स्वर युक्त
	9. नन्दयन्ती—शुद्ध स्वर युक्त
	10. कार्मारवी—शुद्ध स्वर युक्त
	11. कैशिकी—शुद्ध स्वर युक्त

इस प्रकार षड्ज ग्राम और मध्यम ग्रामों से 18 जातियाँ उत्पन्न होती हैं, जिसमें से षड्ज ग्राम की 6 जातियों में से 4 शुद्ध और 3 विकृत है तथा मध्यम ग्राम की 11 जातियाँ में से 3 शुद्ध एवं 8 विकृत हैं। इन 18 जातियों में से सात शुद्ध जातियों का नामकरण सात स्वरों के नाम से हुआ है।

भरत के शब्दों में

तत्र शुद्ध षड्ज ग्रामें षाड्जी आर्षभी सधैवती निषादवती।
गान्धारी मध्यमा पंचमी मध्यम ग्रामें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरत के अनुसार जातियाँ शुद्ध तथा विकृत दो भागों में वर्गीकृत की जा सकती हैं—"जातयो द्विवधाः शुद्ध विकृताश्च"

शुद्ध जाति वह है जिसमें विशिष्ट ग्राम के सम्पूर्ण सप्तस्वर विद्यमान हों तथा जाति का नामसूचक स्वर ही उसका अंश ग्रह तथा न्यास हो। परन्तु जब अंश तथा ग्रह स्वर को बदल कर या दो स्वरों को वर्ज्य कर जाति का विस्तार किया जाता है, तो शुद्ध जाति विकृता बन जाति है। 11 जातियों से ही ग्राम राग और रागों का विकास हुआ। आचार्य भरत के अनुसार :

"जाति सम्भूत्वाद ग्राम रागाणाम"

आचार्य भरत ने ग्राम रागों के आतित्व को स्वीकार करते हुऐ उनकी संख्या तथा उनका नाट्य में प्रयोग कब होता था, बताया है। ये ग्राम राग सात थे जैसे-मध्यम ग्राम, षड्ज ग्राम, साधारित, पंचम कौशिक, षाड्व तथा कौशिक मध्यम।

जाति में नियमों का बंधन कठोर था, जबकि राग में कम। जाति उच्च संगीत की वस्तु थी तो राग लोक संगीत की। दोनों का उद्देश्य गठन तथा गायन शैली के सैद्धातिक दृष्टि से समान होने के कारण लोक संगीत के रागों ने जातियों का स्थान ग्रहण कर लिया। नाटय शास्त्र में 18 जातियों के ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास आदि के सम्बन्ध में सविस्तार विवरण है जिन्हें जाति लक्षण कहा गया है।

जाति के लक्षण

जाति के दस लक्षण थे।

जाति के दशविध लक्षण—जाति के दशंवध लक्षणों का निरूपण नाटय शास्त्र में निम्नांकित श्लोक में हुआ है।

ग्रहांशौ तारमन्द्रों च न्यासोपन्यास एवं च
अल्पत्व च वहुत्व च षाडवौडविते तथा॥

अर्थात जाति के दशंविध लक्षण निम्नानुसार है—ग्रह, अंश, तार, मन्द्र, न्यास, अपन्यास अल्पत्व, वहुत्व, षाडवत्व तथा औडवत्व।

(1) ग्रह स्वर—समस्त जातियों में ग्रह स्वर उस स्वर को कहते थे, जिससे जाति का गान आरम्भ होता है।

(2) अंश स्वर—भरत की जातियों में अंश स्वर का सर्वाधिक महत्व है। इसके लक्षग निम्नलिखित हैं। (1) जिसमें राग का निवास हो, (2) इससे राग का आविभाव होता हैं, (3-4) वह तार तथा मन्द्र अवधि का परिचायक हो, (5) स्वर समूहों में उसका सबसे अधिक प्रयोग हो और उससे सम्वादी तथा अनुवादी स्वर शेष स्वरों की अपेक्षा अधिक प्रवल हों। (6-7-8-9-10) जो ग्रह,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपन्यास, विन्यास, सन्यास तथा न्यास के माध्यम से समस्त जाति को परिवेष्ठित करता हो ।

जाति के दश लक्षणों में अंश को सर्वं प्रमुख माना गया है और इसी में जाति का राग निहित होना बताया गया है । अंश स्वर में रंजकता, रस और रक्ति गुण का प्राधान्य माना गया है । मंतग के शब्दों में ।

"राग जनकत्वाद व्यापकस्वाच्याशस्यैव प्राधान्यम
यश्मिअंशे क्रियमाणे रागानिव्यक्तिर्भवात सोडश ॥"

(3-4) तार मन्द्र—अंश स्वर से लेकर चौथे पांचवे और सातवें स्वर तक तार की गति है । मन्द्र स्थान में स्वरों की गति तीन प्रकार से मानी गयो है— (1) अंश स्वर तक (2) न्यास स्वर तक (3) अपन्यास स्वर तक । मन्द्र स्वरों का प्रयोग ग्लानि, चिंता शंका, मूर्च्छा आदि प्रसगों पर किया जाना चाहिये । भरत ने तार स्वर का सम्वन्ध सिर से वताया है, दूरी पर स्थित व्यक्ति को वुलाने के लिये तार स्वर का प्रयोग किया जाये—ऐसा भरत का आदेश हैं ।

(5) न्यास—जिस स्वर पर गीत की समाप्ति हो यह स्वर सम्पूर्ण गीत के अन्त में आता है । शुद्धा जातियों में अंश स्वर ही न्यास स्वर कहलाता है ।

(7) अपन्यास—न्यास के पहले वीच में कुछ अन्य स्वरों पर ठहरा जाता है, ऐसे स्वरों को अपन्यास कहते थे । यह स्वर गीत के मध्य में आते है । 18 जातियों में से 21 न्यास के स्वर और 56 अपन्यास के स्वर भरत ने बतलाये हैं ।

(7) अल्पत्व—जब कुछ स्वरों का प्रयोग कम होता है ।

(8) बहुत्व—जब कुछ स्वरों का प्रयोग अधिक होता है ।

(9) षाड्वत्व—छः स्वरों के प्रयोग को षाड़व जाति कहते हैं । अठठारह जातियों में से केवल 14 जातियां षाडव हैं ।

(10) औड़वत्व—पाँच स्वरों के प्रयोग को औडव जाति कहते हैं । केवल 10 जातियां औडव हैं ।

मतंग कृत वृहददेशी :—यह ग्रन्थ चौथी शताब्दी में लिखा गया । राग का सुस्पष्ट उल्लेख मतंग के वृहददेशी में ही मिलता है । मतंग के अनुसार विशिष्ट स्वर वर्णो से विभुषित उस ध्वनि विशेष को राग कहते हैं जो सर्वसाधारण के चित्त का रंजन करता है ।

षोड़सौ ध्वनि विशेषुस्तु स्वर वर्ण विभूषित
रंजको जन चिन्तानां से च राग उदाहृतः

मतंग ने रागों का वर्गीकरण मुख्य रूप से ग्राम राग अथवा भाषाराग और देशीराग के अन्तर्गत किया है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्होंने अपने रागों को सप्त गीतियों शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, राग साधारणी भाषा, विभाषा, में विभाजित किया है।

गीतयः पंच शुद्धाद्या भिन्ना गौड़ी च वेसरा
साधारणीति शुद्धा स्यादवक्र ललिते स्वरेः

इनमें से प्रथम पाँच ग्रामराग के अन्तंगत आते हैं और शेष दो भाषा राग के अन्तर्गत। मतंग के समय से ही राग गायन का प्रचलन हो गया था मतंग की राग जातियों के नाम निम्नवत् हैं।

(1) टकी (2) सावीरा (3) मालव पंचम (4) षाड़व (5) वट्ट राग (6) हिंडोलक (7) टक्क कौशिक ये ही मतंग के मुख्य ग्राम राग है जिनकी उत्पति जातियों से हुई है।

नारदीय शिक्षा—यह ग्रन्थ नारद द्वारा 800 ई० में लिखा गया था। इस ग्रंथ में सामवेदीय स्वरों का विशेष महत्व देते हुये 7 ग्राम रागों का वर्णन किया गया है जिसके नाम इस प्रकार हैं :

(1) षाड्व (2) पंचम (3) मध्यम (4) षड्ज ग्राम (5) साधारिता (6) कौशिक मध्यम (7) मध्यम राग।

संगीत मकरंद—नारद द्वारा ही यह ग्रंथ लिख गया था। इसमें गंधार ग्राम का वर्णन उपलब्ध है, इस ग्रन्थ में सर्वप्रथम पुरुष राग, स्त्री राग आदि का उल्लेख है जिसके आधार पर आगे चल कर राग-रागिनी पद्धति निर्मित हुई। रागों का जाति, प्रकृति तथा समय के अनुसार विभाजन भी किया गया है।

कतिपय विद्वान 800 तक और कुछ 1300 तक प्राचीन काल मानते हैं। मध्यकाल 13वीं शताब्दी में शार्ङ्गदेव ने 'संगीत रत्नाकर' की रचना की न उन्होंने नारद के स्त्री-पुरुष रागों को मान्यता दी।

मध्यकाल

मध्यकाल में शार्ङ्गदेव का 'संगीत रत्नाकर' सर्वप्रथम ग्रन्थ है जो आज भी आधार ग्रन्थ के रूप में मान्य है।

संगीत रत्नाकर—पंडित शार्ङ्गदेव के 'संगीत रत्नाकर' के कारण तेरहवीं शताब्दी का काल संगीत की दृष्ठि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा एवं संगीत रत्नाकर के काल तक एक ही प्रणाली प्रचलित थी, वह थी भारतीय संगीत पद्धति। मध्यकाल के प्रारम्भ में ही भारतीय संगीत का हिन्दुस्तानी और कर्नाटक प्रणालियों में विभाजन हुआ। इस प्रकार 12वीं-13वीं और 14वीं शताब्दियों का काल संक्रमण पुर्नजागरण का काल रहा। इस पुर्नजागरण ने संगीत एवं भारतीय स्वर रचनाओं के वर्गीकरण के सम्बन्ध में नये विचारों को जन्म दिया, ग्राम मच्छंना जाति की प्राचीन प्रणाली और उनसे अदभुत रागों की पद्धति का प्रचार कम होने लगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शार्ङ्गदेव ने वास्तव में अपने समय में प्रचलित संगीत पद्धतियों के साथ समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

राग वर्गीकरण की दृष्टि से 'संगीत रत्नाकर' दो मार्गों का ऐसा मिलन स्थल है जिसके एक ओर भारत की ग्राम, मच्छंना और जाति व्यवस्था है तो दूसरी ओर मध्ययुगीन राग-रागिनी वर्गीकरण। यथार्थत भरत परम्परा को पूर्णत: और स्थायी रूप से व्यवस्थित करने वाला यह अन्तिम ग्रन्थ है।

शार्ङ्गदेव के समय तक रागों की संख्या अनगिनत हो चुकी थी, कुछ राग प्राचीन जातियों से सम्बन्ध रखते थे और शेष दोनों की विशेषताओं को लिए हुये थे। उन्होंने अपने समय में प्रचलित रागों को 10 भागों में विभाजित किया।

ग्राम राग, राग, उपराग, भाषा, विभाषा, अन्तंभाषा, रागांग, भाषांग उपांग, क्रियांग।

इनमें से प्रथम 6 मार्गी संगीत और शेष चार देशी संगीत के अन्तर्गत आते हैं।

ग्राम राग—ग्राम राग 30 हैं। इनकी उत्पत्ति ग्रामों से सम्वन्धित गीतियो से हुई है। उस काल में 5 गीतियाँ-शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, वेसरी और साधारणी प्रचलित थीं। अव 30 ग्राम रागों का वर्गीकरण 5 गीतियों में निम्नवत हुआ है।

शुद्धा—यह गीति लालित्य एवं कोमलता के लिए प्रसिद्ध थी। इसके अन्तर्गत 6 ग्राम राग आते हैं। जिनके नाम इस प्रकार थे—षड्ज ग्राम के शुद्ध कौशिक मध्यम, शुद्ध साधारित, शुद्ध ग्राम, षड़ज ग्राम तथा मध्यम ग्राम के शुद्ध पंचम, शुद्ध मध्यम ग्राम, शुद्ध षाड्व और शुद्ध कौशिक।

भिन्ना—यह गीति सूक्ष्मता एवं कलात्मकता के लिए प्रसिद्ध थी। इसके अन्तर्गत 6 ग्राम राग आते हैं: क्रमश: षड्ज ग्राम से भिन्न कौशिक मध्यम, भिन्न षड्ज और मध्यम ग्राम के भिन्न तान, भिन्न कौशिक और भिन्न पंचम।

गौड़ी—यह गीति अपनी गम्भीर गमकों के लिए प्रसिद्ध थी—इसके अन्तर्गत 3 ग्राम राग आते हैं। क्रमश: षड्ज ग्राम के गौड़ कैशिक, मध्यम गौड़ पंचम, मध्यम ग्राम का गौड़ कैशिक।

वेसरी—इस गीति के अन्तर्गत 8 ग्राम राग आते हैं—षड्ज ग्राम के टक्क बेसर षाड्व, सौवीर, मध्यम ग्राम के वोट्ट, मालव कैशिक, मालव पंचम और दोनों ग्रामों से उत्पन्न टक्क कौशिक और हिंदोल।

साधारणी—इस गीति के अन्तर्गत 6 ग्राम राग आते हैं जो इस प्रकार हैं। षड्ज ग्राम के रूप साधारण शक, भम्माण, पंचम, मध्यम ग्राम के नर्त गांधार पंचम, षड्ज कौशिक और दोनों ग्रामों से उत्पन्न कुकुभ।

ग्राम रागों से ही रागों और उपरागों की उत्पत्ति हुई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपराग—इनकी संख्या आठ थी। जैसे ग्राम राग गीतियों से उत्पन्न हैं उसी प्रकार उपराग की उत्पत्ति भी जातियों से हुई है। इनका पृथक वर्गीकरण हुआ है। शायद इसीलिए कि 30 रागों का नाट्य के अन्तर्गत प्रयोग होता था और 'उपराग' उन्हीं के समकक्ष रहे होंगे परन्तु उन्हें अधिक महत्व उपलब्ध न था। आठ उपराग यह हैं—शक तिलक, टक्क सैंधव कोकिला पंचम, रेवगुप्त, पंचम षाड्व भावना पंचम, नाग गंधार, नाग पंचम। इन उपरागों में राग के 10 लक्षणों का निरन्तर नर्वाह होता था।

राग—इनकी संख्या 20 मानी गई है। ग्राम रागों और उपरागों की तरह 'राग' भी जातियों से उत्पन्न हुये हैं लेकिन सम्भवतया उपरागों के भी उपरान्त इनका विकास होने के कारण इनका भी वर्गीकरण पृथक ही हुआ। मध्यम काल के राग-रागिनी के 6 मुख्य राग इन्हीं रागों में आते हैं। ये बीस राग हैं—श्री, नट, दो प्रकार के बंगाल, भास, मध्यम षाड़व, रक्त हुंस, कोल्हास, प्रसव, भैरव, ध्वनि मेघ, सोमराग, दो प्रकार के कामोद, आम्र पंचम, कंदर्प, देशाख्य, कैशिक कुकुभ और नटनारायण।

भाषा—शार्ङ्गदेव इस शब्द के विषय में मौन ही रहे। मतंग के अनुसार भाषा का अर्थ है "ग्राम रागों को गाने के विभिन्न प्रकार" अर्थात्

"ग्राम रागाणायेवालाप-प्रकारा भाषावाच्या:
भाषा शब्दोऽत्र प्रकार वाची"

इसको हम इस प्रकार कह सकते हैं कि कुछ राग ऐसे होते हैं जिनके अंग से अन्य राग गाये वजाये जाते हैं। जैसे कानडा, केदार, विलावल, मल्हार, कल्याण आदि—'इन सभी रागों का एक विशिष्ट अंग है जो इनके सभी प्रकारों में दृष्टिगत होता है। कानडा के दरबारी, अड़ाना नायकी सूहा सुघरई, कौशिक, कान्हणा इत्यादि रागों को कानडा की भाषायें कहा जा सकता है। ये सभी राग कानडा के मुख्य अंग को अपनाये हुये थोड़े-थोड़े भेद के साथ उस अंग को सुनाने के के विभिन्न प्रकार हैं।

30 ग्रामरागों और 8 उपरागों में से सिर्फ 14 ग्राम राग और 1 उपराग—अर्थात् 15 को ही हम 'भाषा के अन्तर्गत मान सकते हैं। मतंग ने 7, कश्यप ने 12 और शार्दूल ने 4 भाषा रागों का वर्णन किया है, जो रागों के तत्कालीन विकास के सूचक हैं।

विभाषा—कल्लिनाथ के अनुसार विभाषा को भी भाषा की तरह ग्राम-रागों के आलाप-प्रकार कहा जा सकता है। ये भाषा के बाद विकसित हुये। ये भाषा के सूक्ष्म भेद रहे होंगे। लोक में भाषा और बोली में जो अंतर है, वैसा ही अन्तर इनमें भी रहा होगा। जैसे, हिन्दी भाषा कहलाती है और अवधी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुन्देलखन्डी आदि बोलियाँ; उसी तरह भाषा के सूक्ष्म भेद विभाषा कहलाये। शार्ङ्गदेव के अनुसार विभाषाओं की संख्या 20 हैं।

अंतरभाषा—ग्राम रागों के ही ऐसे प्रकार जिनका विकास भाषा और विभाषा के उपरान्त हुआ और जो इन दोनों की अपेक्षा ग्राम रागों से और भी अधिक दूर थे वे 'अन्तर भाषा' कहलाये। शार्ङ्गदेव ने केवल 4 अन्तर भाषाओं का उल्लेख किया है।

ग्राम रागों के सभी नाम पुलिंग और भाषा, विभाषा तथा अन्तर भाषाओं के सभी नाम स्त्रीलिंग हैं। इन 7 वर्गों में ऐसे बहुत से नाम है जो आज भी उत्तर या दक्षिण में प्रचलित हैं जैसे भिन्न श्री, नट, भैरव मेघ कामोद, कुकुभ, हिन्दोल, भिन्न षड्ज, कामोद, गुर्जरी, रेवगुप्त, कुछ के स्वरूप अवश्य भिन्न हो गये हैं।

इस वर्ग में रागों की संख्या अधिक बढ़ जाने से और नियमों की शिथिलता से 'देशी राग' का वर्ग पृथक बन गया, जिसके अन्तर्गत रागांग, भाषांग, क्रियांग, उपांग आते हैं।

देशीराग वर्गीकरण

रागांग—ग्राम रागो की कुछ छाया जिन रागों में दिखाई देती हैं, उन्हे भरत ने 'रागांग' कहा है—

ग्राभोक्तानां तु रागाणां छायामात्र भवेदिति।
गीतज्ञैः कथिताः सर्वे रागांगास्तेन हेतुना ।।

अर्थात ग्राम रागों के भंग मिश्रण अथवा विकार से जो राग उत्पन्न हुये वे रागांग वर्णित है—जैसे शंकराभरण, दीपक भैरव इत्यादि।

भाषांग—भाषा रागों की छाया सहित जिन रागों की उत्पत्ति हुई वे मतंग के अनुसार भाषांग कहलाये।

भाषाछायाश्रिवा येन जायते सदृशाः किल।
भाषांगास्तेन कश्यते गायकैः स्पौतिकादिभिः

अर्थात भाषा-रागों में उत्पन्न हुए विकार किन्तु उनकी छाया अर्थात् किन्हीं अंगों को रखते हुये जिन रागों का विकास हुआ उसे भाषांग कहते हैं। संगीत रत्नाकर में बीस भाषाओं का निरूपण किया गया है।

क्रियांग—जिन रागों से चित्त में करुणा, उत्साह और शोक जैसे भाव उत्पन्न हो वे 'क्रियांग' राग कहलाते हैं। मंतग के अनुसार :

करुणोत्साहशोकादि प्रभवाः या क्रिया ततः।
जायंते च यतो नाम क्रियांगः कारणाततः ।।

क्रियांगरागों के नामों के अन्त में की अथवा कृति पद अवश्य रहता है, जैसे भावक्री, ओजक्री, नागकृति आदि। शार्ङ्गदेव ने इनकी संख्या पन्द्रह बतायी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रियांग राग भाव प्रधान तथा अभिनय प्रधान गीतों के लिये अनुकूल होते हैं। सम्भवतः ठुमरी जैसे नृत्य-गीतो के लिए उपयोगी समझे जाने वाले राग ही हैं।

उपांग -- रागांग, भाषांग और क्रियांग इन तीनों के मिश्रण से निर्मित राग उपांग कहलाते थे अर्थात् उपांग रागों में उपर्युक्त कथित तीनों की छाया दिखती थी। मंतग के अनुसार :

"अंगच्छायानुकारित्वात्तेषामुपांगत्व चं।"

ग्राम राग, भाषा, विभाषा, अन्तंभाषादि से जिन रागों का सीधा सम्बन्ध स्थापित होता है, लेकिन कहीं-कहीं किसी राग की छाया प्रदर्शित होती है उन्हें उपांग के रूप में देशी राग-वर्गीकरण में स्थान दिया गया। संगीत रत्नाकर में इनकी संख्या तीस वर्णित है।

आलोचना—शार्ङ्गदेव ने अपने ग्रन्थ को अनावश्यक रूप से जटिल बना दिया है। यदि वे अपने समय की जातियों व रागों के स्वरों का वर्णन कर देते तो रागों की व्याख्या अधिक स्पष्ट और बोधगम्य हो जाती। जाति और राग में प्रत्येक स्वर स्थान की व्याख्या करने के लिये उन्होंने मूर्च्छना का उल्लेख किया क्योंकि वे परम्परा को स्थापित रखने के लिये उत्सुक थें। ऐसा करने से यह ग्रन्थ समझने में कठिन हो गया। राग वर्गीकरण को अधिक मान्यता नहीं मिली।

शुद्ध, छायालय और संकीर्ण वर्गीकरण

शार्ङ्गदेव के 'दस-विधि-राग वर्गीकरण के बाद रागों का एक अन्य वर्गीकरण प्रचार में आया, जिसके अन्तर्गत रागों को रखा गया। वे निम्नवत है :

"शुद्ध सालग संकीर्णा रागावस्तु त्रिविधा स्मृताः।"

इनमें से प्रथम है शुद्ध राग।

शुद्ध राग—"तन्त्र शुद्ध रागत्व नाम शास्त्रोक्त नियामाद रंजक भवती।"

जो राग शास्त्र के नियमानुसार गायाबजाया जाता है। जिसमें अन्य किसी राग की छाया नहीं दिखायी देती, ऐसे राग को शुद्ध राग माना जाता है। शुद्ध राग एक तरह से 'स्वतन्त्र' राग होते थे। दस थाटों के आश्रय राग 'विलावल' 'कल्याण शुद्ध माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त भूपाली, केदार जैसे रागों को 'शुद्ध राग' कहने में कोई आपत्ति नहीं है।

(2) छायालग राग (सप्लंक अथवा सालग)—"तत्र छायालगत्व नाम अन्य छायालगत्वेन रक्ति हेतुत्व भवति।"

अर्थात् जिस राग में अन्य किसी राग की छाया दृष्टिगोचर होती है, उसे छायालग राग कहते हैं। शुद्ध कल्याण में यमन, परज में बसन्त पूर्वी, जलधर केदार में दुर्गा, मेघमल्हार में सारंग, विलाखखानी तोड़ी में भैरवी की छाया दिखायी देती है। अन्य रागों की छाया मूल राग में होते ही छायालग रागों में रजकत्व का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्माण होता है। भूप और शुद्ध कल्याण राग के स्वर एक ही हैं, परन्तु राग भूप के स्वरूप में जब यमन राग की छाया प्रदर्शित होती है तब उसमें एक निराला ही रजकत्व उत्पन्न हो जाता है और 'छायालग' राग निर्माण हो जाता है। रामदासी मल्हार एक स्वतन्त्र राग है लेकिन इस राग में मियाँ मल्हार, गौड मल्हार और शहाना आदि रागों की छाया दृष्टिगत होती हैं। हमीर में कामोद और कल्याण की छाया दीखती है।

संकीर्ण राग (मिश्र राग)—छायालग राग में तो केवल अन्य राग की छाया प्रदर्शित होती है परन्तु जब एक राग में अन्य राग मिलाया जाता है तब वह मिश्रराग कहलाता है।

संकीर्ण रागत्व नाम शुद्ध छायालग
मुख्यत्वेन शक्ति हेतुत्त्व भवति ।"

संकीर्ण अथवा मिश्र रागों में शुद्ध और छायालग रागों का मिश्रण होता है। मिश्र रागों में दो अथवा दो से अधिक राग संयुक्त रहते हैं। भैरव बहार में भैरव और बहार का संयोग है। परन्तु राग खट में सूहा कानड़ा, सांरग, देसी गांधारी और सुधरई आदि छ रागों का संयोजन होता है।

मेल राग वर्गीकरण—मध्य युग में ही राग वर्गीकरण की एक अन्य धारा 'मेल पद्धति' प्रचलित हुई जिसका उद्गम-स्थल मुख्यतः दक्षिण भारत रहा। इस पद्धति के आद्य प्रवर्तक आचार्य विद्यारण्य माने जाते हैं, जिनका काल 14 वीं॰ शताब्दी है। किन्तु उनके ग्रन्थ के उपलब्ध न होने के कारण सोमनाथ कृत "स्वर मेल कलानिधि" को ही मेल पद्धति के आधार ग्रन्थ के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है।

मध्यकाल में ग्राम मूर्च्छना और जाति के प्राचीन लक्षणों का प्रचलन समाप्त हो गया था अतः प्रचलित रागों के शास्त्रीय वर्गीकरण के लिए उन्होंने नया वर्गीकरण किया। जिन रागों के शुद्ध तथा विकृत स्वरों में समानता थी, उन्हें एक वर्ग या श्रेणी में रखा गया और ऐसे वर्ग को मेल की संज्ञा प्रदान की गई। मेलों में प्रसिद्ध राग के अनुसार उस मेल का नामकरण उक्त राग के नाम से किया गया। रामामात्य, लोचन, पुण्डरीक विट्ठल, सोमनाथ, व्यंकटमखी संगीतज्ञ इसी पद्धति के समर्थक रहे। उत्तर के संगीतज्ञों ने इसी प्रणाली को अपनाया, पर मेल के स्थान पर इसे 'थाट' नाम दिया। आरम्भ में 15 मेल माने गये, परन्तु बाद में नवीन राग-रूपों को ध्यान में रखते हुये नये मेल भी सम्मिलित किये गये। पं॰ व्यकटमखी ने सप्तक के अन्तर्गत प्रयुक्त किये जाने वाले 12 स्वर स्थानों पर आधारित 72 मेलों की रचना की। सुविधा के दृष्टिकोण से विभिन्न नाम नथा विभिन्न संख्यक श्रुति स्वरों को एक मान लिया गया। उदाहरणार्थ दक्षिण के कुछ रागों में आठवीं श्रुति वाला 'चतुःश्रुति ऋषभ लगाया जाता है और कतिपय रागों में 9वीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रुतिवाला' पंचश्रुति' ऋषभ प्रयुक्त होता है। यही बात 21 श्रुति वाले चतुःश्रुति 6 तथा 22वीं श्रुति वाले पंच श्रुति ध के सम्बन्ध में भी है। इनको केवल एक ही स्वर के अन्तर्गत रखा गया है।

सप्तक से पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध में विभिन्न स्वरों के रूपों को एक दूसरे के साथ मिलाकर शुद्ध म के साथ 36 तथा प्रति म (तीव्र) के साथ 36—इस प्रकार कुल 72 मेलकर्ताओं की रचना हुई। मुख्य मेलों को 'जनक' राग माना गया और उसमें आने वाले रागों को 'जन्य' कहा गया।

दक्षिण संगीत में 72 मेलों को 6-6 के 12 गुटों या वर्गों में रखा गया इन वर्गों को वहाँ चक्र कहा गया। दक्षिण की इस प्रणाली का उत्तरी प्रणाली पर भी स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। मेल के सम्बन्ध में हम यह कह सकते हैं कि जिससे राग निर्माण हो सके और जिसमें आरोह-अवरोह में सम्पूर्ण स्वरों का प्रयोग हो, ऐसा लक्षण मेल के लिये आवश्यक है। उत्तरी सगीत के प्रमुख मेलों के दक्षिणात्य नाम तथा मेल संख्या निम्नवत हैं :

संख्या	उत्तर हिन्दुस्तानी नाम	दक्षिणात्य नाम	मेल संख्या
1—	कल्याण	मेल कल्याण	65
2—	विलावल	धीर शंकराभरण	29
3—	खमाज	हरिकाम्भोज	28
4—	भैरव	माय मालव गौड़	15
5—	पूर्वी	काम वर्धिनी	51
6—	मारवा	गमन प्रिय	53
7—	काफी	खरहर प्रिय	22
8—	आसावरी	नट भैरवी	20
9—	भैरवी	हनुमत तोड़ी	8
10—	तोड़ी	शुभ पंतुवराली	45

उत्तरी संगीत में मेल राग वर्गीकरण मान्य किया जाता रहा परन्तु मेलों के नाम उत्तरी संगीत के ही रहे ; दक्षिण के 72 मेलों में से चुनकर 10 मेलों को पं० भारतखण्डे जी ने उत्तरी संगीत में ग्रहण किया। मेल को 'थाट' शब्द दिया गया। दक्षिणी संगीत में आज भी 19 मेल मान्य है।

राग-रागिनी वर्गीकरण—प्राचीन संगीत सम्बन्धी ग्रंथों में राग वर्गीकरण परम्परा में राग-रागिनी नामक एक प्रकार सामने आता है। आठवीं शताब्दी के लगभग श्री नारदमुनि ने 'संगीत मकरंद' में 6 राग और बत्तीस रागनियों का उल्लेख किया है। सत्रहवीं शताब्दी के लगभग 'संगीत दर्पण' में पंडित दामोदर जी ने राग-रागनियों का वर्णन किया है। पुंडरीक-विट्ठल ने 16वीं शताब्दी में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने 'रागमाला' नामक ग्रंथ में लोक प्रसिद्धि और परम्परागत पद्धति से हिन्दुस्तानी रागों का राग-रागिनी और पुत्र रागों में वर्गीकरण किया है। उन्होंने छः राग मुख्य माने जो इस प्रकार हैं।

शुद्ध भैरव हिंदोलो देशिकारस्ततः परम ।
श्री रागः शुद्ध नाट्श्य नह नारायणश्चपट् ।

'राग और रागिनी' नामक दो शब्द क्रमशः पुरुष और स्त्री वाचक है। गम्भीरता, विशालता, कठोरता आदि भावों का प्रतीकात्मक नाम 'पुरुष' और चंचलता संकोच और कोमलता आदि भावों का नाम स्त्री प्रदत्त किया गया। स्वरों के माध्यम से अमूर्त को मूर्त रूप देना राग-रागिनी के रूप में भारतीय संगीत की मौलिक देन है। भावाभिव्यक्ति के लिए विभिन्न स्वरावलियों में स्त्री-पुरूष की कल्पना स्वाभाविक है। इस दृष्टिकोण से राग-रागिनी वर्गीकरण भारतीय, जनमानस- लोक जीवन और कल्पना के अनुकूल ही रहा है इस वर्गीकरण का आधार रागों के स्वरूप रूप के अनुसार निर्मित भावरूप, ध्यान और चित्र है।

राग-रागिनी वर्गीकरण का आधार मध्यकाल में प्रचलित सामाजिक व्यवस्था भी थी। उस समय एक मुख्य ऋषि, उसके कुल और उसके वंश पर सामाजिक वंश- व्यवस्था आधारित थी। इस पद्धति को अपनाया गया। मध्यकाल में समाज वृद्धि के लिए एक पुरुष को अनेक पत्नियों की आवश्यकता होती थी। इस सामाजिक व्यवस्था का गहन प्रभाव इस वर्गीकरण पर पड़ा।

नारद के अनुसार छः मुख्य रागों का सम्बन्ध छः ऋतुओं से है। छः रागों में भैरव, मेघ तथा श्री, हिंडोल, दीपक, मालकौंस हैं, परन्तु कतिपय विद्वानों के मतानुसार यह मुख्य राग, भिन्न भी है। वर्ष में छः ऋतुएँ होती हैं—बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत और शिशिर—इन छः ऋतुओं पर आधारित मुख्य छः रागों की योजना निर्मित हुई। हिंडोल, का बसन्त ऋतु से, दीपक का ग्रीष्म, मेघ का वर्षाऋतु से, भैरव का शरद ऋतु, श्री का हेमन्त ऋतु और मालकंस का शिशिर ऋतु से सम्बन्ध जोड़ा गया। इन्हीं ऋतुओं में इनका गायन रंजक लगता है। ऐसी धारणा कई ग्रन्थों में उपलब्ध थी।

कुछ ग्रन्थों में स्त्री-पुरुष प्रकृति के साथ नपुँसक रागों का भी वर्णन आता है।

पं० भातखण्डे जी के अनुसार, 'रागपुरुष वह है जो गंभीर प्रकृति का होगा और सावकास रीति से सम्पूर्ण गाया जायेगा। रागिनी में राग की प्रकृति थोड़ी सी दिखाई देगी उसकी चलन चपल, और उसका उपयोग श्रृंगार की तरफ अधिक होगा।

राग-रागिनी वर्गीकरण के भिन्न-भिन्न प्रकार दीख पड़ते हैं। 'संगीत दर्पण' में पं० दामोदर पंडित ने मुख्यतः चार मतों का वर्णन किया है। जो उस समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रचलित थे—भरत मत, कल्लिनाथ मत, शिव मत और हनुमत मत। इसके अतिरिक्त सोमेश्वर मत रागार्णव मत, इंद्रप्रस्थ मत का भी प्रचलन था। इनमें से मुख्यत: चार मतों के रागों का वर्गीकरण यहाँ प्रस्तुत हैं :

(1) शिवमत : 6 राग 36 रागिनियाँ

1. श्री : 6 रागनयाँ—मालश्री, त्रिवेणी गौरी, केदारी, मधु माधवी, पहाड़िका ।
2. वसंत : 6 रागनियाँ—देशी, देवगिरी वराटी, होडिका, ललिता, हिंडोली ।
3. पंचम : 6 रागिनियां—भैरवी, वडहंसिका भुपाली, कर्णाटी, मालवी, पटमंजरी
4. भैरवी : 6 रागनियां—विभाषा, गुर्जरी, रामकिरी, गुणकिरी, बंगाली, सैंधवी ।
5. मेघ : 6 रागनियाँ—मल्हारी, सोरठी, सावेरी, कौशिकी, : गांधारी, हरश्रृंगार ।
6. वृहन्नाट : 6 रागनियाँ—कामोदी, कल्याणी, आभोगी, नाटिका, सारंग, नटहवीरा ।

(2) हनुमन्मत: 6 राग 30 रागनियाँ

1. भैरव : 5 रागनियाँ—मध्यमादि, भैरवी, वंगाली, वराटिका, सैंधवी ।
2. कौशिक । 5 रागनियाँ—तोड़ी खंवावती, गौड़ी, गुणक्री, कुकुमा ।
3. हिंडोल : 5 रागनियाँ—वेलावली, रामकिरी, देशाख्या, पटमजरी ललिता ।
4. दीपक : 5 रागनियाँ—केदारी, कानडा, देशी, कामोदी, नाटिका ।
5. श्री : 5 रागनियाँ—वसंती, मालवी, मालश्रीं, धनासिका, आसावरी ।
6. मेघ : 5 रागनियाँ—मल्हारी, देशकारी, भूपाली, गुर्जरी, टंका ।

(3) कृष्ण : 6 राग, 36 रागनिवां

1. श्री राग : गौरी, कोलाहल, धवला, वरीराजी, मालकाश, देव गंधार ।
2. बसन्त : अन्धाली, गुणकली, पटमंजरी, गोडकिरी, धांकी, देवसाख ।
3. भैरव : भैरवी, गुर्जरी, विलावली, विहाग कर्नाट,कानडा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

4. पंचम : त्रिवेणी, हस्तंतरेही, अहीरी, कोकभ, वेरा री, आसावरी।
5. नटनारायण : त्रिबंकी, तिलंगी पूर्वी, गांधारी, रामा, सिन्धमल्लारी।
6. मेघ : बंगाली, मधुरा, कामोद, धनाश्री, देवतीर्थी, दिवाली।

(4) भरत मत : 6 राग 30 रागनियाँ

1. भैरव : मधुमाधवी, ललिता, बरारी, भैरवी बहुली।
2. मालकोश : गौरी, विद्यावती, तोड़ी, खम्बावती, कुकुभ।
3. हिंडोल : रामकली, मालवी, देवारी, आसावरी, केकी।
4. दीपक : केदारी, गौरी, रूद्रावती, कामोद गुर्जरी।
5. श्री : सैंधवी, काफी, ठुमरी, विचित्रा, सोहनी।
6. मेघ : मल्लारी, सारंग, देशी, रतिवल्लाभ, कानरा।

इन चारों मतों में हनुमत् मत का प्रचलन अधिक रहा, परन्तु मुख्य वात यह है कि इन मतों में एकरूपता नहीं है। रागों को स्त्री या पुरुष नाम किस आधार पर दिया गया है। यह सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं है। रागों और रागानियों के स्वर या भाव में साम्य नहीं, दिखाई देता है। किस आधार पर कुछ रागों को नपुंसक बताया है यह समझ में नहीं आता। राग-रगिनी वर्गीकरण का प्रारम्भिक काल, राग, रागनियों की संख्या व उनके नाम, उनके स्वरूप और भावरूप, उनके परस्पर सम्बन्ध एवं वर्गीकरण का वैज्ञानिक और तर्कसंगत आधार आज भी शोध के विषय हैं। यह वर्गीकरण प्राचीन स्वरूपों के लिये ठीक होगा परन्तु उनकी आवश्यकता आज नहीं है। आजकल गायक राग व रागिनी शब्दों को यों ही अर्थात ,उनमें परस्पर भेद न मानते हुये प्रयोग करते हैं।

प्रचलित संगीत के सन्दर्भ में राग-रागिनी शब्द कहाँ तक उपयुक्त है? संगीत में नवरसों का प्रयोग होता है—श्रृंगार, गम्भीर, वीर, करूण आदि भाव सर्वकालीन हैं। नाट्य गायन और नृत्य शैली से इन भावनाओं की अभिव्यक्ति होती रही है। ताण्डव नृत्य से वीर रस, लास्य नृत्य से श्रृंगार रस का प्रदुभाव होता है। ध्रुपद गायन शैली से गम्भीर रस का उद्भव होता है अतः ध्रुपद गायन शैली के राग पुरुष प्रकृति के समझने चाहिये। ठुमरी से श्रृंगार रस, करूण रस का निर्माण होता है। अतः ऐसे राग स्त्री राग समझे जाने चाहिये, स्त्री यानी कोमलता कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति वाली रागिनी कही जायेगी।

गम्भीर प्रकृति के राग पुरुष राग है—जैसे, भूपाली, दरबारी, मालकोंश, मल्हार, पूरिया। चंचल प्रकृति के राग जैसे देशकार, अड़ाना, भैरवी; नायकी, सोहनी आदि रागों को रागिनी की संज्ञा देना ही उचित प्रतीत होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आजकल ख्याल का युग है। गम्भीर रागों पर चंचल रागों का प्रभाव पड रहा है। ख्याल ठुमरी शैली से प्रभावित हो रहा है। फिर भी वे राग जो ठुमरी शैली के हैं—जैसे, खमाज, भैरवी पीलू, देश, पहाड़ी आदि, यदि इन रागों में विलम्बित ख्याल गायकी का प्रयोग किया जाय तो वे रागनियां न होकर राग ही कहलायेंगे। इसी प्रकार दरबारी, तोड़ी जैसे राग, जिनको आज चित्रपत संगीत में सुगम संगीत के लिये प्रयोग किया जाता है, अपनी गंभीरता खोकर, राग न रह कर रागनियां ही हो गई हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि राग-रागिनी ये संज्ञाएँ समय के अनुसार परवर्तित होती रहती है।

एक ही राग, गायन शैली के अनुसार दोनों रूप धारण कर लेता है। विलम्बित अंग से गाने पर पुरुष प्रकृति अर्थात राग और चपल गति से गाने पर स्त्री प्रकृति अर्थात रागिनी ही समझना चाहिये जैसे देश में ख्याल और ठुमरी दोनों ही गाये जाते हैं। अतः राग और रागिनी दोनों ही संज्ञाओं को ये राग धारण कर लेते हैं। मध्यकाल में मालकंस को वीर रस में चित्रित किया गया है, परन्तु आज के युग में मालकंस को रागिनी की संज्ञा देना उचित न होगा। आज रागों के रूप में प्राचीन काल के रागों से कोई समानता नहीं दृष्टिगोचर होती। अतः इस वर्गीकरण की कोई मान्यता नहीं है।

आधुनिक वर्गीकरण

1813 में मुहम्मद रजा ने जो पटना के निवासी थे, 'नगमाते आसफीं' नामक ग्रन्थ लिखा। रजा उस समय के राग-रागिनी और पुत्र रागों के असंगत और अर्थहीन वर्गीकरण से पूर्णतया असन्तुष्ट थे और उन्होंने बुद्धिगम्य सिद्धान्तों के आधार पर संगीत को प्रतिष्ठित करने का बीड़ा उठाया। उन्होंने साहस पूर्वक चारों मतों (भरतमत आदि) की अलोचना की, जिन्हें उस काल की आवश्यकता को देखते हुये वे बिल्कुल अनुपयोगी और निरर्थक समझते थे। उन्होंने 6 राग और 36 रागनियों की पद्धति का अन्वेषण किया जो इस प्रकार है :

	राग नाम	रागिनी नाम
1.	भैरव	: भैरवी, रामकली, गुर्जरी, खट, गंधारी, आसावरी।
2.	मालकौस	: बागेश्वरी तोड़ी, देश, सूहा, सघराई, मुल्तानी।
3.	हिंडोल	: पुरिया, बसन्त ललित, पंचम, धनाश्री मारवा।
4.	श्री	: गौरी, पूर्वी, गौरा, त्रिवणी, मालश्री, जेताश्री।
5.	मेघ	: मधुमाद, गौड़, शुद्ध, सारंग, बडहस, सामंत, सौरठ।
6.	नट	: छायानट, हमीर, कल्याण, केदार, विहागड़ा, यमन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग और रागनियों में समानता हो—यही सिद्धान्त उनके वर्गीकरण का रहा। रजा एक प्रतिभाशाली संगीतज्ञ थे।

Dr. Ranade के अनुसार—"Naghamate Asafi" of Mohammad Raja is yet another work of the same type and was composed by its author about the year 1813. Thoroughly dissatisfied with the absurd and meaningless Raga-Ragini classification of his times, Raja took it into his head to introduce some sort of intelligent principle of classification. The central principle upon which he based his own mata or system was that between every Raga and its Raginis, there must be some similarity or common features.".

उन्होंने सर्वप्रथम शुद्ध सप्तक के रूप में विलावल का प्रयोग किया। परन्तु समय के साथ उनका राग वर्गीकरण मान्य न रह सका। आज इस पद्धति में अवैज्ञानिकता और न्याय असंगता की भरमार दिखाई देती है।

रागांग वर्गीकरण—भारतीय संगीत में रागों के विकास में रागांगों का सर्वाधिक योगदान रहा है। इसका श्रेय बम्बई के श्री नारायण मोरेश्वर खरे को उपलब्ध है। उन्होंने अपने अनुभव से 30 स्वर समुदाय चुने जिन्हें रागांग कहा, ये रागांग अर्थात विशिष्ट स्वर समूह राग को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदःन करते हैं। इसी अंग के सहारे नये-नये रागों का उदभव हुआ।

प्रचलित संगीत में कई ऐसे रागांग है जो अनेक संकीर्ण या छायालग रागों को जन्म देते हैं और साथ ही मूल रागों से अपना सम्बन्ध स्थापित रखते हैं। कान्हणा, भैरव मल्हार, सांरग, नट विलावल, कल्याण, देश, धनाश्री आदि ऐसे ही रागांगों में से है। उदाहराणथं रे प, यह मीड़ युक्त स्वर संगति मल्हार अंग की है। प रे कल्याण का टुकड़ा है। इसी प रे का प्रयोग छायानट में भी होता है। इस प्रकार इन विशिष्ट स्वर समुदायों का राग रूपों के निर्माण में अत्याधिक योगदान रहा हैं। रागागों के स्वरों में समानता होते हुये भी केवल विभिन्न रागांगों के प्रयोग से रागों में परस्पर भिन्नता प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए, भैरव तथा कलिंगड़ा दोनों समप्रकृति वाले राग हैं। दोनों में कोमल रे_ ध_ का प्रयोग होता है। परन्तु फिर भी दोनों का स्वरूप स्वतन्त्र है। दोनों में भैरव रागांग का प्रयोग है। परन्तु दोनों एक दूसरे से भिन्न है। भैरव के समान कलिंगड़ा में रे_, ध_ कोंमल है, पर आन्दोलित नहीं है। भैरव में गंधार पर न्यारा नहीं है, पर कलिंगड़ा में गंधार पर न्यास है, भैरव में ग म ध_ प की संगीत में पंचम का लंघन है, पर कलि गड़ा मेंग म प, ध_ प ध_ म प म ग, म ग रे_ s सा—इस प्रकार पंचम का निरन्तर प्रयोग है।

कान्हड़ा भी एक रगांग राग है। जिसके अंग से अनेक प्रकार गाये-बजाये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाते हैं पर सबका अपना पृथक व्यक्तित्व है। कान्हड़ा का मुख्य अंग है प नी प स्वर संगति और ग म रे सा' का वक्र अवरोहण। यह स्वर संगतिया कान्हड़ा के सभी प्रकारों में आती हैं, पर फिर भी सभी प्रकार एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हैं। जैसे नायकी कान्हड़ा में कान्हड़ा रागांग दृष्टिगोचर होता है, नायकी में रे प स्वर संगीत के साथ पंचम् का विशिष्ट प्रयोग ग म नी प नी म प इसको कान्हड़ा के अन्य प्रकारों से भिन्न कर स्वतन्त्र स्वरूप प्रदान करता है। कोमल निषाद और मध्यम का कर्ण युक्त पंचम् कान्हड़ा के अन्य प्रकारों में नहीं दृष्टिगत होता है। इसके अतिरिक्त इसमें गन्धार का प्रयोग दरबारी एवम् मल्हार दोनों ही अंगों से होता है।

नायकी के समान ही कान्हड़ा के अन्य प्रकार भी एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हैं। सूहा के आरोह में ऋषभ वर्जित, सुघरई में सारंग अंग की अधिकता से रे म प का चलन, और शहाना में ध प सां की चलन—इन सभी भिन्नताओं के कारण कान्हड़ के प्रकार होते हुये भी पृथक्-पृथक् स्वरूप कायम रखते हैं। इसी प्रकार अन्य रागांग भी है, जिनसे अन्य अनेक रागों की सृष्टि का नियम है।

थाट-राग—वर्गीकरण

संगीत सदैव परिवर्तनशील रहा है, सम्भवतया यही कारण है कि मध्य-युगीन राग और उनके वर्गीकरण की प्रणाली अप्रचलित हो गई और बाद में विद्वानों ने उसका अनुसरण नहीं किया, राग वर्गीकरण के लिये साधन अपनाये गये। आज कल के प्रचलित थाट-राग के वर्गीकरण के प्रचार का श्रेय पं० भातखण्डे जी को है। संगीत कला की क्षत-विक्षत पद्धतियों के स्थान पर आधुनिक थाट पद्धति का निर्माण उन्होंने किया, उन दिनों राग-रागिनी पद्धति प्रचलित थी, संगीतज्ञ उनके नियमों पर ध्यान न देते हुये उन्हें गाते थे, पंडितजी ने गम्भीर अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि राग-रागिनी प्रणाली के अन्तर्गत जो वर्गीकरण है वह आज के रागों पर लागू नहीं हो सकता। गत कुछ शताब्दियों से सभी रागों में परिवर्द्धन एवं परिवर्तन हुये हैं। अतः रागों के पुराने और नये स्वरूप में किसी प्रकार की समानता नहीं है। इसके स्थान पर उन्होंने दक्षिण की जनकजन्य मेल प्रणाली को राग वर्गीकरण की अधिक समुचित प्रणाली माना। उन्होंने व्यंकटमुखी के ही 72 थाटों में से केवल 10 प्रसिद्ध थाटों का चयन किया, जिन पर प्रचलित सभी रागों का वर्गीकरण सम्भव हुआ। इस वर्गीकरण का आधार न केवल दक्षिण बल्कि उत्तर में, 'राग तरंगिणी' 'राग विबोध', 'हृदय कौतुक' और 'हृदय प्रकाश' जैसे ग्रन्थों में उपलब्ध है। आधुनिक संगीत में राग वर्गीकरण के लिये प्राचीन मूर्च्छनाओं के स्थान पर मेल अथवा ठाठ शब्द पाते हैं। सभी छोटे बड़े अन्तराल जो रागों के लिए आवश्यक है, सप्तक की सीमाओं के अन्तर्गत लाये गये और मूर्च्छनाओं की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राचीन प्रणाली का परित्याग किया गया। जिस प्रकार मूर्च्छनायें प्राचीन जातियों के लिये स्रोत रही, उसी प्रकार, ये मेल अथवा थाट हमारे रागों के स्रोत हैं।

पं० भातखण्डे जी ने समस्त रागों को 10 थाटों में विभाजित किया। थाटों में रागों का वर्गीकरण करने के उपरान्त प्रत्येक थाट में आश्रय राग उन्होंने बतलाये, जिसके कारण अंशतः राग-रागिनी वर्गीकरण का भी समर्थन होता है। इन्हीं थाटों में से रागांग बनते हैं, जिनके अगों द्वारा अनेक अन्य रागों की सृष्टि होती है। उदाहरण के लिये कल्याण थाट में कल्याण, विलावल में विलावल प्रकार, भैरव में भैरव प्रकार। किसी थाट में अनेक भिन्न-भिन्न अंगों को लेकर राग बनते हैं तो वह भी पण्डित जी ने समझाया है—जैसे खमाज थाट में खमाज अंग, झिझोटी अंग, देश अंग, सोरठ अंग, पूर्वी थाट में पूर्वी अथवा श्री अंग, काफी थाट में काफी अंग, धनाश्री अंग, मल्हार अंग, कान्हड़ा अंग इत्यादि रागों के अनुसार थाटों में उत्पन्न हुए रागों के उपवर्ग भी उन्होंने बताये हैं।

उनके चुने हुए 10 थाट इस प्रकार है—

	दक्षिणी मेल	उत्तरी थाट
1.	शांत कल्याण	यमन
2,	धीर शंकराभरण	विलावल
3.	हरि केदार गौल	खमाज
4.	माया मालव गौल	भैरव
5.	काशी राम क्रिया	पूर्वी
6.	गमक क्रिया	मारवा
7.	श्री राग	काफी
8.	नारी रीति गौल	आसावरी
9.	जनी तोड़ि	भैरवी
10.	शेवपंतुवराली	तोड़ी

रागों का साम्य देखते हुए उन्हें किसी एक-एक जनक थाट के अन्तर्गत रखा गया है। उदाहरार्थ, हमीर, केदार, कामोद, श्याम आदि राग जिनका यमन थाट से स्पष्ट साम्य है, उसमें लिये गये। ठीक उसी प्रकार श्री, जेतश्री, पूरिया, धनाश्री, गौरी आदि को पूर्वी थाट और कलिंगड़ा, गुणक्री, जोगी रामकली, आदि को भैरव थाट में रखा गया है।

पं० भातखण्डे जी का थाट-राग वर्गीकरण आज सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित है। राग वर्गीकरण के प्रस्तुत प्रकरण में हमने जाति गायन से लकर वर्तमान युग की थाट पद्धति तकका विवेचन किया है। हर पद्धति कुछ काल के वात बिलुप्त होती गई। ग्राम राग वर्गीकरण की आज के संदर्भ में जटिलता, राग-रागिनी वर्गीकरण की पौराणिकता, मेल पद्धति की यान्त्रिकता एवं असमंजस्यता को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमने अनुभव किया। आलोचकों का कथन है कि थाट पद्धति भी स्वत: में अपूर्ण है। थाट को जनक का और रागों को उन जनक थाटों से जन्य माना गया है। यहाँ प्रश्न उठता है कि जो स्वर जनक थाट में ही नहीं है, ऐसे स्वरों का प्रयोग उसके जन्य रागों में कैसे समीचीन हो सकता है। कुछ रागों के स्वरों में थाट के स्वरों से असमानता है जैसे—

(1) कल्याण थाट के जन्य रागों में केदार, कामोद, हमीर, विहाग, गौड़ सारंग इत्यादि का समावेश माना गया है। इन सभी में शुद्ध मध्यम का प्रयोग प्रयोग वहुलता से हुआ है और तीव्र मध्यम अल्प मात्रा में प्रयुक्त है, इतना ही नहीं केदार जैसे राग में शुद्ध मध्यम प्राण स्वर के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रश्न स्वभाविक है कि कल्याण के जन्य रागों में क्यों रखा गया है।

(2) कल्याण थाट की ही भाँति मारवा थाट तथा जन्य रागों में भी ऐसी ही अव्यवस्था दिखाई देती है। मारवा थाट से उत्पन्न ललित रागों का प्राण शुद्ध मध्यम है। किन्तु इस ललित के जनक के रूप में जिस मारवा थाट का चयन किया गया है उस थाट के मूल में ही 'शुद्ध मध्यम का अभाव है।

(3) खमाज में शुद्ध निषाद को स्थान नहीं है, केवल कोमल निषाद ही रखा गया है किन्तु उस थाट के अनेक जन्य रागों में दोनों निषादों का प्रयोग अनिवार्य है—यथा खमाज, देश, दिलक कामोद, झिझोटी, तिलंग, खम्वावती, इत्यादि करके उसे काफी थाट में रखने में समानता नहीं आती।

(4) काफी थाट में भी कोमल ग॒, नि॒ को ग्रहण किया गया है जवकि उसके अनेक जन्य रागों में कोमल ग॒ नि॒ के अतिरिक्त शुद्ध ग नि का प्रयोग भी वहुलता के से होता है। इसी प्रकार चन्द्रकोश में शुद्ध निषाद का प्रयोग हुआ है।

(5) विलावल थाट के रागों में अल्हैया बिलावल का आज खूब प्रचार है, जिसमें कोमल निषाद का प्रयोग विवादी स्वर के नाते खूब होता है।

यथार्थत: आज के लक्ष्यगत रागो के वर्गीकरणार्थ एक पूर्ण सुसंगत और शास्त्रीय नूतन वर्गीकरण पद्धति की अनिवार्य आवश्यकता है, जिसमें रागों के भाव पक्ष और बाह्य पक्ष दोनों के सर्वांगीण विचार का पक्ष हो। परन्तु राग-वर्गीकरण की अव तक की पद्धतियों के देख कर थाट वर्गीकरण से लाभ हुआ है और गायन-वादन निश्चित नियमों में बँध कर विद्यालयीन शिक्षा में सुचारू रूप से चल रहा है, अत: इस पद्धति को हमें मान्यता देनी है।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घराना

'घराना' गायन-वादन की एक विशिष्ट शैली है। संगीत का साधन मानवी आवाज है, जो रूप की भाँति भिन्न-भिन्न है। यही आवाज जब योग्य गुरू द्वारा संस्कारित की जाती है एवं योग्य शिष्य गहन रियाज, गूंज लालित्य, तारता स्निग्धता लाकर आवाज को संस्कारित करता है और यही आवाज जब भिन्न-भिन्न अलंकारों द्वारा स्वर बन जाती है, तब यहीं से घरानों का आविर्भाव होता है।

संगीत में ही गुरू और शिष्य के सम्बन्ध इतने नजदीक के हो सकते हैं, अतः घराने का सम्बन्ध केवल शास्त्रीय संगीत से है। यदि हमारी संगीत परम्परा में घराने न होते, तो हमारे संगीत की पैतृक सम्पत्ति सुरक्षित न रहती। घराने हमारे संगीत की संचित निधि की तरह रक्षा करते हैं। 'घराना' शब्द मुगल काल से प्रचार में आया, जबकि संगीत अपनी स्वर्णिम अवस्था में था। कहा जाता है कि संगीत सम्राट् तानसेन के बाद हीं घरानों की परम्परा कायम हुई। गुरु सच्चे मन से 'नाद-ब्रह्म' की उपासना करके उसके सूक्ष्म भेद एवं रहस्यों को अपने शिष्यों को आत्मसात् कराता था, क्योंकि गुरू को राजाश्रय प्राप्त था, रोजी-रोटी की चिंता तो थी नहीं; अतः अपना सम्पूर्ण ध्यान इसी बात पर केन्द्रित करता था कि किस प्रकार संगीत की गायकी को श्रेष्ठत्व प्रदान हो। यही कारण है कि मुस्लिम बादशाहों के इस दरबार में भारतीय संगीत के अभिजात स्वरूप की पूर्ण उन्नति हुई, जिसका पूरा श्रेय इन घरानों को जाता है। हिन्दुस्तानी संगीत का दूसरा नाम ही घरानेदार गायकी है। घरानों के ही माध्यम से श्रेष्ठ गुरु-परम्परा की तालीम में योग्य शिष्य ने स्वर के गूढ़ रहस्यों एवं संगीत की बारीकियों को अपनी गायकी में संक्रमित किया। गायकी की सभी बारीकियों; जैसे—गमक, कण्ठ, मीड़ आदि शिष्य के गले में जड़ जमा कर उसकी आवाज में लोच और वजन उत्पन्न कर देती थीं। गुरू का यह प्रयास वर्षों चलता था और तालीम के द्वारा शिष्य की आवाज स्वतः सुन्दर (Cultured) हो जाया करती थी। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप संगीत की गायकी का लेन-देन 'शिष्य-दर-शिष्य' के रूप में बढ़ता चला जाता था। तब एक शास्त्रीय संगीत की गायकी की एक विशिष्ट परम्परा चल पड़ती थी, जिसे घराने का नाम दिया जाता था। पंडित शार्ङ्गदेव ने संगीत की इसी तालीम की ओर इशारा किया है—

"सुसम्प्रदायों गीतज्ञे गीयते गायनाग्रणी"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वास्तव में स्वर-श्रुति का सही-सही रूप इन्हीं सम्प्रदायों यानि कि घरानों ने सँवारा है।

'प्रो० रमणलाल मेहता' के कथानुसार—

"भारतीय संगीत के संदर्भ में पारिवारिक परम्परा (घराना) का महत्वपूर्ण स्थान है। इस देश में ऐसे अनेक हुनर और कलाएँ हैं, जिन्हें आज भी कुछ जातियों और परिवारों ने अपने निश्चित दायरे में सुरक्षित कर रखा है। इन दायरों के फलस्वरूप भारत की कलाओं की सुरक्षा हजारों वर्षों से होती चली आ रही हैं। इसके फलस्वरूप इस प्रणाली द्वारा अनेक उत्तम, अमूल्य कलाओं की सुरक्षा हुई है, इसी प्रकार संगीत की कुछ विशिष्ट परम्परा, किसी विशिष्ट परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित और विकसित होती चली आती है। ऐसी परम्परा को 'घराना' नाम दिया जाता है।"

'वड़े गुलाम अली खाँ' ने कहा है कि—

"Music was something divine and therefore, highly individualistic while it had to be taught in a rigorous manner to an enlightened Shishya, the style of an Ustad in many cases, did work as an inhibiting factor in ultimately developing the Shishayas own genous. Music is like an ocean and the individual can master every techenique through the medium of Gharana only."

कहा गया है, "वंशो द्विविधाजन्मना विद्यया च।"

अर्थात् वंश दो प्रकार से चलते हैं, एक जन्म से और दूसरा विद्या से। एक घर में जन्म लेने वाले सभी व्यक्तियों का एक परिवार या घराना होता है, वैसी ही एक गुरू से विद्या पाने वाले सभी शिष्यों का एक परिवार या घराना होता है।

श्री वामनराव देशपाण्डे ने घराने की परिभाषा इस प्रकार दी है—

"Gharana, literally means a 'Family', a term applied to a school of music, comprising a creatively innovating Founder, his pupils and those who follow in the line of discipleship. Every up coming artist always possesses some heritage handed down by tradition to which he makes his own additiou. If he achieves eminence and sets up his own school of followers, he becomes a pioneer of a new style".

डॉ० आबान ए मिस्त्री ने घराने की बड़ी सुन्दर परिभाषा की है, उनके अनुसार, "कोई एक असाधारण, प्रतिभाशाली, प्रबल, महत्वाकांक्षी और कुछ विशेष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर दिखाने की क्षमतापात्र व्यक्ति, जब अपनी परम्परागत विद्या में एक अभिनव कल्पना का निर्माण करता है, तब उसकी कला निर्मिति में एक पृथक दृष्टिकोण के पूर्ण वैशिष्ट्य का उद्भव होता है, जो बाद में कुछ विशेष नियमों और सिद्धान्तों से अनुबन्धित हो जाती है। शनैः-शनैः दूसरे लोगों की शैली से उस शैली की बन्दिशों में इतना अधिक अन्तर सुस्पष्ट हो जाता है कि जिसकी पृथकता तुरन्त पहचानी जा सकती है, तब वह शैली घराना बन जाती है, जो शिष्य परम्परागत साभिमान और कट्टरतापूर्वक निभाई जाती है। घराने के आद्यकर्त्ता के प्रति श्रद्धा प्रेम, और शिष्टता की भावना उसके नियमों को अक्षरंशः पालन की क्षमता तथा उसके प्रति गौरव, और अभिमान की वृत्ति घराने के परम्परागत विकास का मूल श्रोत मानी जा सकती है।"

आज भी घराना शब्द का जब उच्चारण होता है, तब मन में एकबारगी कल्पना आती है कि उस गायकी में अवश्य कोई न कोई कुलीन आचरण की मर्यादा होगी। घरानेदार गायकी हिन्दुस्तानी संगीत की प्रमुख विशेषता है, जहाँ गायक अपने कृतित्व या पुत्र को खून से नहीं पहचानता, बल्कि स्वर से पहचानता है। घराना भारतीय गायकी के संवर्धन के लिए एक उच्चकोटि का विद्यालय साबित हुआ है। घरानों का संगीत तानसेन की ध्रुपद परम्परा और सदारंग व अदारंग की ख्याल परम्परा से विशेष रूप से सम्बन्धित रहा है। घरानों के माध्यम से से ही हम उस संगीत का ऐतिहासिक मूल्यांकन कर सकते हैं। एक तरह से घराने हमारे मार्ग-दर्शक अथवा पद-पदर्शक रहे हैं। यदि घराने न होते, तो हमारे संगीत की पैतृक सम्पत्ति सुरक्षित न रहती। घरानेदार गायकों ने शास्त्रों को स्वरों के माध्यम से सजीव और जीता-जागता बनाया। मधुर कन्ठ द्वारा सरस्वती की उपासना की और विद्वानों एवं पण्डितों के एकाधिकार से संगीत को परे ले जाकर आम श्रोताओं के बीच रस का माध्यम बनाया।

कु० जयश्री बनर्जी के अनुसार—

"The traditional method of teaching our classical music has generally been informed by the philosophy and methodology of the Guru-Sishya-Parampara. Indeed the musical proficiency blossomed largely through an accumulation of technique and skill being handed down from father to son or from Guru to Shishya. Thus emerged in India a self immersed musical culture confined usually to the charmed circle of a few Gharanas. The Charanas stressed mainly on the performed music, practical. They dwell relatively little on theoretical ideas and concepts of history. Musicians memorized the traditions handed down by

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

their musical ancestors. Customarily the Shishya or disciple, absorbcd without question all that his Guru taught and so analytical and objective judgement was never developed in the students "

घरानों के नियम—विद्वज्जनों ने घरानों की परस्पर भिन्नता को देखते हुये कुछ नियम बनाये जो 'घराना' शब्द का निर्वाह करने के लिए आवश्यक माने गये।

(1) किसी घराने के लिए कम से कम तीन पीढ़ियों की आवश्यकता होती है। घराने के अन्तर्गत गुरू-शिष्य परम्परा के अनुसार किसी भी योग्य शिष्य को उसकी क्षमता के अनुसार अपने घरानों में शामिल करना तथा अपने ही पुत्र-पौत्रादि कुटुम्बियों को पीढ़ी दर पीढ़ी शिक्षित करना और अपनी परम्परा के अनुसार उसे ढालना दोनों ही आते हैं।

(2) प्रत्येक घराने के शिष्य अपने गुरू की आवाज और गायन शैली का अनुकरण करें, यह आवश्यक है।

(3) हर घराने के कुछ मुख्य राग होते हैं, और बंदिशें, जिन्हें उस घराने का गायक प्रचलित करता है।

(4) घरानों की मौलिक गायकी तथा उनकी गायकी के मुख्य सिद्धान्तों का पालन होना आवश्यक है।

आनुवंशिकता, संयम, स्वर, प्रामाण्य, लय संस्कारिता, स्वर व स्वर साधितलय, कुछ ऐसे तत्व हैं, जिनका कम व अधिक प्रयोग ही विभिन्न घरानों की गायकी की पहचान के रूप में परिलक्षित होता है।

घराने के मूल में गुरू शिष्य परम्परा का महत्वपूर्ण स्थान है। गुरू की सारी विशेषताएँ शिष्य के गले से, या हाथ से निकले, यह वर्षों की दीर्घ तालीम से ही सम्भव हो सकता है। एक ही घराने के कलाकारों की परम्परागत शैली चलते रहने पर भी प्रत्येक व्यक्ति विशेष का उसमें योग रहता है जो उसकी नियमबद्ध परम्परा को सम्भाले हुये पीढ़ी पर पीढ़ी उसे सजीव एवं समृद्ध बनाता जाता है।

गायकी के मुख्य पाँच घराने माने गये। ग्वालियर घराना, जयपुर घराना, किराना घराना, आगरा घराना, और पटियाला घराना।

इसी प्रकार तबला वादकों के अनेक घराने बने, दिल्ली घराना, लखनऊ घराना, बनारस घराना, नाना पानसे का घराना, कुदऊ सिंह घराना, मंगलवेढ़ेकर घराना, इत्यादि।

सितार में, सोनिया घराना, इमदाद खाँ घराना, लखनवी घराना आदि बनें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी प्रकार पखावज में और नृत्य के क्षेत्र में विभिन्न घरानों का निर्माण हुआ। इन घरानों में परस्पर भिन्नता अवश्य रही, किन्तु स्वर साधना द्वारा गांभीर्य उत्पन्न करना, आवाज में वजन लाना, तथा भावोत्पादकता इत्यादि बातों पर हर घराने के विद्वानों ने ध्यान दिया। वादन, नृत्य और गायन इन तीनों में गायन के घरानों का प्रचलन अधिक रहा। घराना शब्द केवल उत्तर में ही प्रयुक्त हुआ तथा दक्षिण में उसे 'सम्प्रदाय' कहा है।

इन घरानो के अतिरिक्त भी कुछ स्वतन्त्र विचारधारा वाले महान विद्वान हुये, जिन्हें संगीत शास्त्र का आधार कहा जा सकता है। इन विद्वानों ने अपना मत चलाया तथा स्वतन्त्र विचारधारा से संगीत जगत को महत्वपूर्ण योगदान देते रहे। घरानेदार गायकी से हटकर संगीत को नया मोड़ देने में दो महत्वपूर्ण नाम दिये जा सकते हैं। विष्णुनारायण पलुस्कर और विष्णुनारायण भातखंण्डे। यह दोनो स्वयं में घराना रहे। इन्होंने भारतीय संगीत में एक नया युग स्थापित किया, अनेक महाविद्यालयों की स्थापना करके संगीत को घरानेदार परम्परा से अलग लाये।

पं० ओमकार नाथ ठाकुर, विनायकराव, पटवर्धन, पं० रविशंकर, कुमार गंधर्व, भीमसेन जोशी को भी स्वयं में एक "घराना" कहें तो अनुचित न होगा।

तबला वादन के क्षेत्र में उस्ताद अहमद जान थिरकवा महान कलाकार थे। पं० किशन महाराज या उस्ताद अल्लारखा खाँ सारे विश्व में प्रसिद्ध हैं, उनके वादन में उनकी निजी प्रतिभा तथा रंगीन कल्पना सृष्टि अवश्य आयी है। जो उनकी अपनी शैली है, किन्तु उसे हम घराना नहीं कह सकते।

घरानों का उद्भव एवं महत्व, स्वरूप व विकास—संगीत में घराने कब से प्रारम्भ हुये, इसका उत्तर ठीक-ठीक देना कठिन है। अधिकतर विद्वानों के अनुसार घरानों की परम्परा करीब ढाई-तीन सौ साल से अधिक पुरानी नहीं है। वैसे तो मध्य युग में भी ध्रुपद की चार वाणियाँ प्रचलित थी; जिन्हें आज की भाषा में चार घराने कहा जा सकता है। इन चार वाणियों से पूर्व भी भरत मत, शिव मत, हनुमन्त मत, नारद मत, जैसे चार मत प्रचलित थे, जो घराने के समान ही थे। अतः हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि पहले भी घराने थे, किन्तु उनका स्वरूप भिन्न था, 'वाणी' और 'मत' को घराने का ही पर्यायवाची माना जा सकता हैं।

कुछ विद्वानो के अनुसार संगीत के घरानों की नींव आठवीं से बारहवीं शताब्दी के बीच राजपूत काल में पड़ चुकी थी। संगीतकारों को राजदरबार में आश्रय मिलता था। इन संगीतकारों ने अधिकतर राजाश्रय में ही उन्नति की। परन्तु ये संगीतकार अपने ज्ञान को इतना छिपाकर रखते थे कि वे किसी अन्य जाति वालों को तो क्या अपनी जातिवालों को भी बताने में संकोच करते थे। वे संगीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रंथ भी नहीं लिखते थे। इसी संकीर्णता के फलस्वरूप संगीत के क्षेत्र में घरानों की नींव पड़ गई, इन घरानों के माध्यम से संगीत पीढ़ी, दर- पीढ़ी चला करता था। परन्तु अच्छा शिष्य और पुत्र न होने से कभी-कभी संगीतकारों के साथ ही उनका संगीत समाप्त हो जाता था। अँग्रेजों के काल में संगीतकला, अनपढ़ व्यवसायी लोगों के हाथ पहुँच गयी। इन संगीतकारों के सामने व्यक्तिगत स्वार्थ ही प्रधान था—जहाँ घरानों को और आश्रय मिला, और उनकी जड़ें मजबूत हो गयी।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राजपूत युग में घरानों की पृष्ठभूमि तैयार हुई और आधुनिक घरानों का पूर्णतः विकास अंग्रेजों के शासन काल में ही हुआ।

कुछ विद्वानों के अनुसार संगीत में घरानों का प्रारम्भ मुगल युग के अन्तिम समय से ही हुआ है क्योंकि किसी भी प्राचीन या मध्यकालीन ग्रंथ में घराना शब्द का उल्लेख नहीं मिलता। अतः घरानों का अस्तित्व ढाई सौ साल से अधिक पुराना नहीं हो सकता।

यदि घरानों के उद्भव के पूर्व की स्थिति पर विचार करें तो हम देखते हैं कि मुसलमानों के आक्रमण और शासन के पश्चात शुद्ध रूप से हिन्दू कहलाने वाली सभी भारतीय कलाओं पर यवन संस्कृति का प्रभाव पड़ना आरम्भ हो गया। मुगल युग में कुछ व्यवसायी कलाकारों के ऐसे समुदाय अस्तित्व में आए, जिन्होंने अपने कलात्मक प्रस्तुतीकरण में कुछ अपनापन तथा कल्पना सौंदर्य की कुछ विशिष्ट शैली का प्रयोग करना आरम्भ किया। प्रत्येक समुदाय के प्रमुख कलाकारों के प्रस्तुतीकरण में अपना निजी योगदान होता था, इस तरह घराने तथा घरानेदार कलाकार अस्तित्व में आये।

अकबर युग में जिस तरह ध्रुपद की चार वाणियाँ प्रसिद्ध थीं, उसी तरह इन्हीं व्यवसायी कलाकारों के कारण मुगल बादशाह, मोहम्मद शाह के पश्चात तबला, पखावज, तथा ख्याल गायकी के घरानों की नींव पड़ने लगी, जो मुगल युग के बाद अधिक समृद्ध एवं विस्तृत हुई। इस तरह पिछले ढाई सौ वर्षों में अर्थात् 18वीं शताब्दी के बाद आधुनिक घराने प्रचार में आये।

इन घरानेदार कलाकारों को अपने घराने की विद्या पर बेहद गर्व था। अधिकांश गुरू अनपढ़ थे, तथा अपने शिष्यों को मौखिक शिक्षा देते थे। किसी को संगीत सीखना हो तो वर्षों उस्ताद के घर रहकर उनकी सेवा करनी पड़ती थी। यह कलाकार अपने घराने के अतिरिक्त दूसरे घराने की विद्या सीखना तो क्या सुनना भी नहीं चाहते थे। इन अशिक्षित कलाकारों की संकीर्ण मनोवृत्ति के फलस्वरूप संगीत के क्षेत्र में घरानों की नींव पड़ गयी। यह अशिक्षित, अनपढ़ कलाकार ऐसी कुशाग्र बुद्धि के थे, कि ये गुण आधुनिक शिक्षा प्रणाली से तैयार हुए विद्यार्थियों में कम ही देखने को मिलता है। उन कलाकारों के पास विद्या का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो भंडार था, वन्दिशों की जो विपुलता थी, दीर्घ साधना का जो तेज था, कला के प्रति जो समर्पण की भावना थी, वे सचमुच आजकल कम मिलता है।

कुछ घरानेदार कलकारों को छोटी-मोटी रियासतों के राजा, महाराजा, ठाकुरों ने अपने दरबारी कलाकार के रूप में आश्रय दिया। घरानों के संरक्षण और विकास के पीछे वास्तव में उन राजा नवाबों का योगदान अमूल्य है। मैहर स्टेट के दरबारी कलाकार रहकर उस्ताद अलाऊद्दीन खाँ ने सर्वश्री अली अकबर खाँ, रविशंकर, निखिल बनर्जी, पन्नालाल घोष जैसे समर्थ कलाकारों को शिक्षा दी, जिनके फलस्वरूप आज पूरे विश्व में भारतीय संगीत का मस्तिष्क ऊँचा हुआ है।

घरानों ने वास्तव में संगीत कला को अवश्य समृद्ध किया है, और उसी के फलस्वरूप संगीत की महानतम् निधि आज हमारे पास है। सस्ते मनोरंजन के अंधकार भरे उस युग में, इन्हीं घरानेदार संगीतज्ञों ने अपनी कठोर साधना, असीम गुरूभक्ति और तालीम से संगीत को जीवित रखा, यदि घराने न बनें होते तो संगीत की परम्परागत विद्या अवश्य ही मध्य युग और अंग्रेजों के युग में नष्ट हो गई होती। घरानों ने ही हमारी सांगीतिक संस्कृति की रक्षा की है। और कला के रक्षक का उत्तरदायित्व निभाया है।

वर्तमान समय में घरानों का भविष्य—आधुनिक काल में संगीत विद्यालय तथा शिक्षक संस्थाओ में संगीत एक विषय के रूप में आ जाने से घरानों का उतना जोर नहीं रह गया है। संगीत विद्यालयों की स्थापना, सभाओं का आयोजन, प्राचीन रचनाओं का संकलन, वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग, स्वरलिपि पद्धति का निर्माण, पाठ्यक्रम का निर्धारण आदि से संगीत के विकास की ओर ध्यान दिया जा रहा है घरानेदार गायकी टूट रही है, आज का प्रबुद्ध कलाकार घरानेदार होते हुए भी इतनी समझ रखने लगा है ; कि एक घराने से तालीम लेना अच्छी बात है या नहीं।

घरानों का विलीनीकरण आज से नहीं कई वर्षों से शुरू हुआ है। जमींदारी खत्म होने पर कलाकारों को बहुत मुश्किल का सामना करना पड़ा। भिन्न-भिन्न प्रकार के श्रोताओं को संतुष्ट करने के लिए कई कलाकार अपनी-अपनी शैली में ही निबद्ध नहीं रहे, इन्होंने घराने की विशेषताओं को भी अपना लिया। इसके अतिरिक्त आज भी शिक्षा पद्धति में, विद्यालयों में विभिन्न शैलियों के शिक्षक होते हैं; अतः कोई एक शैली जड़ नहीं पकड़ पाती है।

आज 'सरगम' जिसका प्रचार चालिस साल पहले नहीं था, आज की नई शैली में उसका काफी दखल है।

परन्तु घरानेदार परम्परा के अभाव में आज कई कमियाँ दृष्टिगोचर होती है। बहुत सी सूक्ष्म बातें जैसे स्वरों की सच्चाई या ठीक श्रुति आदि गुरू-शिष्य परम्परा की शिक्षा से ही उपलब्ध हो सकती है, किसी और उपाय से नहीं। स्वर-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिपि से गाना सीखना अवश्य आ जाता है परन्तु श्रुति ज्ञान नहीं हो सकता। कौन नहीं जानता कि जौनपुरी, दरबारी, आसावरी, तोड़ी और मुल्तानी में अलग-अलग गांधार लगते हैं। पूर्वी, श्री, और भैरव में अलग-अलग ऋषभ लगते हैं। किन्तु ये सूक्ष्म बातें गुरु-शिष्य परम्परा की शिक्षा से ही उपलब्ध हो सकती है।

वर्तमान काल में घरानों की तोड़-फोड़, रेडियों, रिकार्डिंग, टेप, फिल्म-फेस्टिवल— इन सब बातों का 'प्रभाव' शास्त्रीय संगीत के भविष्य के लिए अच्छा नहीं है। आज आवश्यकता इस बात की है कि घरानेदार शिक्षा-प्रणाली व विद्यालयीन शिक्षा-प्रणाली का किसी प्रकार का समन्वय हो और घरानेदार गायकी के गुणों को आज का विद्यार्थी ग्रहण करे। आधुनिक संगीत जो परम्परागत और घरानेदार संगीत की उपेक्षा करता है, हमारे संगीत की पैतृक सम्पति सुरक्षित नहीं रख सकता।

ख्याल गायन के घराने

संगीत के क्षेत्र में कलाकारों के व्यक्तिगत प्रभाव से घराने बनें, और किसी न किसी विशेपता को लेकर बनें, इसमें दो मत नहीं हो सकते। प्रचलित घरानों में कोई घराना किसी विशेषता के लिए अधिक महत्व रखता है और कोई घराना कम इसका अर्थ यह नहीं है कि एक घराना उच्च है, और दूसरा तुच्छ। प्रत्येक घराने की अपनी कुछ न कुछ विशेषताएँ हैं। किसी घराने में आलाप अंग प्रधान, किसी में तान विशेषता, किसी में लय का चमत्कार, किसी घराने में ठुमरी, जैसी लोच और लचक भरी हमरतें। फिर भी इन घरानों की उपयोगिता यही रही कि संगीत की गायकी को संवारना और आवाज का निर्माण करना। किस प्रकार एक-एक अवगुण कों बीनकर, रगड़कर, स्वर का स्वरूप निखारा जा सकता है, मूल स्वर के इधर-उधर के कणों को उभार कर गले की जवारी को खोलना, जिससे आवाज में माधुर्य और मिठास आये। जिस घरानेदार से मिलते हैं, वही अपना घराना सबसे श्रेष्ठ और सबसे प्राचीन बताता है। श्रद्धेय डॉ० कृष्णराव जी के अनुसार—

"आज सारे देश के अधिकांश घराने ग्वालियर घराने से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं, जो सही है।"

पंडित जी ने ग्वालियर घराने की जो विशेषताएं हैं, प्रत्येक घराने वाला इन विशेषताओं को बताता है। पर प्रमुख बात यह कि कौन सा घराना अधिक प्रतिष्ठित हो सकता है। 'हमारा घराना सौ, दो सौ या चार सौ वर्ष पूर्व के फलाँ-फलाँ संगीत सम्राट का हैं और आज भी हम वही गायकी गाते हैं"—कह देने मात्र से घराने की प्रतिष्ठा कायम नहीं की जा सकती। घराने की विशिष्ट परम्परा के साथ स्वयं की स्वतन्त्र बुद्धि से जिन घरानों ने समय के साथ-साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नई-नई बातों का समावेश अपने गायन में किया, उन्हीं घरानों ने महत्व प्राप्त किया है। अब हम इसी दृष्टि से प्रत्येक घराने का विवेचन करेंगे।

ग्वालियर घराना

ख्याल गायन के घरानों में ग्वालियर घराना सर्वश्रेष्ट माना गया। कुछ लोग नत्थन पीरवख्श तथा कुछ लोग मुहम्मद खाँ को इस घराने का अन्वेशक मानते हैं। पर अधिकतर विद्वानों के अनुसार ग्वालियर घराने की ख्याल गायकी की परम्परा नत्थन पीरवख्श से ही आरम्भ होती है। नत्थन पीरवख्श की गायकी में ध्रुपद की गंभीरता, गहराई, तथा लयकारी में होरी और धमार का स्पष्ट प्रभाव था। अपनी आर्कषक गायन शैली के कारण वे समस्त भारतबर्ष में ख्यति अर्जित कर चुके थे। वे स्थायी रूप से ग्वालियर में ही रहे। आप ग्वालियर नरेश श्री मंत दौलत राव सिंधिया (1794-1827) के दरवार में गायक और संगीत शिक्षक के पद पर नियुक्त थे। आगरे घिराने के घग्घे खुदाबक्श ने इन्हीं नत्थन पीरवख्श से संगीत शिक्षा प्राप्त की थी। नत्थन पखिख्श के पुत्र कादर बक्श भी अपने पिता की भाँति श्रेष्ठ गायक हुये, और ग्वालियर नरेश के दरबार में गायक वन कर रहे। ग्वालियर नरेश ने शाकर के पुत्र मोहम्मद खाँ की गायकी से प्रभावित होकर उन्हें भी अपने दरबार में नियुक्त किया था। परन्तु मोहम्मद खाँ को कादर बक्श का दरबार में रहना रुचिकर न लगा, वे उनकी ख्याति से रुष्ट रहते थे, कहा जाता है कि उन्हीं के किसी षडयन्त्र से कादर बख्श की मृत्यु हो गई, जिसके कारण ग्वालियर नरेश को वहुत दुख पहुँचा।

ग्वालियर घराने की इसी शिष्य परम्परा में हद्दू खाँ, हस्सू खाँ, और नत्थू खाँ हुये, जो बहुत ही प्रतिष्ठित गायक और सुप्रसिद्ध हुये। बहुत शीघ्र ही यह गायक सारे देश में प्रसिद्ध हुये, और दूर-दूर से संगीत सीखने के लिए इनके पास लोग आने लगे। ये ग्वालियर में ही रहते थे। इस प्रकार यहाँ से ग्वालियर घराने ने मजबूत नींव डाली और संगीत प्रेमियों का एक प्रकार से गढ़ बन गया। इनके प्रतिष्ठित संगीत और उनकी शानदार गायकी को हम आधुनिक ख्याल गायन के संगीत का महाकाव्य कह सकते हैं। हस्सू हद्दू खाँ की ही शिष्य परम्परा में वाल-कृष्ण वुवा इचलकरंजीकर थे, जिनके शिष्य थे, पं० विपनु दिगम्वर पलुस्कर, और अन्नत मनोहर जोशी। प्रसिद्ध विनायक राव पटवर्धन, नारायण राव व्यास; ओंकार नाथ ठाकुर, निसार हुसैन खाँ, शंकर राव पंडित, स्वर्गीय राजा भैया पूंछ वाले सभी इसी घराने के हैं। निसार हुसैन खाँ, और रहमत खाँ का देश में बहुत नाम था। शंकर पंडित के नाम से अभी भी ग्वालियर में "शंकर पंडित विद्यलय" चलता है। इस विद्यालय का संचालन प्रसिद्ध गायक कृष्णराव पंडित ने किया। राजा भैया पूंछ वाले महान गायक थे, एवं महान विद्वान थे, जो "माधव संगीत विद्यालय" के प्रधान अध्यक्ष थे। रहमत खाँ भी इसी गायकी के वंशज थे, जिनके सुरीले कंठ की अब्दुल करीम खाँ ने नकल करने की कोशिश की। इनके अतिरिक्त छोटे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खाँ, गुले इमाम, वासुदेव राव जोशी, बाबा दीक्षित, वाला गुरूजी, मेंहदी हुसैन आदि ग्वालियर शैली के ही उत्कृष्ट गायक थे।

विशेषताएँ—ग्वालियर घराने की ख्याल गायकी में ध्रुपद का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। अष्टांग विस्तार में आलाप, बोलआलाप, बहलावे, ताने, बोलबांट की तानें, गमक की ताने, खटके, कण, मींड, सूत, मुरकी का प्रयोग शब्दों का स्पष्ट उच्चारण, बन्दिश का महत्व, लयकारी के विभिन्न प्रकार ये सब विशेषताएँ इस घराने की प्रधान अंग है। ध्रुपद की यह सभी विशेषताएँ ग्वालियर ख्याल गायकी की आवश्यक अंग बन गई। ग्वालियर घराने की गायकी में खुली बुलन्द आवाज और जोरदार स्वर लगाना एक विशेषता है। आवाज को दबाकर लगाना इस शैली को मान्य नहीं। 'आ' का खुला प्रयोग करना ही ग्वालियर घराने की गायकी के अभ्यास का प्रथम अंग है। तीनों सप्तकों में समान बल देते हुए, दानेदार सपाद ताने भी इस गायकी का मुख्य गुण है। सपाट तानों के अतिरिक्त वक्र व पेंचदार ताने भी प्रयोग करने की प्रथा हैं। भाव पूर्ण गायन इस गायकी का अंग है।

इस घराने में बहुत विलम्बित लय में गाने का प्रचलन नहीं है। आलाप, ख्याल में मध्य तथा द्रुतलय में ही अधिक गाया जाता है, इस घराने के संगीतज्ञ बन्दिश बहुत अच्छी खूबसूरती तथा लय के साथ गाते हैं। राग की शुद्धता पर विशेष जोर दिया जाता है। यह गायकी सुनने में सरल, सुबोध और साफ-सुथरी है, परन्तु उसके लिए काफी परिश्रम और रियाज की आवश्यकता होती है। ग्वालियर घराने में स्वर साधना का विशेष महत्व हैं।

ख्याल की बन्दिश के अनुरूप ही उसकी लय कायम की जाती है। एक ही राग की अलग-अलग उठान की बन्दिशों का विस्तार बन्दिश के अनुसार किया जाता है। पहले स्थायी-अंतरा स्पष्ट गाकर फिर गायक मुखड़े की सहायता से बन्दिश के अनुरूप आलाप और बहलावे से धीरे-धीरे बढ़त करते हुए तार सप्तक तक पहुँचते हैं। फिर अंतरे का प्रारम्भ कर तान, बोलतान, बोल बाँट का काम बिभिन्न लयकारियों में करतें हैं। विलम्बित ख्याल के बाद द्रुत ख्याल में भी बोलों और तानों का प्रयोग करते हैं। ख्याल के बाद तराना गाने की प्रथा है, जिसमें लयकारी प्रस्तुत करते हैं।

ग्वालियर घराने की एक और विशेषता है कि इसमें टप्पा अंग की मुरकियाँ प्रयोग होती है। ग्वालियर घराने में जयदेव के "गीत-गोविन्द" की अष्टपदियों को भी ख्याल के समान गाया गया है। हद्दू खाँ, हस्सू खाँ, ने संस्कृत के इन पदों को स्पष्ट और स्वर माधुर्य के साथ गाया है।

स्वर तथा लय का मेल—ग्वालियर की गायकी में स्वर और लय का मेल था। यह गायकी अत्यन्त प्रसाद युक्त होते हुए भी सीधी-सादी तथा सरल थी, उसमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पेंच नहीं थे, और न ही स्वर तथा लय की सूक्ष्म कारीगरी है। इसलिए समझने में आसान तथा संगीत का बहुत अभ्यास न होते हुए भी श्रोताओं का शर्तिया मनोरंजन करने वाली थी। उनकी तानें भी सीधी, सरल, पल्लेदार और गमक युक्त और सम्पूर्ण तीन सप्तक को ही सर्वोच्च मानने वाली। इस गायकी को सीधी रेखांकित गायकी (Straight line Conception) कहा गया है।

ग्वालियर घराने में अधिकतर एकताल, तिलवाड़ा, आड़ा चारताल, त्रिताल और झपताल का प्रयोग किया जाता है। अधिकतर गायकों ने अपनी आवाज और समर्थ के अनुरूप ही अपनी गायकी का निर्माण किया है। इसका प्रमाण हमें स्वर्गीय पं० ओंकारनाथ ठाकुर, स्व० पं० विनायक राव पटबर्धन, स्व० पं० डी० वी० पलुस्कर की गायकी में मिलता है। घराना इन सबका एक ही था परन्तु गायकी में अलग-अलग व्यक्तित्व की छाप दिखती है।

आज ग्वालियर घराने के आलोचक बहुत हैं। यह बात सही है कि पिछले अनेक वर्षों से इस गायकी को प्रभावशाली गायक अधिक नहीं मिले, लेकिन हद्दू खाँ, हस्सू खाँ, बाला गुरूजी, एकनाथ, मिराशी बुआ आदि श्रेष्ठ गायक इसी घराने में उत्पन्न हुये। यही नहीं गायकी की अनेक स्वतन्त्र प्रणालियों को जन्म देने का कार्य भी इसी घराने द्वारा हुआ है। इसी घराने की तालीम पाकर खग्घे खुदावक्शे ने आगरा घराना स्थापित किया। आज आगरा घराना स्वतन्त्र घराना माना जाता है। जयपुर घराने के गायक अल्ला दिया खाँ की गायकी में जो स्वर और लय का मेल है, उसकी जड़ भी ग्वालियर घराना है। अल्लादिया खाँ स्वयं कहते थे, "हमारी गायकी में लय के जिस ड़ोल की, जिस खिलाड़ीपन की तथा आलाप और तान में पाये जाने वाले जिस पेंचदारपन की आप लोग इतनी तारीफ करते हैं। वह इसलिए है कि हम मुबारक अली खाँ (ग्वालियर) की गायकी को याद करके गाते हैं।

श्रद्धेय डॉ० कृष्णराव पं० ने दिल्ली में आयोजित संगीत सेमिनार में कहा कि "आज सारे देश में अधिकांश घराने ग्वालियर घराने से अपना संवन्ध जोड़ते हैं। जो लगभग सही है।"

हम इतना ही कह सकते हैं कि ग्वालियर घराने से ही अधिकांश घरानों का जन्म हुआ और ग्वालियर घराने की गायकी को ही आदि माता का स्थान प्राप्त है। इस दृष्टि से संगीत की लगभग सभी प्रणालियों की गंगा भी इसे माना जावेगा।

आलोचना—ग्वालियर-घराने का अव लोप हो गया है। समय के साथ ही इस घराने की गायकी उतनी सरस भी नहीं रही। परन्तु सरस होने का आरोप मिथ्या है। हद्दू खाँ, हस्सू खाँ और नत्थू खाँ तीनों ही सरस गायक थे। बड़े मोहम्मद खाँ, बाबा दीक्षित का गाना बड़ा ही हृदयग्राही होता था। उस्ताद रहमत खाँ भी अपनी सरस और मधुर गायकी के लिए विख्यात थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर्गीय बाला साहब गुरूजी का गायन इतना कर्णमधुर होता था कि उनका गायन सुनने के लिए लोग लालायित रहते थे। पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर और स्वर्गीय डी० वी० पलुस्कर तो अपनी सुमधुर गायकीं के लिए विख्यात थे।

इस गायकी में विस्तार से सादे आलाप, बोलतान, फिरततान और फिर विस्तार की 'तानें' दिखाने का क्रम है। इसका कारण यह रहा कि शुरू में विद्यालयों में संगीत न होने से गुरु-शिष्य-परम्परा में गुरू शिष्यों को अपनी गायकी सिखलाते थे, जिसमें सामूहिक रूप से गायकी का आधुनिक चमत्कार सिखलाने का अवसर नहीं था। परन्तु यह भी सही है कि इन्हीं शिष्यों ने मेहनत और प्रतिभा से ग्वालियर-घराने के गायकों के रूप में देशव्यापी ख्याति अर्जित कीं। कुछ गायकों का कण्ठ सुमधुर नहीं था, किन्तु सभी गायकों का गायन मधुर और सरस नहीं था, यह आरोप मिथ्या है।

समय के साथ-साथ अन्य घराने भी प्रसिद्ध हुए हैं और फिर जो गले ग्वालियर गायकी के लिए अनुकूल थे; अब सुनने को नहीं मिलते हैं, न ही उनकी लाग-डाट ही सुननने को मिलती है। पहले जैसा रियाज भी अब नहीं रहा और न पहले-जैसी प्रतिभा। वास्तव में आज ग्वालियर-घराने की गायकी का सही प्रमाण किसी भी गायक के गाने में सही-सही नहीं मिलता।

ग्वालियर-घराना अवश्य ही आज अधिक लोकप्रिय न रहा। क्योंकि पुरानी बंदिशें आज की बदलती हुई लोक-रुचि के अनुकूलन नहीं है। इस गायकी के आराधक यद्यपि आज भी विद्यमान हैं परन्तु इसकी शिष्य-परम्परा लगभग समाप्त-सी है। ग्वालियर-घराने के गायकों ने यदि व्यापक दृष्टिकोण अपनाया होता तो आज यह गायकी लोकप्रिय हुई होती। ग्वालियर को ही इन्होंने हिन्दुस्तान की चहारदीवारी समझा। एक प्रकार से ये लोग एकाकी (Self centred) से ही रहे। तीन सप्तक की तानें और आवाज का जोर से प्रदर्शन—इसी से इन्होंने अपने आश्रयदाताओ को खुश कर दिया। अपनी परम्परा का साधारण गायक भी यदि गायन करें तो वाह-वाह की छड़ी लगा देते थे। अतः इस चहारदिवारी के अन्दर कुछ थोथा अभिमान रहा, जिसके कारण यह गायकीकाल कवलित हो गई। इनका दृष्टिकोण केन्द्रित रहा, इन्होने ग्वालियर के बाहर दृष्टि नहीं डाली अतः यह गायकी अधिक न टिक सकी।

इन सभी बातो के अतिरिक्त इन्होने लालित्य विधान की ओर भी ध्यान नहीं दिया। ताने तथा बोलबाँट के अतिरिक्त गायकी की और भी छवि है, जिसको अन्य घरानो ने उभारा। यही कारण है कि ग्वालियर गायकी की यादगार बहुत से लोगों के मन में होते हुये भी इसके गायक आज दिखाई नहीं देते। फिर भी, मात्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी कारण इस घराने ने जो ऐतिहासिक कार्य किया है, उसे भुलाया नहीं जा सकता। ग्वालियर गायकी को घरानों का आदि श्रोत तो माना जायेगा।

जयपुर का घराना

राजस्थान की कलात्मक भूमि ने हमारी अनेक ललित कलाओं को सुविकसित होने का अवसर दिया है। वहाँ के राजा महाराजाओं ने सादियों से कला और कलाकारों का पोषण किया है तथा उन्हें प्रोत्साहन देकर संगीत को जीवित रखने का उत्तरदायित्व निभाया है। वहाँ की राजधानी जयपुर का संगीत के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है। गायन, वादन, नृत्य इन तीनों कलाओं का अभ्यास, विकास एवं संरक्षण वहाँ होता आया है। अतः संगीत के विकास में जयपुर-घराने का अपना महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

जयपुर राज्य के कलाकारों को 'गुणीजनखाना' कह कर सम्बोधित किया जाता था और यह 'गुणीजनखाना' जयपुर-घराने की परम्परा पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। देश के सैकड़ों कलाकार जयपुर-दरबार के 'गुणीजनखाने' में आदर-सम्मान पाते थे। मुगल-साम्राज्य के पतन के पश्चात् मुख्यतः दिल्ली के बहुत से कलाकार जयपुर आये थे। राजदरबार में गुणीजनखाने के कलाकारों की महफिल तो होती ही रहता थी, साल भर में तीन-चार बड़े-बड़े 'संगीत महोत्सव' भी होते रहते थे। इनके उपरान्त वहाँ के विद्वान कलाकारों द्वारा संगीतविषयक पुस्तकों की रचनाएँ भी हुआ करती थीं। महाराजा सवाई प्रतापसिंह के समय में तो 'गुणीजनखाने' की अभूतपूर्व प्रगति हुई थी। महाराज स्वयं कवि एवं गायक थे। उनके गुरू चाँद खाँ गुणीजनखाने के मुख्य कलाकार थे। महाराजा सवाई प्रतापसिंह ने अनेक ग्रंथों की रचना करवाई थी, जिनमें "श्री राधा गोविन्द संगीत सार" अनुपम कृति है। राजा माधोसिंह के आश्रित खानदेशवासी संगीतज्ञ कवि पुन्डरीक विठ्ठल ने 'राग-मन्जरी' की रचना वहाँ पर ही की थी। आज भी जयपुर के दरबारी पोथीखाने के खास मोहर के विभाग में सग्रहीत संगीत शास्त्र की दुर्लभ पोथियाँ एवं पाण्डुलिपियाँ, वहाँ के राजाओं के संगीत प्रेम का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करती है। सुप्रसिद्ध गायक उ० अल्लादिया खाँ ने अपनी आत्मकथा में जयपुर के 'गुणीजनखाने' की काफी प्रशसा की है, तथा वहाँ के अनेक गायकों, वादकों के नाम भी गिनाए हैं। रामसिंह द्वितीय के समय में गुणीजन खाने में 92 कलाकार थे, उनमें 4 कथक नर्तक, 22 सांरगी वादक, 45 गायिकाएँ तथा नर्तकियाँ, 16 पखावजी, 5 रसधारी मंडलो वाले, 6 करताली तथा साजों को ठीक करने वालों का उल्लेख है।

इस घराने का आरम्भ जयपुर के करामत अली तथा मुबारक अली 'लखनऊ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाले' से माना जा सकता है। ये दोनों महाराज रामसिंह के दरबारी गायक थे, मुबारक अली उन्हीं बडे मुहम्मद खाँ के सबसे छोटे पुत्र थे। जो लखनऊ घराने के सर्वोच्च कलाकार थे और जिन्होंने कुछ वर्षों तक ग्वालियर में रहकर ग्वालियर घराने को भी दिशा प्रदान की।

इसके बाद से जयपुर घराना विशेषतया अल्लादिया खाँ साहब का घराना माना गया। इनका घराना वैसे मूलतः अलीगढ़ के पास अत्रोली का निवासी था। पर उनके पूर्वज बाद में जयपुर घराने के पास जाते थे, और स्वयं की गायकी को "अल्लादिया खाँ घराना" इस तरह का अभिमान भरा संबोधन न कहकर स्वयं को जयपुर घराने का मानते थे। ये मूलतः ध्रुपद की डागुर वाणी के वंशज थे। खानदान की गायकी इन्होंने अपने पिता जहाँगीर खाँ से हासिल की। जयपुर दरबार के प्रसिद्ध कलाकार तथा लखनऊ घराने के वंशज मुबारक अली का इनपर विशिष्ट-प्रभाव था। इनकी ख्याल गायकी पर लखनऊ घराने का प्रभाव यदि रहा हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। अल्लादिया खाँ के भाई हैदर खाँ पर ग्वालियर-घराने के प्रसिद्ध कलाकार रहमत खाँ का प्रभाव था, जिसको अल्लादिया के सुपुत्र मंजी खाँ ने भी ग्रहण किया है। पिता पुत्र के बीच लम्बी अनबन का कारण यही था।

श्री सुरेश खन्डे ने जयपुर घराने की गायकी का वर्णन करते हुए लिखा है कि अप्रचलित राग अर्थात अछोप राग-वक्र तथा पेचीदी गायकी जयपुर घराने की खास विशेषताएँ कही जा सकती हैं। जयपुर घराने की दर्जेदार गायकी के सौन्दर्य-स्थलों का सही दर्शन जिस महान् कलाकार द्वारा हमें हुआ, वे थे—महाराष्ट्र के कोल्हापुर रियासत के दरबारी गायक उ० अल्लादिया खाँ।

खाँ साहब की चमत्कृत तथा स्वतन्त्र गायकी के कारण जयपुर घराने के अन्तर्गत ही उ० अल्लामिया खाँ घराना स्वतन्त्र रूप से जाना जाने लगा।

आवाज का विशिष्ट 'आकार युक्त लगाव इस घराने का विशेष तन्त्र माना गया है। आलाप का काम हो, मीड़ का काम हो, अथवा गमक के प्रकार हों, कितना भी मुश्किल तान पलटा हो उनके आकार युक्त लगाव में थोड़ा सा फर्क दिखाई नहीं देता मन्द्र' मध्य या तार सप्तक के स्वर स्थान स्वाभाविक ढंग से तथा विशिष्ट आकार युक्त ही लगने चाहिये, यह इस घराने का खास कायदा है तथा इस कायदे का इस घरानें के लोग पूरी तरह से पालन करते हैं।

इस घराने में गायन आरम्भ करने के पश्चात राग की बंदिश बहुत ही सौन्दर्यपूर्ण रीति से प्रस्तुत की जाती है। स्थायी एक या दो बार गाई जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बंदिश जितनी भी बार गाई जाये, उस बंदिश के स्वरांग तथा तालांग में कण का फर्क भी नजर नहीं आयेगा।

उ० अल्लादिया खाँ घराने में बंदिश के शब्दोच्चारण बहुत कलात्मक ढंग तथा मुलायम रीति से पेश आते हैं।

'प्यारी पग होले,' (बिहागड़ा) 'लाई रे मद पिया,' (काफी कानड़ा) मेरी पिया,' (नायकी-कनाड़ा), '(रसिया हो न जा') (मारूविहाग) जैसी अनेक बंदिशें खाँ साहब स्वयं इतने प्रेम तथा मधुरता से गाते थे कि अन्य घराने के गायक भी उन्हें आदर्श मानते थे।

इस घराने की गायकी की दूसरी विशेषता 'तन्त्र-अंग' की गायकी है। एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाते हुये दोनों स्वरों के मध्य की श्रुतियो को गले से स्पष्ट कहना तथा एक स्वर में से ही दूसरा स्वर प्रारम्भ करना तन्त्र अंग का प्रमुख लक्षण है। बीन वादन में यही क्रिया होती है। गले पर पूर्ण नियन्त्रण तथा अधिकार पूरे दम साँस और तन्त्र अंग के मार्मिक दृष्टिकोण के बिना तन्त्र-अंग की गायकी प्रस्तुत करना सम्भव नही।

उ० अल्लादिया खाँ के स्थायी भरने की क्रिया में उच्चकोटि का कल्पना विलास तथा उचित सौन्दर्यपूर्ण दृष्टिकोण विपुल मात्रा में दिखाई देता है। आवाज आप्राकृतिक ढंग से प्रस्तुत करना तथा चीखना चिल्लाना उनकी गायकी में कहीं भी नहीं था। स्वाभाविकता उनकी गायकी की अपनी विशेषता थी। आलापचारी के बाद खाँ साहब बोल अंग के जल्द आलाप तथा छोटी-छोटी तानें गाते थे। उनके विलम्बित आलापों में ध्रुपद-अंग दिखाई देता था तथा छोटी तानों में ध्रुपद-अंग के खास गमक-अंग व विशेष रूप से टप्पा-अंग का प्रयोग वे बड़ी कुशलता से करते थे। इसके बाद वे बोल तानें तथा मध्य लय में तानों के विविध प्रकार करते थे। उनकी पेंचदार, दानेदार तथा गमकयुक्त तानें श्रोताओं पर गहरा प्रभाव छोड़ती थी। खाँ साहब की तानें सुगठित, सौन्दर्यपूर्ण तथा अलंकारों के विभिन्न अंगो से सजी हुई होती थी। इस घराने की गायकी में सीधे तथा सरल रागों को भी वक्र तथा पेचीदा बनाने की कुशलता दिखाई देती है।

वक्र तथा अप्रचलित राग गाने में खाँ साहब की प्रतिभा और भी निखर उठती थी। इस घराने की गायकी का एक खास नियम है कि जिस लय में बंदिश गाई जा रही हो, उसकी लय किसी भी स्थिति में न बढ़ाई जाए। इस घराने में तिहाई लेकर सम पर नहीं आते। विलम्बित ख्याल गाने के बाद द्रुत ख्याल गाने का रिवाज इस घराने में कम है। विलम्बित तीन ताल रूपक, झपताल तथा आड़ा चारताल में अधिकतर बंदिशें गाने की प्रथा है। रागों का चयन भी इस घराने में सावधानी से किया जाता है। इस घराने के अधिकतर राग है; जैसे—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काफी-कानड़ा, सूह-सुघराई, त्रिवेणी, गौरी, नट के प्रकार, विलावल के प्रकार, सावनी, हेम के प्रकार तथा खोकर आदि। इसके अलावा बसन्ती-केदार, अड़ाना-बहार, ललित-गौरी—जैसे जोड़ राग भी बहुत ही सुन्दर ढङ्ग से तथा अधिकारपूर्वक गाये जाते हैं। इस घराने में हमें स्वर और लय दोनों का जोड़ मिलता है। इन दोनों के मेल से जयपुर-घराने की गायकी एक अति सूक्ष्म, पेंचदार और क्लिष्ट हो गई। स्वर और लय की साधना इस घराने में एक साथ हुई। यह जोड़ इतना मुश्किल है कि उनमें से किसी एक की भी 'शुद्धता' प्राप्त करने के लिए वर्षों की अवधि लग जाती है। स्वर-साधना में ही अब्दुल करीम साहब ने अपनी जिन्दगी बिता दी, उसी प्रकार लय का पक्कापन हासिल करने में इतना ही समय लग जाता है। फिर इन दोनों का जोड़ बैठाना कितना मुश्किल है, इसकी कल्पना हम कर सकते हैं। इस घराने के द्वारा अपनी कलाकृति का माध्यम "लय साधित स्वर" या "स्वर साधित लय" को ही माना गया। यह प्रक्रिया आसान नहीं है। धीमी लय में ही स्वरों की बेहद बारीक कारीगरी दिखाना जयपुर घराने का करतब माना गया। कणों की प्रचुरता का अनुपात इसमें कम है। भावना एवं बुद्धि का समानुपातिक मिश्रण, मधुर संगम ज्यादा है। इनकी गायकी में अधिकांश प्रकार टेढ़े और वक्र है। स्वर का प्रत्येक तार दूसरे तार में महत्वपूर्ण अन्तर के साथ किस प्रकार उलझाना चाहिए, यह भी एक शास्त्र है।

इस घराने के प्रति लोगों का आक्षेप है कि इस घराने की गायकी रसहीन तथा समझने में काफी मुश्किल है। किन्तु वास्तविकता यह है कि इस घराने की गायकी उच्चस्तरीय होते हुए भी वक्र, पेंचदार तथा सौन्दर्य प्रधान है। अन्य घरानों की अपेक्षा उस घराने की गायकी बुद्धिप्रधान तणा कष्ट साध्य मानी जाती है। कुछ लोगों का आरोप है कि इस घराने की गायकी नीरस है, क्योकि इस घराने के अधिकतर गायक सभा-गायन में सामान्य श्रोताओं को अपरिचित से लगने वाले राग प्रस्तुत करते हैं। इस घराने में ठुमरी भी नहीं गायी जाती। बौद्धिक स्तर पर यह गायकी साधारण श्रोताओं के लिए नहीं है—यह वास्तविकता है।

उस्ताद अल्लादिया खाँ की असाधारण विद्वतापूर्ण तथा समृद्ध गायकी संगीत—जगत् के लिए वरदान है। इनके भाई उस्ताद हैदर खाँ तथा उनके सुपुत्र मन्जी खाँ और भूर्जी खाँ श्रेष्ठ कलाकार हुए हैं। इन महान कलाकारों ने विद्या-दान भी विपुल मात्रा में किया है। इनकी गायकी का प्रतिनिधित्व आजकल मोंगूबाई कुर्डीकर तथा श्रीमती केसर बाई केरकर कर रही हैं। इसके अलावा इनके शिष्यों में भास्कर बुवाबखले एवं गोविन्द बुवा शालिग्राम, स्व० गुल्लू भाई जसदन वाला, पं० वामन राव सडोलीकर, पं० निवृत्ति बुवा सरनाइक आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भूर्जी खाँ के शिष्यों में पं० मल्लिकार्जुन मंसूर का नाम आजकल काफी ख्याति प्राप्त कर रहा है। युवा पीढ़ी में मोघूबाई कुर्डीकर की शिष्या एवं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुपुत्री किशोरी अमोणकर अपनी अलौकिक प्रतिभा से उस घराने का नाम रोशन कर रही हैं। वर्तमान समय में इस घराने का प्रचार महाराष्ट्र में अधिक पाया जाता है। गायकी की वक्रता एवं जटिलता के कारण इसका प्रचार कुछ सीमित-सा रहा है।

देवास के स्व० रज्जब अली खाँ में लखनऊ, किराना तथा जयपुर—तीनों घरानों का मधुर संगम देखा जाता है। स्व० रज्जब अली की संगीत-शिक्षा अपने पिता तथा लखनऊ-घराने के गायक भुगेलू खाँ के पास हुई। भुगेलू खाँ लखनऊ-घराने के बड़े मुहम्मद खाँ के शिष्य थे। किराना घराने के सुप्रसिद्ध बीनकार बंदे अली खाँ से उन्होंने बीन की शिक्षा ली थी। जयपुर में कई वर्ष रहकर कोल्हापुर पहुँचे और वहाँ किराना-घराने की सुप्रसिद्ध सारंगीवादक हैदर खां से ख्याल की तालीम हासिल करते रहे। हैदर खाँ कोल्हापुर-दरबार में नियुक्त थे। गायक अल्लादिया खाँ तथा वादक हैदर अली खाँ की जोड़ी उस समय प्रसिद्ध थी। अल्लादिया खाँ की गायकी तथा बंदिशें हैदर अली खाँ को याद हो गई थीं। उसी की तालीम उन्होंने रजब अली खाँ को दी। स्व० रजब अली कोल्हापुर के दरबार-गायक के पद पर कई वर्षों रक रहे। स्पष्ट शब्दोच्चारण, द्रुतलय की ओर झुकाव, असाधारण तानवाली तथा अप्रचलित राग एवं वंदिशें इनकी गायकी की विशेषताएँ रहीं। राग शिवकल्याण तथा खेमकल्याण इन्हीं के अविष्कार हैं। रजब अली के शिष्यों में अमान खाँ, गणपत राव देवासकर तथा कृष्ण राव मजुमदार के नाम प्रमुख रूप से लिये जा सकते हैं।

इन्दौर-घराना

मध्य प्रदेश के रमणीय नगर इन्दौर को कला एवं साहित्य में समृद्ध करने का श्रेय इन्दौर के महाराजा शिवाजी राव होलकर को जाता है। देश के अनेक सुप्रसिद्ध कलाकार उनके दरबार में आश्रित थे। इनके बाद उनके सुपुत्र महाराजा तुकोजी राव होलकर हुए। उनको भी अपने पिताजी के समान संगीत से अत्यन्त प्रेम था। अतः उनके दरबार में संगीत कलाकांरों का अच्छा-खासा संगम हो गया था। होली के रंगोत्सव के अवसर पर वहाँ रंगपंचमी से लेकर पड़वा के पर्व पर्यन्त एक बहुत बड़े संगीत-सम्मेलत का प्रतिवर्ष आयोजन होता था। यह आयोजन 'इन्दौर-सभा' के नाम से सम्पूर्ण देश में विख्यात था। इस सम्मेलन में देश के कोने-कोने से कलावन्त आकर इन्दौर-सभा में अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। महाराज रात-रात भर संगीत सभाओं में बैठा करते थे।

ध्रुपद के डागुर-घराने के पितामह उस्ताद बहेराम खाँ डागुर, उस्ताद नासिरुद्दीन खाँ इन्दौर-दरबार में थे। उस्ताद बन्दे अली खाँ बीनकार हमेशा इन्दौर के दरबार में अपनी कला-प्रदर्शन के लिए आते थे। मृदँग-केशरी नाना पानसे इन्दौर दरबार के ही कलारत्न थे। पं० सखाराम पन्त आगले, उस्ताद बाबू खाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीनकार, उस्ताद आबिद हुसैन खाँ वीनवादक, ध्रुपदीये उस्ताद लतीफ खाँ वीन-वानक, पं० केशव वुवा आप्टे (ध्रुपदीये), पं० माधव राज चोधुले, हारमोनियम वादक देवीदास, बुन्दु खाँ सारंगीवादक इन्दौर की वजीर जानकीवाई, वनारस की केसरवाई, नर्तकी हरिद्वारी वाई, उस्ताद रहेमान खाँ एवं उस्ताद जहाँगीर खाँ आदि इन्दौर के दरवारी कलाकारों में उल्लेखनीय हैं।

इतना कलाप्रिय होने पर भी इन्दौर में ख्यालगायकों का कोई निजी घराना नहीं था। इन्दौर तंत्रकारों का घराना माना जाता था। शामीर खाँ वहाँ के प्रसिद्ध सांरगी वादक थे। यह एक सुयोग्य, अनुभवी, व प्रतिभाशाली कलाकार थे, इन्होंने वम्बई के भेंडी वाजार के प्रमुख गायक अमान अली खाँ की गायकी को सुना और प्रभावित हुए। अमान अली खाँ अधिकतर भगवत सम्बन्धी गीत गाते थे, मध्य लय में नृत्यात्मक आभास लिए इनकी गायकी लय की डोल पर आधारित थी। शामीर खाँ, अमान अली खाँ की मेरुखंडी गायकी से अत्यन्त प्रभावित थे, शामीर खाँ के पुत्र हुए, उस्ताद अमीर खाँ जिन्होंने वाद में चलकर इन्दौर के ख्याल गायन के घराने का प्रतिनिधित्व किया। अमीर खाँ का जन्म 1912 में अकोला में हुआ, इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता की संरक्षता में ही हुई इस प्रकार विरासत में अमीर खाँ को अपने' पिता से भेंड़ी वाजार की गायकी मिली। तंत्रकारों के घराने में आपका जन्म ही हुआ था, अतः स्वर लगाव वहुत ही मधुर होना स्वाभाविक है।

8-9 वर्ष की अल्प आयु में ही आपने किराना घराने के उस्ताद अब्दुल वहीद खाँ का ख्याल गायन सुना, जिससे इनकी गायकी में महत्वपूर्ण अन्तर आया, और इनकी गायकी को नया रूप मिला। अब्दुल वहीद खाँ ने मेरूखंड की गायकी को अपने ख्याल गायन में ढाला था। मेरूखण्ड में स्वरों की गणितीय रूप से उलट-पलट होती है। स्वरों के ऐसे परिवर्त्तन और मेल को हम एक गणितीय सारणी में भी बदल सकते हैं। कुछ विशेष स्वर-समूहों द्वारा राग व्याख्या का बौद्धिक स्तर पर क्रम चलता है। तीन स्वरों के छः भिन्न-भिन्न स्वर समुदाय वन सकते हैं। उसी प्रकार चार के चौबिस और पाँच के एक सौ बीस स्वरों के गणितीय समूह वन सकते हैं। अब्दुल "वहरे" वहीद खाँ मेरूखण्ड़ गायकी के विशेषज्ञ थे, और हीरावाई वड़ोदकर के असली गुरू वही थे। उस्ताद अमीर खाँ ने इनकी गायकी सुनी और वह उससे बहुत अधिक प्रोत्साहित हुये। इन्दौर में ख्याल गायकों का कोई मशहूर घराना भी नहीं था और न ही ख्याल गायन की विधिवत शिक्षा की कोई सुविधा ही इन्दौर में थी, तरूण गायक अमीर खाँ स्वाभाविक रूप से इन परिस्थितयों में मेरूखण्ड़ गायकी का अनुकरण करने लगे। अब्दुल वहीद खाँ के शिष्य तो नही वन सके, पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वह उन्ही की गायकी गाने लगे। अब्दुल वहीद खाँ के विलम्वित लय को उन्होंने पूरी तरह अपनी ख्याल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गायकी में उतार लिया। इनके ख्याल गायन में मेरूखण्ड पद्धति, अति विलम्बित लय और आलाप की प्रधानता अब्दुल वहीद खाँ की गायकी का अंग है और मध्यलय के गायन में बम्बई के भेंड़ी बाजार की गायकी की छाप दिखाई पड़ती है। इस प्रकार इन्दौर घराना मूलतः दो शैलियों से मिलकर बना है। भेंड़ी बाजार की नृत्यात्मक शैली और किराना घराने की अति विलम्बित लय प्रधान शैली।

किराना घराने के अब्दुल करीम खाँ साहब भी अब्दुल वहीद खाँ की गायकी से बहुत प्रभावित थे। पर अमीर खाँ ने वहीद खाँ की गायकी का अनुकरण कर उसे सबसे अच्छा बनाने का भरसक प्रयत्न किया। उनकी प्रखर बुद्धि, कुशलता और प्रतिभा से स्वयं वहीद खाँ साहब बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने अमीर खाँ का गाना सुन कर खुश होते हुए कहा—"मेरे बाद तुम गाने को जिन्दा रखोगे।" वास्तव में वे वहीद खाँ के सबसे अधिक प्रतिभाशाली अनुयायी हुए। उनकी गायकी के साथ अमीर खाँ ने अपनी बुद्धि और कल्पना का भी सदुपयोग किया। किराना गायकी में थोड़ा-बहुत संशोधन और परिष्कार किया और अपने ढंग से इस गायकी का अनुवाद कर इन्दौर गायकी के नाम से एक नये घराने का प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने एक तरह से अपनी प्रतिभा का जोड़ देकर किराना-गायकी को और रोशन कर दिया। उनका कण्ठ बहुत सुरीला और उच्चारण स्वर में डूबा हुआ था। अपनी प्रखर बुद्धि से किराना गायकी को कलात्मक स्तर पर ले आये।

अब्दुल वहीद खाँ के दिल से निकली यह भविष्यवाणी और आशीर्वाद कि "मेरे मरने के बाद भी अमीर खाँ के स्वरों में ही मेरा संगीत जीवित रहेगा।" वास्तव में अमीर खाँ के लिए खरी उतरी और इसी वरदान के फलस्वरूप वह एक सफल गायक बन सके। कला-वर्ग के संगीत रसिया उनके स्वरों एवं गायन-शैली पर मंत्रमुग्ध थे। उनके कण्ठ का माधुर्य सधी हुई स्वरलहरी सन्तुलित जबान में तान और मीड़ की मिठास तथा रागों की शुद्धता उनकी कला मर्मज्ञता और लालित्य की अनूठी विशेषताएँ थीं।

अभ्यास के समय वे ध्यानावस्थित होकर समाधिलीन हो जाते थे, पूजा की तरह दिन में तीन बार वे संगीत-साधना करते थे। अति विलम्बित गायकी, झूमरा, आड़ा चौताल, तिलवाड़ा आदि तालों का प्रयोग उनकी शैली की विशेषताएँ रहीं। आलाप के समय ऐसा लगता था जैसे मानो कोई साधक साधना कर रहा हो। साथ ही साथ द्रुतगति से स्वर सन्निवेशों का प्रयोग भी वे करते थे। यह विशेषता अब्दुल वहीद खाँ की गायकी में नहीं है। इनके बोल विशुद्ध धार्मिक रंग में रंगे होते हैं। हिन्दू धर्म में आस्था जमाये रहते हैं, जैसे—"जोगिया मेरे घर आवै" "जिनके मन राम विराजै" आदि। परन्तु उनके तराने में अरबी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और पर्शियन शैली का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। विलम्बित शैली में तन्त्रशैली के मोड़ और गोलाई है। आलाप में पंचम तक पहुँचते-पहुँचते पौन घण्टा लग जाता है।

अपनी गायकी में मन्द्र सप्तक में सम दिखाने का नया ढंग इन्होंने डाला। रागों की शक्लें परम्परागत होते हुए भी नयापन लिये हुए है। इनकी गायकी में एक ओर जहाँ हृदय-पक्ष है तो वहाँ दूसरी ओर भाव-पक्ष भी है। कल्पनाओं का उदात्त रूप है। स्वरों के बहलावे से चलते हैं। तीनों सप्तकों में बड़ी तेजी से घूमने की क्षमता है।

लयकारी में इस गायकी की मिसाल नहीं है। तानें लय पर आधारित है। स्थायी के बाद सरगमों की विविध तानें नृत्य करती हुई अठखेलियाँ करती हूई मालूम होती हैं। सारंगी वादक का पुत्र होने के कारण वही प्रभाव इनकी तानों में दिखाई पड़ता है।

इनकी गायकी में ऐसे रागों को अधिक चुना गया, जिसमें बढ़त की गुंजाइश रहे, जैसे—पूरिया, तोड़ी, शुद्ध कल्याण, मालकौंस, आभोगी कन्हावा, ललित आदि। ऐसे रागों का चुनाव अधिकाधिक मात्रा में किया गया। उन्हें दरबारी, मिया की मल्हार, जैसे गंभीर राग पसंद थे, जो अन्तरात्मा की गहराई तक पहुंचने की क्षमता रखते हैं। वास्तव में उनकी कला अन्तर्मुखी थी। यही कारण था बढ़त का आलाप व बढ़त पर संपूर्ण अधिकार उनकी विचित्रता थी जिसके माध्यम से वे राग को मूर्तिमान् करने में सफल होते थे।

वह राग की बढ़त इतने शान्त भाव से करते थे कि मध्यम और पंचम तक पहुँचने में उनको पूरा पौन घन्टा लग जाता था। स्वरों की गणितीय उलट-पुलट उनकी गायकी का ऐसा विशेष अंग बनी जो इन्दौर घराने का प्रतिनिधित्व करती है। वे अपने गायन से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते थे। सुरीला कंठ और उसके साथ राग का ऐसा विस्तार वास्तव में गायकी का यह कला चमत्कार अद्भुत है।

अन्य राग जैसे—मुल्तानी, तोड़ी, देसी, बरवा, आसावरी; भीमपलासी, मेघ मल्हार, भी उन्होंनें चुने, क्योंकि इन रागों में मेरूखण्ड की बढ़त की गुंजाइश अधिक होती है, और ये राग उनके कंठ के लिये अधिक उपयुक्त भी थे।

वास्तव में इन्दौर घराने के नाम से एक अलग घराना निर्मितकर उन्होंने अपने सुरीले कंठ से और व्यक्तिगत प्रतिभा से किरानी गायकी के कलात्मक स्तर को ही और ऊँचा किया। इनके इस प्रयास से किराना गायकी इन्दौर घराने के रूप में और ज्यादा सुन्दर और मुखरित हो उठी।

इनका घराना सारंगी वादकों का था जिससे इन्हें लाभ हुआ, क्योंकि सारंगी जैसे साज पर किसी राग की बढ़त बड़े विस्तार और अनूठे ढंग से होती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। इस बढ़त का प्रभाव निश्चित रूप से अमीर खाँ साहब की गायकी पर पड़ा।

इनके समकालीन गायक बड़े गुलाम अली खाँ थे, जिनकी गायकी चमत्कार प्रधान थी। इनके जीवन काल के अन्त तक उस्ताद अमीर खाँ को पूरी ख्याति न मिल सकी और न साधारण जनता के इतने प्रिय गायक बन सके। इसका कारण यह था कि जिस गायकी को वह गाते थे, वह आम लोगों के लिए नही थी, राग की आत्मा और अनुभूति की गहराई बौद्धिक वर्ग के लिए ही थी। वे ठुमरी और तराना नही गाते थे। इसलिए आम जनता उनका ठीक से मूल्यांकन नही कर सकी।

भारत सरकार ने इस प्रतिभाशाली संगीतज्ञ का यथेष्ट सम्मान किया था। उनके जीवन से सम्बन्धित एक फिल्म, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने बनायी थी। सन् 1967 में "संगीत-नाट्क, एकादमी" द्वारा उन्हें "एकादमी एवार्ड" देकर सम्मानित किया गया था। सन् 1971 में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' के अलंकरण से सुशोभित किया था। साथ में ही 'राष्ट्रीय संगीतज्ञ' की मान्यता भी दी गई थी। निस्सन्देह वे संगीताकाश के सूर्य थे। उनके निधन से संगीत-जगत को जो क्षति हुई है वह कभी पूरी नहीं हो सकती हैं।"

आज कोई भी घराने का गायक हो वह इनकी गायकी से प्रभावित है और अनुकरण करता है। अमीर खाँ की गायकी की छाप वीसवीं शताब्दी के सभी संगीतज्ञों पर दिखाई देती है। वह एक Legendry figure हो गये हैं। एक युगपुरुष, जिनके प्रति हम आज भी नतमस्तक हैं। इन्होंने चमत्कार प्रदर्शन से दूर रह कर श्रोताओं को संस्कारित किया है। आगे शताब्दियों तक संगीतज्ञ इनका अनुकरण करेंगे। उनके गायन में मौलिकता परम्परा का निर्वाह, शालीनता और गम्भीरता थी जो किसी जमाने में ध्रुपद गायकों में होती थी, उनको तो इसी बात का श्रेय है कि किराना गायकी का अनोखा अनुवाद कर ख्याल गायन के रूप में एक नयी गायकी को जन्म दिया जो इन्दौर घराने के नाम से जानी जाती हैं।

आगरा घराना

आगरा घराना भारतीय संगीत में केवल एक पद्धति ही नहीं, बल्लि गवैयों का खानदान है, जो अकबर के समय से संगीत की सेवा करता चला आ रहा है। संगीत ही इस परिवार का जीवन है, मुख्य पेशा है। अकबर युग के हाजी सुजान खाँ ही इस घराने के जन्मदाता कहे जाते है यह तानसेन के दामाद थे। अकबर के समय में जब काबुल से आये हुए मिशन की तरफ से दरबार में गाने की फरमाइश हुई, तब सुजान सिंह ने 'दीपक राग' गाकर' लोगों को आश्चर्य चकित कर दिया। उनको बादशाह की तरफ से 'दीपक ज्योंति' की उपाधि से विभूषित किया गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुजान सिंह द्वारा सात सौ ध्रुपदों की रचना की गई और इसी कारण सुजान सिंह के परिवार के लोग ध्रुपदिये कहलाये। अक़बर के समय में ही सुजान सिंह धर्म परिवर्तन कर मुसलमान हो गए, लेकिन इनके वंशज आज भी अपने को तोमर राजपूत कहते है। संगीत इनकी साधना है और जीविका का प्रमुख साधन है।

सुजान सिंह के पुत्र दायम खाँ हुए, इसी घराने की लड़की तानसेन के परिवार में व्याही थी और यहाँ के लड़कों की शादियाँ अतरौली (अलीगढ़) हुई, जहाँ का संगीत "रंगीला घराना" के नाम से मशहूर है।

ख्याल पद्धति का प्रारम्भ इस घराने में 19वीं शताब्दी में खुदाबख्श ने किया। उस तरह से इस घराने में ध्रुपद-धमार परम्परा और ख्याल परम्परा दोनों का उत्तम सहयोग तथा मिश्रण रहा।

इस घराने की शिक्षा और प्रचार का कार्य खान फैयाल खाँ साहब, खान विलायत हुसैन खाँ साहब और घराने के कई शार्गिदों ने किया और आज भी कर रहे हैं! उस्ताद फैयाद खाँ के पितामह घघे खुदाबख्श केवल 6 वर्षों की आयु में ही आनाथ हो गये थे। इतनी कम उम्र में उनके पिता आगरा की गायकी कुछ भी नहीं सिखा पाये थे। ग्वालियर के नत्थन पीरबख्श जिन्होंने आगरा घराने से शिक्षा पाई थी, ऐसे समय काम आये। घघे खुदाबख्श ने 6 वर्ष गुप्त रूप से आगरा गायकी का अभ्यास किया और उसी के फलस्वरूप आज आगरा घराना जीवित रहा।

फैयाज खाँ ने घघे खुदाबख्श से आगरा गायकी सीखी। उस्ताद फैयाद खाँ के पिता अलीगढ़ के रंगीले गवैये थे, लेकिन उनका देहान्त उस समय हुआ, जबकि फैयाज खाँ की उम्र केवल 6 माह की थी। ऐसे अवस्था में फैयाज खाँ के नाना गुलाम अब्बास खाँ ने आगरे में फैयाज खाँ को दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार किया।

संगीत मर्मज्ञ गुलाम अब्बास खाँ साहब भारत के मशहूर गवैये थे जिनको महाराज जयपुर के यहाँ आश्राय प्राप्त था। उन्होंने फैयाज खाँ को आगरा गायकी के पितृपक्ष की रंगीली गायकी भी सिखा दी, जिससे उन्होंने संगीत संसार में चमत्कारिक परिवर्तन ला दिया।

उस्ताद फैयाल खाँ ख्याल के सबसे अच्छे गवैये समझे जाते थे। उनके गाने में जो खानदानीपन रंगीलापन था, उसने संगीत में एक विद्रोह सा ला दिया। सुनने वाले दाँतो तले उँगली दबाते थे और गवैये भौचक्के रह जाते थे। इन्हीं कारणों से बड़ौदा के महाराज ने उन्हें "आफतावे-मुसिकी" के खिताब से विभूषित किया।

उस्ताद फैयाज खाँ का तल्खुलुस "प्रेम-प्रिया" था। इनके द्वारा रचित स्थाइयाँ, ठुमरी, होरी और रसिये आज भी लोगों के दिलों में गुंजन पैदा करते हैं। आप स्वर्गीय सहगल के उस्ताद भी थे। कहा जाता है कि विहाग में "झन झन झन झन पायल बाजै" सुनकर ही सहगल उस्ताद फैयाज खाँ के शार्गिद बनने को आतुर हो गये थे। और बाद में स्व० सहगल ने अपना सर्वोत्तम रिकार्ड "झुलना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

झुलारी आ मोरी अमवा की डार पर कोयलिया बोले।" उस्ताद फैयाज खाँ को भेंट किया था।

इनका देहान्त 5 नवम्बर 1950 को हुआ। वे "संगीत के सूर्य" कहलाये।

आगरा घराने की गायकी—आगरा घराने की परम्परा एवं गायन शैली नौहार वाणी की परम्परा है। इस घराने की शिक्षा ध्रुपद-धमार से प्रारम्भ होती है जिसके द्वारा श्वास नियन्त्रण एवं ताल की पकड़ का ज्ञान कराया जाता है। ख्याल गायन में भी प्रारम्भिक नोम-तोम की विशेषता केवल आगरा घराने की है, जिससे स्वर खुलने में सहायता मिलती है।

आगरा घराने के गायक ध्रुपद, धमार, और ख्याल इन तीनों स्वरूपों में कुशल जानकारी रखते है. हाजी सुजान खाँ की मूल परम्परा ध्रुपद धमार की थी, परन्तु घघे खुदावख्श से इस घराने में ख्याल गायन का प्रवेश हुआ, तब से इस घराने में ख्याल का गायन मुख्य और साथ-साथ ध्रुपद धमार का अभ्यास चलता रहा। ध्रुपद धमार की जो सबसे आकर्षक और संगीत पूर्ण बातें थी, उन्हें आगरे की ख्याल शैली में इस तरह अपनाया गया कि जिस से ख्याल की शैली में और रंग पैदा हो गया।

आगरा गायन शैली की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित है।

(1) स्वर लगाने का ढङ्ग—इस घराने की मूल परम्परा में क्योंकि ध्रुपद धमार है, जिनमें स्वरों का लगाव खड़ा और खुला है, स्वरों के उच्चारण में कण नहीं होते और आवाज की फेंक में ख्याल की अपेक्षाकृत ज्यादा बल या जोश होता है। ध्रुपद धमार के प्रभाव के कारण आगरे घराने के ख्याल गायन में यह प्रभाव स्पष्ट है। आगरा गायकी (full throated voice) की हो गई। चौड़ी, बुलन्द आवाज, लय से सराबोर गायकी आगरा घराना की प्रधानता रही। स्वर रेंक कर, ठेलकर, घुरचकर लगाने की पद्धति आगरा शैली का अंग बन गई। इस ढंग को खाँ फैयाज खाँ की दमदार और वजनदार आवाज ने और गम्भीर बना दिया। नीचे स्वरों का लगाव, नोम तोम में अकार, इकार-उकार सहित बोलों में स्पष्टता खाँ साहब की विशिष्टता थी। मीड़-गमक के प्रयोग के समय भी स्वरों लगाव खड़ा रहता है।

श्री देशपांडे के अनुसार, "आगरे घराने के द्वारा जिस कला का निर्माण किया गया था वह किसी भव्य वस्तु की कलाकृति के समान थी, किले के बुर्ज बनाने हो तो उसके लिए चिकने पत्थरों की क्या जरूरत है या पर्वत की चट्टानों में गुफा या कैलाश मन्दिर खोदना हो तो उसकी खुदाई पर चमचमाता पालिश हो, यह क्यों आवश्यक है? बल्कि यदि उसे किराना घराने के समान चिकना बना दिया जाये तो क्या अनुचित न होगा। कुल मिलाकर आगरा घराने की गायकी (architectral) हैं। पन्द्रह-पन्द्रह हाथ चौड़ी मजबूत दीवारें, ऊबड़ खावड़ बुर्ज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और हाथी के धक्कों की भी परवाह न करने वाली 'दिल्ली दरवाजें' इन्हीं से उनकी कला का कुछ वर्णन हो सकता है ।"

यद्यपि आगरा घराने के कुछ गायकों में स्वर लगाने का ढंग भिन्न है— श्री जगन्नाथ बुवा पुरोहित, स्वर्गीय भास्कर बुवा बखले आदि ने आगरे घराने से ही तालीम हासिल की, परन्तु इनकी गायकी में रेंक कर, ठेल कर स्वरों को लगाने की विकृति नहीं थी ।

रागों के विस्तार का तथा बंदिश के बढ़त का निजी ढंग

आगरा घराने के गायक राग के शुद्ध रूप का निर्वाह करते हैं भारतीय संगीत सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं सरसप्रिया, दरसप्रिया, प्रेमप्रिया, विनोदप्रिया, ऐसे अनेक उपनामों से आगरा घराने के कलाकारों ने अनेक बंदिशे बनायी है ।

घरानेदार, अपने पूर्वजों से सीखी गई बंदिशे आगरा घराने के गायक गाते हैं । बंदिश की वढ़त में फैयाज खाँ स्थायी की कोई दूसरी पंक्ति, अंतरे की किसी पंक्ति की वार-वार दुहरा कर, अलंकृत कर स्थायी या मुखड़े की तरह इस पंक्ति के द्वारा जो मुखड़ा बन्दी करते थे, उससे राग का सौन्दर्य और वढ़ जाता था । आगरा घराने में नोमतोम का आलाप और आकार का आलाप दोनों ही ढंग से राग का विस्तार किया जाता है ।

लय-ताल अंग – मूलतः क्योंकि यह ध्रुपद धमार का घराना है, अतः लय प्रधान गायकी आगरा घराने की निजी विशेपता है । वोल वाँट, बोल ताल, स्वर लगाने में वल आदि आगरा घराने में विशेष रूप से नजर आते हैं । इस घराने के सारे गायक ताल के बड़े पक्के हैं । लयकारी को इस घराने में वहुत अधिक महत्व प्राप्त है । लय तथा ताल का अंग इस गायकी में चरम सीमा पर पहुँच गया । इसे लय प्रधान या तालप्रधान गायकी कहा गया । लय के कारण इस गायकी में रंजकता और गति का निर्माण होता है । श्रोताओं में बरावर उत्साह बना रहे, ऐसा कुछ प्रभाग इस गायकी का है ।

ताने तथा बोलतान अंग—लय प्रधान गायकी से इस गायकी में तानों, बोलतानों के विविध प्रकार दिखाई पड़ते हैं । लय के हिस्से की ताने, बराबरी की ताने, चौगुनी, अठगुनी लय की ताने इस गायकी में दिखाई पड़ती है । बड़े पल्ले की ताने जवाड़ा की गमके, सपाट तानों की खानी, बोल की फिरत, लड़ गुथाँव की ताने—इत्यादि बंदिश में खूबसूरती भर देती है । झुमरा में झुमरे के फिरत की तान, त्रिताल में त्रिताल की फिरत, झपताल में झपताल की फिरत अर्थात ताल और लय के अनुसार फिरत करने में इस घराने के गायकों की कोई तुलना नहीं ।

फैय्याज खाँ साहब की आवाज प्रकृति की देन थी, आवाज में मोटापन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तासीर में गम्भीरता, उनकी अदायगी का अपना निजी ढंग था। व्यक्तिगत मिजाज से एक व्यक्तिगत शैली उन्होंने बनायी, ऐसा हम कह सकते हैं।

श्री देशपांडे के अनुसार "तानों का उनका सिलसिला शुरू होते ही ऐसा लगता है जैसे सेना की टुकड़ियों ने चारों ओर से धावा बोलकर घमासान मचा दी हो या जब उनकी बोल तानों की गोलाबारी शुरू होती है तो तोपों के होने वाले धमाके पर धमाके की याद आ जाती है।"

इन सब गुणों के कारण यह गायकी अपने को हर गायकी से निराला बना देती है। उस्ताद फैयाज खाँ के लिए लोग कहा करते थे कि वह ताल के बादशाह थे तथा लय उनकी गुलाम थी। यह गुण विरले ही गायकों में दिखायी देता है। बिना माइक के खुली आवाज का गाना श्रोताओं को रसमग्न कर देता था।

आलोचना—इस घराने के आलोचकों का कथन है कि इस गायकी में स्निग्धता नहीं है, लालित्य नहीं है, तारता नहीं है, क्योंकि लयप्रधान गायकी से भावना नहीं दिखती, इन्होंने राग की विशुद्धता के पीछे स्वर की हत्या कर दी है। उनकी शुद्धता के पीछे आसक्ति है परन्तु रसग्राहि समीक्षकों के अनुसार यदि गायकी हृदयग्राही हैं—उसमें भारतीय संगीत सिद्धान्त का अनुसरण किया गया है तो प्रशंसनीय है। ऐसी गायकी को हमें अपनाना चाहिये। आगरा गायकी में Musical embellishment's का आनुपातिक सम्मिश्रण हुआ है। वहाँ हमें सब तत्व मिलते हैं। आवाज में पुरुषत्व, कालिदास ने भी लिखा है, "पुरुष की आवाज ऐसी जैसे मेघ गर्जे"। समग्र रूप से इस गायकी में आलाप, बहलावा, बोलतान, लयबाँट, स्वर और लय का उपयुक्त निर्वाह है, ऐसा हम कह सकते हैं। यह अपने आप में सम्पूर्ण गायकी है। बंदिश भी है, राग की शुद्धता भी है, कलाकारी भी है, मीड़ गमक, का प्रयोग भी है, स्वर और लय से ओतप्रोत है। ऐसी गायकी में यदि कोई कमी है और हमें रजस और तमस से ऊपर सत्य के उद्रेग के लिए मार्ग प्रशस्त कराती है तो उसे एकांगी कहकर हमें त्यागना नहीं चाहिए। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण इस घराने का उदगम हुआ, कृति शिष्य मिले, भरपूर श्रोता मिले, उतने ही अनुयायी हुये और महफिल का यश मिला। आज इस घराने की प्रतिष्ठा है और रसग्राही श्रोताओं की कमी नहीं है।

किराना घराना

आगरा घराने से सर्वथा भिन्न किराना स्वर प्रधान गायकी का प्रतिनिधित्व करता है। इस घराने के संगीतकारों का प्रकृति से अटूट रिश्ता बना रहा। इसके आदि पुरुष पं० गोपाल नायक मेरठ जनपद के दोहताई गाँव के निवासी थे। यह गाँव यमुना के किनारे बसा था, जहाँ संगीत गुंजायमान रहा है। दोहताई, किराना, मथुरा और आगरा-सभी जगहों पर यमुना का जादू सुरों में ढल और चमत्कृत कर गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपाल नायक, नवसाढ़ी जिले के दोताही कस्बे में अपने बारह सौ शिष्य-परिवारो के साथ ध्रुवपद विद्या के रूपों को गढ़ते रहे। सम्राट अकबर के यह समकालीन थे। अकबर के आरम्भिक शासन-काल में भयानक दुर्भिक्ष पड़ा और क्षुधा की ज्वाला से पीड़ित होकर गोपाल नायक के शिष्य-परिवारों ने विवश होकर इस्लाम धर्म ग्रहण किया। 1620 में जहाँगीर के शासन काल में यमुना जी की भीषण बाढ़ में दोंताही कस्बा बह गया। तब गोपाल नायक के शिष्य परिवारों को जिला मुजफ्फर नगर के "किराना" नामक स्थान पर बसाया गया। इसी सम्प्रदाय के संगीतज्ञों से "किराना-घराना" निर्मित हुआ।

संगीत की साधना के लिए यह आदर्श स्थान था। उसमें चारों ओर आम के बाग थे, जिनमें बौर आते ही मौसम संगीतमय हो जाता। गाँव से कुछ ही दूरी पर एक झील थी, जिसके चारों ओर हरियाली थी। आज भी किराना घराने की गायकी में इस हरियाली को महसूस किया जा सकता है।

गोपाल नायक के पुत्र भैरवप्रसाद ने सन 1670 में इस्लाम कबूल कर लिया और उनका नाम कुतुबअली हो गया, वे बीनकार थे। उनके पुत्र का नाम उ० नियामत अली खाँ बीनकार के नाम से प्रसिद्ध हुआ। नियामत अली खाँ के लड़के हुये-सादिक अली खाँ और करामात अली खाँ यह दोनों किराना घराने के ही कलाकार थे। करामात अली खाँ के पुत्र थे असद अली खाँ बीनकार। भारत के सुप्रसिद्ध वीणा वादक बदेअली खाँ (किराना घराना) इन्ही आसद अली खाँ के पुत्र थे। बन्दे अली खाँ के शागिर्दों में मुराद खाँ बीनकार, हैदर खाँ कोल्हापुर वाले ध्रुपद-गायक नन्हें खाँ और मुराद खाँ देवास वाले प्रमुख थे।

उ० हैदर खाँ के शागिर्दों में उनके भानजे उ० सेब्दुल वहीद खाँ थे।

उ० अब्दुलवहीद खाँ को, जो लाहोर में रहे, किराना घराने का अन्वेषक कहा जाता हैं। इन्होंने ही वास्तव में किराना-गायकी को प्रतिनिधित्व रूप दिया। भारतीय शास्त्रीय संगीत में वे पहले गायक थे, जिन्होंने राग की बढ़त पर सबसे ज्यादा ध्यान दिया और विलंबित को महत्वपूर्ण बनाया। उनके शागिर्दों में प्रमुख थे — उ० शकूर खाँ, पं० जीवन लाल मटटू, पं० जवाहर लाल मटटू, माधुरी भट्ट, बेगम अख्तर, फिरोज निजामि, हीराबाई बड़ोदकर, सरस्वती राणे, पं० प्राणनाथ सरदार त्रिलोचन सिंह, पं० रामनारायण, पार्श्व गायक मुहम्मद रफी, बशीर खाँ और रशीद अहमद खाँ

किराना में ही एक साँरगीं नवाज थे—काले खाँ। उ० अब्दुलकरीम खाँ इन्हीं के सुपुत्र थे। अब्दुल करीम खाँ का जन्म सन 1884 में हुआ। उनको अपने पिता काले खाँ, चाचा अब्दुल्ला खाँ और ध्रुपद गायक नन्हें खाँ से तालीम मिली। इनकी दूसरी पत्नी से हीराबाई बड़ोदकर और सुरेश बाबू हुये, ये दोनों ही किराना घराने के प्रसिद्ध गायक हुये। खाँ साहब के शागिर्दों में उनकी संतानों के अलावा, सवाई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गंधर्व, गनेशी राव, गनपत बुवा बहरे, रोशन आरा बेगम गंगूबाई हँगल, राम चन्द्र बुवा, केसर बाई और रहमान खाँ प्रमुख है। सवाई के गँधर्व के शिष्य भीमसेन जोशी इस समय एक प्रसिद्ध गायक है।

किराना घराना मुख्यतः तन्त्रकारों व सारंगी वादको का घराना है। इसके संगीतकारों में मुख्यतः वीनकार और सारंगी नवाज हुये, हांलाकि पं० गोपाल नायक उ० नन्हें खाँ, उ० मौला खाँ, उ० अब्दुल करीम खाँ, उ० अब्दुल वहीद खाँ, हीराबाई बड़ोदकर, सरस्वती राणे, सुरेश बाबू, रौशनआरा बेगम, सवाई गंधर्व आदि जैसे श्रेष्ठ गायक भी इसी घराने में पैदा हुये।

किराना-गायकी की विशेषता है राग की बढ़त और स्वरों का सुरीलापन, चैनदारी। ध्रुपद-गायकी में यह बात नहीं थी। मूलतः बीनकारों का घराना होने के कारण किराना गायकी को लाभ पहुँचा। स्वरों की तरफ इनका झुकाव हो गया और गायन अधिक सुरीला। इस गायकी को सुन कर लगता है कि कोई कुशल सारंगी वादक अपनी सारंगी पर किसी राग का सोच-सोच कर विश्लेषण कर रहा हो। इनकी गायको में लगाव लोच और मीड़ के काम अधिक है। तोड़ी, पूरिया, दरबारी और मालकंस राग इस घराने के प्रसिद्ध राग हैं।

किराना के गायक विलम्बित पर खास ध्यान देते हैं और एक स्वर से दूसरे स्वर की ओर क्रमिक रूप से बढ़ते हैं। इससे उन्हें डूबकर गाने का और उसके रूप को पूरी खूबसूरती से अदा करने का मौका मिलता है। राग के साथ तादात्म्य स्थापित करने और उसमें लीन होने की इन लोगों ने अदभुत साधना की है। जिन लोगों को उ० अब्दुल करीम खाँ या उ० अब्दुल वहीद खाँ को सुनने का सौभाग्य मिला है, वे ही इस तल्लीनता को समझ सकते हैं। ऐसा लगता था जैसे कोई संगीत के समंदर में तैरता हुआ तल से मोती उठा रहा हो। इन्हीं लोगों ने सर्वप्रथम झूमरा का प्रयोग विलम्बित में किया और गायकी को एक नई दिशा प्रदान की। बुद्धि प्रधान गायकी इसे हम. कह सकते हैं।

इसके अतिरिक्त किराना घराने की आवाज लगाने की पद्धति गला सिकोड़ कर आवाज लगाने की है दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि किराना घराने का स्वर बेहद नाजुक, कोमल प्रकृति का, रेशम सा मुलायम है। कणों की प्रचुरता किराना घराने में अधिक है और उसी लचक से उनका गायन भावना पूरित हो गया है। किराना गायकी भावना प्रधान गायकी है। स्वरों का सूक्ष्म लगाना और उन्हें बारीक, लचीला और चमकदार बनाना ही इस शैली की एक बहुत बड़ी विशेषता है।

यही एकमात्र ऐसा घराना है जहाँ चीज के रूप में घराने में ठुमरी गाने की प्रथा है और उसकी तालीम ली जाती है। किराने घराने के प्रति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आलोचकों का आरोप है कि ठुमरी ख्याल गायकी से निचली मानी जाती है, भड़कीली भी । परन्तु यदि किराना घराने की ठुमरी गायकी को ध्यान से सुने तो हम पायेंगे कि यह पूरब की ठुमरी की तरह रसीली और भड़कीली नहीं है। ठुमरी का भड़कीलापन निकालकर उसे शुरू कर के खानदानी संयम की मर्यादा में लाया गया है। यह किराना घराने की सभ्य गायकी बन गई है और काफी हद तक ख्याल के नजदीक आ गई है।

कुछ लोगों का आरोप है कि किराने घराने में सिर्फ स्वर का ध्यान रखा जाता है, बंदिश नहीं है, अनुपातबद्धता नहीं है, लयकारी नहीं है, बोलतान नहीं है, रीति नहीं है, कायदा नहीं, एकांगी गायकी है, परन्तु एकांगी होते हुये भी सबसे ज्यादा लोकप्रिय किराना गायकी ही हुई है। इस गायकी में बड़ा रस था, किराना घराने में अधिकतम शिष्य बने, कई प्रसिद्ध संगीतज्ञ और कलाकार बने हैं। स्वरों का जादू ही ऐसा कि कलाकार उसमें जीवन भर उलझा रहे। अनुशासन लय, ताल से बढ़कर तो स्वर ही श्रोता को रिझाता है। स्वर-नाद देवता है, जिसकी उपासना किराना घराने के गायकों ने की है। 'सुर गया तो सिर गया—पर ताल गया तो बाल गया' वास्तव में सही है। वह चमत्कार प्रदर्शन बेकार है जो मन को रिझा न सके। स्वर की सिद्धि कपट साध्य है और इस साधना में real appeal हैं।

आज इस गायकी के शिष्य, प्रशिष्य ओर श्रोता, प्रशासक सम्पूर्ण देश में हैं। आज भी किराना गायकी को सीखने वाले हजारों हैं। उनका लक्ष्य स्वर समाधि है, इन्होंने स्वर को जगाया, जो अन्य घरानों में अनुपलब्ध था। श्रोताओं को उस अवस्था में पहुँचाया, जिसे सूफियों के यहाँ मदहोशी की अवस्था कहते हैं। स्वर को पूर्ण रूप से प्राप्त करने के बाद लय-ताल अंग की उतनी आवश्यकता शायद किराना गायकों को महसूस नहीं हुई। फिर हम यह भी नहीं कह सकते हैं कि किराना गायकी में लय बिल्कुल ही नहीं है। वास्तव में स्वर और लय इतने गुँथे हुए हैं कि गायकी में इन दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। वास्तव में प्रत्येक स्वर के साथ लय आवद्ध है और ताल का कोई भी आघात हो तो उसमें स्वर या नाद या ध्वनि अवश्य रहती है। हाँ, इतना अवश्य है कि किराना घराने के गायकों ने अपनी इच्छा और स्वभाव के अनुसार लय और स्वर के अनुपात को घटाया या बढ़ाया है।

किराना-घराने के गायकों में सबसे ज्यादा यश स्व० अब्दुल करीम खाँ ने कमाया है। उनकी आवाज स्वाभाविक रूप से नुकीली होने के कारण उन्हें आलाप आसान हो गये। विशिष्ट प्रकार के आलाप मानो उनकी गायकों का अंग हो गये। खुली तथा सहज ढंग से आवाज जगाने के स्थान पर उन्होंने श्वास नालिका

फा०—13

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को संकुचित कर गाने की प्रथा डाली, जिससे स्वर नुकीला हो गया, और यही किराना घराने की विशेषता बन कर रह गयी। किराना गायकी में एक मुहावरा ही मशहूर हो गया कि "सुर साधे तो सब सधे और सब सधे तो बेकार।" श्री देशपांडे के अनुसार—

"किराना गायकी रोगी को शल्य-क्रिया से पूर्व सुँघाई जाने वाली दवा थी, जिसके बाद में क्या होना है और क्या नहीं इसकी फिक्र ही जाती रही। केवल स्वर की करामात से मैं आपको मुग्ध कर देता हूँ"—यही प्रतिज्ञा किराना घराने की बन गई।

परन्तु स्वयं किराना निवासी किराने घराने के गायकों के व्यक्तित्व से परिचित न हो सके और हमेशा उन्हें 'मिरासी' कह कर पुकारते रहे। उसका कारण यह रहा कि किराना घराने के गायक ज्यादातर किराना गाँव से बाहर ही रहते थे, अपने ही गाँव के निवासियों को संगीत का महत्व समझाने में असफल रहे। उ० बन्देअली खाँ अधिकतर देवास में उ० अब्दुल करीम खाँ बड़ौदा, बम्बई व मिरज में और उ० अब्दुल वहीद खाँ लाहौर में रहे। लेकिन जो भी हो इन संगीतज्ञों की गायकी आज भी संगीत-प्रेमियों के दिल में अमिट छाप बनाये हुये हैं।

आज इस घराने के प्रशंसक अधिकांश हैं। अन्य घरानों के मुकाबलों में निश्चय ही इस घराने को अधिक कांति व यश मिला है—ऐसा हम कह सकते हैं।

पटियाला-घराना

यह घराना स्व० बड़े गुलामअली खाँ के कारण आज समस्त भारत में प्रसिद्ध है। पंजाब प्रदेश में ख्याल-गायकी का प्रसार विभिन्न रियासतों में होता रहा। पटियाला, नाभा, कपूरतला के अन्य रियासतों में भी ख्याल गायकी को प्रश्रय मिला। सभी में शान-शौकत की दृष्टि से पटियाला प्रमुख रहा। दिल्ली दरबार के अधिकांश गायक इसी रियासत के आश्रय में आ गए।

सन् 1857 का वर्ष पूरे भारतवर्ष के लिए उथल-पुथल का था। राजधानी दिल्ली विद्रोह तथा अस्त-व्यस्तता की शिकार रही। अंतिम दिल्ली सम्राट मुहम्मद शाह जफर स्वयं अनुरक्षित हो गये। इस स्थिति में दिल्ली के कलाकारों का पूरा जमघट पंजाब की ओर रवाना हुआ और उन्होंने विशेष रूप से पटियाला में पनाह ली। पटियाला में उस समय महाराज नरेन्द्र सिंह का शासन था। दिल्ली के दरबारी कवि मिर्जा गालिब तथा दरबारी गायक तानरस खाँ इसी दरबार में रहे। इनके शिष्यों में कालू खाँ, अलीबख्श नबीबख्श और फतेहअली प्रमुख रहे है। अली बख्श और फतेह अली की जोड़ी 'अलिया-फत्तू' के नाम से भारतवर्ष में प्रसिद्ध रही। इनकी गायकी में दिल्ली जयपुर, ग्वालियर तीनों घरानों का सुन्दर सम्मिश्रण रहा। नबीबख्श और उनके दो पुत्रों—मियाँ जान और अहमद जान—ने ग्वालियर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाकर हद्दू खाँ से ग्वालियर घराने की तालीम हासिल की। दिल्ली घराने के सर्वश्रेष्ठ गायक तानरस खाँ, जिनसे पटियाला-घराने का सूत्रपात हुआ, स्वयं ग्वालियर गए और हद्दू खाँ के निधन के बाद ग्वालियर के दरबारी गायक बन गए। इन्हें वह प्रतिष्ठा प्राप्त न हो सकी जो हद्दू खाँ को प्राप्त थी। वहाँ से निराश होकर वे हैदराबाद गए और अन्त तक निज़ाम के दरबार में रहे। यही परम्परा वर्तमान शताब्दी के प्रसिद्ध कलाकार स्व० उस्ताद बड़े गुलामअली तथा अमानअली—नजाकात अली तक चली आती है। बड़े गुलामअली स्व० फतेहअली के वंशज थे। वे अलीबख्श के पुत्र और आशिकअली के भतीजे थे। इनके घराने में सारंगी वादन पूर्वजों से चला आया था। स्वयं बड़े 'गुलामअली शुरू में सारंगी-वादक ही रहे। परन्तु बाद में उत्कृष्ट ख्याल गायक के रूप में उन्होंने नाम अर्जित किया। जीवन के अन्त तक वे महाराष्ट्र में रहे। अमानतअली तथा नजाकतअली भारत के विभाजन तक पटियाला दरबार के गायक रहे। ये अपने आपको 'शाम चौरासी-घराने' का घोषित करते हैं, जो वास्तव में पटियाला घराने की उपशाखा है। आज पाकिस्तान चले जाने के बाद भी वे दोनों अपने आपको 'पटियाले वाले' कहलाने में गौरव का अनुभव करते हैं।

पटियाला घराना वास्तव में दिल्ली का ही घराना रहा, परन्तु पंजाब की स्थानीय शैलियों से प्रभावित होने के कारण 'पंजाब का घराना' बन गया और पटियाला रियासत में पनपने के कारण 'पटियाला घराना' कहलाया। यह घराना अपनी तैयारी तथा रंगीली के कारण प्रसिद्ध है। इसका कारण है कि इसमें दिल्ली, लखनऊ, ग्वालियर तथा जयपुर घरानों की विशेषताओं को एक जगह समेटा गया है। इस घराने के मशहूर दो कलाकार—अलिया-फत्तू ने दिल्लों के तानरस खाँ के अतिरिक्त लखनऊ-घराने के बड़े अहमद खाँ तथा मुबारक अली, जयपुर के बहराम खाँ तथा ग्वालियर के हद्दू खाँ से भी तालीम प्राप्त की थी।

विशेषताएँ—इस घराने की विशेषताएं निम्न हैं—

(1) संक्षिप्त तथा कलापूर्ण ख्याल की बंदिशें।

(2) द्रुत आलंकारिक कण, खटका युक्त।

(3) गले की तैयारी।

(4) टप्पा अंग की ठुमरी गायन में पटुता।

(5) इस घराने की गायकी में बहुत अधिक विलम्बित में गाने का प्रयोग नहीं होता।

(6) प्रचलित और सरल राग इस घराने की विशेषता रही।

(7) स्वर तथा लय का मेल एक विशिष्ट सीमा तक अर्थात् स्वर के साथ लयकारी का ख्याल इन्होंने अब्दुल करीम खाँ साहब के किराने घराने से काफी अधिक रखा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस घराने की विशेषतया तैयारी के साथ ही कोमलता में भी है। गमक अंग तरानों की गायकी तथा अतिद्रुत लय में संचार करने वाली सपाट तानों से यह घराना अन्य घरानों से अलग ही दिखाई देता है। इसकी, तानें, तोड़ें और झाला इत्यादि अंग लय के अनुसार बँटते हैं। विलम्वित के तोड़े मध्य तथा द्रुत से अलग अलग ढाँचे के होते हैं और तानों की बंदिशें तान के अनुसार अलग-अलग होती हैं। इस गायकी के निर्माण में पंजाब का टप्पा, सिख शब्द, सूफी बानी तथा कव्वाली का भी काफी प्रभाव देखा जा सकता है। यही प्रभाव यहाँ की ठुमरी और वाद्ययंत्रो के बाज पर भी पड़ा है। अलिया-फत्तू की रची हुई ठुमरियाँ अपनी कोमलता, रसीलेपन और टप्पेवाली तानों के लिए आज भी संगीत-संसार में प्रसिद्ध हैं। स्वर्गीय बड़े गुलामअली का ठुमरी गायन इसी घराने का प्रतिनिधित्व करता रहा है।

अब्दुल करीम खाँ साहब के पश्चात् स्वर की इतनी शुद्धता का दर्शन बड़े गुलाम अली खाँ के अतिरिक्त और किसी गायक ने नहीं किया।

आवाज लगाव—इस घराने में आवाज की पहुँच ऐसी कि जहाँ पर उँगली उठाने की कोई गुंजायश नहीं। आवाज की पहुँच सम्पूर्ण तीन सप्तक तक है। बड़े गुलाम अली खाँ साहब ने मन्द्र, मध्य और तार में जो तारतम्य स्थापित किया वह एक आदर्श है। इन्होंने किराना घराने की सुरावट पर ध्यान रखा। आवाज हर स्थान पर सुरीली रहे, गुँथे हुए आटे की तरह उनकी आवाज किसी भी सप्तक में जा सकती है। इस आवाज में किसी प्रकार का दोष नहीं है। वे अपनी आवाज में ताँत की शुद्धता ले आये हैं। इनकी आवाज से गति निर्माण होती है, ऐसा हम कह सकते हैं।

इनकी लयकारी किराने की अपेक्षा कहीं अधिक है। लयकारी के विविध प्रकार उनके लिए मानो बाँएँ हाथ का खेल है। उनकी गायकी में बोल अंग काफी है एवं बोल तानों की पर्याप्त गुंजाइश है। उनकी आवाज की विशिष्टता ऐसी कि किसी भी लय में सहजतापूर्वक घूमा-फिरा जा सकता है। उनकी फिरत अत्यन्त विलम्वित लय में गमक ढंग से चलती है। मध्यलय में मध्यलय से जाती है, तो अत्यन्त द्रुतलय में जितनी चाहे तेज होती है। वही फिरतें वह उलटे क्रम में भी कर सकते हैं। उनके गले को कहीं रोक नहीं लगी है।

इनकी गायकी में तान-सौन्दर्य और तान-चमत्कार विशिष्ट है। तानों में मीड़, फन्देदार तान, सपाट तान, खण्डमेरु तान की अद्वितीय नकल की क्षमता है।

संगीत का कोई भी प्रकार वे आसानी से गा सकते हैं। ख्याल से बढ़ कर ठुमरी गायन तक उनकी विशेषता है। इसमें इनका स्थान अक्षुण्ण है, सर्वश्रेष्ठ है। ठुमरी की ही तरह भाव गीत, लोक गीत आदि सारे प्रकार उतनी ही कुशलता के साथ गा सकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्होंने अपनी बहुरंगी आवाज के विविध गुणों से गायन का क्षेत्र विस्तृत किया। चाहे शास्त्रीय संगीतज्ञ उनके चमत्कारवाद की कितनी ही आलोचना करें, फिर भी उनकी गायकी ने लाखों लोगों का मन लुभा लिया है, मन हर लिया है। उन्होंने श्रोताओं के अन्दर संगीत के प्रति रुचि को विकसित किया है। बहुत से शिष्यों ने इनसे गायकी सीखी है। वे बीसवीं सदी के सूर्य थे, जिनकी गायकी में संगीत के सभी तत्त्वों का संकलन मिलता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सितार के घराने

सितार के परम्परागत घरानों का विकास उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में ही प्रारंभ हुआ था। उस समय तक वीणा तथा रवाब आदि के परम्परायुक्त घरानेदार वादकों के लिए सितार नया ही था। गायन के घरानों के समान सितार के घरानों की नींव परम्परागत पुराने घरानों में नहीं मिलती। घराने अवश्य निर्मित हुए, पर इस समय जो सितार-वादन प्रचलित है, उसमें व्यक्तिगत प्रतिभा की ही प्रधानता है और बहुत हद तक उनमें वीणा और रवाब की वाद्य शैली का परित्याग है। आज एक अच्छा नादक उन सभी शैलियों का गुण अपने वादन में भरने का प्रयास करता है, जिससे श्रोता आनन्दित हों और उसके वादन की प्रशंसा करे। इस दृष्टि से घराने या शैलियों की परम्परा टूटती जा रही है। इसीलिए सितार के घरानों के समक्ष एक प्रश्न-चिह्न लग जाता है। सितार के घराने सही दृष्टि में अभी तक विकसित नहीं हुये। आज के अनेक सितार वादकों के पूर्वज या तो गायक थे या फिर वीणा वादक। उनमें से कुछ सारंगी, रवाव या सरोद वादक भी थे ; अतः सितारवादन घरानेदारी के क्रम में तो आता नही हैं, फिर भी सितार के जो घराने स्थूल रूप से जाने जाते हैं, वे निम्नलिखित हैं—

(1) सेनिया घराना—सितार-वादन एवं उसकी शैली का अध्ययन व्यापक अर्थ में सितार के सेनी घराने का ही अध्ययन है। सेनियों ने सितार-वादक का जो स्वरूप निर्धारित किया, इसके प्रभाव से आज भी सितार-वादन की कोई भी शैली पूर्णतया मुक्त नहीं है। इसका कारण है कि सेनिया मात्र शैली के जन्मदाता न होकर सितार-वादन के प्रथम मौलिक प्रणेता भी थे। कतिपय लोगों के कथनानुसार सेनिया घराना ही सितार का एकमात्र घराना है। अन्य घराने या तो उनके द्वारा विकसित सितार वादन की शैलियाँ सेना वाज के ही आवान्तर विकास है।' उत्तर भारतीय संगीत को तानसेन तथा उनके वंशजों की बहुत बड़ी देन है। वे स्वयं तो उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे, किन्तु आगे चल कर उनके वंशजों में उच्चकोटि के तन्त्रकार हुये। उनके वंशज ही आगे चलकर सेनिया कहलाये। इस घराने का प्रारम्भ तानसेन के द्वितीय पुत्र सूरत सेन से प्रारम्भ होता है। सूरत सेन के वंशज रहीम सेन थे। उनके दो पुत्र थे—अमृतसेन और निहालसेन। निहालसेन अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्वत्ता के कारण खलीफा निहाल सेन कहलाते थे। अमृत सेन ने अपने पिता के अतिरिक्त अपने बड़े भाई निहाल सेन से भी सीखा। अमृत सेन के शिष्य अमीर खाँ हुये। अमीर खाँ के दो शिष्य हुये—बरकत उल्ला और इमदाद खाँ। इन दो कलाकारों की अलग-अलग परम्परायें निकल चलीं। इमदाद खाँ के शिष्य हुये इनायत खाँ और इनायत खाँ के तीन शिष्य हुये : पहले उनके पुत्र विलायत खाँ, दूसरे ध्रुवतारा जोशी, तीसरे विमलकांत राय चौधरी। दूसरी ओर बरकत उल्ला के शागिर्द हुये—आशिक अली खाँ। आशिक अली के चार शिष्य हुये—(1) अनवरी बेगम, (2) रसूलन बाई, (3) मुश्ताक अली, (4) गोपीनाथ गोस्वामी। आशिक अली खाँ पहले गाना गाया करते थे। बाद में उन्होंने सितार बजाना शुरू किया। इन्होंने अपने शिष्यों को गायन की शिक्षा दी। केवल गोपीनाथ गोस्वामी को सितार की शिक्षा दी। बाद में ये बायला या बेला बजाने लगे।

इसी घराने में मसीद खाँ नामक एक उस्ताद हुये जिन्होंने तन्त्रीवाद का नया वाज (शैली या बजाने का ढंग) निकाला जो आगे चलकर अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। इस प्रकार तन्त्रीवादों में स्वतन्त्र वादन शैली का प्रारम्भ इसी समय से हुआ। मसीद खाँ के पश्चात् उन्नीसवीं शती में रजा खाँ नामक एक उस्ताद हुये। इन्होंने भी वादन का एक नया बाज निकाला जो रजाखानी बाज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भविष्य में यह बाज सभी तन्त्री वाद्यों के अनुकूल हुआ।

सेनिया घराने से ही स्वतन्त्र वादन शैली का नवयुग प्रारम्भ हुआ। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सेनी घराने के कुछ उस्तादों ने अपने खानदान के बाहर के लोगों को शिक्षा देने के लिए स्वयं जिन वाद्यों को बजाते थे, उनके अतिरिक्त अन्य वाद्यों को भी अपनाया। इस प्रक्रिया में एक ओर निबद्ध तम्बूरा अर्थात् सितार का प्रचलन हुआ तो दूसरी ओर सुरबहार का प्रचार-प्रसार हुआ। वीणा का आलाप अंग सुरबहार तथा गीत-अंग सितार पर प्रयुक्त होने लगा। परन्तु सितार पर इसका वादन सन्तोषजनक न हुआ ; अतः इसके अनुकूल वादन की नई 'गत' शैली का विकास हुआ। यद्यपि गत की बन्दिश मूलतः गान की शैलियों से ही प्रभावित थीं। किन्तु मिजराब के विशेष प्रयोगों के कारण इसकी रचना गान से भिन्नतः प्रयुक्त होने लगी। तन्त्र के लिए उपयुक्त गत शैली का निर्माण सेनी घरानों के उस्तादों की देन है। यथार्थः सेनियों ने गान से पृथक् कर सितार को केवल तन्त्र के रूप में प्रयोग करने की प्रथा प्रचलित की। इसमें प्रयुक्त होने वाली गतों के निर्माणकर्त्ताओं में निहाल सेन के पुत्र अमीर खाँ एवं मसीत खाँ नाम से क्रमशः अमीरखानी एवं मसीतखानी गत का प्रचलन हुआ। इनके शिष्य बरकत उल्ला खाँ तथा सेनी घराने के ही शिष्य गुलाम खाँ जिनके नाम पर रजाखानी प्रचलित हुई, मुख्य थे।

सेनिया घराने के कलाकारों की यह विशेषता है कि इस घराने से सम्बन्धित कलाकारों का हाथ विशेष रूप से अभ्यस्त होता है। स्वरों के लगाव, बन्दिश;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तानों की फिरत विशेष रोचक और आकर्षक होती है। खटके, मुर्की और मींड़ का प्रयोग इस घराने की प्रमुख विशेषता है। उत्तर-प्रदेश में वाराणसी (बनारस) और रामपुर सेनिया घराने की परम्परा के प्रमुख केन्द्र निर्मित हुए। अठारहवीं शताब्दी के दूसरे भाग में मुगल साम्राज्य के पतन के बाद असीनस्थ राजा और सूबेदार स्वतन्त्र हो गये और देहली राज्य की शक्ति क्षीण हो गई। देहली की बादशाहत का अन्त हो गया और बादशाह केवल नाम मात्र का रह गया। देहली दरबार की आर्थिक स्थिति गिर गई तो गायक और वादक राजदरबारों में शरणाश्रय ढूँढ़ने लगे। उक्त काल में सेनिया घराने के संगीतज्ञ ध्यानपूर्वक वाद्य संगीत में परिश्रम करने लगे। वह ध्रुपद गायन के मान्य महारथी अवश्य थे पर समय की आवश्कता के अनुसार वह दो वर्गों में विभाजित हो गये। पहले वर्ग के लोग पूर्वी संगीतकार कहलाये। इसमें विलास खाँ, और नियामत खाँ के वंशज थे जो वाराणसी (बनारस) में जाकर बस गये। दूसरा वर्ग, जिसके संगीतज्ञ सुरतसेन के घराने के थे, जयपुर में जाकर बस गये। इसको पश्चिमी संगीतकार के नाम से पुकारा गया। ये संगीतज्ञ सितार और वीणा के बाज में निपुण होने के साथ ध्रुपद गायन भी करते थे।

अठाहरवीं शती के मध्य में सेनिया परम्परा के भिन्न-भिन्न घराने स्थापित हो गये, जिनमें जयपुर के सेनिया का सितार का घराना, जिसके संस्थापक उमराव खाँ के शिष्य गुलाम मुहम्मद खाँ थे।

(2) **लखनवी घराना**—नवाबों के शासन काल में लखनऊ नगर कलाओं का केन्द्र-स्थल था। नवाब आसफुद्दौला तथा नवाब वाजिद अली शाह के दरबारों में और बासत खाँ (रबाबिए) तथा कुतुबुद्दौला (सितारिया) आदि के नाम मिलते हैं। उनके सम्मिलित प्रयास से लखनऊ में सितार वादन की एक विशिष्ट शैली निर्मित हुई जो पूर्वी बाज कहलायी। सितार वादन की इस शैली में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(1) विशुद्ध ध्रुपद शैली में आलाप तथा जोड़ का काम।

(2) ठुमरियों पर आधारित सुन्दर, कलात्मक एवं भाव प्रधान गतें।

(3) अतिद्रुत लय में वैविध्यपूर्ण झाले के साथ समापन।

लखनऊ में सितार वादन के मुख्यतया दो प्रकार के बाज विकसित हुये—(1) पूर्वी बाज, (2) ध्रुपद शैली पर आधारित बाज।

पूर्वी बाज—गुलाम रजा को पूर्वी बाज का प्रवर्त्तक माना जाता है। तत्कालीन लखनऊ के अपरिष्कृत रुचि के धनी वर्ग के लिए यह सहज ग्राह्य था। उस समय संगीत के क्षेत्र में ध्रुपद, ख्याल के स्थान पर ठुमरी, गजल, कव्वाली, तराना, आदि गायन शैलियाँ विशेष लोकप्रिय थीं। अतः सितार-वादकों को भी समय की माँग के अनुसार द्रुत वादन शैली विकसित करनी पड़ी। लय, आड़,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुआड़ और तीये आदि का प्रयोग होने लगा। प्रारम्भ में सितारिया ध्रुपद की विभिन्न शैलियों का प्रयोग करते थे, परन्तु इस शैली का प्रयोग नवाबों और रईसों के समय में कम होने लगा। यह देखकर गुलाम रज़ा ने एक नवीन शैली का निर्माण किया जो पूर्वी बाज कहलाया। गतों को द्रुत बजाना ही इस बाज की विशेषता थी। इसमें पहले जोड़, झाले, पुनः द्रुत गति के साथ तोड़े तथा इसमें आड़, कुआड़ की लय, कुछ मिजराबों का काम और सीधा-साधा झाला बजाया जाता था।

बीन अंग का ढोक झाला, लड़ गुथाव, रबाब और सुर सिंगार का काम आदि इन गतों में नहीं आ सकता था, अतः पुराने गुणी लोग इस बाज को हेय दृष्टि से देखते थे।

गुलाम रजा के बाद फर्रुखाबाद के नवाब हशमत जंग बहादुर, जो तानसेन के वंशज प्यार खाँ के शागिर्द थे, ने पूर्वी बाज में बहुत-सी गतें, तीन-ताल में ठुमरियों पर बांधी थी। इनके अतिरिक्त लखनऊ के गुलाम मुहम्मद खाँ का नाम इस घराने में उल्लेखनीय है। इन्होंने आलाप, जोड़, झाला, लड़ गुथाव तथा ढोक आदि का प्रयोग पूर्वी बाज में सितार पर किया।

वाजिद अली शाह के वजीर नवाब अली खाँ सितार बहुत अच्छा बजाते थे तथा उन्होंने सितार पर अनेक द्रुत गतों की बंदिशें कीं। लखनऊ के कुतुबुद्दौला, जो प्यार खाँ के शिष्य थे, कुशल सितार वादक थे। उन्होंने बहुत सी गतें निर्मित कीं।

लखनऊ में ध्रुपद शैली के सितार वादन के विकास का श्रेय उस्ताद आजम खाँ तथा उनके पुत्र और शिष्यों को उपलब्ध है। ध्रुपद एवं वीणा वादन इनके परिवार का व्यवसाय था। आजम खाँ अपने सितार पर बीन और ध्रुपद शैली का ही बाज बजाते थे। ये अपने वादन के आलाप में स्थायी, अन्तरा, संचारी तथा आभोग बजाते थे तथा ध्रुपद के समान ही अपने वादन की बढ़त करते थे। उन्होंने अपने पुत्रों को भी सितार वादन की शिक्षा दी। इनके बड़े पुत्र उस्ताद अब्दुल गनी खाँ मसीतखानी और द्रुत-वादन में सिद्ध-हस्त थे। इनका आलाप वादन शुद्ध ध्रुपद शैली पर ही आधारित होता था। इनके प्रमुख शिष्यों में से लखनऊ के उस्ताद यूसुफ अली का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनके आलाप और गत पर उनकी निजी छाप थी। उनकी शैली में परम्परागत तन्त्र-वाद्य का प्राधान्य भी था। आलाप के साथ-साथ मसीतखानी और पूर्वी बाज का वादन करते थे। आकाशवाणी दिल्ली में अनेक वर्षों तक आप स्थायी कलाकार के रूप में कार्यरत रहे। इनके शिष्यों में इनके पुत्र इस्माइल खाँ और उ० सखावत खाँ के पुत्र इलियास खाँ के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

उस्ताद इस्माईल खाँ—ये अपने पिता की शैली का अनुकरण करते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनका साफ-सुथरा द्रुत बाज लखनऊ शैली की एक विशिष्ट विधा का अविकृत नमूना है। आप आजकल आल इण्डिया रेडियो, लखनऊ में स्टाफ आर्टिस्ट हैं।

उस्ताद इलियास खाँ—उस्ताद इलियास खाँ ने लखनऊ के पूर्वी अथवा द्रुत बाज को ध्रुपद परम्परा का गांभीर्य एवं ठुमरी का लालित्य प्रदान कर सितार को पुनः भारतीय संगीत के आधिकारिक व्याख्याता के रूप में प्रतिष्ठित किया है। उनका जन्म लखनऊ में एक सुप्रसिद्ध कलाकार घराने में हुआ। आप लखनऊ घराने की समृद्ध परम्पराओं का व्यापक रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके सितार वादन में ध्रुपद अंग तथा पूर्वी बाज की झलक स्पष्ट दिखायी पड़ती है। उन्होंने परम्परागत तन्त्र बाज को कायम रखा है। ये अपने आलाप वादन में बीन आलाप के सदृश ही कम से कम मिजराबों का प्रयोग कर आँस, मींड, गमक आदि के द्वारा आलाप का सुन्दर रूप प्रस्तुत करते हैं जो पुराने बाज को स्पष्ट करता है। वह बीन के अतिरिक्त रबाब और सुर सिंगार के अंग का भी प्रयोग करते हैं।

(3) इमदाद खाँ का घराना—इटावा जिले के इमदाद खाँ और इनायत खाँ नामक सितार वादकों को जितनी ख्याति मिली उतनी अन्य किसी को नहीं उपलब्ध हुई। इनका बाज पिछले जमाने में अत्यधिक लोकप्रिय था और दर्जनों सितार के विद्यार्थियों ने इस बाज की नकल की। बहुत से लोगों को सितार बजाने का शौक उनका सितार सुनकर ही हुआ। उन्होंने सितार-वादन का अपना एक अलग घराना स्थापित किया। यह बाज बंगाल में विशेष रूप से प्रतिष्ठित हुआ। इस बाज की शिक्षा इमदाद खाँ के सुपुत्र स्वर्गीय उस्ताद इनायत खाँ ने बहुत से शिष्यों को बहुत समय तक कलकत्ते जैसे शहर में दी। उसका परिणाम यह हुआ कि उनके बहुत से शिष्य कुशल सितार वादक हो गये। उस्ताद इनायत खाँ दीर्घ काल तक बंगाल के गौरीपुर नाम के रियासत में भी नियुक्त रहे। लोग इन्हें गौरीपुर के इनायत खाँ के नाम से भी जानते हैं।

उस्ताद इनायत खाँ का सितार वादन सर्वाधिक लोकप्रिय सिद्ध हुआ। सैकड़ों सितार-वादन के आम प्रचार में उनका बहुत बड़ा हाथ था। वह अपने ढंग के एक ही सितारिये थे, जिनका बाज अन्य सब सितार के भिन्न-भिन्न बाजों पर छा गया था। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। पिछले 30-40 वर्षों में बहुत से तरुण सितार-वादक इनायत खाँ के बाज का ही अनुकरण करते रहे। इस बाज़ का अपना एक अलग ढंग एवं पद्धति थी जिसमें जोड़, आलाप और गत प्रधान थे। स्वर, लय और ताल का अति उत्तम काम इनायत खाँ के सितार में था।

इमदाद खाँ के घराने में जैसी ख्याति इनायत खाँ के सुपुत्र विलायत खाँ ने पाई, वैसी अन्य किसी शिष्य को नहीं मिली। इन दो घराने के अतिरिक्त, सैय्यद सफदर हुसेन कृत 'कांनून सितार' नामक पुस्तक में अमीर खुसरो के घराने का नामोल्लेख है। रचयिता ने इस घराने में फीरोज खाँ जो उच्चकोटि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के सितार-वादक थे, उनका उल्लेख किया है। परन्तु इस घराने की अन्य कहीं कोई जानकारी नहीं उपलब्ध है, क्योंकि अमीर खुसरो सितार के जन्मदाता थे या नहीं इस विषय पर मतैक्य नहीं है । ऐसी स्थिति में उनके नाम से एक घराना स्थापित हो—यह तर्कसंगत नहीं लगता।

आज अनेक होनहार सितारिये हैं जो किसी व्यक्ति विशेष के घराने से सम्बद्ध नहीं हैं। उनमें पं० रविशंकर हैं। आप स्वर्गीय उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के सितार के परम भक्त शिष्य हैं। पं० रविशंकर अत्यधिक प्रतिभाशाली और भावुक सितारवादक हैं, जिन्होंने अपना एक बाज अलग ही निर्मित कर लिया है। वह किसी विशेष घराने के बाज के अनुयायी नहीं हैं।

आधुनिक परिवेश में घरानों की सीमा-रेखा लगभग लुप्तप्राय-सी ही है। फिर भी परम्परागत शैली का अपना महत्व है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का निरंकुश शासन हिन्दुस्तानी संगीत की परम्परा के अनिवार्य नियमों और सिद्धान्तों की अवहेलना ही करेगा। प्राचीन वाज की मजबूत नींव पर ही आधुनिक बाज के ढाँचे को खड़ा करना होगा।

बाज

संगीत में कोई भी घराना क्यों न हो, वह अपनी शैली से जाना जाता है। गायन की शैली को हम 'गायकी' के नाम से सम्बोधित करते हैं, इसी प्रकार वादन संगीत की घरानेदार शैली को 'बाज' संज्ञा प्रदान करते हैं। आम तौर से यह शब्द घरानेदार और व्यावसायिक संगीतज्ञों के संगीत पर ही लागू होते हैं। यह उर्दू का शब्द है, जिसका बोध वादन शैली से किया जाता है। इसका व्यापक अर्थ घराना भी होता है। साधारणतया सितार के दो प्रमुख बाज हैं, जिन्हें मसीतखानी और रजाखानी बाज अथवा दिल्ली का बाज और पूर्वी बाज कहते हैं। इनके अतिरिक्त तबले के दिल्ली बाज, पंजाबी बाज, अजराड़ा बाज और बनारसी बाज भी हैं। ये सभी बाज विभिन्न घरानों के परिचायक है। किसी भी विशेष व्यक्ति या परिवार द्वारा प्रचलित वाद्य शैली को ही बाज कहते हैं, अर्थात् ढंग, क्रम व रीति को ही बाज (Style) कहते हैं।

जो प्रतिष्ठा पुराने तन्त्रकारी के 'बाज' को थी और जिसका सम्बन्ध बीन, रवाब और सुर सिंगार जैसे वाद्यों से था, वह प्रतिष्ठा प्रचलित बाज को नहीं है। प्रचलित 'बाज' केवल आलाप और गत पर ही आधारित होता है और किसी प्राचीन वाद्य संगीत की शैली के नियमों का पालन नहीं करता, ऐसा हम कह सकते हैं। प्रचलित सितार, सरोद और वाइलिन-जैसे साजों के बाज में गला भी बजाता है, जो तंत्र के बाज में वर्जित था और है भी। आज भी सेनिया घराने के वादक गले की हरकतों का बहिष्कार करते हैं और गला बजाना बाज की मनमानी, नियम भंग और उसकी मर्यादा का विरोध और अपमान मानते हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीणा की प्राचीन परम्परा शैली, जो ध्रुपद की प्राचीन शैली से सम्वन्धित थी, इस बाज का स्रोत थी। आधुनिक सरोद वादन और सितार वादन की शैलियों ने गले पर कोई विशेष रोकथाम नहीं लगाई है। लोकप्रिय और रुचिकर बाज में आजकल गला बजाना कला और मिज़ाजदारी का चमत्कार समझा जाता है। श्रोताओं को भी ऐसे बाज से पूरा आदन्द मिलता है।

प्रचलित बाजों में विविधता और स्वतन्त्रता अधिक उपलब्ध है। किसी भी बाज को मान्यता कुछ समय बाद ही मिलती है, किसी घराने की परम्परा ही उसका प्रचार-प्रसार करती है और उसे लोकप्रिय बनाती है। जिस प्रकार गायन से गायकी का निर्माण कुछ विशेष गायक करते हैं, उसी तरह किसी विशेष बाज का निर्माण कुछ विशेष वादक ही करते हैं। आधुनिक युग में सितार के सर्वाधिक लोकप्रिय बाज का आविष्कार कलकत्ते के प्रसिद्ध सितारवादक उ० इनायत खाँ और उनके पिता उ० इमदाद खाँ ने किया था। पिछले 30 वर्षों में सभी उभरते हुये सितार-वादकों ने अधिकतर इसी बाज़ का अनुकरण किया और लोकप्रिय वादक बनने का प्रयास किया। (इमदाद खाँ के बाज का पूर्ण विवरण सितारे के घराने में दिया गया है।)

यथार्थतः बाज पर अधिकार पाने के लिए सच्ची साधना करनी पड़ती है। यदि यह घरानेदार बाज होता है तो किसी विद्वान् अथवा गुरु की शिक्षा और संरक्षकता दोनों ही अनिवार्य हो जाती हैं। गायकी के समान ही शिक्षा एवं परिश्रम बाज पर भी लागू होती है। किसी मान्य घरानेदार बाज का ज्ञान किसी कुशल घरानेदार वादक से ही उपलब्ध हो सकता है।

बिना 'बाज' की विशेषताओं के जाने और माँजे हुये कोई भी प्रवीण वादक बाज का विशेषज्ञ नहीं हो सकता, और कुशल घरानेदार वादकों के समाज में उसको आदर नहीं मिल सकता। बाज के लिए उत्तम शिक्षा और कठोर परिश्रम अनिवार्य है। किसी वादक का बाज ही उसका प्रमाण-पत्र होता है।

इस प्रकार हमने देखा कि घराने ही बाज के माध्यम होते हैं। प्रतिष्ठित शैलियाँ "बाज"—केवल घरानों के माध्यम से ही जीवित और सुरक्षित रखी जा सकती हैं। परन्तु नये बाज का घराना अपने आप ही निर्मित नहीं हो जाता। कोई बहुत बुद्धिमान अथवा विलक्षण वादक अपनी शैली (बाज) का निर्माण कर सकता है और अपने व्यक्तिगत मत को भी प्रस्थापित कर सकता है, पर यह आवश्यक नहीं है कि उस बाज से एक घराना ही निर्मित हो जाय।

सन् 1940-45 के लगभग सितार के दो ही बाज प्रचलित थे—मसीतखानी और रजाखानी। दोनों स्वतः पूर्ण थे तथा अलग-अलग घरानों के परिचायक थे। ये घराने पछाहीं तथा पूर्वी कहे जाते थे। एक घराने का कलाकार अन्य घराने की शैली का प्रयोग नहीं करता था। मसीतखानी तथा रजाखानी घरानेदार शैली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का सन् 1945 के आस-पास से समाप्त होने लगा और कुछ ही वर्षों में सभी कलाकार मसीतखानी और रजाखानी एक साथ बजाने लगे। यह परिवर्तन कण्ठ संगीत की ख्याल शैली के प्रभाव से हुआ। अब हम पश्चिमी (पछाहीं) तथा पूर्वी बाज का वर्णन प्रस्तुत करेंगे।

(1) पश्चिमी—सेनिया के जयपुर घराने के संस्थापक सुविख्यात सितार वादक अमृत सेन थे। इसी घराने से तन्त्र के पश्चिमी बाज का विकास हुआ। पश्चिमी बाज के संगीतकार सितार और वीणा-वादन के साथ-साथ ध्रुपद गायन भी करते थे। ये लोग पश्चिमी बाज के कलाकार कहलाये। यह ध्रुपद शैली पर आधारित था। इसमें लय की आड़, कुआड़ और तोड़े का प्रयोग होता था। इस शैली के बीनकार, रवाबिये, सुर सिंगारिये और सितारिए विलम्बित लय में गतें अधिक बजाते थे, जिसमें ध्रुपद का पूरा स्वरूप तथा राग की शुद्धता को प्रतिष्ठित हुए बँधे तोड़ों का प्रयोग करते थे। वे ध्रुपद के चारों भाग (स्थायी, अंतरा, संचारी, आभोग) बजाते थे। बीन अंग का झाला, लड़ गुथाव, रवाव और सुर सिंगार का काम इस बाज की विशेषता थी।

बाज पूर्वी—सेनिया घराने के ही संगीतज्ञ जो बनारस और लखनऊ में जाकर बसे, उनके द्वारा पूर्वी बाज का विकास हुआ। गुलाम रजा को पूर्वी बाज का प्रवर्त्तक माना जाता है। यह बाज मुख्यतः नवाबों और रईसों को खुश करने के के लिये विकसित हुआ। नवाबों और रईसों में ध्रुपद-जैसी गम्भीर गायकी के प्रति जन रुचि कम होती जा रही थी तथा ख्याल एवं अन्य अपेक्षाकृत चंचल गायन प्रकारों की ओर बढ़ रही थी, धनी वर्ग उत्तेजनात्मक खेलों—मल्लयुद्ध, तीतर-बटेर, शेर आदि की लड़ाइयाँ-देखने का शौकीन था। इस परिवर्तित परिवेश में सितार वादकों को भी समय की माँग के अनुसार द्रुत वादन-शैली विकसित करनी पड़ी। ध्रुपद अंग के पश्चिमी बाज़ का महत्व कम होता गया। इस नये पूर्वी बाज में गतों को द्रुत लय में बजाने का नियम निर्मित हुआ। पहले जोड़ झाले, फिर द्रुत गति के साथ तोड़े तथा उसमें आड़ कुआड़ की लय, कुछ मिजराबों का काम और सीधा-सीधा झाला वजाया जाता था। इस पूर्वी बाज की मुख्यता तीन विशेषतायें निम्नवत् हैं :—

(1) विशुद्ध ध्रुपद शैली में आलाप तथा जोड़ का काम।
(2) ठुमरियों पर आधारित सुन्दर, कलात्मक एवं भावप्रवण गतें।
(3) अति द्रुतलय में वैविध्यपूर्ण झाले के साथ समापन।

ये विशेषतायें लखनऊ के विभिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक तथा कलात्मक परम्पराओं से सम्वद्ध थीं। मुस्लिम तहज़ीव (लखनऊ) नजाकत, नफ़ासत तथा स्थानीय लोक संस्कृति की कोमल पदावली के सम्मिलित प्रभाव से लखनऊ में ठुमरी गायकी का विकास हुआ। ठुमरी की लोकप्रियता के कारण तन्त्र-वादकों के द्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तन्त्र वाद्यों में बजने के लिए बहुत सी ठुमरी अंग की गतों की वंदिशें की गयीं। ठुमरी का तेज ठेका ही तन्त्रवाद्यों के साथ बजता था। सितार के साथ द्रुत ठेके का रूप 'सितारखानी' कहलाया, जो पूर्वी बाज की देन थीं। गुलाम रजा ने अधिकांशतः इसी प्रकार की गतों की वंदिशें कीं। इनके बाद फर्रुखाबाद के नवाब हशमतजंग बहादुर के मुखबाज में बहुत-सी गतें तीन ताल में ठुमरियों पर बाँधा। लखनऊ के गुलाम मुहम्मद खाँ और अन्य बहुत से रबाबियों और बीनकारों की वजह से लखनऊ से पूर्वी बाज में अत्यधिक उन्नति हुई। गुलाम मुहम्मद खाँ ने आलाप, जोड़, झाला, लड़, लड़ गुथाव तथा ढोक आदि का प्रयोग पूर्वी बाज के सितार पर किया। इस बाज के उ० यूसुफ का अली खाँ का नाम भी उल्लेखनीय है। उस्ताद इस्माईल खाँ का साफ-सुथरा द्रुत बाज पूर्वी बाज की एक विशिष्ट विधा का अविकृत नमूना है। यूसुफ अली के शिष्य उ० इलियास खाँ ने पूर्वी बाज की विभिन्न विधाओं को समन्वित करके उसे प्रौढ़ और परिष्कृत रूप प्रदान किया। आज भी यह सेनी घराने तथा लखनवी (पूर्वी) बाज की समृद्ध परम्पराओं का एक व्यापक रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं। आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व पूर्वी बाज की गतें लखनऊ में बजनी शुरू हुईं, जिनकी वंदिशें प्रसिद्ध सेनिए घराने के उस्तादों ने की। उसी बाज को उस्ताद इलियास खाँ के बुजुर्गों ने उन सेनियों से बँधवाकर प्राप्त किया। अतः इलियास खाँ किसी भी प्रोग्राम में, चाहे वह रेडियो का हो, कान्फ्रेंस हो, उस बाज का प्रयोग उसी प्रकार करते हैं।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तबले के विभिन्न बाज और घराने

सन् 1200 ई० या 1300 ई० में तबले का निर्माण हुआ। वर्षों बाद उसके घराने निर्मित हुए। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में या सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दिल्ली में स्वतन्त्र तबला-वादन का प्रारम्भ हुआ। अमीर खुसरी के काल में ख्याल के साथ तबले की संगति शुरू हुई। वर्षों वाद स्वतन्त्र तबला वादन को महत्व प्राप्त हुआ। सन् 1600 के लगभग उस्ताद सिद्धार खाँ ने, जो दिल्ली के निवासी थे, प्राचीन ताल वाद्य में कुछ परिवर्तन किये। उन्होंने वर्षों के चिन्तन और परिश्रम के फलस्वरूप पखावज और उस समय ताल वाद्यों पर बजने वाले बोलों के आधार पर नवीन रचनायें कीं। आज वही प्राचीन वाद्य तबले का रूप ले चुका है। सिद्धार खाँ ने जिस घराने का निर्माण किया वही दिल्ली घराने के नाम से आज जाना जाता है। उनके द्वारा निर्मित बाज दिल्ली बाज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके बाद अंग्रेजी साम्राज्य में स्वतन्त्र तबला वादन कला का अधिकतम विकास हुआ। अजराड़ा, फरुंखाबाद जैसे घराने इसी समय बने।

अब हम पहले "बाज" शब्द की परिभाषा देंगे, उसके बाद विभिन्न बाजों का वर्णन करेंगे।

बाज—वादन-प्रणाली और वादन-शैली को बाज कहते हैं। जैसा कि Mrs. Peggy Holroyde ने अपनी पुस्तक The Music of India में लिखा है—

"Baj is the technique of presentation which differs from artist to artist. It is the style and technique of playing of an instrument. Under the patronage of Maharajas and Zamindars, two important styles of Sitar playing were being developed viz., Poorab Baj and Pachimi Baj, the Eastern and Western style.

प्रायः तबला विषय के जिज्ञासुओं के बीच बाज और घरानों की चर्चा के विषय में कुछ भ्रान्ति देखने को मिलती है। बाज और घराने एक-दूसरे से पृथक भी है और एक भी। तबले के विभिन्न घरानों की मान्यता का एक मात्र आधार उनकी भिन्न-भिन्न वादन-शैली है। वादन-शैली अर्थात् बाज दो प्रकार से बना प्रतीत होता है—एक रचनाओं से और दूसरे बोलों की निकास विधि से। तबले के वर्ण सभी घरानों में एक से हैं, तबले में एक ही बोल विभिन्न घरानों में कुछ अन्तर के साथ बजाये जाते हैं।

कहीं मध्यमा उँगली से तो कहीं तर्जनी से; इस प्रकार बोलों का निकास विभिन्न घरानों में भिन्न-भिन्न ढंग से किया जाता है। विभिन्न घरानों में बोल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बन्दिशों में भी अन्तर हैं। पश्चिमी बाज में कायदा, पेंशकारा, रेले और छोटे-छोटे मुखड़े मोहरों की प्रधानता रही है। उसके विपरीत फर्रुखाबाद में चालें और गतों को महत्व दिया जाता हैं। बनारस बाज में बोल-बाँट, लग्गी-लड़ी एवं छन्दों की बहुलता रहती है। इन भिन्नताओं से तबले के विभिन्न बाजों का स्वरूप स्पष्ट होता है।

तबला वादन-पद्धति के अनुसार तबले के दो प्रमुख बाज हैं—

(1) पश्चिमी बाज

(2) पूरब का बाज

(1) पश्चिमी बाज—इसके अन्दर दिल्ली और अजराड़ा घराने की वादन शैली आती है।

(2) पूरब का बाज—इसके अन्तर्गत लखनऊ, फर्रुखाबाद और बनारस घरानों की वादन शैली आती है।

इन दोनों बाज़ों से पृथक पंजाब घराने की वादन शैली है। तबले की अपेक्षा, मृदंग की वादन शैली का प्रभाव पंजाब घराने पर दिखता है।

बन्द बाज—दिल्ली और अजराड़ा घराने की वादन शैली बन्द बाज कहलाती है। इसमें दायें-बायें निर्माण होने वाली गूँज मर्यादित होती है। नाद बन्द हो या गूँज मर्यादित हो, तो वादन की गति अधिक रहती है। यह स्वतन्त्र तबला वादन का एक प्रमुख अंग है, एक प्रमुख तत्व है। बजाये हुए बोल की गूँज कम होने के कारण उसका प्रभाव नष्ट होने से पहले. दूसरे बोल से आघात करना पड़ता है। इसी वजह से इस बाज में कायदों का प्रभाव अधिक है। कायदा या रेला बजाते वक्त दोनों हाथों की प्रत्येक अंगुली को महत्व दिये बिना वे अधिक गति से बजा नहीं सकते। बन्द बाज में तबले की चाँट और बायें की लव पर बजने वाले बोलों को महत्व दिया गया है। सारांश में, बन्द बाज में तबले और बायें में से निर्माण होने वाले शुद्ध नाद को महत्व दिया गया है। पखावज में सुर या मैदान पर निर्माण होने वाले नादों का अनुकरण करने का यत्न इस बाज में नहीं किया गया। जुड़ी हुई अँगुलियों से निर्माण होने वाले, पखावज पर बजने वाले नादों का जरा सा भी असर इस बाज पर नहीं हुआ।

खुला बाज—लखनऊ, फर्रुखाबाद तथा बनारस घरानों में खुले बाज का प्रयोग होता है। यह बाज, बन्द बाज के बिलकुल विपरीत है। इस बाज पर पखावज का पूरा प्रभाव दिखाई देता है। पखावज की तरह जुड़ी हुई अंगुलियों का प्रयोग इस बाज में होता है। खुला यानी ज्यादा गूँजवाला नाद उत्पन्न करने के लिए पखावज की वादन-पद्धति का अनुकरण किया जाता है। तबले के 'सुर' या बाँयें के 'मैदान' पर खुले हाथ से आघात किये जाने के कारण इस बाज में गति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ है। इसीलिए गत, गत, परन, तोड़े, चक्रदार आदि रचना के प्रकार इसमें अधिक हैं। जुड़ी हुई अँगुलियों से बजाने और गूँज अधिक समय तक रहने के कारण गति कम है। सारांश में खुलाबाज यानि पखावज का बाज पखावज की बादन विशेषताओं का पूर्ण असर दिखाने वाला बाज है। इसे पूर्वी बाज भी कहते हैं।

शुरू में इन दोनों बाजों को दिल्ली और लखनऊ के कलाकारों ने स्वीकार किया। इसीलिए "दिल्ली घराना" अथवा 'दिल्ली बाज' और 'लखनऊ घराना' तथा 'पूरब बाज' नाम उन्हें प्राप्त हुये । दिल्ली घराने ने 'बन्द बाज' को स्वीकार किया और लखनऊ घराने ने 'खुले बाज' को स्वीकारा।

तबले के घराने

जिस प्रकार ख्याल गायन में ग्वालियर घरानों को अन्य सभी घरानों का जनक कहा जाता है, उसी प्रकार तबले के घरानों में दिल्ली घराना और बाज अन्य सभी घरानों का जनक माना जाता है। दिल्ली घराने के ही शिष्यों ने विभिन्न नगरों की स्थानीय परिस्थितियों को देखा और दिल्ली बाज के ही आधार पर अन्य शैलियों को निर्मित किया, जिसके फलस्वरूप आज उत्तर भारतीय संगीत में तबले के मुख्य छः घराने बने—

(1) दिल्ली (2) अजराड़ा (3) लखनऊ (4) फर्रुखाबाद (5) बनारस (6) पंजाब।

दिल्ली घराना (बन्दबाज)

स्वतन्त्र तबला बादन का यह आद्य (प्राचीन) घराना है। अमीर खुसरो जैसे विद्वान संगीतज्ञ तथा मियाँ तानसेन जैसे कलाकार दिल्ली में ही थे। दिल्ली के तख्त पर आने वाले बादशाह, सुल्तान अमीर होने के कारण उन्होंने आला दर्जे के कलाकारों को आश्रय दिया था। जिस समय अकबर बादशाह दिल्ली के तख्त पर थे, उसी समय दिल्ली घराना निर्मित हुआ।

उस समय ख्याल रचना लोकप्रिय हो रही थी और ध्रुपद, धमार जैसी रचनाओं का प्रचार-प्रसार कम होने लगा था। ख्याल के साथ संगत करने में पखावज का स्थान उसी समय तबले को मिला। उँगलियों की द्रुत गति से हलचल और बाँयें में से निर्मित होने वाली मीड़ ख्याल की संगत के लिए पोषक थी। इसीलिए दिल्ली के कलाकारों ने तबले का स्वतन्त्र स्थान निर्माण करने के लिए पखावज के बोलों का या बादन वैशिष्ट्य का तबले पर प्रभाव नहीं होने दिया। नामी कलाकारों की बादन-पद्धतियाँ सिर्फ उन्हीं के घरानों की विशेषताएँ दिखाती हैं, ऐसा सोचना गलतफहमी है । अन्य घरानों की पसन्द आने वाली विशेषताएँ भी वे अपना लेते हैं। इसीलिए अपने घराने की शुद्ध बादन-पद्धति ही उन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वीकृत की है, यह बात नहीं कही जा सकती। किन्तु आज के कलाकारों में दिल्ली घराने के खलीफा उस्ताद इनाम अली खाँ ने अपनी वादन-पद्धति शुद्ध रखने के लिए निष्ठापूर्वक प्रयत्न किया है। आज अन्य बहुत से कलाकार अपने घराने के तबले के साथ ही साथ दिल्ली घराने का तबला भी बजाते हैं। परन्तु उनके और उस्ताद इनाम अली खाँ के वादन में काफी फर्क है। उस्ताद इनाम अली खाँ का तबला दिल्ली घराने की वादन-पद्धतियों के प्रति एकनिष्ठ रहा है।

दिल्ली बाज 'चाँटी का बाज' या 'दो अंगुलियों का बाज' नाम से भी मशहूर है। ये नाम दिल्ली घराने की वादन-पद्धति सूचित करते हैं।

(3) सिद्धार खाँ इस घराने के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। आपका जन्म 1700 ई० के लगभग हुआ। आपके समकालीन कलाकारों में उस समय सदारंग खुसरो खाँ, पखावजी भवानी सिंह आदि थे। उन्होंने युग की बदलती हुई माँग और ख्याल गायन शैली पर संगत के अनुरूप पखावज के आधार पर तबले को पखावज से सर्वथा अलग वाद्य बना दिया। पखावज के खुले बोलों को तबले पर बजाने योग्य बनाया, नवीन रचनाएँ कीं, और अँगुलियों के प्रयोग में कुछ अन्तर किया। उनकी नई शैली का अनुसरण उनके वंश एवं शिष्यों ने किया और यह क्रम कई पीढ़ी तक चलता रहा। कालान्तर में उसे एक घराने की मान्यता मिली। इस प्रकार उ० सिद्धार खाँ द्वारा निर्मित घराना अन्य घरानों का भी जनक बना।

उ० सिद्धार खाँ के तीन पुत्र थे—घसीट खाँ, बुगरा खाँ, मोंदू खाँ।

मोंदू खाँ और उस्ताद बख्शू खाँ से लखनऊ घराना प्रस्थापित हुआ। बुगरा खाँ के वंशजों तथा शिष्य-परम्परा से दिल्ली घराना सब जगह प्रचलित हुआ। बुगरा खाँ के दो पुत्र थे—उस्ताद सिताब खाँ और गुलाब खाँ। इन दोनों भाइयों के वंश और शिष्यों द्वारा दिल्ली घराने का नाम प्रसिद्ध हुआ।

उ० बुगरा खाँ के दो पुत्र थे—(1) उ० सिताब खाँ (2) उ० गुलाब खाँ। इन दोनों भाइयों के वंश एवं शिष्यों ने दिल्ली घराने की परम्परा को आगे बढ़ाया।

उ० सिताब खाँ के पुत्र उ० नजर अली खाँ, दौहित्र बड़े काले खाँ, वंशज शादी खाँ और शिष्य भीरू खाँ। कल्लू खाँ सभी प्रतिभाशाली कलाकार थे। उ० सिद्धार खाँ के दौहित्र बड़े काले खाँ साहब ने तबले का बहुत प्रचार किया। उनके पुत्र बोली बख्श, पौत्र नत्थू खाँ, शिष्य उ० मुनीर खाँ ने देश भर में ख्याति प्राप्त की। उ० मुनीर खाँ ने सैकड़ों शिष्य तैयार किये जिनमें अहमदजान थिरकवा, चाँद खाँ, आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। खाँ साहब के शिष्य-प्रशिष्यों में जिन्होंने विशेष ख्याति पाई, वे हैं—निखिल घोष, अता हुसेन खाँ, जगन्नाथ बुवा, गुलाम रसूल, तथा डॉ० आबान ए० मिस्त्री (बम्बई)

उ० बुगरा खाँ की प्रशिष्य-परम्परा में सर्वश्री लतीफ अहमद खाँ, फैयाज खाँ, आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आजकल इसी परम्परा के उदीयमान कलाकारों में दिल्ली के शफात अहमद का नाम लिया जाता है।

उ० सिद्धार खाँ के पौत्र डॉ० मोंदू खाँ से लखनऊ घराने की परम्परा चली। उ० सिद्धार खाँ की शिष्य-परम्परा में उ० कल्लू खाँ और उ० भीरू खाँ से अजराड़ा घराने का जन्म हुआ, जो दिल्ली घराने की ही एक शाखा है।

दिल्ली घराने की वादन शैली

दिल्ली घराने की विशेषता है-उसकी निजी और मौलिक वादन शैली। यही सर्वप्रथम तबले का घराना बना और उतना ही महत्वपूर्ण भी। दिल्ली घराने का बाज अत्यन्त कोमल और मधुर है। इस घराने में तर्जनी एवं मध्यामांगुलि का अधिक प्रयोग होता है। अँगुलियों के विशेष ढंग के प्रयोग के कारण दिल्ली घराना और भी सुन्दर बन गया है। इस बाज में चाँटी अर्थात् किनार का अधिक प्रयोग होता है, अतः इसे किनार का बाज भी कहते हैं। इसमें मर्यादित ध्वनि उत्पन्न होती है। इसे बन्द बाज कहते हैं। इस बाज में पेशकार, कायदा, रेला, मुखड़ा, मोहरा एवं छोटे-छोटे टुकड़े विशेष रूप से बजाये जाते हैं। इसमें बड़े परन, जोरदार चक्करदार परनों का अभाव है। घिनघिन, धा, धा, तिरकिट, धागेन धा तिरकिट, धाती धागे, धातिगेन आदि बोलों का विशेष रूप से प्रयोग होता है।

दिल्ली घराने को पश्चिमी बाज के अन्तर्गत रखा गया है। क्योंकि इस बाज में अँगुलियों का विशेष प्रयोग होता है और पूरे पंजे का प्रयोग नहीं करते ; अतः घिरघिट जैसे बोल का निकास पूड़ी के अन्दर-अन्दर ही होता है। इस बाज में बायें तबले के वादन में तर्जनी और मध्यमा अँगुली का प्रयोग अधिक होता है और वाद्य पर से बजाते समय हाथ नहीं हटाया जाता। इस घराने में अधिकार रचनाऐ चतुरस्र जाति में निबंद्ध होती है। कुछ लोगों के ख्याल से किन्हीं भी दो अँगुलियों का प्रयोग तबले पर बजाने के लिए किया जा सकता है। किन्तु मध्यमा और तर्जनी से बजाते हुए कायदे स्पष्ट और जोर से बजते हैं। 'तिरकिट-तिरकिट' जैसे बेदम और दोबारा बजने वाले बोल इन दो अँगुलियों से तैयारी में स्पष्ट रूप से बजते हैं। इसलिए ये दो अँगुलियाँ दिल्ली बाज का एक प्रमुख वैशिष्टच है। दिल्ली घराने के कायदे तथा रेले हमेशा चाँटी पर या किनारे पर बजाये जाते हैं। इसके अलावा थोड़ी-थोड़ी गत, तिहाई और चक्रदार भी दिल्ली बाज में चाँटी पर ही बजाई जाती है। इनके वादन में दो अँगुलियों द्वारा बजने वाले इन बोलों का खास तौर पर प्रयोग किया जाता है—धिट, तिट, धा, ता, धागे, तागे, धागेन, तागेन, धिना, गिना, धिनधिन, तिनकिन, धिरधिर आदि।

बाँये की. मीड या गूँज का आवश्यक उपयोग दिल्ली बाज में नहीं किया गया। मध्यमा और तर्जनी से बार-बार हाथ उठाये बिना बाँया बजाया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तैयारी से कायदा बजाने के लिए यह तरीका आसान है। फिर भी उससे नाजुक नाद निकलते हैं। दिल्ली बाज में दायें-वायें में से मुलायम और नाजुक नाद निर्मित किये जाते हैं। इसीलिए उनकी गति काफी द्रुत होती है। दिल्ली घराने के कलाकारो ने वर्तमान समय में तबले की संगति हेतु वादन को कुछ बदल दिया है, जिससे कि अब गायन की संगति इसके साथ की जा सकती है।

अजराड़ा घराना

उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में मेरठ में एक गाँव का नाम अजराड़ा है। अजराड़ा घराना दिल्ली घराने का शागिर्द घराना है दिल्ली और अजराड़ा की वादन-पद्धति में ज्यादा फर्क नहीं है। अजराड़ा के दो रहने वाले भीरू खाँ और कल्लू खाँ तबले की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए दिल्ली गये, वहाँ उन्होंने उ० सिद्धार खाँ के पौत्र सिताव खाँ से शिक्षा ग्रहण की। शिक्षा प्राप्त कर ये दोनों मेरठ के अजराड़ा गाँव में वापिस चले आये। यहाँ उन्होंने दिल्ली की वादन-शैली में ही परिवर्तन कर एक नये वाज का निर्माण किया, शिष्य वनाये और इस प्रकार जब उनकी एक परम्परा कायम हो गई तो अजराड़ा नामक एक पुराने घराने का जन्म हुआ।

भीरू खाँ और कल्लू खाँ के वंश में मोहम्मदी बख्श, चाँद खाँ, काले खाँ, कुतुब खाँ, तुल्लन खाँ और घीसा खाँ ने तवले की शिक्षा ग्रहण की। इसी परम्परा में आगे चलकर हस्सू खाँ, नियाजू खाँ, अजीजुद्दीन खाँ, शाफिया खाँ, जमीर अहमद खाँ आदि हुये। सन 1945 ई० के लगभग उस्ताद हवीव उद्दीन खाँ ने अपने वादन से इस घराने का नाम रोशन किया। उनकी परम्परा में उनके पुत्र मंजू खाँ, सर्वश्री सुधीर कुमार सक्सेना, करण सिंह, महराज बनर्जी आदि शिष्य हुए।

आजकल अजराड़ा घराने की परम्परा में आकाशवाणी दिल्ली में कार्यरत श्री रमजान खाँ, हुशमत अली खाँ (श्रीनगर) एवं यशवंत केलकर (वम्बई) आदि का विशेष योगदान है।

वादन-शैली—यह घराना कायदों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। अधिकांश कायदे के उत्तरार्द्ध का भाग पूर्वार्द्ध का वन्द (वायाँ रहित) ही होता है। कुछ कायदे क त, त्ति, धिगन, धेनक आदि बोलों से प्रारंभ होते हैं, जो अन्य घरानों में कम दिखते हैं।

इस घराने में अधिकतर रचनायें तिस्र जाति में हुई हैं, इसी विचित्र प्रयोग के कारण अजराड़ा घराना दिल्ली घराने से सर्वथा स्वतन्त्र एवं मौलिक नजर आता है।

अजराड़े घराने में एक अन्य विशेषता है जो इसे अन्य घरानों से अलग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करती है। वह यह कि इस घराने में डग्गे का प्रयोग मींडयुक्त, सुन्दर एवं दाहिने के बोलों से लड़ता हुआ होता है। एक और विशेषता यह भी है कि इस घराने वालों ने तबला और बायाँ दोनों पर मध्यांगुलि एवं तर्जनी के साथ-साथ अनामिका का भी प्रयोग शुरू कर दिया, जबकि अभी तक अन्य घरानों में मध्यांगुलि एवं तर्जनी का ही प्रयोग होता था। अनामिका का प्रयोग करने से 'धिनगिन' जैसे बोल सरलता से द्रुतलय में बजने लगे।

दिल्ली घराने की अपेक्षाकृत अजराड़ा घराने ने सोलो वादन एवं संगति दोनों में ही वहुत सफलता प्राप्त की है। यह बाज कठिन भी बहुत है, और गुणीजन द्वारा विशेष सराहनीय।

गायन-शैली और कत्थक नृत्य की संगति के लिए वर्तमान काल के अजराड़ा वादकों ने पूरब की शैली का भी अनुकरण किया है। अजराड़ा-वादकों ने पूरब की शैली का भी अनुकरण किया है। अजराड़ा घराने के वादकों ने अपने वादन की मिठास वढ़ाने के लिए ज्यादा कोशिश करके अपना वादन कर्णमधुर बनाया। अजराड़ा के वादकों ने बाँयें को दायें जितना ही महत्वपूर्ण समझा। उसके मीड़ के काम को महत्व दिया। इसके अलावा बाँये पर किया जाने वाला 'घीस काम' अजराड़ा घराने का ही आविष्कार है। अजराड़ा घराने के वादकों ने तवले पर पूरब-बाज के गत तोड़ों का प्रभाव लेकर कायदे के आगे आगे गत तोड़े बजाकर अपना तबला-वादन समद्ध बनाया।

लखनऊ घराना

दिल्ली घराने के लगभग सौ वर्ष बाद लखनऊ घराने का उदय हुआ। लखनऊ नवावों का गढ़ था। ये नवाव बहुत रसिक और नृत्य संगीत के पोषक थे। वे संगीतप्रेमी थे और संगीतज्ञों को आश्रय देते थे। उनका आतिथ्य कर उन्हें सम्मान देते थे। लखनऊ नगर में इसीलिये गायक, वादक और नर्तक सदैव जमा रहते थे। उन्होंने कत्थक नृत्य को विशेष राजाश्रय दिया और जल्दी ही वहाँ नृत्य का यह प्रकार काफी लोकप्रिय हो गया। नृत्य की संगति के लिए पखावज इस्तेमाल होती थी। कत्थक नृत्य का एक महत्वपूर्ण प्रकार ततकार अथवा द्रुतलय के विविध दर्जे पखावज पर बजाना मुश्किल था। इसलिए पखावज की जगह तवला आया। कत्थक नृत्य में पखावज को दूसरा स्थान मिला। परन्तु जोरदार आवाज के लिए पखावज को ही ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ। तबले के मुलायम स्वर नृत्य की संगति के लिये उपयुक्त नहीं थे, यह सोचकर लखनऊ के कलाकारों ने इस कमी को दूर करने की कोशिश की। उन्होंने दायें की चोट के वदले सुर पर और बायें के सुर के वदले मैदान पर आघात करके पखावज की नाद ध्वनियों जैसे खुले नाद उत्पन्न करने में कामयाबी हासिल की। पखावज की अपेक्षा प्रगल्भ और सुलभ बैठक, उसकी वजह से बजाने में द्रुतगति और उँगलियों और हाथों का अन्दाज और निकास आदि गुणों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से तबले को नृत्य संगीत में काफी ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ। जब 1739 ई० के आस-पास हिन्दुस्तान पर नादिरशाह का आक्रमण हुआ, तो उस समय मुहम्मद शाह रंगीले दिल्ली के शासक थे। मोहम्मद शाह रंगीले संगीत के अत्यधिक प्रेमी थे, पर नादिरशाह ने जब दिल्ली में कत्लेआम किया तो उससे मोहम्मद शाह रंगीले को संगीत से घृणा हो गयी; फलस्वरूप दरबारी संगीतज्ञ इधर-उधर भटकने लगे। कुछ कलाकारों ने लखनऊ, रामपुर, तो कुछ ने जयपुर आदि रियासतों में पनाह ली। मुख्य रूप से उस समय लखनऊ का दरबार ही कलाकारों का प्रमुख केन्द्र बना। उन दिनों लखनऊ में पखावज ही एकमात्र ताल वाद्य था, अतः जब ख्याल का प्रचार धीरे-धीरे बढ़ा तो दिल्ली से आये हुये कलाकारों ने इस अवसर का लाभ उठाकर अपने वादन में परिवर्तन किया। उनके द्वारा किया गया यह प्रयास मुख्य रूप से ख्याल तथा ठुमरी की संगति के लिए प्रशंसनीय रहा। नृत्य की संगति के लिये उन्होंने अपनी वादन शैली में और भी आवश्यक परिवर्तन किये।

इसी बीच उ० सिद्दार खाँ के पौत्र उ० मोदू खाँ और बख्शू खाँ दिल्ली से आकर लखनऊ में बस गये। इन दोनों भाइयों ने लखनऊ की सांगीतिक परिस्थितियों के अनुसार अपनी वादन-शैली में परिवर्तन किया। क्योंकि लखनऊ कत्थक नृत्य का केन्द्र था; अतः कत्थक नृत्य की संगति हेतु तबले में परिवर्तन आवश्यक थे। दिल्ली बाज इसके लिए उपयुक्त न था। इन दोनों भाइयों ने चाँटी से अधिक स्याही को तथा दो उँगलियों के स्थान पर पाँचो उँगलियों का प्रयोग शुरू किया, बोलों के निकास में परिवर्तन किये, परन, टुकड़े, चक्रदार आदि का समावेश कर एक नये बाज का निर्माण किया। यह नवीन बाज दिल्ली के बन्द बाज की अपेक्षाकृत अधिक खुला और जोरदार था। इस प्रकार लखनऊ घराना अर्थात् पूरब बाज का निर्माण हुआ। लखनऊ बाज 'थपिया-बाज' के नाम से भी मशहूर है। क्योंकि इस बाज में विशेषतः दायें हाथ की चार उँगलियों को मिलाकर पूरे हाथ से आघात किया जाता है। बाद में स्वतन्त्र तबला वादन में बाँये हाथ से बाँये पर आघात करना कम हो गया। उससे लखनऊ घराने का स्वतन्त्र तबला वादन जोरदार होने के साथ-साथ कर्णमधुर भी हो गया।

लखनऊ बाज अर्थात् पूरब का बाज लव और स्याही प्रधान बाज है। यह अधिक जोरदार और गूंजयुक्त वादन-शैली है। इसमें नृत्य के लिए विशेष रचनाओं का समावेश किया गया। यह बाज संगति के लिए अधिक उपयुक्त रहा।

जिस समय उ० मोदू खाँ और बख्शू लखनऊ आये, उस समय नवाब आसफुद्दौला का शासन-काल था। उसके बाद नवाब नासिरुद्दीन हैदर का समय आया और नवाब वाजिद अली शाह का। नवाब वाजिद अली शाह संगीतप्रेमी तो थे ही, स्वयं भी अच्छे कलाकार थे। वे अपने दरबार में तबले के विद्वानों एवं कलाकारों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का बहुत आदर-सम्मान करते थे। इस प्रकार तबले का लखनऊ घराना अधिक विकसित हुआ।

उ० मौंदू खाँ के शिष्यों में पं० राम सहाय मिश्र का नाम उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त नम्मन खाँ, हाजी विलायत अली खाँ इसी परम्परा के अनुयायी हुये। लखनऊ घराने के शिष्यों में अमान खाँ, भैरो प्रसाद, सुजान खाँ, जहाँगीर खाँ, फैय्याज खाँ, हवीबुल्ला, उ० शेख दाऊद खाँ, धन्नू उस्ताद, गंगादयाल पाण्डे इत्यादि हुये।

वादन-शैली---दिल्ली का बन्द बाज लखनऊ में पखावज और नृत्य के प्रभाव से खुला और जोरदार हो गया। अब लखनवी घराने में चोटी की अपेक्षा स्याही का प्रयोग तथा लव से ध्वनि का निर्माण हुआ। इस नवीन बाज में पाँचों अंगुलियों का प्रयोग होने लगा तथा बांयें पर अंगूठे द्वारा मींड़, घसीट उत्पन्न करने की प्रथा देखी जाती है।

लखनऊ घराने में कायदे दिल्ली और अजराड़ा घरानों के कायदों की अपेक्षाकृत अधिक लम्बे होते हैं। इस बाज में तगन्न, दुंग, नग नग, किटतक धेन्ता, धिड़ान, तिनतड़ा, न, धेत् धेत्, धेड़नग, धेतान आदि बोल-समूहों का प्रयोग अधिक देखा जाता है। लखनऊ घराने के कलाकार कभी-कभी कत्थक नृत्य के कलाकारों के समान अपनी रचनाओं को पहले मुँह से पढ़ते हैं, फिर तबले पर निकालते हैं। लखनऊ घराने पर पंजाब घराने का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। इसका कारण है कि उ० मौंदू खाँ की पत्नी को पंजाब घराने की तालीम थी, मौंदू खाँ के दहेज में कुछ गते उपहार के रूप में मिली थीं, इन सबका प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लखनऊ घराने पर अवश्य दिखाई देता है।

लखनऊ घराने की वादन-शैली में लग्गी लड़ी का काम भी होता है, क्योंकि यह वादन शैली स्पष्ट रूप से ठुमरी गायन शैली से प्रभावित हुई। ठुमरी के समान ही लखनऊ घराने के तबले की वादन शैली में लग्गी लड़ी का काम बहुत होता है।

फर्रुखाबाद घराना

लखनऊ घराने की ही एक शाखा फर्रुखाबाद घराने के नाम से प्रसिद्ध हुई। लखनऊ घराने के प्रवर्त्तक उ० बख्शू खाँ के शिष्य एवं दामाद उ० हाजी विलायत अली खाँ, फर्रुखाबाद के रहने वाले थे। अपने श्वसुर से तालीम प्राप्त कर लेने के बाद उन्होंने फर्रुखाबाद जाकर अपनी पृथक् शैली का निर्माण किया तत्पश्चात् फरुखाबाद बाज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हाजी साहब की पत्नी भी तबले की अच्छी ज्ञाता थीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हाजी साहब की विद्वता के विषय में दो मत नहीं हैं, उनके जैसा कलाकार कदाचित् ही पैदा होता है। वे एक कुशल तबलावादक, रचनाकार और उत्तम शिक्षक थे। उन्होंने लखनऊ-घराने के बाज में ही परिवर्तन करके एक नवीन शैली को जन्म दिया। उनके बाज पर नृत्य का प्रभाव नहीं था। यह बाज दिल्ली की तरह न तो बन्द था, न अजराड़ा की तरह खुला। इस बाज में चाँटी और स्याही का समान महत्व प्राप्त हुआ। उनकी गतें आधुनिक तबला वादकों में अत्यन्त लोकप्रिय है।

नवाब बाजिद अली शाह, जिन्होंने लखनऊ में सन् 1847 ई० से सन् 1857 तक राज्य किया, संगीत के बहुत शौकीन थे। हाजी साहब उनके दरबार में कुछ काल तक रहे, 1857 के पश्चात् वे रामपुर दरबार में संगीत प्रेमी नवाब यूसुफ अली खाँ के दरबार में कलाकार नियुक्त हो गये। इनके सबसे बड़े पुत्र निसार अली खाँ तबले के अच्छे विद्वान थे। उनके शिष्यों में उनके छोटे भाई हुसेन अली का नाम प्रमुख है। इनके दूसरे पुत्र अमान अली खाँ भी तबले के विद्वान थे, जो बाद में जयपुर जाकर बस गये और वहाँ उन्होंने कत्थक सम्राट जियालाल को तबले की दीर्घ तालीम तथा लयकारी का उत्तम ज्ञान दिया।

हाजी साहब के तीसरे पुत्र का नाम हुसेन अली खाँ था। इन्होंने फर्रुखाबाद घराने का प्रचार और अनेक शिष्य बनाये, जिनमें उ० मुनीर खाँ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसी परम्परा में मौंदू खाँ, रघुनन्दन तथा पं० भीष्मदेव वेदी आदि हुये।

हाजी साहब के चौथे पुत्र उ० नन्हें खाँ थे। उ० नन्हें खाँ के पुत्र उ० मसीत उल्ला खाँ रामपुर के प्रसिद्ध उस्ताद माने गये जाते थे। उस्ताद मसीत उल्ला खाँ के पुत्र करीमतुल्ला खाँ इसी परम्परा के प्रतिभाशाली वादक हुये। उनके युवा पुत्र साबीर खाँ आज फर्रुखाबाद घराने का ही प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

इसी घराने की परम्परा में मोहम्मद खाँ, छोटे खाँ और शेख दाऊद का नाम प्रमुख है। मुस्तफा हुसेन, गुलाम हुसैन, हबीब उल्ला, बाबू खाँ, गुलाम मुहम्मद, फैयाज खाँ मुरादाबाद वाले, बसुवा खाँ, चुन्नीलाल बन्दोपाध्याय, सरदार खाँ, मेंहदी खाँ, अशरफ खाँ अनेक नाम इसी घराने के मिलते हैं।

वादन-शैली—फर्रुखाबाद बाज अत्यन्त क्लिष्ट एवं लयकारी युक्त है। यद्यपि यह पूरब की ही एक शाखा है, इस पर न तो नृत्य का प्रभाव है न ही पंजाब घराने के समान जोरदार है। इस घराने में कायदे पेशकार तो है ही, पर प्रमुख बात यह है कि यहाँ रेलों को एक नवीन रूप दिया गया है। रेलों को रौं अथवा 'रविश' कहते हैं। तबला वादन में गत बजाने की प्रथा इसी घराने से हुई। यह गतें विभिन्न लयकारियों में बजाई जाती हैं तथा इनमें 'तक'-'तक' 'घिर घिर' बोल-समूह का प्रयोग विशेष देखने को मिलता है।

सोलो वादन के लिए फर्रुखाबाद बाज अत्यन्त उत्तम माना जाता है। इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाज में धड़ा, धिड़ान, घिरघिर किटतक तकत धा, तक तक घिर घिर किट तक धेत आदि बोल समूहों का अधिक प्रयोग होता है। यह बाज अत्यन्त मधुर संयत तथा संतुलित है। इस बाज की सबसे बड़ी विशेषता है कि यह शुद्ध बाज है जिसमें किसी साज के बोलों का प्रभाव नहीं है। पेशकारा, फरशबन्दी, कायदा तथा रेला आदि का वादन में उपयोग करना इनकी एक महत्वपूर्ण देन है। गतें, परने और गत तोड़े बाँधने में विविध लयबन्धों का उपयोग करने में फरुखाबाद के कलाकारों की उत्तम प्रतिभा दिखायी देती है। वश-परम्परा से प्राप्त अपनी रचनाओं में अपनी रची हुई हजारों समूह रचनाओं को मिलाकर फरुखाबाद के कलाकारों ने अपनी प्रगति का नया प्रमाण प्रस्तुत किया। इस घराने ने अपने वादन की मिठास बढ़ाने के लिए और गत-तोड़ों में 'सुर' को जोरदार बनाने के लिए 'तक' जैसे बोलों के लिए चारों उँगलियों का उपयोग तथा 'घिर घिर' के लिए पूरे हत्थे का उपयोग करने जैसी बातों को महत्व दिया है। इस घराने में पैदा हुये बहुत से कलाकार उत्तम वादक तथा उत्तम रचनाकार हुये हैं।

बनारस-घराना

बनारस घराने के प्रवर्तक पं० रामसहाय मिश्र है। आपने लखनऊ घराने के प्रवर्तक उ० मौंदू खाँ साहब की शिष्यता में रहकर तबला वादन में प्रवीणता प्राप्त की। एक लम्बी अवधि के बाद वे अपने नगर बनारस लौट आये और तबले का यथेष्ट प्रचार किया। उनकी शिष्य परम्परा से एक घराने का जन्म हुआ जो आज देश में बनारस घराने के नाम से सुविख्यात है।

पं० रामसहाय जी का समय सन् 1830 ई० से सन् 1886 ई० तक का माना जाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि बनारस घराना डेढ़ सौ वर्ष स अधिक प्राचीन नहीं है। पं० जी का जन्म एक कत्थक नृत्य के परिवार में हुआ। उन्होंने बाल्याकाल से ही तबले की शिक्षा अपने पिता एवं चाचा से प्राप्त की। उसके बाद लखनऊ जाकर आपने उ० मौंदू खाँ से तालीम प्राप्त की और उसी शिक्षा के उपरान्त उन्होंने लखनऊ बाज में परिवर्तन कर अपनी मौलिक प्रतिभा से एक नये घराने का निर्माण किया जो बनारस घराना कहलाया। आज इसी परम्परा के अनुयायी सर्वत्र छाये हुये हैं और बनारस घराने को रोशन कर रहे हैं। यहाँ यह बताना अनुचित न होगा कि एक मात्र बनारस घराना ही ऐसा घराना है जिसके प्रवर्तक एक हिन्दू कलाकार हैं।

लखनऊ घराने के साथ-साथ आपको पंजाब घराने की भी तालीम थी। इसका कारण यह था कि उ० मौदू खाँ की पत्नी पंजाब घराने के तबला वादन में दक्ष थी और वात्सल्यवश पं० रामसहाय जी को कभी-कभी वह भी शिक्षा देती थी। इस प्रकार की उत्तम शिक्षा ग्रहण कर पं० रामसहाय जी अपने समय के एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रेष्ठ तबलावादक हुये। नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में उनके तबले की धूम मची थी। बाद में आप स्थायी रूप से बनारस में आकर बस गये।

बनारस में उन्होंने शिक्षण-कार्य प्रारम्भ किया। उनके छोटे भाई जानकी सहाय भतीजे भैंरो सहाय तथा शिष्य बैजू महाराज रामशरण, यदुनन्दन, भगत जी आदि आपके शिष्य बने। इसी परम्परा में आगे चलकर गोकुल जी, रघुनन्दन, श्याम मिश्र, यूसुफ खाँ, महादेव चौधरी, कृष्ण कुमार गांगुली, बीरू मिश्र, दुर्गा मिश्र, मंगला सहाय, राम शंकर सहाय, पं० किशन महाराज, सामता प्रसाद, लाल जी श्रीवास्तव, गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव (स्व०), प्रभुदत्त बाजपेई।

बनारस के तवला वादकों ने बन्दबाज को स्वीकार करते हुये अपने पड़ोसी लखनऊ घराने की वादन-पद्धति का भी ख्याल रखा। पेशकारा, कायदे, रेले आदि प्रकारों में चाँटी तथा गत, परन तोड़े, चक्रदार आदि में सुर का आवश्यक उपभोग उन्होंने किया। लखनऊ तथा बनारस के लोगों पर नवाबी रिवाजों का असर होने के कारण वे बहुत सौजन्यशील तथा नम्र हैं। तबलावादकों पर इन बातों का काफी असर दिखाई देता है। उनका वादन, उनके रियाज तथा कड़ी मेहनत से पायी हुई तैयारी श्रोताओं का मन लुभाती है। उनकी कड़ी मेहनत, जोश और सौन्दर्यपूर्ण तवला-वादन अन्य कलाकारों के लिए भी अनुकरणीय है। वादन की गति को महत्व देने के कारण वे ऊँचे स्वर का तवला इस्तेमाल करते हैं। बाँयें का स्वर भी ऊँचा रखना पड़ता है। बनारस के कलाकारों की रचनाएँ एक से बढ़ कर एक है और उन पर नृत्य की संगति का जरा सा भी असर नहीं है, तथापि वे नृत्य की संगति में भी काफी कामयाब रहे हैं।

दिल्ली अथवा अजराड़ा घराने जैसे अप्रतिम लय बन्धों से युक्त कायदे बनारस घराने के कलाकारों के वादन में नहीं होते।

वादन शैली—बनारस घराने में कायदों से अधिक महत्व उठान, गत, परन, मोहरे, मुखड़े, रेला, लग्गी, बाँट, लड़ी, श्लोक आदि बोलों पर दिया जाता है। इस घराने पर कत्थक नृत्य का प्रभाव है। जिसके कारण तोड़े, टुकड़े, चक्रदार आदि का विशेष चलन है। ठेके के प्रकार तथा फरद नाम की एक विशेष प्रकार की गत बनारस घराने की एक प्रमुख विशेषता है। इसका श्रेय बैजू महाराज को दिया जाता है। बनारस शैली में कुछ जनानी तथा मर्दानी गतें काफी प्रसिद्ध हैं। दोनों प्रकार की गतों में उसी अनुसार विशेषता देखने में आती है। जैसे जनानी गतें कोमल और मर्दानी गतें जोरदार शब्दों के साथ-साथ प्रयोग होती हैं। बनारस घराने में पूरे बाज का प्रयोग करते हैं। इस बाज में अनामिका को थोड़ी सी टेढ़ी करके तथा तवले पर प्रहार करके ध्वनि निकाली जाती है। इस बाज में लय का सबसे अधिक प्रयोग होता है। बनारस घराने के कलाकार अपने वादन का आरंभ उठान से करते हैं जबकि दिल्ली…अजराड़ा में तवले का प्रारंभ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पेशकार से होता है। इस घराने के कलाकार तीन ताल के ठेके 'ध' धिं धिं धा' को 'ना धिं धिं ना' कहते है। इस तरह उच्चारण करने से सुन्दरता आती है। बनारस बाज में तवला और पखावज दोनों के वर्ण एवं शब्द आ जाते हैं, क्योंकि लखनऊ की सारी विशेपतायें इस बाज में सम्मिलित हैं। साथ ही नक्कारा, हुड़क, दुक्कड़, ताशा आदि की वादन-शैली का प्रभाव भी इसमें देखने को मिलता है। इस बाज में धिग धिना, धेटेतेटे, धे धे नक, के के नक, धेत् कता-न, धिननान, किट धान, गदि गेन इत्यादि शव्दों का अधिक प्रयोग देखा जाता है।

इस घराने के कलाकार वादन तैयारी में विशेष निपुण होते हैं। गति और विशिष्टता उनकी अपनी विशेषता है। एक अन्य विशेषता है कि बनारस बाज गायन, वादन और नृत्य सभी की संगति के उपयुक्त हैं, जबकि अन्य घराने इस विशेषता में उतने खरे नहीं उतरते। साथ ही स्वतन्त्र वादन में यह अधिक लोकप्रिय हुआ है। बायें तवले को घसीट कर लम्बी मीण्ड निकालने की प्रथा बनारस घराने में अधिक देखने को मिलती है। वे उत्तम सुरों का और आकर्षक साजों का प्रयोग करते हैं, तबला या पखावज वादन को उच्च स्थान मिला है। एक अँगुली से बजने वाला तीन ताल का मुश्किल ठेका बजाने में बनारस के कई वादकों ने सफलता प्राप्त की है।

पंजाब घराना

पंजाब घराना तबले का एक बहुचर्चित घराना है। यह एक मात्र ऐसा घराना है जिसका दिल्ली के घराने से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है, जिसके प्रवर्त्तक हैं—मृदंगवादक लाला भवानीदास। यही कारण है कि पंजाब घराने की वादन शैली मृदंग शैली के अधिक निकट है। वैसे इसका विकास स्वतन्त्र पखावज के आधार पर हुआ है। यह तबले का प्राचीनतम घराना है। पखावज का असर भी पंजाब में देखने को मिलता है, क्योंकि अभी भी कही-कहीं पंजाब में बायें पर आटा चिपकाने की प्रथा दिखती है।

आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व तक पंजाब में पखावज ही बजती थी। उसकी आड़ में तवला और दुक्कड़ पनपता रहा। दुक्कड़ पंजाब का एक प्राचीन लोक वाद्य है, जो तवले के समान दो भागों वाला वाद्य है। भवानी दास, जो वृज के निवासी थे और मोहम्मद शाह रंगीले के दरबार में कलाकार थे, उन्होंने दुक्कड़ वाद्य पर एक नवीन बाज का आविष्कार किया और लोगों को उसकी शिक्षा दी। उन्होंने उसे शास्त्रीय संगीत में स्थान दिलाया। दुक्कड़ तवले के सदृश वाद्य है; अतः लोगों की धारणा है कि वही तवले का पूर्वज है और पंजाब ही तवले का आदि घराना। पंजाब में पहले पखावज और दुक्कड़ दोनों का प्रयोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होता था, सन् 1940-50 ई० तक अनेक स्थानों पर तवला वजाना प्रारम्भ हो गया था। कई घराने भी कायम हुये, परन्तु पंजाब में पखावज और दुक्कड़ का ही प्रचलन उस समय तक था। कुछ लोगों का कहना है कि उ० फकीर वख्श पखावजी वहाँ के पहले कलाकार हुये, जिन्होंने तवला वादन के महत्व को समझा। उन्होंने लाला भवानीदास द्वारा विकसित वाज, जो अभी तक दुक्कड़ पर बजाता था, उस वाज को तवले पर वजाना आरम्भ किया। उन्होंने इसकी शिक्षा भी अपने वंश और शिष्यों को दी और इस प्रकार पंजाव घराने में तबले का प्रचार शुरू हुआ। क्योंकि तवले के पूर्व इतिहास में पखावज और दुक्कड़ का प्रभाव है अतः पखावज के ही समान तवले पर उँगलियों के स्थान, पूरे पंजे का प्रयोग, बोलो की निकास-पद्धति, लयकारी का गणित एवं वन्दिशों की रचना ये सब विशेषतायें तवले पखावज के निकट का सम्बन्ध व्यक्त करती है।

भवानीदास के मुख्य पाँच शिष्य हुये, जिनसे पंजाब घराने की परम्परा चली—

(1) मियाँ कादिर वख्श (2) हद्दू खाँ लाहौर (3) ताज खाँ डेरेदार (4) अमीर अली (5) शिष्य (जिसका नाम अज्ञात है।)

इसी परम्परा में आगे चलकर हुसेन वख्श, मिया फकीर वख्श, भाई बाग कादीर वख्श, मीरा वख्श, बहादुर सिंह हुये। कादीर वख्श के शिष्यों में उ० अल्लार खाँ तथा उनके पुत्र जाकिर हुसेन के नाम प्रमुख हैं। यह परम्परा भारत के साथ-साथ पाकिस्तान में भी उतनी ही लोकप्रिय हुई।

इसी परम्परा में नासिर खाँ, निसार हुसेन खाँ नजीर खाँ के नाम उल्लेखनीय हैं। साहित्य को समृद्ध कराने का श्रेय मियाँ फकीर वख्श तथा कादीर वख्श को जाता है। ये अपने युग के महान कलाकार थे। पखावज और तबला दोनों पर उनका अधिकार था। इन्होंने बहुत शिष्य बनाये। मियाँ फकीर वख्श के प्रथम एवं प्रमुख शिष्य मिया करम इलाही थे, जो ज्ञान एवं विद्या की दृष्टि से काफी गुणी माने जाते थे। इनके अनेक शिष्य हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में प्रसिद्ध हैं।

मियाँ फकीर वख्श के दूसरे शिष्य वावा मलंग भी एक उच्च कोटि के कलाकार थे। उनके भी सैकड़ों शिष्य आज उनकी परम्परा को वनाये हैं। मियाँ कादिर वख्श पंजाव घराने के एक महान कलाकार हुए जिनकी मृत्यु 1960 में लाहौर में हुई।

वादन-शैली—पंजाव घराने पर स्पष्ट रूप से पखावज का प्रभाव है, जिससे इसका वाज जोरदार और खुला वना है तथा चारों उँगलियों का प्रयोग होता है। इस बाज में ठेके के बाँट का काम तथा लयकारी के हिसाब का गणित जटिल होता है। पंजाब घराने की जो गतें थी उन पर पंजाबी भाषा का प्रभाव स्पष्ट रूप से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

पड़ा है जैसे धाती के स्थान पर धात का उच्चारण तथा धिरधिर कत के स्थान पर धेरधेर केट का उच्चारण आदि। पंजाब घराने में मुख्यत: गतों एवं रेलों का प्रचार ज्यादा है, जबकि कायदों का प्रचार कम और जटिल तथा लयकारी युक्त है। बन्दिशों में अधिकतर घिनाड, घिड़न्त, क्रतन्न, धाडागेन आदि बोलों का प्रयोग होता है। बायें पर मींड़ का काम तथा बायें का लचीलापन पंजाब घराने की अपनी विशेषता है। पंजाब घराने में बन्दिशें श्रृंगारपूर्ण गतिशील एवँ जोरदार मिलती है, इसका कारण है कि पंजाब में युद्ध करने की क्षमता वहाँ के निवासियों में ज्यादा है, और इसका स्पष्ट प्रभाव वहाँ के संगीत पर भी झलकता है।

कुछ संगीतज्ञ पंजाब व बनारस घरानों को पृथक नहीं मानते। उनके अनुसार पंजाब घराना मूलत: पखावज का घराना है। वहाँ तबले का प्रचार पुराना नहीं है, जबकि पंजाब घराने वाले अपने घराने को तबले का आदि घराना और दिल्ली से भी पूर्व का मानते हैं। इन घरानों के अतिरिक्त तबले की अनेक परम्पराएँ देश में हैं; जैसे—इन्दौर, विष्णुपुर, ढाक, जयपुर, हैदराबाद, मुरादाबाद, भटौला आदि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्राम

ग्राम संवादी स्वरों का समूह है, जिसमें श्रुतियाँ व्यवस्थित रूप में विद्यमान हों और जो मूर्छना, तान, वर्ण, अलंकार इत्यादि का आश्रय हो।

ग्राम का अर्थ ही है—"स्वरों का समूह"। सप्तक के सात स्वरों की मूलभूत व्यवस्था के लिए 'ग्राम' नाम है। इसी को पाश्चात्य भाषा में 'स्केल' कहा जाता है। जिस प्रकार से विभिन्न परिवार एक गाँव में बस जाते हैं और उनमें समान परम्पराओं के कारण एकता का भाव विद्यमान रहता है, उसी प्रकार संगीत में सात स्वर जब परस्पर एकत्र रूप में स्थापित किये जाते हैं तब ग्राम का निर्माण होता है।

शार्ङ्गदेव, अहोबल, मतङ्ग और दामोदर पंडित ने ग्राम की व्याख्या की है—

"समूह वाचिनौ ग्रामौ स्वर श्रुत्यादिसंयुत्तौ,
यथा कुटुम्बिनः सर्वे एकीभूत्वा वसति हि।
सर्वलोकेषु स ग्रामो यत्र नित्य व्यवस्थितः,
षड्जमध्यमसंज्ञौ तु द्वौ ग्रामौ विश्रुतौ किल।
गांधार नारदौ ब्रूते स तु मर्त्येन गीयते॥"

"बृहद्देशी"

अर्थात् श्रुति-समूह को ग्राम कहा गया है। आचार्य बृहस्पति के अनुसार—

"संगीत-जगत् में ग्राम विशिष्ट व्यवस्था के अनुसार स्थापित स्वरों (विशिष्ट-स्वरों) का सप्तक हैं, जिसमें व्यवस्था का नियामक आदित्य या मूल स्वर अपनी कुछ विशेषताओं के कारण 'ग्रामणी' कहलाता है।" ग्राम और ग्रामणी दोनों ही स्वर संगीत-जगत् में लोक से आये हैं। ग्राम को मूर्छना का आधार कहा गया है। आज लोग ग्राम को भी स्केल कह देते हैं।

ग्राम तीन हैं—

(1) षड्ज ग्राम, (2) मध्यम ग्राम, (3) गांधार ग्राम।

नाट्यशास्त्र में केवल दो ग्रामों का उल्लेख है—षड्ज तथा मध्यम। तृतीय ग्राम जो कि गांधार ग्राम के नाम से विख्यात है, भरत के द्वारा उल्लिखित नहीं है। नाट्यशास्त्र के काल तक इस ग्राम का व्यवहार से लोप हो गया था। नारदी शिक्षा में गांधार ग्राम के स्वर्गस्थ होने का स्पष्ट उल्लेख है। दत्तिल के अनुसार गांधार ग्राम का केवल सैद्धान्तिक अस्तित्व है, व्यावहारिक नहीं—

"केचिद् गांधारमप्याहुः स तु नेहोपलभ्यते॥"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षड्ज और मध्यम ग्रामों की कुल बाईस श्रुतियाँ हैं तथा इन श्रुतियों का स्वरगत विभाजन दोनों ग्रामों में समान है षड़ज और मध्यम ग्राम में भेद इतना ही है कि मध्यम ग्राम में पंचम एक श्रुति नीचे खिसका हुआ है। जहाँ षड़ज ग्राम में म-प अन्तराल 4 श्रुतियों का है और प-ध 3 श्रुतियो का है, वहाँ मध्यम ग्राम में म-प 3 श्रुतियों का और प-ध 4 श्रुतियों का है। अर्थात्—

षड़ज ग्राम—म 4 प 3 ध

मध्यम ग्राम—म 3 प 4 ध

मध्यम ग्राम में पंचम के एक श्रुति विचलित हो जाने से षड्ज ग्राम का स-प संवाद टूट जाता है पर रे-प संवाद स्थापित हो जाता है।

(1) षड्ज ग्राम—इसमें षड्ज स्वर चतुःश्रुति, ऋषभ त्रिःश्रुति, गांधार द्विश्रुति, मध्यम चतुःश्रुति, पंचम चतुःश्रुति, धैवत् त्रिःश्रुति, निषाद् द्विश्रुति होता है। इसमें षड्ज-पंचम, ऋषभ-धैवत्, गांधार-निषाद् और षड्ज-मध्यम ये परस्पर संवादी हैं। जिन दो स्वरों में नौ अथवा तेरह श्रुति का अन्तर हो, वे परस्पर संवादी हैं।

'संगीत रत्नाकर' में शार्ङ्गदेव कहते हैं कि षड्ज ग्राम नामक राग षड्ज मध्यमा जाति से उत्पन्न सम्पूर्ण राग है। इसका ग्रह तथा अंश स्वर तार षड्ज है। न्यास स्वर मध्यम है, अपन्यास स्वर षड्ज है। अवरोही और प्रसन्नात अलंकार इसमें प्रयोज्य है। इसकी मूर्छना षड्जादि (उत्तर-मन्द्रा। है। इसमें काकली निषाद् और अन्तर गांधार का प्रयोग होता है। वीर, रौद्र, अद्‌भुत रसों में, नाटक की सन्धि में इसका विनियोग है। इस राग का देवता बृहस्पति है और वर्षा ऋतु में, दिन के प्रथम प्रहर में यह गेय है। यह शुद्ध राग है।

षड्ज ग्राम (कुल श्रुति 22)

1 2 3 4	5 6 7	8 9	10 11 11 12 13
सा	रे	ग	म
14 15 16 17	18 19 20	21 22	
प	ध	नि	

(2) मध्यम ग्राम—इसमें मध्यम चतुःश्रुतिक, पंचम त्रिःश्रुतिक, धैवत चतुःश्रुतिक, निषाद् द्विःश्रुतिक, षड्ज चतुःश्रुतिक, ऋषभ चतुःश्रुतिक और गांधार द्विःश्रुतिक है।

मध्यम ग्राम (कुल श्रुति 22)

1 2 3 4	5 6 7	8 9 10 11	12 13
म	प	ध	नि
14 15 16 17	18 19 20	21 22	
सा	रे	ग	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसमें ऋषभ-पंचम, ऋषभ-धैवत, गांधार-निषाद, और षड्ज-मध्यम, परस्पर संवादी हैं। मध्यम ग्राम में पंचम के एक श्रुति विचलित हो जाने से षड्ज ग्राम का स-प संवाद तो टूट जाता है पर रे-प संवाद स्थापित हो जाता है।

शार्ङ्गदेव का विधान है कि मध्यम ग्राम राग का विनियोग हास्य एवं शृङ्गार में है। यह राग गांधारी मध्यमा और पंचमी जातियों से मिल कर बना है। काकली निषाद का प्रयोग इसमें निहित है। इस राग का अंश ग्रह स्वर मन्द्र षड्ज, न्यास स्वर मध्यमा और मूर्छना सौवीरी है। यह राग ग्रीष्मऋतु के प्रथम प्रहर में गाया जाता है। महर्षि भरत ने सात शुद्ध रागों में इसे गिना है।

(3) **गांधार ग्राम**—महर्षि भरत ने इसकी चर्चा नहीं की है। उन्होंने केवल दो ग्रामों को ही माना है। कुछ आचार्यों ने गांधार ग्राम का प्रयोग लौकिक विनोद के लिए किया है। नारद की सम्मति के अनुसार गांधार ग्राम का प्रयोग स्वर्ग में ही होता है। इसमें षड्ज स्वर त्रिःश्रुति, ऋषभ द्विःश्रुति, गांधार चतुःश्रुति, मध्यम, पंचम और धैवत त्रिःश्रुतिः और निषाद चतुःश्रुति होता है। गांधार ग्राम का प्रयोग स्वर्ग में ही होता है। गांधार ग्राम का वर्णन केवल 'संगीत रत्नाकर' या उसके आधार पर लिखे गये ग्रन्थों में मिलता है।

गांधार ग्राम (कुल श्रुति 22)

1 2 3 4	5 6	7 8 9 10	11 12 13
ग	म	प	ध

14 15 16 17	18 19 20	21 22
नि	सा	रे

उपर्युक्त तीन प्रकार की स्वर-व्यवस्था में से केवल षड्ज या मध्यम ग्राम ही मुख्यतः प्रचार में रहे। षड्ज और मध्यम ग्राम का अन्तर प्रमुख रूप से पंचम स्वर में निहित है। मध्यम ग्राम का पंचम षड्ज ग्राम के पंचम से एक श्रुति नीचा है। षड्ज ग्राम का पंचम सत्रहवीं श्रुति पर और मध्यम ग्राम का पंचम सोलहवीं श्रुति पर स्थिति है।

भरत ने मध्यम ग्राम की रचना षड्ज ग्राम के पंचम को एक श्रुति नीचा करके ही की, स्वतन्त्र रूप से नहीं।

"मध्यम ग्रामे तु श्रुत्यपकृष्टः पंचमः कार्यः।"

अर्थात् मध्यम ग्राम में पंचम को एक श्रुति से नीचा करना चाहिए। षड्ज ग्राम की श्रुति व्यवस्था को जानने पर ही मध्यम ग्राम की स्वर रचना स्वयं एवं सहज हृदयंगम हो सकती है।

तत्कालीन वीणा-वाद्यों पर षड्ज तथा मध्यम ग्राम की ही स्थापना की जाती थी। साथ ही गायन एवं वादन उन्हीं स्वर लिपियों पर होता था। इसी षड्ज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्राम (प्राकृतिक स्वर ग्राम) को आधुनिक परिभाषा में तत्कालीन शुद्ध स्वर मेल अथवा शुद्ध स्वर सप्तक कहना उचित होगा।

बाईस श्रुतियों में तीनों ग्रामों की स्थापना

श्रुति सं०	श्रुति नाम	षड्ज ग्राम	मध्यम ग्राम	गंधार ग्राम
1	तीव्रा	....	...	निषाद
2	कुमुद्वती	...	...	...
3	मंदा	...	..	....
4	छंदोवती	षड्ज	षड्ज	षड्ज
5	दयावती	...	...	....
6	रञ्जनी	....	...	...
7	रक्तिका	ऋषभ	ऋषभ	ऋषभ
8	रौद्री	....	...	....
9	क्रोधा	गंधार	गंधार	...
10	वज्रिका	....	....	गंधार
11	प्रसारिणी	...	....	....
12	प्रीति	...	...	....
13	मार्जनी	मध्यम	मध्यम	मध्यम
14	क्षिती	...	....	....
15	रक्ता	...	....	...
16	संदीपनी	....	पंचम	पंचम
17	आलापनी	पंचम	....	....
18	मदंती	...	...	...
19	रोहिणी	...	....	धैवत
20	रम्या	धैवत	धैवत	....
21	उग्रा	....	...	...
22	क्षोभिणी	निषाद	निषाद	....

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूर्च्छना

प्राचीन संगीत प्रणाली में 'मूर्च्छना प्रकरण' बहुत महत्वपूर्ण था। ग्रंथों में मूर्च्छना की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

"क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्"

अर्थात् किन्हीं भी सात स्वरों की पंक्ति के क्रमानुसार आरोह और अवरोह को मूर्च्छना कहते हैं।

मूर्च्छना शब्द के यूँ तो बहुत अर्थ हैं, "जिसके द्वारा राग का विकास होता है और श्रोतागण जिससे मुग्ध होते हैं, उसको मूर्च्छना कहना चाहिए।" ऐसा 'संगीत रत्नाकर' की टीका में कल्लिनाथ ने कहा है।

प्रत्यक्ष व्यवहार में इसका प्रयोग षड्ज को और षड्ज के द्वारा बाकी सब स्वरों को दूसरे स्वरों के स्थान पर सरकाना अथवा स्वर पंक्ति का केन्द्र बदलना है। इसी को पाश्चात्य संगीत प्रणाली में Change of key अथवा Modulation कहते हैं।

पं० रविशंकर के अनुसार—"A Murchana' is a combination of seven notes with their accent or descent. Murcchanas are the basis or fountain head of the ragas. Ragas were known by their respective Murcchana and so the Murcchana used to play an important role in the domain of Indian classical music from the beginning of Christian era upto the fifteenth century A. D. Murcchanas created different shades of the Ragas, and had different emotions."

"Murcahanas connote the idea of elaboration of the condensed or casual forms of the Ragas."

भरत 'नाट्यशास्त्र' के समय में दो ही विकृत स्वर थे। सात शुद्ध स्वर और 'अंतर-गांधार' और 'काकली निषाद'। ये दो विकृत मिलाकर कुल नौ स्वरों में ही संगीत की रचना होती थी। विकृत स्वरों के अभाव में संगीत का क्षेत्र केवल दो ही ग्रामों तक सीमित हो जाता है, इसलिये इस अभाव को दूर करने के लिए भरत ने 'मूर्च्छना' की व्यवस्था की। मूर्च्छना के द्वारा इन्हीं नौ स्वरों से अनेक स्वर सप्तक बनते थे। इस प्रक्रिया में आरम्भिक स्वर प्रत्येक बार बदला जाता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था एवं उससे प्रारम्भ कर कुल सात स्वरों को स्थापित किया जाता था। परन्तु ऐसा करते समय स्वरों के बीच के अन्तराल नहीं बदले जाते थे।

उदाहरण के लिए, आज के शुद्ध स्वर सप्तक को, जिसको बिलावल कहा जाता है, थोड़े समय के लिए षड्ज ग्राम मान लिया जाये, तो ये स्वर सप्तक यूँ होंगे—

"सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सां"

अब इसी बिलावल के मन्द्र निषाद् से आरम्भ करके आकार में स्वर गायेंगे, तो यह दूसरा सप्तक बनता है—

"नि, सा, रे, ग, म, प, ध, नि"

इसी प्रकार मन्द्र धैवत से मध्य धैवत तक बिलावल के सुर आकार में गायें, तो आसावरी का स्वर सप्तक होता है—

"ध़, नि़, सा, रे, ग, म, प, ध"

इसी प्रकार मन्द्र 'प' से मध्य 'प' तक खमाज, मन्द्र 'म' से मध्य 'म' तक यमन, मन्द्र 'ग' से मध्य 'ग' तक भैरवी और मन्द्र 'रे' से मध्य 'रे' तक काफी ऐसे अलग-अलग स्वर सप्तक बिलावल के मूल स्वर सप्तक को कायम रखते हुए बनते हैं। इन्हीं स्वर सप्तकों को आज की मूर्च्छना कह सकते हैं।

आज का शुद्ध सप्तक बिलावल है। भरत और शार्ङ्गदेव के समय में दो स्वर सप्तक मुख्य थे, जिनको षड्ज ग्राम और मध्यम ग्राम कहते थे। इन्हीं ग्रामों पर स्वर स्थानों को कायम रखते हुए मूर्च्छनाएँ अभी समझायी हुई रीति से निकाली जाती थीं। वैसे तो ग्राम तीन बताये गए थे और इन तीन ग्रामों में से हर एक ग्राम में सात-सात करके कुल 21 मूर्च्छनाओं की उत्पत्ति हमारे प्राचीन पंडितों ने कही है। परन्तु व्यवहार में उनके समय में दो ही ग्राम थे और दो ग्रामों से निकाली हुई 14 मूर्च्छनाएँ वे उपयोग में लाते थे।

मूर्च्छनाओं के उपयोग से एक ग्राम से अनेक उपग्राम निकल पड़े और संगीत का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया। ये मूर्च्छनाएँ अवरोही क्रम से बनाई जाती थीं। भरत काल में वैदिक पद्धति का अवरोही क्रम ही प्रचलित था। प्राचीन यूनानी ग्राम भी अवरोही क्रम में पाये जाते हैं, इसलिए ग्राम-मूर्च्छना का यह क्रम प्राचीनता का द्योतक है।

शार्ङ्गदेव का मूर्च्छना प्रकरण

मूर्च्छना के अर्थ में क्रमिक परिवर्तन :

एक मुख्य बात यह है कि मूर्च्छना की धारणा में शार्ङ्गदेव के समय से ही परिवर्तन का संकेत मिलता है। भरत की मूर्च्छना में स्वरों की संज्ञा और स्थान नहीं बदलते, पर शार्ङ्गदेव की पद्धति में मूर्च्छना खिसकाकर मौलिक षड्ज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर लायी जाती है, और इस प्रकार सभी मूर्च्छनाएँ मध्य सप्तकव्यापी होती हैं। इस दृष्टि से मतंग ने भी कहा है कि—"मध्यसप्तकेन मूर्च्छना निर्देशः कार्यो…'। भरत की पद्धति में धैवत की मूर्च्छना मध्य ध से मन्द्र ध तक व्याप्त होगी पर शार्ङ्गदेव की पद्धति में मन्द्र ध खिसककर मध्य षड्ज पर और मध्य ध तार षड्ज पर जायेंगे। धैवत मूर्च्छना लेने से स्वरों का अन्तराल अब षड्ज मूर्च्छना से भिन्न हो जायेगा। वास्तव में शार्ङ्गदेव की मूर्च्छनाओं को उपग्राम कहना चाहिये। यह निम्न है—

षड्ज ग्राम—स3 रे2 ग4 म4 प3 ध2 न4

ध-मूर्च्छनाभरत : भरत:—ध 2 नि़ 4 स 3 रे 2 ग 4 म 4 प 3 ध

शार्ङ्गदेव—स 2 रे 4 ग3 म 2 प 4 ध 4 न 3 स

इससे यह स्पष्ट है कि शार्ङ्गदेव के समय में सभी मूर्च्छनाओं का प्रारम्भ षड्ज से होता था। इस परिवर्तन से यह फल हुआ कि शार्ङ्गदेव ने अनेक विकृत स्वरों की कल्पना की उन्होंने 12 विकृत स्वरों का निरूपण किया, अर्थात् मूर्च्छनाओं को एक सप्तक में लाने का स्वाभाविक परिणाम विकृत स्वरों की उत्पत्ति है।

पाश्चात्य संगीत में यह प्रक्रिया Modulation या 'Change of Key' के नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीन काल में उनके यहाँ भी स्वर सप्तक बनाने की रीति भरत की मूर्च्छना-पद्धति के अनुरूप थी। उनके यहाँ मेजर टोन, माइनर टोन एवं सेमी टोन, ये तीन स्वरांतर (Intervals) माने जाते हैं। उनका शुद्ध स्वर सप्तक लगभग भारतीय बिलावल सप्तक के समान ही है। इनको वे लोग 'ई मेजर' (E Major) कहते हैं। इस स्वर सप्तक में तीनों मेजर, माइनर और सेमी टोन रहते हैं। यह निम्नलिखित रूप से होता है—

Major Tone Intervals	→सा से रे —मध्यम से पंचम —धैवत से नि
Minor Tone Inetervals	—रे से ग —प से ध
Semi-Tone Intervals	—ग से म —नि से सां

पाश्चात्य संगीत में उपर्युक्त अन्तराल माने गये हैं। अब इन्हीं स्वरांतरों को ऊपर-नीचे बदल कर वे लोग अलग-अलग स्वर सप्तक बनाते थे। इस प्रकार पाश्चात्य संगीत-प्रणाली में जो स्वर सप्तक निकाले जाते थे, उनको वे लोग Modes कहते हैं। ये Modes ही अपने भारतीय संगीत की प्राचीन मूर्च्छना का स्वरूप है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे यहाँ मूर्च्छनाओं के नाम 'उत्तर मन्द्रा', 'रजनी' इत्यादि होते थे, वैसे ही पाश्चात्य संगीत के Modes के नाम भी 'एलियन', 'फ्रीजियन', 'डोरियन' इत्यादि होते थे। जब पाश्चात्य संगीत में 'हार्मनी' का प्रयोग होने लगा तो इन सारे (Modes) का लोप हो गया और Major Scale or Minor Scale ये दो ही (Modes) आज रह गये हैं, क्योंकि हार्मनी में इनका प्रयोग उपयुक्त समझा गया।

मूर्च्छना प्रकार

भारतीय संगीत में मूर्च्छना चार प्रकार की थी—

(1) शुद्ध,
(2) षाड़व,
(3) औड़व,
(4) साधारण कृता।

(1) शुद्ध में सातों शुद्ध स्वर स्थापित किये जाते थे।

(2) षाड़व में 5 स्वर वाली मूर्च्छना होती थी।

(3) औड़व में 5 स्वर वाली मूर्च्छना होती थी। (षाड़व-औड़व, इन दोनों असम्पूर्ण मूर्च्छनाओं को 'मूर्च्छना' न कहते हुए मूर्च्छना-तान कहते थे।)

(4) 'साधारण कृता' में शुद्ध 'ग' और 'नि' के स्थान पर अन्तर 'ग' तथा काकली 'नि' का प्रयोग किया जाता था।

इन चारों मूर्च्छना प्रकारों से दोनों ग्रामों की कुल 56 मूर्च्छनाएँ होती थीं, एवं मूर्च्छना-तानें 84 होती थीं। मूर्च्छना-तानों में षड्ज ग्राम की 49 तानें और मध्यम ग्राम की 35 तानें थीं।

षड्ज ग्राम की मूर्च्छना

षड्ज ग्राम से सात मूर्च्छनाएँ बनेगी, क्योंकि इस ग्राम में सात स्वर हैं—

(1) उत्तर मन्द्रा—स$_3$ रे$_2$ ग$_4$ म$_4$ प$_3$ ध$_2$ नि।
(2) रजनी— नि़$_4$ सा$_3$ रे$_2$ ग$_4$ म$_4$ प$_3$ ध।
(3) उत्तरायता—ध़$_2$ नि़$_4$ सा$_3$ रे$_2$ ग$_4$ म$_4$ प।
(4) शुद्ध षड्जा—प़$_3$ ध$_2$ नि़$_3$ रे$_2$ ग$_4$ म।
(5) मत्सरीकृता—म़$_4$ प़$_2$ ध़$_2$ नि़$_4$ सा$_3$ रे$_2$ ग।
(6) अश्वक्रान्ता—ग़$_4$ म़$_4$ प़$_3$ ध़$_2$ नि़$_4$ सा$_3$ रे।
(7) अभिरुद्रगता—रे$_2$ ग़$_4$ म़$_4$ प़$_3$ ध़$_2$ नि़$_4$ स।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाएँ

मध्यम ग्राम से भी सात मूर्च्छनाएँ बनती हैं, जो निम्नलिखित हैं—

(1) सौवीरी—म$_3$ प$_4$ ध$_2$ नि$_4$ सां$_3$ रें$_2$ गं ।
(2) हरिणाश्वा—ग$_4$ म$_2$ प$_4$ ध$_2$ नी$_4$ सां$_3$ रें ।
(3) क़लोपनता—रे$_2$ ग$_4$ म प$_4$ ध$_2$ नी$_4$ सां ।
(4) शुद्ध मध्या—सा$_3$ रे$_2$ ग$_4$ म$_5$ प$_4$ ध$_2$ नी ।
(5) मार्गी—ऩि$_4$ सा$_3$ रे$_2$ ग$_4$ म$_3$ प$_4$ ध ।
(6) पौरवी—ध़$_2$ ऩि$_4$ सा$_3$ रे$_2$ ग$_4$ म$_3$ प ।
(7) हृष्यका—प़$_4$ ध़$_2$ ऩि$_4$ सा$_3$ रे$_2$ ग$_4$ म ।

यह स्पष्ट है कि भरत के ग्रामों में मूर्च्छनाओं के स्वरों का न तो स्थान बदलता है और न ही संज्ञा बदलती है। किसी ग्राम की ध-मूर्च्छना उस ग्राम के धैवत से ही शुरू होती है। ऐसा नहीं कि धैवत को षड्ज मानकर सभी स्वरों की संज्ञा क्रमानुसार बदल दी जाए और इस प्रकार एक नया ग्राम बनाकर उसे मध्य सप्तक में सरका दिया जाय। ऐसा करने से फिर मूर्च्छना की आवश्यकता न रहती—एक ग्राम में विकृत स्वरों के प्रयोग से ही काम चल जाता। इन अचल मूर्च्छनाओं का यह विधान शार्ङ्गदेव के समय में नहीं रहा, इसी लिए उन्होंने 12 विकृत स्वरों का प्रसंग दिया है।

मूर्च्छनाओं की उपयोगिता

अब हमें यह देखना है कि इन मूर्च्छनाओं का उपयोग क्या होता था। प्राचीन काल में राग नाम की कोई वस्तु संगीत में नहीं थी। 'राग' की जगह उस समय जातियाँ गाई जाती थीं। ये जातियाँ कुछ तर्जें थीं, जो कि उस समय सर्व-साधारण के प्रचार में थी।

भरत-पद्धति में जाति का वही स्थान है जो आधुनिक पद्धति में राग का। जैसे ठाठ से राग पैदा होता है, वैसे ही मूर्च्छना से जाति उत्पन्न होती है। मूर्च्छनाओं का यही उपयोग था। जैसे आज राग का भेद ठाठ, संवादी, वादी जाति पर निर्भर है, वैसे ही जाति का भेद मूर्च्छना, ग्रह, अंश, न्यास आदि पर निर्भर था। मूर्च्छना से अनेक जातियों की उत्पत्ति मानी गयी।

ग्रंथों में जातियों के वर्णन और उदाहरण जो दिए हैं, उनमें उनके स्वर, मूर्च्छना, अंश स्वर, न्यास स्वर, स्वर संगतियाँ, वर्ज्य स्वर एवं ताल भी बताये गए हैं। उदाहरणार्थ—

आर्षभ्यां तु त्रयोंऽशाः स्युर्निषादर्षभ धैवताः ।
द्विश्रुत्योः संगतिः शेषैर्लंघन पंचमल्प च ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षाड्व षड्ज लोपेन सपलोपादिहोऽवम् ।
मूर्च्छनापंचमादिश्च हतालश्चंचत्पुटो मतः ।।
अष्टोकला भवन्तीह विनियोगस्तु पूर्ववत ।।"

यह आर्षभी जाति का वर्णन है। इसका अर्थ है कि "आर्षभी जाति में निषाद, ऋषभ एवं धैवत, ये अंश स्वर यानि प्रबल स्वर हैं। गांधार निषाद की और स्वरों के साथ संगति होती है, जिससे वे सुर प्रबल हो जाते हैं। पंचम इसमें बहुत अल्प लगता है। यह आर्षभी जाति कभी-कभी षाड्व और कभी औड़व होती है। जब षाड़व होती है, तब 'सा' वर्ज्य रहता है और औड़व स्वरूप में 'सा' और 'प' ये दोनों स्वर वर्ज्य होते हैं। यह जाति पंचमादि मूर्च्छना से उत्पन्न होती है। इसका ताल चंचत्पुट है, जिसमें आठ मात्राएँ होती हैं।"

इस वर्णन से स्पष्ट है कि जातियाँ बनी-बनायी बन्दिशें थीं। इन्हीं जातियों के बाद राग-रीति का प्रचार हुआ। जातियों की उत्पत्ति मूर्च्छनाओं में होती थी। जब राग प्रचार में आये, तब कुछ समय तक रागों की भी मूर्च्छनाएँ कही जाती थीं। पर जब रागों का गायन पूर्णता को पहुँचा, तो मूर्च्छना का पहला उपयोग मिट कर केवल राग के शुरू का स्वर बताने के लिए इस मूर्च्छना का उल्लेख किया जाता था। देखिये, पंडित अहोबल बसन्त राग को वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"सड़जादि मूर्च्छने मान्ते ग नी तीव्रो बसन्त के।"

अगर मूर्च्छना से राग में आने वाले तीव्र कोमल स्वर निश्चित होते, तो ग-नी तीव्र कहने की आवश्यकता न थी। तब भी षड्ज की मूर्च्छना तो कही हैं।

इसी प्रकार संगीत पारिजात में वर्णन किए हुए हर एक राग के वर्णन में मूर्च्छना अवश्य कही जाती है, पर वह केवल शुरू का स्वर एवं उठाव ही बताने के लिए है।

पंडित अहोबल ने इसी ग्रन्थ के आरम्भ में एक-एक श्रुति के भेद से हजारों मूर्च्छनाएँ समझायी हैं। ये मूर्च्छना तो उसी अर्थ में हैं, जिस अर्थ में प्राचीन मूर्च्छनाएँ लिखी गई हैं, यानि ये सब अलग-अलग स्वर सप्तक हैं। इन सभी चर्चाओं से यही निर्णय होता है कि मूर्च्छनाएँ रागोत्पादक मेल का ही प्राचीन प्रकार था। यह ठाठ राग पद्धति के लिए प्राचीन परम्परा का प्रबल आधार है।

आज हमारे संगीत में मेल अथवा थाटों का प्रचार होने से मूर्च्छनाओं की आवश्यकता राग के शुद्ध-विकृत स्वर निश्चित करने के लिए नहीं है। परन्तु षड्ज की हेर-फेर संगीत में भी कहीं-कहीं प्रचार में दिखायी देती है। कुछ कुशल गायक-वादक राग गाते-बजाते समय बीच-बीच में ऐसे चमत्कार करके दिखाते हैं। उदाहरणार्थ—कोई गायक भैरवी गा रहा है। गाते-गाते भैरवी से राग का द्रन्के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बदल कर कोमल ऋषभ से तार सप्तक के कोमल ऋषभ तक भैरवी के ही सुरों में आलाप करना शुरू कर दिया; या कहिये कि भैरवी के ऋषभ की मूर्च्छना में ही आलाप करना शुरू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि भैरवी के सुर तम्बूरे के हिसाब से होते हुए भी कानों को वह यमन के स्वर सुनाई देने लगे।

इस प्रकार बहुत से रागों में यह चमत्कार दिखलायी पड़ सकता है। भैरवी के ऋषभ की मूर्च्छना पर जैसे यमन सुनायी पड़ता है उसी प्रकार यमन के निषाद की मूर्च्छना से भैरवी सुनाई दे सकती है। जयजयवन्ती में ऋषभ तो वादी स्वर ही है। उस पर बार-बार अवरोही आलाप समाप्त कर दें तो भैरवी की छाया उत्पन्न होती है। जैसे—जयजयवन्ती में—

नी ध, ग म, रे ग़ रे, सा, नि़ ध़, म ध प नि़ ध, म प ध ग़ म, रे ग़ रे,
म प ध नि़ ध, ग म, रे ग़ रे ध़ नि़ रे, ग म प, ग म, रे ग़ रे।

ये सब स्वर भैरवी की छाया उत्पन्न करेंगे। उनके अन्त में केवल "नि, सा, नि ध नि, सा" इतना टुकड़ा जोड़ देने से वे सब स्वर जयजयवन्ती की ही शरण में आयेंगे।

इसी प्रकार शुद्ध मध्यम को 'सा' मानकर अवरोही वर्ण में खमाज गाने पर गारा, पंचम से भैरवी गाने पर सिन्धु-भैरवी हो जायेगी। इस रीति से राग आपस में मेल रखते हैं। मात्र षड्ज बदलने से एक थाट या एक राग से दूसरे थाट या दूसरे राग का आभास उत्पन्न होता है। एक राग में ही दूसरे राग की भ्रान्ति उत्पन्न होती है।

प्राचीन मूर्च्छना-पद्धति और उससे मध्यकालीन मेल-पद्धति का विकास

प्राचीन युग में मूर्च्छना-पद्धति प्रचलित थी। मध्य युग में उसका शास्त्र दुर्बोध होने के कारण राग-रागिनी पद्धति चल पड़ी। किन्तु उसमें मूर्च्छना पद्धति के कुछ अंशों को स्वीकार कर लिया गया था। मूर्च्छना-पद्धति का शास्त्र दुर्बोध हो जाने के कारण (प्रधान कारण) यह था कि उसमें केवल सात शुद्ध स्वर 'सा रे ग़ म प ध नि़' और दो विकृत 'ग, नि' स्वर थे। किन्तु मूर्च्छनाओं के परिवर्तन से इनमें अन्य तीन स्वरों 'रे़ मं ध़' का आभास होता था। इस प्रकार कुल मिला कर बारह स्वर कर्णगोचर होते थे। उस समय वीणा पर पर्दे नहीं डाले जाते थे। बाद में पर्दों का प्रचलन हुआ और 'रे़ मं ध़' स्वर स्वरूप में अंगीकार कर लिये गये। यह होते ही मूर्च्छना-पद्धति समाप्त हो गई। प्राचीन स्वर सप्तक में 22 स्वर श्रुतियाँ मानी गयी हैं। मध्ययुग में वीणा पर पर्दों की स्थापना करने से त्रिःश्रुतिक ऋषभ् धैवत लुप्त हो गये और उसके स्थान पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुःश्रुतिक ऋषभ धैवत को सुप्रतिष्ठित करने से श्रुतियों की संख्या चौवीस हो गयी। इस प्रकार से प्राचीन शास्त्र समाप्त हुआ और नया शास्त्र बनने लगा। वीणा पर पदों की स्थापना होने से सारी मूर्च्छनाओं का आरम्भ षड्ज से हुआ करता था। प्राचीन मूर्च्छना पद्धति में तो बिना पर्दे की वीणा पर षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद की मूर्च्छनाएँ अपने-अपने पृथक्-पृथक् स्थानों से ही शुरू होती थीं, जैसे—'रे ग॒ म प ध नि॒ सां रें' यह ऋषभ की मूर्च्छना है। यदि ऋषभ को षड्ज मान कर वीणा पर उपर्युक्त स्वरों को बजायेंगे, तो वे 'सा रे॒ ग॒ म प ध नि॒ सां' सुनायी देंगे।

'ग॒ म प ध नि॒ सां रें ग॒' यह गांधार की मूर्च्छना है। यदि गांधार को षड्ज मान कर उपर्युक्त स्वरों को बजाएँगे तो वे 'सा रे ग मं प ध नि सां' सुनाई देंगे। पहली ऋषभ की मूर्च्छना में 'रे॒ ध॒' सुनने को मिलते हैं और दूसरी गांधार की मूर्च्छना में 'मं' सुनने को मिलता है।

मध्ययुग के संगीतज्ञ पर्दे वाली वीणा पर 'सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि॒ सां' बजाकर उसको ऋषभ की मूर्च्छना या अमुक मेल कहने लगे और सा रे ग मं प ध नि सां बजाकर उसको गांधार की मूर्च्छना शब्द को निरर्थक समझकर निकाल ही दिया और उसके स्थान पर मेल या थाट शब्द का प्रयोग किया।

षड्ज ग्राम की मूर्च्छना

नं०	नाम मूर्च्छना	आरोह	अवरोह
1	उत्तरामन्द्रा	सा रे ग म प ध नि	नि ध प म ग रे सा
2	रजनी	नि़ सा रे ग म प ध	ध प म ग रे सा नि़
3	उत्तरायता	ध़ नि सा रे ग म प	प म ग रे सा नि़ ध
4	शुद्ध षड्जा	प़ ध़ नि़ सा रे ग म	म ग रे सा नि़ ध़ प़
5	मत्सरीकृता	म़ प़ ध़ नि़ सा रे ग	ग रे सा नि़ ध़ प़ म़
6	अश्वक्रान्ता	ग़ म़ प़ ध़ नि़ सा रे	रे सा नि़ ध़ प़ म़ ग़
7	अभिरुद्गता	रे़ ग़ म़ प़ ध़ नि़ सा	सा नि़ ध़ प़ म़ ग़ रे़

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मध्यम ग्राम की मूर्च्छना

1	सौवीरी	म	प	ध	नि	सां	रें	गं	गं	रें	सां	नि	ध	प	म
2	हरिणाश्वा	ग	म	प	ध	नि	सां	रें	रें	सां	नि	ध	प	म	ग
3	कलोपनता	रें	ग	म	प	ध	नि	सां	सां	नि	ध	प	म	ग	रे
4	शुद्धमध्या	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	नि	ध	प	म	ग	रे	सा
5	मार्गी	नि़	सा	रे	ग	म	प	ध	ध	प	म	ग	रे	सा	नि़
6	पौरवी	ध़	नि़	सा	रे	ग	म	प	प	म	ग	रे	सा	नि़	ध
7	हृश्यका	प़	ध़	नि़	सा	रे	ग	म	म	ग	रे	सा	नि़	ध	प

गन्धार ग्राम की मूर्च्छना

नोट—प्राचीन शास्त्रों में गान्धार को ही निषाद ग्राम भी कहा है; अतः इस ग्राम की पहली मूर्च्छना निषाद स्वर से ही आरम्भ होती है—

1	नन्दा	नि	सां	रें	गं	मं	पं	धं	धं	पं	मं	गं	रें	सां	नि
2	विशाला	ध	नि	सां	रें	गं	मं	पं	पं	मं	गं	रें	सां	नि	ध
3	सुमुखी	प	ध	नि	सां	रें	गं	मं	मं	गं	रें	सां	नि	ध	प
4	विचित्रा	म	प	ध	नि	सां	रें	गं	गं	रें	सां	नि	ध	प	म
5	रोहिणी	ग	म	प	ध	नि	सां	रें	रें	सां	नि	ध	प	म	ग
6	सुखा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	सां	नि	ध	प	म	ग	रे
7	आलापा	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	नि	ध	प	म	ग	रे	सा

"संगीत का एक ही लक्ष्य और उद्देश्य होना चाहिए, ईश्वर की जय-जयकार और आत्मा की प्रफुल्लता, जहाँ इसका ध्यान नहीं रखा जाता है, वहाँ सच्चा संगीत नहीं, केवल शोर-शराबा पैदा होता है।" —बारब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूर्च्छना और आधुनिक थाट

आधुनिक समय में रागों की उत्पत्ति थाटों से मानी जाती है और मूर्च्छना शब्द का व्यवहार नहीं होता है। सप्तक के प्रत्येक स्वर को बारी-बारी से षड्ज मानकर आरोह-अवरोह करने पर 6 विभिन्न मूर्च्छनाएँ प्राप्त होती हैं। इसी क्रिया को पाश्चात्य संगीत में Change of Key or modulation कहते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल की मूर्च्छनाएँ आधुनिक थाटों के समान थीं। इन्हीं मूर्च्छनाओं से प्राचीन जातियों की उत्पत्ति होती थी, जिस प्रकार आधुनिक थाटों से रागों की उत्पत्ति होती थी।

मूर्च्छनाओं की उत्पत्ति ग्राम से मानी गई। ग्राम वैसे तो तीन बताये गये हैं, पर व्यवहार में 2 ही ग्राम थे और इन दो ग्रामों से निकली हुई 14 मूर्च्छनाएँ उपयोग में लायी जाती थीं।

ये दो ग्राम थे—षड्ज ग्राम और मध्यम ग्राम।

सबसे पहले षड्ज ग्राम की मूर्च्छनाओं की तुलना काफी थाट से की जा सकती है। षड्ज ग्राम पर स्वर 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2 श्रुतियों की दूरी पर स्थित है।

(1) षड्ज ग्राम की पहली मूर्च्छना यूँ है : सा, रे, ग, म, प, धा, नी सां। इस मूर्च्छना में चौथी पर सा, 7 वीं पर रे, 9 वीं पर ग, 13वीं पर म, 17वीं पर प, 20वीं पर ध और 22वीं पर नी स्थित हैं। इसमें गंन्धार और निषाद अपने पिछले स्वर ऋषभ और धैवत से क्रमश: दो श्रुति ऊँचे हैं। अतः आज की व्यवस्था के अनुसार यह दोनों स्वर कोमल माने जावेंगे और यह मूर्च्छना तब आधुनिक काफी थाट के समान होगी जिसमें ग, नी कोमल माने जाते हैं।

(2) अब इसी मूर्च्छना के मन्द्र निषाद से आरम्भ करके मध्य निषाद तक क्रम से आरोह-अवरोह करने पर जो स्वर सप्तक बनेगा वह है नि, सा, रे, ग, म, प, ध, नि। इस मूर्च्छना में 2, 4, 3, 2, 4, 4, 3 श्रुतियों के अन्तर पर स्वर स्थापित हुये हैं। यह मूर्च्छना आधुनिक बिलावल थाट के समान होगी। इस मूर्च्छना में कोई भी स्वर कोमल नहीं होता।

(4) इसी प्रकार तीसरी मूर्च्छना में यह मन्द्र धैवत स मध्य धैवत तक क्रम से आरोह-अवरोह करने पर जो स्वर सप्तक बनेगा, वह इस प्रकार है—ध, नि, सा, रे, ग, म, प, ध। इस मूर्च्छना में सातों स्वर क्रमशः 3, 4, 3, 2, 4, 4 श्रुतियों के अन्तर पर स्थापित हुये। इस मूर्च्छना में रे कोमल और पंचम तीव्र मध्यम बन गया। रे कोमल होने से 4 श्रुतियों का गान्धार भी कोमल बन गया। इसी प्रकार धैवत और निषाद भी कोमल हो गये। इस मूर्च्छना में रे, ग, ध और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नी स्वर कोमल तथा दोनों मध्यम और पंचम वर्जित हो गये, जिसके कारण इस मूर्च्छना की तुलना किसी आधुनिक थाट के साथ नहीं हो सकती ।

(4) इसके बाद चौथी मूर्च्छना में मन्द्र प से मध्य प तक क्रम से आरोह अवरोह करने पर जो स्वर सप्तक बना है, वह इस प्रकार है :

प़ ध़, नि़ सा, रे, ग, म, प । इसमें स्वर क्रमशः 4, 3, 2, 4, 3, 2 श्रुतियों पर स्थित है । इसमें गन्धार, धैवत और निषाद स्वर कोमल हो गये, अतः आधुनिक थाट आसावरी के समान यह मूर्च्छना हो गई ।

(5) मन्द्र स से मध्य म तक क्रम से आरोह अवरोह करने पर जो मूर्च्छना का पाँचवां स्वर सप्तक बना वह इस प्रकार है, म़, प़, ध़ नि़, सा, रे, ग, म । इसमें सातों स्वर क्रमशः 4, 4, 3, 2, 4, की श्रुतियों पर स्थित है, अतः इसमें निषाद कोमल हो गया और यह मूर्च्छना आधुनिक थाट खमाज के समान हो गई ।

(6) छटवीं मूर्च्छना में मन्द्र ग से मध्य ग तक स्वर सप्तक जो बना वह निम्नलिखित हैं—ग़, म़, प़, ध़, नि़ सा, रे ग । इसमें क्रमशः सातों स्वर 2; 4, 3, 2, 4, 3 श्रुतियों पर स्थित है; अतः यह मूर्च्छूना आधुनिक कल्याण थाट के समान होगी, इसमें मध्यम तीव्र हो गया ।

(6) सातवीं मूर्च्छना में मन्द्र रे से मध्य रे तक क्रम से आरोह अवरोह करने पर जो स्वर सप्तक बना वह इस प्रकार है रे, ग, म, प, ध, नी । इसमें क्रमशः स्वर 3, 2, 4, 4, 3, 2, 4 श्रुतियों पर स्थित है; अतः इसमें रे, ग और ध, नी कोमल हो गये और यह मूर्च्छना आधुनिक भैरवी थाट के समान हो गई ।

इन्हीं स्वर सप्तकों (थाटों) को आज की मूर्च्छना कह सकते हैं । आज का शुद्ध थाट बिलावल है । षड्ज ग्राम की मूर्च्छनाएँ तो उपरोक्त ज्ञात हो गई, उसी प्रकार मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाएँ भी ज्ञात की जा सकती हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूर्च्छना एवं थाट

षड्ज ग्राम: 4सा | 3रे | 2ग | 4म | 4प | 3ध | 2नि

3रे़	2ग़	4ग़	4प़	?ध़	2नि़			
प्रथम मूर्छना	4स	3रे	2ग॒	4म	3ध	2नी॒		काफी थाट
दूसरी मूर्छना	4स	4रे	3ग	2म	4प	2ध	3नि	बिलावल थाट
तीसरी मूर्छना	3सा	2रे॒	4ग॒	3म	2प (मं)	4ध॒	4नी॒	यह किसी भी आधुनिक थाट के समान नहीं है।
चौथी मूर्छना	4सा	3रे	2ग॒	4म	3प	3ध॒	4नी॒	आसावरी थाट
पांचवीं मूर्छना	4सा	4रे	3ग	2म	4प	3ध	2नि॒	खमाज थाट
छठवीं मूर्छना	2सा	4रे	4ग	3मं	2प	4ध	2नि	कल्याण थाट
3सा	2रे॒	4ग॒	4म	3प	3ध॒	4नी॒		भैरवी थाट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्राम, मूर्च्छना और पाश्चात्य Modes

पाश्चात्य संगीत में प्राचीन काल में स्वर सप्तकें बनाने की रीति लगभग भारतीय संगीत के ग्राम-मूर्च्छना प्रणाली के समान थी। पाश्चात्य संगीत की प्राचीन प्रणाली में जो स्वर सप्तक निकाले जाते थे, उन्हें Modes कहा जाता था। ये Modes अपने यहाँ की प्राचीन मूर्च्छना का ही एक स्वरूप है। अपने यहाँ मूर्च्छनाओं के नाम जैसे 'उत्तरमन्द', 'रजनी' इत्यादि होते थे, वैसे पाश्चात्य संगीत की Modes के भी नाम 'एओलियन', 'फ्रिजियन', 'लिडियन', डोरियन इत्यादि होते थे।'

उनके यहाँ मेजरटोन, मायनरटोन एवं सेमिटोन ये तीन मुख्य प्रमाणिक स्वरांतर माने जाते हैं। उनका शुद्ध सप्तक लगभग अपने विलावल सप्तक का सा ही है। इसको वे लोग C (major) कहते हैं। इस स्वर सप्तक में तीनों स्वरान्तर यानि मेजरटोन, मायनर टोन और सेमीटोन ये रहते हैं। पहले से दूसरा जिसको हम लोग सा से रे कहेंगे, चौथे से पाँचवाँ जो हमारे यहाँ मध्यम से पचम होगा, और छठें से सातवाँ यानि लगभग ध से नि ये स्वरान्तर मेजरटोन है। दूसरे से तीसरा यानि प से ध ये मायनरटोन है। तथा तीसरे से चौथा यानि, ग से म एवं 7 से 8 यानि नि से सां ये सेमिटोन है अब इन्हीं स्वरांतरों को नीचे ऊपर बदलकर वे लोग अलग-अलग स्वर सप्तक बनाते थे। इन्हीं स्वर सप्तकों को पाश्चात्य संगीत में 'Modes' कहा गया।

पाश्चात्य देशों में Modes सात प्रकार के माने गये जो निम्न-लिखित हैं—

(1)	C	D	E	F	G	A	B	(Lydian Mode)
	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	(विलावल थाट)
(2)	D	E	F	G	A	B	C	(Phrygian Mode)
	सा	रे	ग॒	म	प	ध	नी	(काफी थाट)
(3)	E	F	G	A	B	C	D	(Dorian Mode)
	सा	रे॒	ग॒	म	प	ध॒	नी॒	(भैरवी थाट)
(4)	F	G	A	B	C	D	E	(Hypolyidan Mode)
	सा	रे	ग	मं	प	ध	नी	(कल्याण थाट)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(5)	C	A	B	C	D	E	F	(Hypophrygian Mode)
	सा	रे	ग	क	प	ध	नि	(खमाज थाट)
(6)	A	B	C	D	E	F	G	(Hypodorian Mode)
	सा	रे	ग	म	प	ध	नी	(आसावरी थाट)
(7)	B	C	D	E	F	G	A	(Mixolydian Mode)
	सा	रे	ग	मं	प	ध	नी	(तोड़ी थाट)

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाति राग का विकास

[EVOLUTION OF JATI RAGA]

भरत के नाट्यशास्त्र में जाति, जातिराग तथा ग्राम राग का उल्लेख मिलता है। जाति और राग इन दोनों के बीच की स्थिति 'जाति राग' थी। जहाँ तक जाति राग के विकास का प्रश्न है तो जाति के ही नियमों में उल्लंघन कर जाति राग विकसित हुए। भरत के अनुसार अन्तर ग तथा काकली नि जैसे साधारण संज्ञक स्वरों के एक विशिष्ट प्रयोग से 'जाति राग' का उद्भव होता है; उसको वे इस प्रकार स्पष्ट करते हैं—

"क्रियमाणोवरोही स्यादल्पो व यदि वा वहु।
जाति राग श्रुति चैव नयन्ते त्वन्तरे स्वराः ॥"

अर्थात भरत के अनुसार यदि अन्तर ग और काकली नी का प्रयोग अल्प-निषाद गान्धार जातियों में केवल आरोह में हो तो वह जाति राग कहलायेगा। इन दो साधारण स्वरों के प्रयोग से ये जातियाँ रंजक बन जाती हैं, जबकि इन्हीं दो साधारण स्वरों का प्रयोग यदि हम अल्पनिषाद गान्धार जातियों के अवरोह में कर दें तो अवश्य जातिकी श्रुतियों में भिन्नता आ जायगी और ऐसी स्थिति में वे जाति राग नहीं कहलायेंगी।

जाति राग बनने में दो स्वर अंतर गांधार और काकली निषाद ही प्रयोग होते हैं। ये दोनों ही स्वर शुद्ध ग और शुद्ध नी को दो-दो श्रुति ऊपर चढ़ाने से उत्पन्न होते हैं। दो-दो श्रुति चढ़ने से इन दोनों नये स्वरों का स्थान क्रमशः ग और म तथा नि और सां के मध्य में आता है। निषाद इस प्रकार षड्ज के क्षेत्र में और गान्धार मध्यम के क्षेत्र में प्रवेश करता है। शुद्ध स्वर इस प्रकार है—

श्रुति सं०	1	2	3	4	5	6	7			
				सा			रे			
	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17
		ग				म				प
	18	19	20	21	22					
			ध		नी					

अब दो-दो स्वर श्रुति ऊपर चढ़ने से गांधार 11वीं श्रुति पर और नी दूसरी श्रुति पर स्थिति हो जायगा। इस प्रकार ग और नि की जब यह स्थिति गान्धार जातियों के केवल आरोह में हो तभी जाति राग की उत्पत्ति होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी स्वाभाविक अवस्था से, दो श्रुति ऊपर चढ़ने के कारण ही इन दोनों स्वरों को भरत ने 'साधारण' कहा है। नाट्यशास्त्र के अनुसार केवल गान्धार तथा निषाद ही 'स्वर साधारण' की संज्ञा प्राप्त कर सकते हैं और 'साधारण' होने पर ही ये स्वर क्रमशः अन्तर तथा काकली संज्ञा को प्राप्त करते हैं; अतः यहाँ स्पष्ट ही जाति और जाति राग के बीच भेद हो जाता है और यह भरत को मान्य है।

इस प्रकार जाति राग का विकास जाति-नियम-उल्लंघन से होता है। यह सत्य है कि जातियों में नियमों का पालन कठोरता से किया जाता है जबकि जाति राग में नियमों की उतनी कठोरता नहीं है। शारङ्गदेव में संगीत रत्नाकर में कहा कि जाति यदि मार्ग-संगीत है तो जाति राग देशी संगीत। जाति शास्त्रीय नियमों से आबद्ध तथा सीमित है। जाति राग इन नियमों से परे देश-रुचि तथा लोक-रुचि पर आधारित है, जाति उच्च समाज की वस्तु है और जाति राग लोक व्यवहार में प्रयोग होने वाली वस्तु।

भरतकृत नाट्यशास्त्र में अनेक स्थलों पर जाति राग का उल्लेख मिलता है; जैसे अध्याय 33 में भरत ने कहा है कि—

"मृदङ्गवादन वही श्रेष्ठ है, जो बोलों की विशदता, स्पष्ट प्रहार, शक्ति, गुण आदि के साथ अभीष्ट राग की रम्यता को बुद्धिगत करे।"

यहाँ राग शब्द को 'जाति राग' माना गया हैं। क्योंकि रागों का स्वतन्त्र अस्तित्व तो भरत ने नहीं बताया है, इस प्रकार मृदङ्गवादन में कनिष्टिका के प्रयोग का निर्देश करते हुए 'राग' शब्द का उल्लेख नाट्यशास्त्र में उपलब्ध है। तालों के विवरण में भी राग-प्रणाली का उल्लेख माना है।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भरत के समय में जाति तथा राग दोनों की परम्परा समानान्तर रूप से प्रचलित थी। जातियों का मूलाधार प्रचलित जन-संगीत था। परन्तु आवश्यक संस्कार तथा परिष्कार के कारण इनको शास्त्रीय संगीत में स्थान प्राप्त था वैदिक युग में प्रचलित तथा लोकप्रिय धुनें इनका आधार थीं। जातियों के इस प्राचीनता के आधार पर उनकी गणना 'मार्ग' संगीत में की गयी है। नाटकों में इन जातियों का गायन निश्चित स्वर, ताल, गीति, लय तथा प्रसंग आदि नियमों से नियन्त्रित था। इन नियमों में जरा भी परिवर्तन होने से जाति राग के निर्माण का कारण बन जाता था।

संगीत रत्नाकर में कहा गया है कि "जाति का संगीत के अन्तर्गत स्थान वेद मन्त्रों के तुल्य है। जिस प्रकार वेद-मन्त्रों का स्वर-वर्ण आदि के सम्बन्ध में उल्लंघन, हानि की संभावनाओं से भरा रहता है, उसी प्रकार जातियों का प्रयोग भी नियत स्वर, पद तथा ताल के विपरीत नहीं किया जा सकता—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऋचो यंजूषि सामानि क्रियतेनान्यथा यथा ।
तथा साम समुद्धता जातयो वे दसाम्मितः ॥

रविशंकर जी के अनुसार—

"The predominant musical foundation was the jati; which served the same function as the Raga does now. That is, the Jati was the basic melody upon which Compositions ware Constructed, a Universal kind of Protoraga, from which all later ragas evolved."

भरत ने जातियों के दो प्रकार—शुद्धा और विकृता माने हैं। शुद्ध जाति वह है जिसमें विशिष्ट ग्राम के सम्पूर्ण सप्त स्वर विद्यमान हों और जाति का नामसूचक स्वर ही उस जाति का अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर होना चाहिए। इनमें से एक, दो अथवा उससे अधिक लक्षणों के अभाव में जाति विकृता कहलाती है अर्थात अंश तथा ग्रह स्वर को बदलकर अथवा एक या दो स्वरों को त्याग कर जब जाति का विस्तार किया जाता है तो शुद्ध जाति विकृता बन जाती है। परन्तु न्यास स्वर दोनों ही जातियों में परिवर्तित नहीं होता।

शुद्धा जातियाँ सात हैं और विकृता जातियाँ ग्यारह। इन दोनों ही जातियों की उत्पत्ति षड्ज और मध्यम ग्राम से होती है।

षड्ज ग्राम से उत्पन्न सात शुद्ध जातियाँ

षाड्जी, आर्षभी, धैवती, नैषादी, षड्जोदीच्यवती, षड्जकैशिकी तथा षड्ज-मध्यमा।

मध्यम ग्राम से उत्पन्न 11 विकृत जातियाँ—

गांधारी, मध्यमा, पंचमी, रक्तगांधारी, गंधारोदीच्यवा, गांधारपंचमी, मध्यमोदीच्यवा, आन्ध्री, नन्दयन्ती, कामारिवी, कैंशिकी।

इन 18 जातियों में से केवल तीन जातियों में 'स्वर साधारण' (अन्तर ग और काकली नी) का प्रयोग होता है। इन तीनों जातियों में से एक षड्जमध्या तो षड्जग्राम से उत्पन्न होती है तथा अन्य दो मध्यम ग्राम से; जैसा कि निम्न तालिका से विदित है—

षड्ज ग्राम		मध्यम ग्राम	
1. षाड्जी	: शुद्ध स्वरयुक्त	1. गान्धारी	: शुद्ध स्वरयुक्त
2. आर्षभी	: शुद्ध स्वरयुक्त	2. मध्यम	: साधारण स्वर-युक्त
3. धैवती	: शुद्ध स्वरयुक्त	3. पंचमी	: साधारण स्वर युक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

4. नैषादी	: शुद्ध स्वरयुक्त	4. रक्तगांधारी	: शुद्ध स्वरयुक्त
5. षडज कैषिकी	: शुद्ध स्वरयुक्त	5. गांधारीदीच्वा	: शुद्ध स्वरयुक्त
6. षड्जोदीच्वा	: शुद्ध स्वरयुक्त	6. गांधार पंचमी	: शुद्ध स्वरयुक्त
7. षड्जमध्या	: साधारण स्वरयुक्त	7. मध्यमोदीच्वा	: शुद्ध स्वरयुक्त
		8. आन्ध्री	: शुद्ध स्वरयुक्त
		9. नन्दयन्ती	: शुद्ध स्वरयुक्त
		10. कार्मांखी	: शुद्ध स्वरयुक्त
		11. कैशिकी	: शुद्ध स्वरयुक्त

उपर्युक्त तीन जातियों में स्वर साधारण अर्थात अन्तर गंधार और काकली निषाद का प्रयोग है और यही तीन जातियों में इन स्वरों के आरोह में प्रयोग होने से जाति रागों का उद्‌भव माना जाता है।

उपरोक्त 18 जातियों से ही ग्राम राग और रागों का विकास हुआ। जाति से राग तक का विकास समझने के लिए जाति के लक्षण देखना भी आवश्यक है। जाति की दस विशेषताएँ थीं—(1) ग्रह, (2) अंश, (3—4) तार एवं मन्द्र, (5—6) न्यास एवं अपन्यास, (7—8) अल्पत्व एवं बहुत्व, (9—10) षाड़व तथा औड़व होने की योग्यता।

जाति के लिए इन लक्षणों का होना आवश्यक था, जातियों के यही लक्षण रागों पर भी चरितार्थ होने लगे। भरत के बाद कोहल, कश्यप, याष्टिक, शार्दूल तथा मतंग-जैसे संगीतज्ञों ने 'राग' की व्यवस्था पर प्रकाश डाला है।

मतंग के समय में जातियों के बदले राग-पद्धति का प्रचार हो चुका था। मतंग ने अपने 'बृहद्‌देशी' नामक ग्रन्थ में पहले-पहल प्रचलित रागों की विवेचना की और यह भी स्पष्ट कर दिया कि भरतादि प्राचीन विद्वानों ने राग की चर्चा नहीं की।

मतंग के अनुसार राग भी स्वरों का ऐसा ढांचा रहा, जिनमें जाति के उपरोक्त 10 लक्षणों का प्रयोग होता था। परन्तु समय के साथ यह नियम शिथिल होते गये और राग ऐसी धुन बन कर रह गई, जिसमें केवल सामान्य लक्षण का महत्व शेष रह गया अर्थात् रंजकता ही राग का प्रमुख और एकमात्र लक्षण माना जाने लगा। राग की परिभाषा जो प्रचार में आयी वह इस प्रकार है—

"राग ध्वनियों की वह रचना है जो स्वर और वर्ण से विभूषित होती है और साथ ही जनचित्त का रंजन करने वाली होती है।"

मतंग के बाद अन्य विद्वानों ने भी 'राग' शब्द पर पूर्ण प्रकाश डाला है। जातियों का प्रचार नहीं रहा; अतः आज उनकी रूपरेखा की कल्पना भी सम्भव नहीं। जातियों के विकास-क्रम में ही राग-व्यवस्था का सर्वत्र प्रचार एवं प्रसार है।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रबन्ध

भारतीय संगीत की प्राचीन गायन-शैली का एक रूप प्रबन्ध में देखने को मिलता है। वैसे तो गीत-शैलियों के विभिन्न प्रकार समय-समय पर प्रचलित रहे, जैसे भरत काल में ध्रुवा गीतों का अस्तित्व था, इसके भी पूर्व शुद्ध, गाथा, पाणिका, नायक, गीत-शैलियाँ थीं। परन्तु मतंग के काल (8 ई०) से 'प्रबन्ध' नामक गीत शैली—पूर्णतया अस्तित्व में आ गई थी। "वृहद्देशीय" में प्रबन्ध का प्रयोग मिलता है। मतंग के पहले भरत "नाट्यशास्त्र" में 31वे अनुच्छेद में चौदह प्रकार के गीत बताये गये और बाद की कृतियों में उन्हें मार्ग गीत के अन्तर्गत शुद्ध गीत बतलाया गया है। ध्रुव प्रत्यक्ष रूप में नाट्य-कला से सम्बन्धित थे, और जब संगीत का नृत्य-कला एवं नाटक से स्वतन्त्र रूप से विकास होने लगा तब ध्रुव के स्थान पर प्रबन्ध शुरू हुए। बाद के सभी लेखकों ने मार्ग गीत और प्रबन्ध पर ही प्रकाश डाला। देवल नामदेव ही अपवाद है, जिन्होंने अपने "भरत-भाष्य" में प्रबन्ध के साथ ध्रुव का भी उल्लेख किया। शुद्ध गीतों का "संगीत रत्नाकर" के तालाध्याय में भी उल्लेख है। शार्ङ्गदेव ने "संगीत रत्नाकर" में प्रबन्ध, वस्तु और रूपक इन तीन संज्ञाओं का प्रयोग किया है। लेकिन प्रबन्ध का ही अधिकांश प्रयोग देखने को मिलता है। इन प्रबन्धों को संस्कृत, कर्नाटक एवं आंध्र तथा द्रविण आदि भाषाओं में निबद्ध करने की प्रथा थी। इन्हीं प्राचीन प्रबन्धों के स्वरूपों से बाद की प्रत्येक शैली के निर्माण में योग मिला। वास्तव में आधुनिक काल की हिन्दुस्तानी और कर्नाटकीय संगीत पद्धतियों की बंदिशों का मूल प्राचीन काल के प्रबन्धों में मिलता है।

प्र+बन्ध+घत्र से प्रबन्ध शब्द बनता है, जिसका स्पष्ट अर्थ है बद्ध या बन्ध अर्थात् संगीत में प्रबन्ध का अर्थ है—"धातु और अंगों की सीमा में बँधकर जो रूप बनता है, वह प्रबन्ध कहलाता है।" आधुनिक काल में बंदिश शब्द का प्रबन्ध के स्थान पर प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ भी बाँधने से है।

ठाकुर जयदेव सिंह के मत से,

Prabandh was a vocal composition form, a systematic and organised giti (song), with Sanskrit texts. The word 'Prabandh' literally means anything well-knit or well fitted.

Pra + Bandh + Dhatra = Prabandh. In music Prabandh means a contribution of Dhatu and Ang. It is a blanket term

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

for composition. It means a song in which words or Padas are set in a definite structure and pattern, preferably with a devotional context."

कोई भी शब्द रचना सार्थक अथवा निरर्थक प्रवन्ध कहला सकती है, यदि वह धातु और अंगों से बद्ध हो। इस प्रकार प्रवन्ध का सम्बन्ध रचना से है। प्रबन्ध ही बाद में गीत कहे गये। प्रवन्ध में अक्षर ज्यादा और गीत में स्वरों का फैलाव अधिक देखने को मिलता है। प्रबन्धों के ही अधिक और विकसित पर सरल रूप बाद में गीत कहलाए। गीत का अर्थ है—जो "गाया गया" अर्थात् प्रबन्धों को सरल रूप देकर गाना ही गीत कहलाया। कोई भी रचना पहले प्रबन्ध और फिर गीत होती है।

अनेक ग्रन्थों में प्रबन्ध शब्द का प्रयोग हुआ है; जैसे—मतंग के बाद नामदेव भरत-भाष्य में प्रबन्धों को "देशी-गीत का ध्याय" कहा है, "मानसोल्लास" में प्रबन्ध संज्ञा का प्रयोग हुआ है। "संगीत नारायण, संगीतराज, संगीत दर्पण, संगीत पारिजात, नाट्य-चूड़ामणि, अनूप संगीत आदि अनेक ग्रन्थों में प्रबन्ध संज्ञा का प्रयोग किया है, और इस प्रबन्ध संज्ञा को धातु और अंगों से निबद्ध माना है। आज भी कुछ ध्रुपद गायक 'प्रबन्ध' का अस्तित्व मानते हैं; उनके अनुसार "एक ही गीत में एक से अधिक तालों का प्रयोग कर एक के बाद एक गाये जाने वाले गीत प्रबन्ध हैं। प्रबन्ध को 'वस्तु' अथवा 'रूपक' के नाम से जाना जाता है। प्रबन्ध वास्तव में ऐसा स्वरूप है, जिससे संगीतिक बंदिश बनती है।

श्री जयदेव ने "गीत-गोविन्द" काव्य में ही प्रबन्ध विषय में लिखा है,

"श्री वासुदेव रति केलि कथा समेत मेतं
करोति जयदेव कविः प्रबन्धम्"

सम्पूर्ण "गति-गोविन्द" प्रबन्ध शैली में ही रचा गया है।

'प्रवन्ध' शब्द में जो आकार की विशालता, गम्भीरता और पद के महत्व का भाव है, वह धीरे-धीरे कम होने लगा। बाद के ग्रन्थकारों ने प्रवन्ध की अपेक्षाकृत 'गीत' को अधिक ग्रहण किया। पद का महत्व घट कर राग-विस्तार पर अधिक बल दिया जाने लगा। यहाँ तक कि "संगीत पारिजात" के समय तक प्रबन्धों का प्रयोग काफी कम हो गया। उत्तर भारत में तो धीरे-धीरे ध्रुपद गायन-शैली का प्रयोग अधिक होने लगा।

उत्तर भारतीय संगीत—ध्रुवपद गायन के जन्म के पश्चात् काफी समय तक प्रवन्ध गायन चलता रहा। परन्तु धीरे-धीरे वह लुप्त होने लगा। प्रबन्ध के शास्त्रीय पक्ष (व्याकरण) को लिपिबद्ध तो अवश्य किया गया, परन्तु विस्तार (स्वर लिपि) की उसे आवश्यकता थी, जिससे वह भविष्य की पीढ़ी के काम आ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सके। उतना विस्तार उसे नहीं दिया गया। उस समय के प्रबन्ध के गीत अपने शब्दों के लिए किन-किन स्वरों का उपयोग करते थे, आज वे उपलब्ध नहीं हैं। आज की तरह प्रबन्ध गायन के युग में स्वर सहित गायन लिखने का प्रचलन नहीं था और आज की तरह टेप रिकार्डर नहीं थे, जिनसे सुन कर ही प्रबन्ध गायन या तानसेन आदि के पद-गायन के स्वरों को हम जान सकते। केवल शास्त्र में वर्णित शास्त्रीय नियमों के आधार पर ही हम भूतकाल का संगीत प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं। आज प्रबन्ध गायन पर पुनः शोध हो रहे हैं; फिर वह गायन कैसा था? कौन-कौन सा प्रबन्ध किन किन स्वरों में गाया जाता था। यह सब जानने का कोई भी माध्यम अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। हम केवल यह जान पाते हैं कि अमुक प्रबन्ध अमुक राग में गाया जाता था। इसी तरह का प्रबन्ध का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है जो राग मालव में निबद्ध है।

प्रबन्ध

हिमरुचिधाम धवलविधुलेखातिलकित मौलिमधींर गजमुखष्मुखवाल क्रीड़ा
(अथ तृतीय मात्रा मालव रागेण)

सा	सा	नि	ग	स	ग	स	ग	म	प	नि	ग	स	ग	ग	रे
हि	म	0	0	रू	चि	0	0	धा	0	म	0	ध	व	ल	0
	अ			नि				वि						प्र	
स	ग	म	प	सा	नि	प	म	म	ग	ग	सा	रे	सा	ग	म
वि	धु	0	0	ले	0	0	0	खा	0	0	0	ति	ल	कि	त
	आ			नि						वि				प्र	

प	ग	ग	म	ग	म	ग	सा	ग	सा	रे	सा	स	ग	ग	रे
मो	0	0	0	लि	म	धी	0	रं	0	0	0	ग	ज	मु	ख
	आ			नि					वि					प्र	
म	ग	म	ग	सा	नि	प	सा	स	ग	ग	म	सा	रे	सा	सा
ष	0	ष्मु	ख	बा	0	0	0	ल	0	0	0	क्री	0	डा	0
	आ			नि					वि				प्र		

प्रबन्ध का विस्तार एवं सुसंबद्ध ढंग से निरूपण सर्वप्रथम 'संगीत रत्नाकर' में ही उपलब्ध होता है। शार्ङ्गदेव के अनुसार भी केवल 'धातु' और 'अंगों' का होना ही प्रबन्ध के लिए अनिवार्य है। इसके लक्षण में 'गेय' का संकेत भी रहता है।

"बद्धं धातुमिरङ्गैश्च निबद्धममिधीय ते।
संज्ञात्रयं निबद्धस्यं प्रबन्धो वस्तु-रुपकम्।"

अर्थात् धातु और अंगों से बद्ध गान को निबद्ध कहा गया, जिसकी संज्ञा प्रबन्ध है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धातु :— प्रबन्ध अवएव धातु है,
"प्रबन्धावयवो धातुः"

धातु शब्द आयुर्वेद शास्त्र से लिया गया है। प्रबन्ध की चार धातुएँ हैं—उदग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग के वींच 'अन्तरा' नामक एक धातु और है जो केवल सालगसूड़ों में होती है, अन्य प्रबन्धों में नहीं।

उदग्राह का लक्षण है गीत को ग्रहण करना, मेलापक का लक्षण है जो उदग्राह और ध्रुव को जोड़े। बार-वार प्रयुक्त होने पर और ध्रुव होने पर ध्रुव और ध्रुव का अच्छी तरह भोग कराने के कारण 'आभोग' संज्ञाएं हैं।

आधुनिक काल में उत्तर और दक्षिण में उदग्राह और मेलापक प्रायः लुप्त हो चुके हैं। उत्तरी संगीत में स्थायी की पहली पंक्ति को ध्रुव के समान माना जाता है, आज का अन्तरा आभोग का स्थान ग्रहण करता है।

धातुओं की संख्या के आधार पर प्रबन्ध के तीन भेद माने गये हैं—दो धातु होने पर 'द्विधातु' तीन धातुओं से 'त्रिधातु' और चारों धातुओं के रहने पर 'चतुर्धातु' कहते हैं। प्रबन्ध में कम से कम 2 धातु रहने आवश्यक हैं।

यदि हम उत्तरी भारत के ख्याल के स्थायी, अन्तरे को ध्रुव और आभोग के समान मान लें तो ध्रुपद को त्रिधातुक कहा जा सकता है, और दोनों को अलग-अलग धातु मानें तो चर्तुधातुक कहा जा सकता है। यदि बड़े ख्याल में केवल स्थायी हो जाये तो इसे एकधातुक कहा जा सकता है।

अंग—प्रबन्ध के 6 अंग हैं; जैसे—स्वर, विरुद, तेन, पद, पाठ और ताल आदि।

तेन और पद, पाठ और विरुद तथा स्वर और ताल – यह दो-दो अंग एक साथ बनाये गये हैं। तेन और पद से प्रबन्ध का स्वरूप प्रकाशित होता है। पाठ और विरुद से प्रबन्ध की विभिन्न क्रियाओं का पालन होता है; और स्वर और ताल से प्रवन्ध को गति प्रदान होती है।

इन अंगों के बिना प्रवन्ध की कोई सत्ता नहीं है। संगीत रत्नाकर में इन अंगों को इस प्रकार समझाया गया है—

(1) स्वर—स्वर नामक अंग से षड्जादि -- ध्वनियाँ और उनके सांगीतिक स्वर स, रे ग आदि स्वराक्षरों का भान होता है।

(2) विरुद—विरुद में देने को क्रिया मानकर विरुद को हाथ माना गया है, अर्थात् प्रबन्ध को यश दिलाने वाला अंग माना गया है। प्रबन्ध नायक की प्रसंशा में कहे गये शब्द विरुद हैं।

(3) पद—पद को प्रबन्ध के स्वरूप को प्रकाशित करने वाला अंग माना गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(4) तेन –तेन का अर्थ है, जो मंगल करने वाला है। तेन में प्रबन्ध के उन सभी शब्दों का ग्रहण हो जाता है, जो मंगल अर्थ के वाचक हैं। जैसे 'ओक्-तत्सम' और वतत्वमोसि' आदि।

(5) पाट—वाद्यों के अक्षरों के समूह को पाट कहा गया है। जैसे—रुद्र-वीणा, शंख तथा अन्य अवनद्ध वाद्य से सम्बधिन्त वाले पाट है।

(6) ताल—ताल भी पूरे प्रबन्ध का आवश्यक अंग है, 'चच्चत्पुतादि' अथवा मढ, आदि ताल हैं।

ताल और स्वर पूरे प्रबन्ध में रहते हैं, फिर भी उन्हें अंग ही कहा गया है।

स्वर, पाट, तेन, विरद और पद—ये सभी प्रबन्ध की शब्द-रचना से सम्बन्धिन्त हैं, केवल ताल अक्षर सम्बन्धी नहीं हैं।

जहाँ तक उत्तरी और दक्षिणी संगीत का प्रश्न है प्रबन्ध के अंगों का दोनों ही में समान रूप से प्रयोग होता है, स्वर, ताल, और पाट का प्रयोग गीत में आज भी किया जाता है, और उन्हें उन्हीं संज्ञाओं से जाना भी जाता है। लेकिन सार्थक पद के रूप में तेन, विरुद, और पद का भेद नहीं रहता। उत्तरी संगीत में तरानों में भी त, न आदि अक्षरों का प्रयोग होता है। परन्तु उन्हें तेन की संज्ञा नहीं दी जाती'। इसके विपरीत दक्षिण में आज भी 'तानम्' में 'त' और 'न' के प्रयोग को तेन कहा जाता है।

प्रबन्ध की 5 जातियाँ हैं, जिन्हें भेदिनी, आनन्दिनी, दीपनी, भावनी, और तारावती कहा गया है।

कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार प्रबन्ध जातियों के नाम भिन्न हैं, जैसे—श्रुति नीति, सेना, कविता, और चम्पू। श्रुति जाति में 6 अंग होते हैं, अतः यह 6 की संख्या की सूचक है, नीति में 5, अंग होने से उसे 5, की संख्या, सेना में 4 अंग होने से 4 की संख्या और कविता 3, अंग की होने के कारण उसे 3 की संख्या का सूचक कहा गया है। चम्पू में दो अंग होते हैं, और इसमें गद्य और पद्य दोनों का समावेश होता है।

प्रबन्धों के दो भेद माने गये हैं—निर्युक्त और अनिर्युक्त। निर्यक्त प्रबन्ध में विशेष छन्द अथवा विशेष ताल का नियम रहता है जबकि अनिर्युक्त प्रबन्ध में कोई नियम नहीं रहता।

इन दो प्रबन्धों के अतिरिक्त विद्वानों के अनुसार प्रबन्ध का एक अन्य भेद भी है, जिसे उभयात्मक प्रबन्ध कहा गया है। इन प्रबन्धों में कभी अंग और छन्द का समावेश रहता है।

भाषाओं के अनुसार भी प्रबन्ध के तीन भेद हैं, जैसे—दिव्य भाषा से 'दिव्य' मानुषी भाषा से 'मानुष' और भाषा वैचित्य से 'दिव्य मानुष'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रबन्धों का वर्गीकरण—प्रबन्धों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है—सूड़ आलि और विप्रकीण।

प्रबन्ध के इतिहास में गीत-गोविन्द का विशेष महत्व है। कुम्भा ने प्रबन्धों में गीत-गोविन्द के महत्व के लिए उसका अलग वर्ग बना कर उसकी गेय-परम्परा को लक्षण बद्ध किया है।

गीत-गोविन्द में 12 सर्ग हैं और 20 गीत हैं—हर गीत में 8-8 पद है। इसीलिए गीत-गोविन्द को 'अष्टपदी' भी कहा गया है। इन पदों में कृष्ण, राधा, या सखियों से सम्बन्धित 'शृंगार' पद है। आज भी अनेक गायक ताल-स्वरों में बाँधकर इन पदों को गाते हैं। अनेक वैष्णव मन्दिरों में आज भी यह गीत नृत्य के साथ गाये जाते हैं। संस्कृत भाषा में होने के कारण साधारण जनता में इन गीतों का प्रचार न हो सका, अन्यथा ये गीत गेय हैं और भाव रस लालित्य में उच्चकोटि के हैं।

"ललित लवन्ग लता परशीलन कोमल मलय समीरे।"
"मधुकर निकर करम्बित कोकिल कुंजित कुंज कुठीरे।
विहरनि हरिरिहि सरस बसन्ते।
नृत्यति युवतिजनेन सयं सखि विरहिजनस्य-दुरन्ते"

उपरोक्त दो पंक्तियाँ उदग्राह जैसी है और अन्तिम दो पंक्तियाँ ध्रुव कही जा सकती है।

परवर्ती प्रबन्धों पर दो रूपों में इसका प्रभाव पड़ा।

(1) ध्रुपदों और वैष्णव पद साहित्य में पद शैली के रूप में।

(2) गीत-गोविन्द के आधार पर निर्मित "गीति-गिरीश संगीत गङ्गाधरम्" तथा "कृष्ण लीला तरंगिणी" आदि प्रबन्ध रचनाओं के रूप में।

प्रबन्ध के संदर्भ में धातु और अंग तो महत्वपूर्ण है ही 'प्रयोग' शब्द का महत्व भी प्रबन्ध में है। 'प्रयोग' का अर्थ है "अक्षरों से रहित गमकयुक्त आलप्ति में आलाप" को विद्वानों ने 'प्रयोग' संज्ञा दी है। पर मूलतः प्रबन्ध में धातु और अंगों की प्रधानतः रहती है।

प्रबन्ध में विशेषतयः जिन तत्वों का समावेश रहता हैं, वे हैं—

(1) रसों से सम्बद्ध।
(2) आध्यात्म से सम्बद्ध।
(3) विशेष ऋतुओं से सम्बद्ध
(4) भाषाओं से सम्बद्ध
(5) छन्दों पर आधारित
(6) अक्षरों की आवृत्ति से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(7) नाट्य के तत्वों से युक्त
(8) शैली की विशेषता से युक्त

प्रबन्धों की तीन श्रेणियाँ मानी गई है—

(1) सूड़
(2) आलिक्रम
(3) विप्रकीर्ण

सूड़ प्रबन्धों को शुद्ध-सूड प्रबन्ध और सालग अथवा छायालग सूड़ प्रबन्धों में विभाजित किया गया। शुद्ध सूड़ प्रबन्ध 8 थे—

(1) एला (2) करण (3) ढेंकी (4) वर्तनी (5) झोंपड (6) लम्न (7) रस (8) एक ताली।

सालग सूड़ प्रबन्ध 7 थे—

(1) ध्रुव (2) मध्य (3) प्रतिमठ्य (4) निस्सारूक (5) अड्ड (6) रास (7) एक ताली।

सालगसूड़ प्रबन्धों में ध्रुव और आभोग के वीच 'अन्तरा' नामक एक अतिरिक्त धातु था। कुल मिलाकर प्रबन्धों की संख्या 65 थी, और इनमें से प्रत्येक के कई प्रकार थे।

इनमें से एला नामक प्रबन्ध को सर्वोपरि, उत्तम, महाकठिन प्रबन्ध माना गया है। इस प्रबन्ध में गीत के सब गुण आ गये हैं, जैसे-समान मधुर, कान्त, दीप्त, समाहित, सुकुमार प्रसन्न और ओजस्वी।

एला प्रबन्ध में कुल 16 पद है और 3 पाद हैं। पहले और तीसरे पदों में 5—5 और तीसरे पाद में 2 पद हैं। इसके बाद 4 पद अलग है। एला के 4 अक्षरों के क्रमशः विष्णु, कामदेव, लक्ष्मी और विष्णु देवता हैं।

एला के चार भेद बताये गये हैं—

1. गणेला, 2. मात्रेला 3. वणेला और 4. देशैला

एला प्रबन्ध के भेद, प्रभेदों को मिलाकर कुल 356 प्रकार होते हैं। "एला" प्रबन्ध की महिमा ब्रह्मा के समान हैं, जो श्रोता और प्रयोक्ता दोनों को धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि देने वाला है। यही कारण है कि "संगीत-रत्नाकर" में एला का निरूपण भेद प्रभेदों सहित अत्यन्त विस्तारशः और पूर्णता से किया जाता है। लेकिन अपने स्वरूप के कारण 'एला प्रबन्ध' अत्यन्त दुष्कर और अत्यन्त कष्ट-साध्य बन गया है।

प्राचीन प्रबन्धों से यह तो स्पष्ट ही है कि विभिन्न श्रेणियो की बंदिशों में ताल-राग, छंद और वस्तु निर्मित की विचित्रता, विशेष अवसर और रस का प्रभाव था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राचीन काल के उपरान्त मध्ययुगीन ग्रंथों में प्रबन्ध के स्वरूप में परिवर्तन आया और नये प्रबन्धों की रचना हुई। "संगीत पारिजात", "संगीत-दामोदर" "चतुर्दण्डी प्रकाशिका", "संगीत-सूर्योदय" आदि ग्रन्थों में प्रबन्धों के प्राचीन लक्षणों के साथ कुछ नवीनता भी दृष्टिगोचर होती है, परन्तु कोई विशेष परिवर्तन नहीं मिलता। प्राचीन प्रबन्धों की भाषा संस्कृत थी और सामान्य संचार की भाषा भी यही रही। दसवीं और चौदहवीं शताब्दी के बीच संगीत मुगल बादशाहों के हाथ में चला गया। मुगल दरबारों में संस्कृत के लिए स्थान नही था, अतः अन्य भाषा में बंदिशें बनने लगीं। इस प्रकार "रूपकालप्ति" का स्थान फारसी शब्द 'ख्याल' ने ले लिया। यही बात अन्य प्रकार के प्रबन्धों के सम्बन्ध में हुई।

उत्तर भारत में ध्रुपद और दक्षिण भारत में दरू जैसे नये गीत प्रयोग में आये जो आज भी प्रचलित हैं।

दक्षिण में तो 17वीं शताब्दी तक प्रबन्धों का प्रचलन था,। पं० व्यंकटमखी के समय तक प्रबन्धों का आस्तित्व था, किन्तु बाद में वे अप्रचलित हो गये। दक्षिण में भजन, कीर्तनों आदि की रचना होने लगी। एक ओर प्रबन्धों का प्रचलन था तो दूसरी ओर धार्मिक पुनर्जागरण के कारण भक्तिकार्य के लिए कीर्तन रचना की परम्परा शुरू हो गयी थी, इन्हीं कीर्तनों और भजनों ने समय के साथ प्रबन्धों का स्थान ले लिया। कीर्तन अधिक लोकप्रिय हो गये और प्रबन्ध उनकी लोकप्रियता का मुकाबला न कर सके। वहाँ जो पल्लवि, अनुपल्लवि और चरणम का विकास हुआ, उसका मूल हमें ध्रुव, अत्तरा और आभोग में मिलता है। एला प्रबन्ध के तीन पदों में उदग्राह के प्रथम दो पद पल्लवि कहलाते थे। कर्नाटक संगीत के पल्लवि, अनुपल्लवि और चरणम् का श्री गणेश इस प्रकार प्राचीन प्रबन्ध के प्रभाव से ही हुआ, ऐसा हम कह सकते हैं।

इसी प्रकार उत्तरी संगीत में भी प्रचलित ध्रुपद के स्थायी अंतरे, संचारी और आभोग की तुलना प्रबन्ध के अवयवों के साथ की जा सकती है। उदाहरण के लिए ध्रुपद के स्थायी, अंतरों को प्रबन्ध के ध्रुव और अंतरे के समान तथा ध्रुपद के ही संचारी और आभोग को प्रबन्ध के दो आभोगों के समान माना जा सकता है। ध्रुव के पहले गाये जाने वाला भाग उद्ग्राह समय की गति के साथ समाप्त हो गया।

अतः उत्तरी और दक्षिणी दोनों ही संगीत-प्रणालियों की बंदिशों का यदि ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए तो यह पता चलेगा कि इनका प्राचीन प्रबन्धों से कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य है। आधुनिक गीत में पाये जाने वाले दो भागों स्थायी और अन्तरे का प्रबन्धों के दो भागों के साथ सम्बन्ध हैं। आधुनिक स्थायी को ध्रुव के समान माना जा सकता है, क्योंकि प्रत्येक बंदिश में वह बराबर कायम रहती है। अन्तरे को धातु के समान माना जा सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्त में ठाकुर जयदेव सिंह के मतानुसार,—

"Dhrupada is an evolved form of Prabandh style. In it, the musical idea stretches its wings in the sthayi, soars up in the antara further goes a capering in the Sanchari, and finally, with a broad sweep of notes in the abhoga, furls down its wings."

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तालों का वर्गीकरण

(CLASSI FICATION OF TALS)

भारतीय संगीत की ताल-परम्परा अति प्राचीन है। संगीत के प्राचीनतम् युग वैदिक काल से ही ताल का अस्तित्व माना जाता है। उस समय सामवेद के संगीत में हाथ की अँगुलियों पर स्वरों के अन्तराल दिखाकर ताल की क्रिया दिखायी जाती थी। संगीत के विकासक्रम में यही क्रिया धीरे-धीरे हाथ की विभिन्न क्रियाओं द्वारा दिखायी जाने लगी। इसके उपरान्त महाभारत और रामायण-काल में ताल की क्रिया को दर्शाने और उसकी भाषा को बताने के लिए कुछ लोगों की नियुक्ति होती थी, जो हाथ पर ताल देकर गीत तथा गत की प्रत्येक भाषा की गणना करते थे। यह परम्परा आज भी उत्तर तथा दक्षिणात्य संगीत में किसी न किसी रूप में पायी जाती है।

प्राचीन काल में तालों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया गया— चतुश्र तथा त्यश्र। इन दोनों तालों के ही आधार पर अन्य तालों की रचना की गई; कुछ तालें 'मार्ग' कहलायीं तथा कुछ देशी।

मार्ग तालों के आधार पर भरत ने चतुश्र और त्यश्र पाँच तालों की उत्पत्ति मानी। ये ताल हैं—चच्चत्पुट, चाचपुट, षट्पितापुत्रक, सम्पक्वेष्टाक और उद्घट्ट।

इन्ही पाँच तालों का मध्ययुग तक आते-आते 108 तालों में विस्तार हो गया। चतुरश्र और त्यश्र—इन दोनों ही तालों में क्रम से 4 और 3 गुरू हैं। 4 संख्या सम की और 3 विषम की द्योतक है। जिस ताल में 4 पद भाग हो, वह चतुरश्र और जिसमें तीन हों वह त्यश्र कहलाता है। अब इन्हीं के आधार पर बनी 5 तालों का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

1. चच्चत्पुट—4 ही अक्षरों के मेल से इस ताल का नामकरण हुआ है इसे श्रेष्ठ ताल कहा गया है। इसका रूप इस प्रकार से हैं—

S	S	I	S
च	च्च	त्पु	ट

चाचपुट—इसमें कुल 3 गुरू माने गये। इसे कम कल्याणपद माना गया। इसका रूप हैं—

S	I	I	S
चा	च	पु	ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षट्पितापुत्रक —इसमें कुल 6 अक्षर हैं। कुल मिलाकर 6 ही गुरु हैं, और 6 ही पद भाग हैं। ताल में दो खण्ड दिखाई देते हैं—

ऽ । ऽ और ऽ । ऽ इसका रूप हैं—

ऽ । ऽ ऽ । ऽ
षट् पि ता पु त्र क :

सम्पक्वेष्टाक :—इसमें कुल 6 गुरु हैं। इसका रूप है —

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
स म्प कवे पटा क :

उद्घट्ट —यह भी त्र्यश्र ताल हैं जिसमें 3 गुरु हैं। इसका रूप है—

ऽ ऽ ऽ
उ द्घ घट्ट :

उपर्युक्त 5 तालों में से केवल चच्चत्पुट ही चतुरश्र है, शेष चारों त्र्यश्र हैं। आधुनिक काल में दादरा एक मात्र ताल ऐसी है जो चतुरश्र में है, शेष सभी तालें चतुरश्र, मिश्र, खण्ड या संकीर्ण में से कोई हैं। भरत ने चतुरश्र और त्र्यश्र के मिश्रण से 5 प्रकार के संकीर्ण ताल माने हैं, जिनमें 5, 7, 9, 10 और 11 कलाएँ होती हैं। संकीर्ण होने के कारण इन तालों को नाम की संज्ञा नहीं दी गई।

सशब्द और निःशब्द के मिश्रण से मिश्र ताल बनते हैं। चतुरश्र में ही 1 गुरु और त्र्यश्र में 2 गुरु जोड़ देने से मिश्र ताल हो जाती है, ऐसा करने से दोनों में 5 गुरु हो जाते हैं।

उपरोक्त मार्ग तालों के अतिरिक्त देशी तालों के भी भेद थे। शास्त्रों के अनुसार देशी तालों की उत्पत्ति मार्ग तालों से हुई और उनकी तीन जातियाँ मानी गई– शुद्ध, सालग और संकीर्ण. 'मानसोल्लास, 'संगीत चूड़ामणि आदि ग्रंथों में देशी ताल के अन्तर्गत प्राप्त होने वाले ताल और उनके विभिन्न अंग मिलते हैं।

मानसोल्लास— इस ग्रंथ में 4 प्रकार के ताल कहे गये हैं—चतुरश्र, त्र्यश्र, मिश्र और खण्ड। यहाँ 2, 4 या 6 गुरु से चतुरश्र होता है। इसे और फिर 6--6 गुरुओं की वृद्धि करने से त्र्यश्र, चतुरश्र और मिश्रण से मिश्र ताल और चतुरश्र या त्र्यश्र में गुरु, लघु, द्रुत आदि इकाइयों में परिवर्तन कर खण्डताल की रचना होती है।

संगीत चूड़ामणि—इसमें 101 तालों में 5 तालें भरत की हैं और शेष देशी वर्ग की हैं। लेकिन मार्ग देशी भेद नहीं है। तालों के लक्षण 4 प्रकार के दिए गये हैं।

संगीत रत्नाकर में प्रचलित 120 तालों के लक्षण बताये गये हैं और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शारंङ्गदेव ने कहा है कि इनके अतिरिक्त अनेक ताल हो सकते हैं। एक निश्चित संख्या के स्वरों के आधार पर जैसे अनेक स्वर-प्रस्तार बनते हैं उसी प्रकार ताल के निश्चित अवयवों के आधार पर भी अनेक प्रस्तार बन सकते हैं।

आधुनिक वर्गीकरण—मध्य युग तक देशी तालों की अपेक्षा मार्ग तालों की प्रधानता थी, 18वीं सदी तक यह परम्परा रही होगी, मार्ग तालों का प्रयोग-थोड़ा बहुत होता रहा, परन्तु 16वीं शताब्दी के प्रथम चरण में तालों के स्वरूप में एक बड़ा मोंड़ आया, जिसने उत्तर से भिन्न दक्षिण भारतीय ताल-पद्धति को जन्म दिया। सर्व-प्रथम 'चतुर्दण्डी प्रकाशिका' और संगीत परिजात में इसका वर्णन मिलता है।

संगीत के विकास-क्रम में जैसे-जैसे गायन-शैलियों में परिवर्तन होता रहा, वैसे ही मार्ग और देशी तालों के स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहा, मार्ग तालें तो धीरे-धीरे विलुप्त हो गई। आज के प्रयोग में लघु के अतिरिक्त अन्य अंग लुप्त हो चुके हैं। लघु को भी 'मात्रा' कहा जाता है। आज किसी ताल का लक्षण देने के लिए मात्राओं की कुल संख्या, ताल के विभागों की संख्या हर विभाग में मात्राओं की संख्या के साथ ताली खाली आदि क्रियाएँ बरतनी पड़ती है। अधिकांश प्राचीन तालों के प्रकार की समाप्ति का कारण उनकी वर्तमान संगीत में अव्यवहारिकता है। 2-1/4 मात्राओं का प्राचीन नुसरक ताल, मल्ल ताल, लक्ष्मी ताल आदि प्रायः त्यागे जा चुके हैं। 28 मात्राओं के ब्रह्मताल का आज प्रचार है। आज आड़ा चौताल, ब्रह्म, रुद्र, शिखर, विष्णु, लक्ष्मी जैसे अधिक मात्राओं वाले तालों को न तो बजाने वाले मिलते हैं और न गाने वाले।

वैसे यह सत्य है कि भारतीय तालों का विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ है। रागों की असीम संख्या के साथ ही तालों की वृद्धि भी गणितीय हिसाब को लेकर हुई है। इस प्रक्रिया को खण्डभेरू भी कहते हैं। लघु, गुरू आदि के आधार पर भारत में 108 से भी अधिक तालों का निर्माण किया गया है।

हमारे प्रचलित शास्त्रीय तालों में अणु, द्रुत लघु, गुरू एवं प्लुप्त-इन पाँच मात्राओं का विशेष प्रयोग होता है। लघु मात्रा का काल एक लघु अक्षर के उच्चारण की अवधि है। दो एवं तीन अक्षरों के उच्चारण काल को क्रमशः गुरु एवं प्लुत कहते हैं। भारतीय संगीत में साधारणतया दो मात्रा अथवा गुरू तीन मात्रा अथवा प्लुत चार मात्रा अथवा द्विगुणित गुरु होते हैं। मात्राओं के अनुसार कर्नाटकीय पद्धति में यदि इनकी जाति देखी जाय तो वर्गीकरण तिस्र चतुस्र एवं मिश्र जाति में किया जा सकता है। दादरा एक ताल चौताल आदि तिस्र जाति के कहरवा तीन तालादि, चतुस्र जाति के एवं धमार, तीव्रा, झपताल आदि मिश्र जाति के माने जायँगे। उत्तर भारतीय संगीत में तालों का वर्गीकरण उतना वैज्ञानिक नहीं है जितना कि दक्षिण या कर्नाटकीय शैली में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्नाटक संगीत में तार्किकता और वैज्ञानिकता का ध्यान रखा जाता है। उत्तर भारतीय संगीत में अन्तर्प्रेरणा तथा दार्शनिक कल्पना को महत्व दिया जाता है।

उत्तर भारतीय संगीत की ताल-पद्धति के वर्गीकरण के विषय में कई प्रकार की विचारधाराएँ प्रचार में आयी। एक विचारधारा यह थी कि तालों को उनकी पूर्ण मात्राओं के अलग-अलग वर्गों में रखा जाय; जैसे—चार मात्रा की, पाँच मात्रा की आदि। फिर जब एक ही सी मात्रा में कई प्रकार की तालें हों तो उनके विभागों के अनुसार उनको अलग-अलग रखा जाय। दूसरी विचारधारा यह है कि तालों को दक्षिणी पद्धति की विचारधारा से प्रेरणा लेकर अलग जाति-वर्गों में बाँटा जाय। जैसे चतुस्र जाति में वे तालें जिनमें दो-चार या दो और चार मात्रा वाले विभाग हों। तिस्र जाति में वे तालें जिनमें तीन, जैसे दादरा, झपताल आदि। खण्ड जाति में पाँच मात्रा वाली तालें और दो तथा पाँच मात्रा वाली तालें और दो तथा पाँच वाले भाग हों। मिश्र ज्ञाति में सात मात्रा में या दो और सात मात्रा वाली तालें हों। संकीर्ण जाति में विभिन्न मात्राओं वाले विभाग की तालें हैं।

उपयुक्त बाली के आधार पर निम्नलिखित वर्गीकरण हैं—

चार मात्रा वाली कहरवा, पाँच मात्रा वाली दौताल, छः मात्रा वाली दादरा, सात मात्रा वाली पश्तो, रूपक, तीबरी, आठ मात्रा वाली मोलताल, नौ मात्रा वाली नुसरक, दस मात्रा वाली सूलताल, झपताल, ग्यारह मात्रा वाली कुम्भ, रुद्र, बारह मात्रा वाली एक ताल, खेमटा, चार ताल, तेरह मात्रा वाली फरोदस्त, चौदह मात्रा वाली आड़ा चौताल, झूमरा, दीपचन्दी, धमार, पन्द्रह मात्रा वाली पंचम सवारी, गजझम्पा, सोलहवीं मात्रा वाली तीन ताल, तिलवाड़ा, पंजावी, अद्धा, जत्त ताल, सत्तरह मात्रा वाली शिखर, अट्ठारह मात्रावाली बसन्त, लक्ष्मी, सरस्वती, मत्तताल, अट्ठाइस मात्रा वाली ब्रह्मताल।

इन तालों का विकास दो दृष्टिकोणों से हुआ। एक धर्म-केन्द्र मन्दिरों में भक्ति से पूर्ण गानशैलियों के लिए; दूसरी राजाओं के राजाश्रय में पनप रही गायन-शैलियों के लिए। मात्राओं के न होते हुए भी सभी ताल किसी एक गीतशैली को ग्राह्य नहीं हुए।

बारह मात्राओं का चौताल ध्रुपद गायन के लिए प्राचीन काल से आज तक विद्यमान है और गीतों की कथावस्तु गम्भीर होने के कारण चौताल का खुला थापमय प्रयोग मृदंग या तबले पर प्रिय लगता है। किन्तु राजाश्रय में, विशेषकर रीतिकालीन राजाओं के दरबार में, शृंगारप्रियता के कारण उसी चौताल का प्रयोग शृंगारपूर्ण बारह मात्राओं के गीतों में अप्रिय प्रतीत हुआ। जिस प्रकार ध्रुपदों का स्थान ख्याल ने ले लिया उसी प्रकार चौताल का स्थान एकताल ने ले लिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रचलित शास्त्रीय तालों को हम पाँच श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं।

1. ध्रुपद अंग के ताल—इसमें चौताल, आड़ा चौताल, सूलताल, धमार, तीव्रा, झपताल आदि आते हैं।

2. ख्याल अंग के ताल—इसमें तिलवाड़ा, एकताल, झूमरा आते हैं।

3. टप्पा अंग के ताल—इसमें पंजाबी, जत्तताल आदि आते हैं।

4. ठुमरी अंग के ताल—इसमें कहरवा, दादरा, धुमाली, पश्तो आदि आते हैं।

यह विभाजन एक साधारण नियम मात्र है। इन तालों के प्रयोग विभिन्न लयों के आधार पर पृथक-पृथक होते हैं। झपताल, सूलताल, तीव्रा, दादरा, कहरवा आदि द्रुतगति में ही अच्छे लगते हैं। उनके प्रयोग तदनुरूप संगीत-शैली में योग्य प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार तीनताल, चौताल, एकताल, धमार आदि मध्यलय में एवं तिलवाड़ा, झूमरा, पंजाबी आदि विलम्बित लय में उचित लगते हैं। तीनताल, चौताल, झपतालों का प्रायः सभी संगीत शैलियों में बहुलता से प्रयोग हो रहा है।

इन तालों के वर्तमान स्वरूप का अध्ययन करने पर यह दृष्टिगत होता है कि ताल के मूल सिद्धान्त और मूल स्वरूप आज भी प्राचीन पद्धति से सम्बन्धित हैं; किन्तु इसके आकार में परिवर्तन हुआ है। इसमें उर्दू भाषा के अनेक शब्द आ गये हैं। कुछ भी हो, इतना तो सर्वमान्य है ही कि भारतीय तालशास्त्र के द्वारा इस देश की महान संस्कृति का इतिहास सहस्र वर्षों से समृद्ध होता है।

दक्षिण ताल-पद्धति का वर्गीकरण :—दक्षिण में आज ताल-प्रणाली प्राचीन परम्परा के अनुकूल है। गणित के सिद्धान्तों का जिस सूक्ष्मता से वहाँ प्रयोग हुआ है, उतने सूक्ष्म प्रयोग उत्तर भारतीय तालों में उपलब्ध नहीं है। दक्षिण में आज सात तालों का प्रचार है।

ध्रुवताल, मठताल, रूपक ताल, झपताल, त्रिपुट ताल, अठताल और एकताल। इन्हीं सात तालों के आधार पर कुल 35 भेद होते हैं। वहाँ विशेषकर छः चिह्नों का प्रयोग होता है, जिन्हें 'षड अंग' कहते हैं; जैसे—लघु, अणुद्रुत, द्रुत, गुरु, प्लुत, काकपद। लघु की मात्राएँ परिवर्तित होती रहती हैं जिनसे पाँच जातियाँ पैदा हुईं। चतस्र जाति, तिस्र जाति, खण्ड जाति, मिश्र जाति, संकीर्ण जाति/, लघु चिह्न के आधार पर जाति-भेद के अनुसार सात तालों से पाँच-पाँच प्रकार अर्थात 35 तालें वहाँ उत्पन्न हो जाती हैं। पाँच प्रकार के गति भेद भी हैं। दक्षिण में उपरोक्त 35 तालों से गति भेद के कारण $35 \times 5 = 175$ तालें उत्पन्न होती हैं।

इस प्रकार दक्षिणी ताल-पद्धति में वर्गीकरण उत्तर भारत से भिन्न है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्तर भारतीय तथा दक्षिणात्य संगीत

भारतीय संगीत की मूल धारा एक है, जो कालान्तर में उत्तर तथा दक्षिण की ही भिन्न धाराओं में प्रवाहित हुई। ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक उत्थान-पतन के बीच दक्षिणी भारतीय संगीत की जिस निष्ठा से रक्षा हुई, उत्तर भारतीय संगीत में हम उस निष्ठा का अभाव पाते हैं। दक्षिण के संगीतज्ञ सदा से ही प्रयत्नशील रहे कि उनकी कला में प्रयुक्त परम्परागत तत्व नष्ट न हों, जबकि उत्तर भारतीय संगीत-धारा विभिन्न संगीतशैलियों से मिलजुल कर नित्य नवीन रूप धारण करती रही।

"संगीत रत्नाकर" (13वीं शताब्दी) के काल तक समस्त भारत में एक ही प्रणाली प्रचलित रही। इस काल के बाद ही भारतीय संगीत का 'हिन्दुस्तानी और कर्नाटक प्रणालियों, में विभाजन हुआ। इसी काल में उत्तर का संगीत, जो हिन्दुस्तानी संगीत के रूप में जाना जाता है, मुसलमानों के प्रभाव में आया जो उस समय देश पर शासन कर रहे थे। ईसा के बाद बारहवीं शताब्दी में मुहम्मद गोरी पानीपत की लड़ाई में निर्णायक विजय प्राप्त कर दिल्ली की गद्दी पर बैठा और भारत में बस गया। उसी काल के संगीतज्ञों ने तुर्की, अरब एवं फारस की धुनों को भारतीय संगीत में मिला लिया।

उत्तर में मुसलमानों के प्रभाव के कारण कला, संस्कृति एवं संगीत की प्रगति में नया मोड़ आ गया। इस काल में संगीत मुगल बादशाहों के संरक्षण में चला गया। मुगल-दरबारों में संस्कृत के लिए स्थान नहीं था; अतः अन्य भाषा में बन्दिशें बनने लगीं। प्राचीन "रूपकालप्ति" का स्थान फारसी शब्द "ख्याल" ने ले लिया।

भारतीय संगीत का विदेशी संगीत से सम्पर्क होने के कारण इस काल को 'संक्रमण का काल' कहा जाता है। भारत का ईरानी राग, वाद्य तथा शास्त्र से परिचय इसी युग में हुआ। यह काल वह था जबकि दुश्मन के आक्रमणों के कारण उत्तर भारत के विभिन्न विद्वान एवं कलाकार अपने प्राणों की रक्षा के लिए दक्षिणी भारत भाग कर आये ताकि उनके ग्रन्थ तथा उनकी कला दुश्मनों के स्पर्श से दूषित न हो जाय। मुसलमानों के प्रवेश से पूर्व का भारत उत्तर से दक्षिण तक और पूरब से पश्चिम तक विद्वानों से भरपूर था, जिन्होंने विश्व को दर्शन, साहित्य तथा अन्य शास्त्रों पर ग्रन्थों के भण्डार की निधि प्रदान कर दी।

भारतवर्ष का सम्बन्ध सबसे पहले अरब देशों से तटवर्ती व्यापार के कारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहस्रों वर्षों से पूर्व से प्रारम्भ हुआ। 712 ई० में मुहम्मद विन कासिम ने सिन्ध पर आक्रमण किया। वहुत से अरब-सैनिक भारतीय नारियों से विवाह करके भारत में ही वस गये। महमूद गजनबी ने ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत पर सत्तरह वार आक्रमण किया। विदेशी भारत को 'सोने की चिड़िया' के नाम से पुकारते थे। वारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक मुसलमानों ने दिल्ली को अपना केन्द्र वनाकर इस्लाम-धर्म-प्रचार करना शुरू किया। कुछ लोगों को वलपूर्वक मुसलमान बनाया गया। इन विदेशियों का प्रमुख लक्ष्य हिन्दू-धर्म को नष्ट करना था। पूरे देश में सूफी लोग छा गये, जिनका सम्बन्ध राजनीति से गुप्त रूप से रहता था। क्योंकि मुसलमान शासकों को इनसे सहायता प्राप्त होती थी। इन सूफियों द्वारा संगीत कला का विकास भी होता रहा। क्योंकि उनकी सेवा में अच्छे-अच्छे कौव्वाल उपस्थित रहते थे। मुगल-साम्राज्य के विकास के साथ ही सब कलाओं को राजाश्रय प्राप्त होता गया। नये-नये ग्रन्थों की रचना हुई। दरवारों में कलाकारों और विद्वानों को उच्च पद दिये गये एवं आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। उत्तर भारत के वहुत से विद्वान एवं कलाकार अपने प्राणों की रक्षा के लिए दक्षिणी भारत भाग कर आये ताकि उनके ग्रन्थ एवं उनकी कला दुश्मनों के स्पर्श से दूषित न हो जाय। दक्षिणी भारत चूँकि पहाड़ी, नदियों, मैदानों एवं समुद्रों से घिरा हुआ था, अतएव दुश्मनों के आक्रमण उधर न हो पाये। कश्मीर के विद्वान पं० शार्ङ्गदेव के पूर्वजों ने भी दक्षिण भारत में आकर शरण ली थी। यहीं आकर पं० शार्ङ्गदेव ने "संगीत-रत्नाकर" ग्रन्थ की रचना की जो संगीत-जगत के लिए आज अमूल्य देन है।

भारतीय संगीत का उत्तरी भारतीय संगीत और दक्षिणी भारतीय संगीत इन दो सम्प्रदाओं में विभाजन का सूत्रपात इसी युग की महत्वपूर्ण घटना है। दक्षिण भारत, क्योंकि विदेशियों से मुक्त रहा; अस्तु वहाँ का संगीत विदेशी प्रभाव से मुक्त होकर निर्वाध रूप से विकास करता रहा।

दक्षिण में सतरहवीं शताब्दी तक प्रवन्धों का प्रचलन था। पं० व्यंकटमुखी के समय तक प्रबन्धों का अस्तित्व रहने के वावजूद वे एकाएक अप्रचलित हो गये। धार्मिक क्षेत्र में भक्ति-कार्यों के लिए कीर्तन रचना की परम्परा शुरू हो गयी थी। इन्हीं कीर्तनों ने प्रवन्धों का स्थान ले लिया। कीर्तनों की लोकप्रियता के कारण प्रवन्ध अप्रचलित हो गये, ऐसा हम मान सकते हैं। त्यागराज और महान सन्त पुरन्दर दास ने भी कीर्तनों और कृतियों की रचना में महान योगदान दिया। त्यागराज, मुत्तुस्वामी, दीक्षितर और श्याम शास्त्री ने दक्षिण की रचनाओं को वहुत समृद्ध किया।

उत्तर और दक्षिण दोनों में समानता और विभिन्नता की दृष्टि से उपलब्ध महत्वपूर्ण स्वरूप इस प्रकार हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(1) दोनों पद्धतियाँ 1300 ई० के बाद अलग-अलग होने लगीं। इसका कारण विदेशी प्रभाव है। विभिन्नता होते हुये भी समता अधिक है।

(2) दोनों पद्धतियों में एक सप्तक में 'सा' से लेकर ऊपर के 'सा' तक शुद्ध और विकृत मिलाकर कुल बारह स्वर माने जाते हैं।

(3) दोनों पद्धतियों में सप्तक के शुद्ध और विकृत स्वरों से थाट उत्पन्न किये जाते हैं।

(4) दोनों पद्धतियों में 'थाट राग' का सिद्धान्त स्वीकार किया गया।

(5) दोनों पद्धतियों में रागों की कुल नौ जातियाँ—"औड़व', "षाड़व" एवं "सम्पूर्ण" इत्यादि मानी जाती हैं।

(6) दोनों पद्धतियों में आलाप-गायन 'आकार' द्वारा तथा 'नेतेरीना, तोम्-नोम्' इत्यादि शब्दों को भी प्रयोग करके गाया जाता है।

(7) दोनों पद्धतियों में कुछ गीत प्रकारों की उत्पत्ति प्राचीन प्रबन्ध-गायन से हुई है जैसे—हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के 'ध्रुपद' नामक गीत प्रकार की उत्पत्ति प्रबन्ध-गायन से हुई है।

(8) दोनों पद्धतियों में शास्त्रीय संगीत तथा सुगम संगीत दोनों ही प्रकार प्रचलित हैं। हिन्दुस्तानी संगीत में ध्रुपद, धमार, ख्याल इत्यादि शास्त्रीय तथा ठुमरी ,भजन, गजल इत्यादि सुगम संगीत के अन्तर्गत आते हैं। इसी प्रकार कर्नाटकी संगीत पद्धति में कीर्तन, कृति वर्णन इत्यादि शास्त्रीय संगीत की श्रेणी में और जावालि, पदम् इत्यादि सुगम संगीत की श्रेणी में आते हैं।

'भातखण्डे जी' ने व्यंकटमखी के 72 मेलों में 10 मेल चुनकर उन्हें 'थाट' नाम दिया और उनका उत्तर भारत के जिन मुख्य दस रागों से साम्य था, उन्हें आश्रय राग मानकर थाटों का नामकरण किया। 'मेल' या 'थाट' पर्यायवाची शब्द हैं।

हिन्दुस्तानी पद्धति के 'थाट' व राग-नाम	कर्नाटक पद्धति के 'मेल' व राग-नाम
(1) कल्याण	मेच कल्याणी
(2) विलावल	धीरशंकराभरण
(3) खमाज	हरिकाम्भोजी
(4) पूर्वी	कामवर्धिनी
(5) मारवा	गमनप्रिय
(6) भैरव	मायामालवगौणम्
(7) काफी	खरहरप्रिया
(8) आसावरी	नटभैरवी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri.

(9) भैरवी	हनुमत तोड़ी
(10) तोड़ी	शुभ पंतुवराली

दोनों पद्धतियों के कुछ रागों का स्वरूप—

दोनों पद्धतियों में अनेकारागों के नाम विलकुल एक हैं, परन्तु स्वर स्वरूप सर्वथा भिन्न है। उदाहरणार्थ—हिण्डोल, सोहनी, श्री आदि राग दोनों ही पद्धतियों में समान हैं. परन्तु स्वर रूप की दृष्टि से एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। उत्तर भारत का हिण्डोल कल्याण थाट का है, दक्षिण भारतीय हिन्डोल हनुमत तोड़ी (भैरवी) मेल का है और हमारे यहाँ के मालकौंस से मिलता है। उत्तरी सोहनी, मारवा में जन्य राग है, दक्षिणी सोहनी खरहरप्रिया (काफी) मेल से जन्य है। तोड़ी तथा भैरवी राग दोनों सम्प्रदायों में प्रचलित ही नहीं, लोकप्रिय भी है, परन्तु मेल की दृष्टि से भिन्न होने के कारण स्वर की दृष्टि से भी सर्वथा भिन्न है। उत्तरी संगीत में तोड़ी स्वयं एक जनक या थाट राग है। कर्नाटक में यह केवल जन्य राग है। कर्नाटक की तोड़ी उत्तर की भैरवी है उत्तर की भैरवी दक्षिण का 'हनुमत-तोड़ी' राग है।

कुछ राग नामों की दृष्टि से भिन्न है. किन्तु स्वर तथा चलन की दृष्टि से सर्वथा समान है। उदाहरणार्थ—उत्तरी संगीत के भूपाली, मालकौंस तथा दुर्गा दक्षिणी संगीत के क्रमशः मोहनम्, हिन्दोलम् तथा शुद्ध सावेरी के समान हैं। अन्तर यह है कि दक्षिणी संगीत में राग-प्रदर्शन के अन्तर्गत वादी, संवादी जैसे स्वरों का वह महत्व नहीं है, जो कि उत्तरी संगीत की प्रमुख विशेषता है।

दोनों पद्धतियों के कुछ रागों का स्वरूप

कर्नाटकी या दक्षिणी पद्धति	उत्तरी या हिन्दुस्तानी पद्धति
(1) हिन्दोल	(1) मालकौंस
आरोह—सा म ग म ध नि सां	आरोह—नि सा ग म ध नि सां
अवरोह—सां नि ध म ग सा	अवरोह—सां नि ध म ग म ग सा
(1) मोहनम्	(2) भूपाली
आरोह सा रे ग प ध सां	आरोह—सा रे ग प ध सां

निम्नलिखित राग दक्षिणी और उत्तरी में एक ही नाम से प्रचलित है और इनका स्वरूप भी लगभग एक सा है—

(1) आभोगी	(2) चारुकेशी
आरोह—सा रे ग म ध सां	आरोह—सा रे ग म प ध नि सां
अवरोह—सां ध म ग रे सा	अवरोह—सां नि ध प म ग रे सा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(3) कीरवाणी

आरोह—सा रे ग॒ म प ध॒ नि सा

अवरोह—सां नि॒ ध॒ प म ग रे सा

(4) नारायणी

आरोह—सा रे म प ध सां

अवरोह—सां नि॒ ध प म रे सा

(5) जझाटि (झिंझोटी)—

आरोह—धं सा रे ग म प ध नि॒

अवरोह—ध प म ग रे सा नि॒ ध॒ प॒ ध॒ सा

इसी प्रकार के ऐसे और भी अनेक राग दक्षिण भारतीय या कर्नाटकी पद्धति के हैं, जो उत्तर भारतीय या हिन्दुस्तानी राग में अपना लिये गये हैं।

उत्तर भारतीय और दक्षिणी भारतीय दोनों में आधुनिक काल में उपलब्ध महत्वपूर्ण संगीत-शैलियों के स्वरूप इस प्रकार हैं—

हिन्दुस्तानी या उत्तरी संगीत	कर्नाटकी या दक्षिणी संगीत
(1) अलंकार	अलंकारम्
(2) लक्षण गीत	लक्षण गीतम्
(3) सरगम	स्वर जाति
(4) आलाप	आलापनम्
(5) द्रुत ख्याल	द्रुत कलाकृति
(6) मध्यलय-ख्याल	मध्यम कलाकृति
(7) विलम्बित ख्याल	(7)
(8) ध्रुपद	(8) रागम् तानम् पल्लवि
(9) धमार	(9)
(10) तराना	तिल्लाना
(11) ठुमरी	पदम् और जावलि
(12) भजन	भजन

(1) 'अलंकार' हिन्दुस्तानी संगीत के आरम्भिक चरणों में बहुत महत्वपूर्ण चरण है। वे स्वरों के निश्चित 'फ्रेज' हैं, जो पूरे सप्तक को ले लेते हैं। इसका उद्देश्य स्वर ज्ञान की दृढ़ पृष्ठभूमि तैयार करना है। इसी प्रकार कर्नाटक संगीत में भी आरम्भिक चरणों में अलंकार को प्रमुख स्थान दिया गया है। वे ठीक हिन्दुस्तानी संगीत के समान हैं। इस प्रकार यह दोनों में समान है।

(2) हिन्दुस्तानी संगीत में लक्षण गीत वे सरल रचनाएँ हैं, जिनमें राग का विशेष स्वरूप प्रकट होता है। उनका आरोह-अवरोह, गायन का समय, वादी, संवादी, वर्ज्यावर्ज्य स्वर तथा अन्य विवरण सामने आता है। यह सरल ताल में होता है और आरम्भिक शिक्षण का अनिवार्य अंग है। दक्षिण भारतीय संगीत में भी प्रत्येक राग में लक्षण गीत हैं, जिनकी रचना पुरन्दर दास तथा अन्य विद्वानों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने की है। विभिन्न तालों में निबद्ध सरल चीजों में राग का सौन्दर्य प्रकट होता है।

(3) हिन्दुस्तानी संगीत में सरगम सरल 'सोल्फा' स्वरलिपि रचना है जो विभिन्न रागों और तालों में होती है। यह भी आरम्भिक शिक्षण का अंग है। इसका उद्देश्य स्वर ज्ञान कराना है। दक्षिण में स्वर जाति, जो विभिन्न रागों व तालों में रहती है, अध्ययन के आरम्भिक चरण का अंग है।

(4) हिन्दुस्तानी संगीत के कार्यक्रम में आलाप महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से जब ध्रुपद गायन हो अथवा तत्वाद्य-वादन। इसमें राग का आलाप तथा गमक एवं विशिष्टता के साथ विलम्बित, मध्य व द्रुत में प्रस्तावना है, जिसमें संगीतकार नहीं बजाता। दक्षिणी प्रणाली में आलापना प्रायः हिन्दुस्तानी संगीत के समान है। इसमें कृति का परिचय रहता है और अवनद्ध वाद्य की संगति नहीं रहती।

(5-10) आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत कार्यक्रम का आवश्यक अंग विलम्बित ख्याल है, जिसके बाद मध्यलय-ख्याल और अन्त में तीव्र गति में द्रुत ख्याल उसी राग में मिलता है। आरम्भ में आलाप संक्षिप्त रहता है। विलम्बित में राग ताल के स्वरूप को कायम रखते हुये अलंकरण का अवसर मिलता है। बोलतान, लयकारी का कार्य किया जाता है। इसके बाद मध्यलय-ख्याल में भी बोलतानों एवं द्रुततानों का अवसर मिलता है। द्रुतलय की तानें आकार में रहती हैं।

ध्रुपद में आरम्भिक आलाप में ही राग का व्यापक विस्तार करना पड़ता है। इसके नियम कठोर हैं और इसकी जान ही विलम्बित में है। इसमें बहुत कम तानों का प्रयोग किया जाता है। ध्रुपद लय प्रधान है और इसमें साहित्य का भी प्राधान्य है। इसकी संगति मृदंग पर होती है। धमार आवश्यक रूप से ध्रुपद के बाद पेश किया जाता है।

तराना विशुद्ध सांगीतिक अभिव्यक्ति है, जिसमें 'नोम्', 'ना', 'ना', 'तोम्', आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिनका महत्व कम है। पूर्णतः लयप्रधान इस गायन के अन्त में चमत्कारिता मिलती है।

(11-12) ठुमरी सुगम शास्त्रीय गायन है। यह अधिकांशतः धीमी गति में रहती है और इसका रस श्रृङ्गार रहता है। यह ख्याल के बाद गायी जाती है। ठप्पा सुगम संगीत का दूसरा प्रकार है, जिसमें अलंकारिक चमत्कार आरम्भ से ही मिलते हैं। भजन भी सुगम संगीत है, जिसका साहित्य भक्तिपूर्ण रहता है।

(5-10) कर्नाटक संगीत में कृति महत्वपूर्ण अंश है। इसमें गायक व रचनाकार को अपनी रचनात्मक प्रतिभा के प्रदर्शन का असीमित क्षेत्र मिलता है। इसके मुख्य अंग पल्लवि, अनुपल्लवि और चरणम् हैं। ताल तथा राग के बारे में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। दक्षिण की द्रुत एवं मध्यम कला कृति उत्तर के छोटे और बड़े

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ख्याल के समान है। रागालापन, जो कृति में छोटा रहता है, उत्तर के आलाप के समान है। ख्याल में साहित्य कम रहता है, जबकि दक्षिण की कृतियों में शब्दों का भण्डार रहता है एवं कल्पना स्वर सीमित रहते हैं।

कर्नाटक संगीत में रागम्-तानम्—पल्लवि एक आवश्यक सर्जनात्मक संगीत है। इसमें संगीतज्ञ को अपने सांगीतिक कौशल, कल्पना शक्ति और व्यक्तिगत योगदान के प्रदर्शन का अवसर मिलता है। इस विस्तृत राग में प्रस्तुतीकरण के बाद तानम् शुरू होता है, जो ध्रुपद के नोम्-तोम् के समान है। तानम्, आलापनम् लयबद्ध न होते हुये भी लय का प्रदर्शन करते हैं।

पल्लवि कर्नाटक संगीत का सबसे बड़ा अंश है, जिसमें संगीतज्ञ की योग्यता एवं स्वर का पता चलता है। इससे कार्यक्रम की प्रतिष्ठा स्थापित होती है। एकदम विलम्बित में शुरू कर यह हिन्दुस्तानी संगीत के बड़े ख्याल की सभी विशिष्टताएँ पूरी करती हैं। पल्लवि की महत्वपूर्ण बात यह है कि कलाकार को इसमें 'उपज' का परिचय देना पड़ता है।

दक्षिण का तिल्लाना विशुद्ध सांगीतिक अभिव्यक्ति है, जिसमें उत्तर भारतीय संगीत के तराने के समान निरर्थक शब्द रहते हैं। पद्म और जावलि दक्षिण का सुगम संगीत है, जो ठुमरी और टप्पा के समान है। दक्षिण में सन्तों के ऐसे कई भजन मिलते हैं जो मीरा, सूरदास तथा उत्तर के अन्य सन्तों के भजनों के समान हैं।

इस प्रकार यह प्रकट होता है कि दक्षिण और उत्तर के संगीत की आधुनिक रचनाओं में प्रायः समानता मिलती है। इनके निर्माण में मध्ययुग के प्रबन्ध काफी हद तक आदर्श रहे हैं।

उत्तर भारतीय संगीतज्ञ कर्नाटक संगीत कार्यक्रम को पूर्णतः अरुचिकर मानता है, और दक्षिणी संगीतज्ञ हिन्दुस्तानी संगीतज्ञ की धीमी गति को सहन नहीं कर सकता। कितनी अजीब बात है कि दोनों एक ही भण्डार से निःसृत होते हुए तथा समान सिद्धान्त की स्वीकृति और अनेक बातें समान होते हुये भी प्रस्तुतीकरण में दोनों प्रणालियों में ऐसी खाई है जो पाटी नहीं जा सकती।

दोनों पद्धतियों की पृथकता का एक कारण ताल-गति है। 17वीं शताब्दी के प्रथम चरण में उत्तर तथा दक्षिण के तालों के स्वरूप में एक बड़ा मोड़ आया, जिससे उत्तर से भिन्न दक्षिण ताल पद्धति को जन्म दिया। इसका वर्णन "चतुर्दण्डी प्रकाशिका" और "संगीत पारिजात" में मिलता है। कुछ समानताएँ जो इस प्रकार हैं कि उत्तरी तथा कर्नाटकीय दोनों ही संगीतों में घनवाद्य का प्रयोग नहीं होता। प्राचीनकाल में ताल का आधार हाथ द्वारा की जाने वाली सशब्दादि क्रियायें थीं। आज भी हाथ या पैर के द्वारा ठोक देकर ताल के आवर्तन को बनाये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रखने की प्रणाली में ताल का मूलरूप दोनों ही में सुरक्षित है। उत्तरी भारत में ध्रुपद गायक के लिए स्वयं हाथ से ताल देकर गाना आज भी अनिवार्य माना जाता है, कर्नाटकीय संगीत में तो गायक के लिए स्वयं ताल देकर गाना अनिवार्य ही है

उत्तरी और दक्षिणी संगीत दोनों में ही 'सशब्द' और 'निःशब्द' संज्ञाओं का लोप हो गया है। उत्तर में इनके स्थान पर ताली और खाली—ये दो शब्द आ गये हैं। दक्षिण में सशब्द और निःशब्द के लिये क्रमशः "घातम्" और "विर्सजितम्" संज्ञाएँ हैं। ताली और घातम् में हाथ से एक ताल देकर उँगलियों से शेष मात्राएँ गिनना और खाली तथा विर्सजितम् में हाथ से खाली दिखाना—ये क्रियाएँ होती हैं।

उत्तर में आज हर ताल का ठेका निश्चित है। तबला-पखावड़ी वादक के लिए भी ठेके का ज्ञान आवश्यक है। क्योंकि उन बोलों के अनुसार विस्तार किया जाता है। कर्नाटक संगीत में उत्तर की तरह ठीके के बिना ताल का ज्ञान असंभव तो नहीं माना जाता, फिर भी अभ्यास के लिए तालों के कुछ बोल अवश्य हैं। बोलों में तत, दित, तों, न प्रमुख है जिस प्रकार दक्षिण में अभ्यास के लिए निश्चित ताने बनी हुई हैं, उसी प्रकार ताली के अभ्यास के लिए भी निश्चित 'पाठ' बने हुये हैं, जो विभिन्न समुदायों के अनुसार अलग-अलग हैं।

हिन्दुस्तानी संगीत के अतिविलम्बित आरम्भ में दक्षिणी श्रोता की डिलचस्पी नहीं रहती, जबकि कर्नाटक संगीत के आरम्भ में द्रुत लय के कारण दोनों में समान आधार नहीं मिलता। हिन्दुस्तानी संगीत में एक पंक्ति का साहित्य रहता है और उसी पर गायक को काफी समय तक राग विस्तार करना पड़ता है। यह बात बड़े और छोटे ख्याल पर भी लागू होती है। दक्षिणी पद्धति की कृतियों में पल्लवि, अनुपल्लवि तथा एक अथवा दो चरणम् में अपेक्षाकृत काफी साहित्य रहता है और इनके प्रस्तुतीकरण का समय कम रहता है। कर्नाटक-संगीत-कार्यक्रम में सामान्यतया दस कृतियाँ पेश की जाती हैं।

हिन्दुस्तानी संगीत में संगीतकार को, विशेष परिस्थितियों को छोड़कर, एकाकी प्रदर्शन का कम अवसर मिलता है, जबकि दक्षिण में संगीतकार को कला प्रदर्शन का काफी अवसर मिलता है।

मध्यकाल में उत्तरी संगीत में राग वर्गीकरण की कई पद्धतियाँ रहीं और दक्षिण में मेल पद्धति प्रचलित थी। मध्यकाल में उन्नीसवीं शताब्दी तक वर्गीकरण में काफी मतभेद रहा, किन्तु आज ऐसा नहीं है। बीसवीं शताब्दी में उत्तर और दक्षिण निकट आ गये और दोनों के बेसिक सिद्धान्त एक होने से उनमें एकता आ गयी। इसका श्रेय श्री भातखण्डे जी को है। क्योंकि आपने दक्षिण के विद्वान् पं० व्यंकटमुखी के 72 मेलों में से 10 मेल चुने और सभी प्रचलित रागों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्गीकरण दस थाटों में कर दिया। मेल और थाट पर्यायवाची हैं। इस प्रकार उत्तर और दक्षिण को जोड़ने का प्रयास चलता रहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि आज साम्य अधिक है। जो राग उत्तर भारत में प्रचलित हैं, उनमें से बहुत से राग दक्षिण में भी गाये जाते हैं। उत्तर का मालकौंस और दक्षिण का हिंडोल एक ही है। केवल नाम भेद होने से राग अलग नहीं होता। ऐसे ही अनेक अन्य राग हैं। इसी प्रकार कर्नाटक के ऐसे कितने ही राग हैं जो उत्तर भारत में विद्वानों ने अपना लिये हैं। आज दक्षिण के कई संगीतज्ञ उत्तरी संगीत गाते और बजाते हैं। दक्षिण की विदुषी एम० राजम् को कौन नहीं जानता। वे दोनों ही शैलियों में निपुण हैं। उन्होंने दोनों ही शैलियों की कठिन गायकी को वायलिन पर उतारा है। आज उत्तर भारत में कर्नाटक और दक्षिण में उत्तरी संगीत की शिक्षा दी जा रही है, क्योंकि साम्य अधिक है। हाँ, गायकी का ढंग अलग है, किन्तु सात स्वरों के नाम भी उत्तर जैसे ही हैं।

यदि गायकी का आदान-प्रदान हो तो दोनों ही शैलियाँ समृद्ध हो सकेंगी। विगत आधी शताब्दी से दोनों पद्धतियों में सामन्जस्य स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। स्व० भातखण्डे जी के इस सम्बन्ध में किये गये प्रयास वास्तव में प्रशंसनीय हैं। हैदराबाद तथा मैसूर के आस-पास के प्रदेशों में गायन-शैली में भी उत्तर तथा दक्षिण का मधुर संगम पाया जाता है। स्व० अब्दुल करीम खाँ ने उत्तरी पद्धति में सरगम लेने की प्रथा प्रारम्भ की, उनके पीछे दक्षिण की प्रेरणा थी। दक्षिण के पी० सुन्दरम् अय्यर ने स्व० पं० विष्णु दिगम्बर के पास उत्तरीं संगीत का अध्ययन किया। उनके सुपुत्र प्रसिद्ध वेला वादक गोपाल कृष्णन् ने वायलिन वादन में उत्तर तथा दक्षिण शैलियों में सुन्दर समन्वय किया है। आकाशवाणी द्वारा संगीत के अखिल भारतीय कार्यक्रम के अन्तर्गत दोनों पद्धतियों के संगीतज्ञों का संगीत प्रसारित कर दोनों को निकट लाने का प्रयत्न किया जा रहा है। साथ ही दोनों के समान स्वर वाले रागों को समय-समय पर प्रस्तुत कर दोनों की मूलभूत एकता के सम्बन्ध में भारतीय जनता में जागरण पैदा करना है।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्नाटक संगीत के कुछ प्रमुख गीत प्रकार
[DIFFERENT STYLES OF MUSIC OF SOUTH]

हिन्दुस्तानी तथा कर्नाटक संगीत का विकास मूलतः भिन्न सिद्धांतों पर हुआ है। कर्नाटक संगीत मुख्यतः निवद्ध रूप से गाया जाता है। इसके विपरीत हिन्दुस्तानी संगीत में केवल गीत की बंदिश निवद्ध रूप से गायी जाती है, अन्य सभी विस्तार अनिबद्ध रूप से किया जाता है। हिन्दुस्तानी संगीत स्वर प्रधान होता है, कर्नाटक संगीत लयप्रधान अथवा ताल प्रधान होता है। श्री स० म० देशपांडे के अनुसार, हिन्दुस्तानी संगीत में गीत गाते समय ही आलाप, बोलतान, ताल आदि का प्रयोग होता है। कर्नाटक पद्धति में गीत गाते समय केवल संगीतियों का, नेरावल का तथा सरगम का उपयोग किया जाता है। आलाप या तान गीत में नहीं ली जाती। हिन्दुस्तानी पद्धति में विलम्वित ख्याल की लय अति विलम्बित होती है, उस तुलना में कर्नाटक पद्धति के सभी गीत, मध्यलय में ही गाये जाते हैं। कर्नाटक संगीत का स्वरूप निवद्ध होने के कारण इसमें ताल केवल संगीत का सौन्दर्य बढ़ाने के हेतु से ही मृदंगम् पर वजाया जाता है। मृदंगम का ठेका वन्द करने से भी गायन का कोई नुकसान नहीं होता। हिन्दुस्तानी संगीत का स्वरूप अनिवद्ध होने के कारण तवले पर ताल का ठेका अखंड रूप से बजता रहना आवश्यक है।

कर्नाटक संगीत में वर्णम्, कीर्तन, कृति, पल्लवी, जावली, पद, तिल्लाना आदि गीत प्रकारों का समावेश होता है। उनके प्रमुख गीत प्रकार निम्नलिखित हैं :—

कीर्तन—दक्षिण की गीत शैली में कीर्तनम् का स्थान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। रचना की दृष्टि से कीर्तन और कृति में कोई अंतर नहीं है। कीर्तन को जहाँ परम्परागत माना गया है, वहीं कृति की व्याख्या इस प्रकार दी गई है—"यत्कृतं तत्कृतिः" अर्थात् जिसे किया या वनाया जाये, वह कृति है। कृति वाग्गेयकार द्वारा रचित है। त्यागराज ने अपनी रचनाओं को कृति कहा, ये कृतियाँ भक्तिपूर्ण हैं और ईश्वर के प्रति ही उनके पदों का सार है।

कीर्तन का जन्म 14वीं सदी के उत्तरार्ध में हुआ। आज इस प्रबन्ध का प्रयोग-संगीत सभाओं में विशेष रूप से होता है। कर्नाटक संगीत की सभी विशेषताएँ इन प्रबन्धों में दिखाई पड़ती हैं। कीर्तन तथा कृति को एक समान ही प्रस्तुत किया जाता है, परन्तु इन दोनों के साहित्य और कविता में सूक्ष्म भेद होता है। कीर्तन में ईश्वर भक्ति का स्रोत अखंड रूप से दिखाई पड़ता है। वह मुख्यतः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्तिगीत हैं। कृति में बंदिश तथा सांगीतिक सौन्दर्य को अधिक महत्व दिया जाता है। कृति का विषय वैसे भक्ति होता है, किन्तु कुछ कृतियों में शृंगार रस की झलक दिखाई देती है।

कीर्तन के मुख्य तीन अंग होते हैं—पल्लवि, अनुपल्लवि और चरणम्। कुछ कीर्तनों में केवल पल्लवि और चरणम् ऐसे दो ही भाग होते हैं। कभी-कभी एक से अधिक चरण भी होते हैं। कीर्तन या कृति के किसी भाग में रचयिता का नाम मिलता है। पल्लवि अंग में राग का विस्तार मुख्यतः मन्द्र तथा मध्य सप्तक में किया जाता है। पल्लवि, गीत का पहला भाग होने के कारण वह अनुपल्लवी तथा चरणम् के वाद पुनः-पुनः गाया जाता है, जैसे कि हिन्दुस्तानी संगीत में ख्याल का मुखड़ा बारम्बार गाया जाता है। अनुपल्लवि, पल्लवि के बाद प्रस्तुत किया जाता है। इसमें राग विस्तार मध्य तथा तार सप्तक में किया जाता है। अनुपल्लवी के पश्चात् चरणम् अंग विकसित किया हैं। चरणम् में पल्लवी तथा अनुपल्लवी का मिश्रण तो होता ही है परन्तु साथ-साथ इसमें कलाकार अपनी प्रतिभा के अनुसार सांगीतिक सौन्दर्य का भिन्न-भिन्न रीति से आविष्कार दिखाता है। प्रत्येक चरणम् के वाद पल्लवी का गायन किया जाता है। कृति या कीर्तन के गायन में, संगति यह एक सुन्दर अलङ्कार है, जिससे कृति गायन का सौन्दर्य कई गुना बढ़ जाता है। उत्तर भारत में जैसे गीत के शब्दों को लेकर अलग-अलग ढंग से गाकर अभिव्यक्ति की जाती है, उसी प्रकार संगतियों के द्वारा भी किया जाता है। लेकिन उत्तर में जहाँ गायक को स्वर संचार बनाने में पूरी स्वतन्त्रता है, वहाँ कीर्तन गायक की संगतियाँ पूर्व रचित होती हैं।

कीर्तन का एक विशेष प्रकार है—'दिव्यनाम कीर्तन; जिसमें पल्लवी और समान धातुक कई चरण होते हैं। कभी-कभी हर चरणम् के बाद पल्लवी पर लौटे बिना एक के बाद सारे चरणम् गाये जाते हैं।

कीर्तन या कृति गायन का एक अत्यन्त आकर्षक अंग है—सरगम अथवा चिट्ठास्वर। चिट्ठास्वर विविध प्रकार तथा विविध लयकारियों के साथ पेश किये जाते हैं। चिट्ठास्वर कभी अनुपल्लवी के बाद तो कभी चरणम् के बाद गाये जाते हैं।

कीर्तन शैली का विकास भक्त कलाकारों जैसे पुरंदरदास, त्यागराज, श्यामा शास्त्री, मुत्तुस्वामी, दिक्षितर इत्यादि के द्वारा हुआ है। त्रावणकोर के भूतपूर्व महाराजा स्वाती निरूमल भी एक श्रेष्ठ वाग्गेयकार थे। कीर्तन तथा कृति की रचना तेलगु, तमिल तथा मलयालम भाषाओं में हुई है।

कीर्तन सरल प्रचलित रागों में निबद्ध होते हैं और उसकी गायन शैली सरल भावमय होती है। कृति राग की प्रौढ़ रचना होती है और वह प्रचलित तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अप्रचलित दोनों रागों में निवद्ध होती है। रचना के अनुसार कृति की गायकी भी प्रौढ़ एवं गम्भीर होती है। कीर्तन के प्रथम रचयिता के रूप में ताल्लयाकम् (ई० 14-15) का नाम लिया जाता है। मैसूर सदाशिवय्यर तथा गोपालकृष्ण भारती के नाम भी कीर्तन के रचयिताओं में प्रमुख हैं।

कीर्तनम् का स्थान उत्तर के ध्रुपद के समान माना जाता है, परन्तु यह पूर्ण सत्य नहीं। कीर्तन केवल भक्तिमय रचना होती है तथा ध्रुपद की भाँति शृंगार, वीर आदि रसों के लिए इसमें स्थान नहीं है। ध्रुपद अपनी लयकारी एवं बोल-बनाव के लिए प्रसिद्ध है, परन्तु कीर्तन में भक्ति रस प्रधान होने के कारण इन प्रकारों की जगह नहीं रहती।

कृति—कृति भारतीय संगीत के ख्याल गायन के समान है। कृति में मुख्यतया स्वर का स्थान प्रमुख और साहित्य का स्थान गौण होता है। कीर्तन और कृति में कुछ भेद है, कीर्तन एक साधारण गायक के द्वारा गाया जा सकता है, परन्तु कृति के गाने के लिए संगीत की पूर्व शिक्षा आवश्यक है। कीर्तन के समान ही कृति में तीन चरण होते हैं - पल्लवी, अनुपल्लवी और चरण। कृति के अन्तर्गत गमक आदि का भी प्रयोग होता है। उत्तरी संगीत के ख्याल के समान ही इसमें बोल, आलाप एवं बोलतानें ली जाती हैं। 8 मात्रा वाली आदि ताल तथा 6 मात्रा वाला रूपक ताल कृति के उपयुक्त माने जाते हैं। संत त्यागराज, मुत्तुस्वामी तथा श्याम शास्त्री की कृतियाँ प्रसिद्ध हैं।

वर्णम्—दक्षिण के इस निबद्ध संगीत की रचना तीन सौ वर्ष पूर्व हुई। गायक और वादक इसका अभ्यास अत्यन्त सावधानी और परिश्रम से करते हैं। वर्णम् के गीत में राग की सभी विशेषतायें दिखाई जाती हैं। परन्तु यह गीत लक्षण गीत नहीं है। राग का सही स्वरूप समझाने के लिए ही यह गीत गाया जाता है। हर राग में स्थायी, आरोही, अवरोही और संचारी वर्णों में राग रूप के स्पष्टीकरण के लिए रचे जाने के कारण इसकी संज्ञा 'वर्णम्' है। वर्णम् के पदों में भक्ति, शृंगार या आश्रयदाता का वर्णन रहता है। वर्णम् के कुल चार प्रकार होते हैं—

(1) चौक वर्णम्—इस गीत के तीन विभाग या खण्ड होते हैं—पल्लवी, अनुपल्वी तथा चरणम्। अनुपल्लवी के बाद चिट्ठास्वर अथवा सरगम का प्रयोग किया जाता है। गीत में शृंगार तथा भक्तिरस प्रमुख रहता है। इसका प्रयोग भरत नाट्यम् के साथ भी कभी-कभी किया जाता है। तराना के समान बोल भी इसमें लिये जाते हैं, जिनको चौल्लु केट्टु कहते हैं।

(2) पद वर्णम्—इसकी बन्दिश चौक वर्णम् के समान ही तीन खण्डों में होती है। परन्तु इसमें चिट्ठेस्वर अर्थात् सरगम की प्रधानता होती है। इसमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थोड़ा आलाप भी रहता है। इसे नृत्य के साथ ही गाया जाता है। पद वर्णम् का गायन मध्य तथा द्रुतलय वाले तालों में किया जाता है।

(3) तान वर्णम्—तान वर्णम् में स्वरों की प्रधानता होती है, जो स्वतन्त्र रूप में गाया जाता है। इसमें आलापों तथा सरगम का प्रयोग अधिक प्रमाण में होता है। तान वर्णम् के लिए आदि, अठ, झंपा जैसे विलम्बित लय के ताल निर्धारित रहते हैं।

(4) ध्रुव वर्णम्—इसका स्वरूप चौक वर्णम् के समान होता है। इस प्रकार के वर्णम् में गीत के स्वर, जाति, साहित्य, राग, ताल और रस के छः भाग होते हैं। इसमें भी चिट्ठेस्वर या सरगम का उपयोग किया जाता है।

मंच प्रदर्शन में सर्वप्रथम वर्णम् ही गाया बजाया जाता है। उत्तरी संगीत में चतुरंघ नामक प्रबन्ध में जैसे स्वर और तबले के बोलो का प्रयोग होता है, वैसा ही 'वर्णम्' में भी किया जाता है। इसके रचनाकारों में स्वाति तिरुनल, श्यामा शास्त्री, श्री निवास आय्यंगर और पट्टणम सुब्रह्मण्य अय्यर के नाम लिए जा सकते हैं।

पदम् - मूलतः पदम दक्षिणी संगीत की विशिष्ट गीत-शैली है, जिसके पद भक्ति और विद्वता से युक्त होते थे। इनमें पद प्रधान था। 17वीं सदी के क्षेत्रज्ञ के पदम् अत्यन्त प्रसिद्ध थे। इनमें शृंगार, भक्ति और नीति-प्रधान साहित्य होता है जो बहुत ही भावपूर्ण होता है। पदों का गायन कीर्तन तथा कृति की अपेक्षा अधिक धीमी लय में होता है। भरत नाट्यम में पदों का उपयोग अधिक प्रमाण में किया जाता है। संगीत-सभाओं में भी इन्हें गाते हैं। इनमें मधुर भक्ति का आविष्कार दिखाई देता है। इनमें शृंगार रस का मनोहारी दर्शन किया जाता है। पद तमिल, तेलगु, तथा कन्नड़ भाषाओं में होते हैं। इनमें चिट्ठास्वर भी जोड़ देते हैं।

गीत-गोविन्द की तरह शृंगारिक कृष्ण-लीला इनका वर्ण्य विषय है। जीवात्मा, परमात्मा और गुरु के रूप में कृष्ण, भक्त और सखी को लेकर इनकी रचना हुई। आजकल पदम् में नायक-नायिका भेद प्रमुख विषय है और अब गायन के क्षेत्र से हटकर नृत्य के क्षेत्र में इनका महत्व बढ़ गया है। इनमें जो विलंबित लय में आलाप किया जाता है, उसके कारण वे भव्य होते हैं और नृत्य से स्वतन्त्र भी गाये जाते हैं। इनमें पल्लवी आदि तीन अंग होते हैं। चरणम् अधिक भी हो सकते हैं। स्वरों का सहज और मधुर प्रवाहपूर्ण प्रयोग होता है। लोक-भाषा के शब्दों की प्रचुरता होती है। विलंबित लय और गम्भीरता के कारण उत्तरी संगीत के ध्रुपद से पदम् की समानता है। इनमें प्रायः तीन पंक्तियाँ होती हैं। जिनको क्रमशः पल्लवी, आनुपल्लवी और चरणम् कहते हैं। तोड़ी, भैरवी, मुखारी, शहाना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कांबोजी जैसे रागों में प्रायः पद गाये जाते हैं। इसके लिए विलंबित लय में चलने वाले 7 मात्रा के त्रिपुट ताल तथा चाप ताल विशेष उपयुक्त माने जाते हैं।

उत्तर भारत में भी गायन में 14 ई० तक पद का प्रचलन रहा। बिहार तथा राजस्थान में भी यह पदम् का प्रचलन कुछ समय तक रहा। 15 ई० से इस शैली का प्रभाव दक्षिण में भी पाया जाता है। 17 ई० के प्रसिद्ध भक्त-गायक क्षेत्रज्ञ ने पदम् शैली को राग-संगीत में प्रमुख स्थान दिलवाया। इन्होंने तेलगू में हजारों पदों की रचना की। तंजौर के नरेश शाहजी ने मराठी एवं तेलगू में अनेक पदों की रचना की।

पदम् के गीत भाव-प्रधान होते हैं और अभिनय तथा नृत्य के लिए उपयुक्त होते हैं। इनमें धातु और मातु अर्थात् शब्द और स्वर दोनों का संतुलन होता है। रचना तथा गायन-शैली की दृष्टि से तो पदम् सीदा-सादा है, परन्तु रागरूप के साथ राग-भाव की अभिव्यक्ति करना अच्छे सम्प्रदाय की अपेक्षा करता है।

मणिप्रवाल कृति—मणि (रत्न) और प्रवाल (मूँगा) इन दो बहुमूल्य रत्नों की भाँति दो भाषाओं में बद्ध गीत 'मणिप्रवाल' कहलाता है। भाषाओं को इस तरह सम्बद्ध किया जाता है कि व्याकरण और छन्द की दृष्टि से उनमें असंबद्धता नहीं दिखाई देती।

रागमालिका—रागमालिका भी गायन की एक आकर्षक शैली है। इसमें अनेक रागों की माला होती है। एक के बाद एक अनेक रागों में गीत गाया जाता है ताल शुरू से अन्त तक एक ही रहता है। रागों के भिन्न-भिन्न होते रहने से यह गायन शैली ध्वनि वाली नहीं होती। आजकल प्रचलित गीत प्रकारों में सबसे लम्बा यही है। महावैद्यनाथ अय्यर की 72 मेल रागमालिका को गाने में दो घंटे का समय लगता है। रागों के चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि बिल्कुल भिन्न प्रकृति या बिल्कुल नजदीक के रागों का प्रयोग न हो। विषय क्या हो, इसके लिए सामान्य बंधन नहीं है। लेकिन रागमालिका की पल्लवी और अंतिम चरणम् प्रसिद्ध रागों में से किसी में होना चाहिए और पहला राग ऐसा होना चाहिए जिसमें गान समय का बंधन न हो।

अन्य गीतों की भाँति इनके भी पल्लवी, अनुपल्लवी अर्थात् स्थायी, अंतरा जैसे विभाग होते हैं। दक्षिण में अनुपल्लवी अथवा अंतिम खण्ड गाने के बाद उस गीत में प्रयुक्त विभिन्न रागों में चित्तस्वर (सरगम) गाये जाते हैं और उनको बड़ी खूबी के साथ पल्लवी या स्थायी के राग से मिला दिया जाता है। वेंकटमखी, मुत्तुस्वामी, दीक्षितर, स्वाति तिरुनल आदि ने अनेक रागमलिकाओं की रचना की है। स्वाति तिरुनल का 'पन्नगेन्द्रशयन' गीत 8 रागों में निबद्ध है। शंकराभरण से लेकर भूपालम् तक 8 रागों में नायिका के सूक्ष्म भावों का वर्णन निहित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। रागमालिका में दोनों रागों के समान स्वर समूहों को मिलाने के लिए कंठ तथा स्वर पर अधिकार की आवश्यकता होती है। ऐसे स्वर-समूह को 'मुकुट स्वर' कहते हैं।

उत्तरी संगीत के 'राम सागर' का ही दाक्षिणात्य रूप रागमालिका है।

तालमालिका—तालमालिका भी एक प्रकार का गीत है। इसमें रागमालिका की तरह अनेक तालों का प्रयोग होता है। लेकिन पूरा गीत एक ही राग में गाया जाता है। हर ताल खण्ड में 'ताल मुद्रा' रहती है। प्राचीन तालार्णव प्रबन्ध से इसकी समानता है। इसके विभिन्न चरण या खण्ड विभिन्न तालों में बँधे रहते हैं। इसी का एक और प्रकार राग तालमालिका है, जिसमें प्रत्येक विभाग विभिन्न राग एवं विभिन्न ताल में निबद्ध रहता है। मध्यकाल के ग्रन्थों में 'भरतभाष्य' में षड्मुख नामक एक प्रबन्ध का उल्लेख है जो 6 रागों एवं 6 तालों में गाया जाता था। एक गायक या गायक वृन्द इसे गाता था। इसके समान ही दक्षिणी संगीत में एक कृति है जो 108 रागों एवं 108 तालों में बँधी है। इसके वाग्गेयकार हैं रामस्वामी दीक्षितार। इनकी कृति के प्रारम्भिक बोल हैं 'नाटकादि विद्याला'।

पंच तालेश्वर में 5 तालों का प्रयोग है, लेकिन वहाँ केवल मार्गताल है, साथ ही स्वर के अतिरिक्त विभिन्न वाद्यों के पाटों से 5 तालों के 5 खण्डबद्ध होते हैं।

जावलि—उत्तर भारत के ठुमरी के समान जावलि एक श्रृङ्गार रस प्रधान गीत है। यह मध्य तथा द्रुत लय में गाया जाता है। इसमें लौकिक श्रृङ्गार के पद होते हैं तथा गेय आकर्षक और इन्द्रिय स्तर का होने के कारण यह सभी श्रोताओं को आकर्षित कर लेता है। मध्यलय और चंचल प्रकृति के रागों में इसे गाया जाता है। उत्तर भारत के समान—परज, झिंझोटी, काफी, विहाग-जैसे राग इसमें प्रयोग होते हैं। साधारण भाषा तथा क्षुद्र प्रकृति के ये गीत होते हैं। आदि, रूपक, चापु तालों का सामान्यतया इनमें प्रयोग होता है। जावलि शब्द ही कर्नाटक शब्द 'जावल' से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ श्रृङ्गारमकय गीत है। जावलि का यह प्रकार प्राचीन नहीं है तथा लगभग 100 वर्षों से इसे गाते हैं। इसके गाने में राग की शुद्धता पर ध्यान नहीं रखा जाता। ठुमरी की भाँति स्वर-वैचित्र्य का प्रयोग इसकी विशेषता है। स्वामी तिरुमल रामनाथ पूरम् श्रीनिवास अय्यंगार, पट्टणम् सुब्रह्मण्य आदि रचनाकारों के द्वारा अनेक जावलि गीतों की रचना की गई है।

सरगम—अभ्यास गान में सबसे पहले आने वाला गीत सरगम है। इसमें शब्द नहीं रहते। विभिन्न तालों में राग के स्वर बाँध दिये जाते हैं, जिससे राग का स्वरूप स्पष्ट हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतम्—दाक्षिणात्य संगीत में अभ्यास तथा सरगम के बाद सिखाया जाने वाला गीत 'गीतम्' है। इसमें सीधे सरल स्वर संचारों के द्वारा राग का स्वरूप स्पष्ट किया जाता है। इसमें मध्यलय का प्रयोग होता है। इसमें पल्लवि आदि अंग नहीं होते और किसी भी अंश को इसमें दोहराया नहीं जाता। इसके गायन में खण्ड होते हैं, कुछ अंश मध्य सप्तक के स्वरों तक गाकर आगे का अंश तार 'सा' पर जाकर कुछ रुककर आगे बढ़ता है। इसमें संगति नहीं होती। साधारणतया हर स्वर में एक-एक अक्षर रहता है। गीतम् का वर्ण्य-विषय ईशस्तुति होता है, इसीलिए इसे स्तुतिगीतम् कहते हैं और रागलक्षण से युक्त होने पर इसे लक्षणगीतम् कहा जाता है।

स्वरजाति—स्वरजाति का स्थान गीतम् के बाद और वर्णम् से पहले हैं। जहाँ तक रचना और लय का प्रश्न है, स्वरजाति वर्णम् के नजदीक है। इसके गीतों में भक्ति, शृंगार या वीर सम्बन्धी वर्णन रहता है। इसमें तीनों अंग और भिन्न धातुओं से युक्त कई चरणम् होते हैं। परन्तु कभी-कभी अनुपल्लवि का अभाव होता है। स्वर शब्द और जाति—इन तीनों का सम्मिश्रण स्वरजाति में होता है। यह नृत्य के साथ गाया जाने वाला गीत प्रकार है।

जातिस्वरम्—यह स्वरजाति के समान होता है, परन्तु इसमें केवल स्वर होता है, और वह भी नृत्य के साथ गया जाता है।

तिल्लाना—यह रचना उत्तरी संगीत के 'तराना' के समान होती है। यह भी नृत्य के साथ गाया जाने वाला गीत है। इसमें मुख्यतः चौल्लु के टटु अर्थात तराना के अक्षर ताल में बाँधे जाते हैं। पल्लवी तथा अनुपल्लवी में तराना के अक्षर और चरणम् में साहित्य भी होता है। जिस प्रकार तराने में वीणा के दिर-दिर बोलों तथा तबले के धिरकिट, धूमकिट जैसे बोलों का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार दक्षिणी तिल्लाना में मृदंग के बोलों का प्रयोग किया जाता हैं। यह द्रुतलय में गाया जाता है। यह कभी-कभी गायन के कार्यक्रम के अन्त में गाया जाता है। स्वरों के वक्र प्रयोग और स्वर और जाति के कारण यह अत्यन्त आकर्षक मालूम होता है। स्वाति तिरुनल, मुत्तैया भागवतर जैसे संगीतकारों ने अनेक तिल्लाना गीतों की रचना की है।

स्वराक्षर—यह प्राचीन प्रबंध के समान है और आजकल अप्रचलित है।

दरु—सर्वप्रथम दरु का उल्लेख 'संगीत पारिजात' में मिलता है, जिससे इसकी प्राचीनता का आभास मिलता है। आजकल दरु का उपयोग गीतिनाट्यों और नृत्य नाटिकाओं में होता है, जिसमें पौराणिक, शृंगारिक या आश्रयदाता की स्तुति संबन्धी कथा रहती है। शब्दों का इसमें बाहुल्य रहता है, भरत की ध्रुवा से भी इसका सम्बन्ध जोड़ा गया है। इसमें भी पल्लवि आदि तीन अंग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होते हैं। दरु के आठ प्रकार हैं—संवाद दरु, उत्तर-प्रत्युत्तर दरु, पात्र प्रवेश दरु, कोलट्ट दरु, स्वगत दरु, वर्णन दरु, प्रलाप दरु और पट्टाभिषेक दरु।

रागम्, तानम्, पल्लवी—ये तीनों राग को प्रस्तुत करने के अलग-अलग ढंग हैं। ध्रुपद, धमार के समान पल्लवी गायन में अनिबद्ध आलाप प्रथम किया जाता है। इसका विस्तार तीनों सप्तकों में किया जाता है। राग का सम्पूर्ण सौंदर्य आलाप द्वारा दिखाया जाता है। आलाप के पश्चात् भिन्न-भिन्न तानों का प्रयोग किया जाता है। आलाप और तान के पश्चात् गीत गाया जाता है। आलाप तानों के गायन के साथ संगति करने वाले वेला आदि वाद्यों को भी अवसर दिया जाता है। गीत गाते समय संगतियों तथा सरगम का प्रयोग किया जाता है। गीत की संगति के लिये मृदंगम, खंजिरी, घटम्, वायोलिन इत्यादि वाद्यों की योजना की जाती है। कभी-कभी वाद्यों से ही पल्लवी की समाप्ति की जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गमक और उसके विभिन्न प्रकार

"स्वरस्य कंपो गमकः श्रोताचित्तं सुखावहः"

यह गमक की परिभाषा हुई अर्थात् गमक एक विशेष प्रकार के कंपन को कहते हैं, जिसके प्रयोग से चित्त को सुख, आनन्द एवं प्रसन्नता होती है। आज हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में "गमक" शब्द का जो आशय साधारणतः लिया जाता है, वह यह है कि हृदय में वांछित प्रकार की श्वसन क्रिया का निर्माण करके कण द्वारा विशिष्ट प्रकार के कंपन पैदा कर स्वर-उच्चारण किया जाए। "संगीत विशारद' में गमक की परिभाषा इस प्रकार है—"जब हृदय से जोर लगाकर गम्भीरतापूर्वक कुछ कंपन के साथ स्वरों का प्रयोग किया जाता जाता है, इसे गमक कहते हैं।" गमक की व्याख्या वास्तव में इस प्रकार की जा सकती है कि "निम्न स्वर से उच्च स्वर तक मीड़ युक्त अविच्छेद गति से जाते समय जिस कम्पिन ध्वनि की उत्पति होती है, उस विशेष ध्वनि प्रकार को गमक कहते है।"

डॉ० रानाडे के अनुसार, "The Oscillation of a note which pleases the listener is Gamak. Gamak points out the way how to attach a note and how to move from one or more notes to the others- Gamak reveals the very nature and soul of a song. In rendering Gamak, the vocal ehords are made flexible and there is a strain on the lungs. It is a serious ornament to Indian music."

गमक का प्रयोग अधिकतर ध्रुपद गायन में होता हैं। किन्तु कोई-कोई गायक ख्याल गायन में भीं गमक की तानें लेते हैं। नोमतोम के आलाप में भी जव अंतिम भाग द्रुत लय का आता है, तो गमक युक्त तानें ली जाती हैं।

गमक के प्रकार भेद के विषय में भिन्न-भिन्न समय के ग्रंथकारों में मतभेद है। संगीत रत्नाकर में 15, संगीत पारिजात में 20 एवं संगीत पंचरत्न में 7 प्रकार की गमकों का उल्लेख है। गायन और वादन क्रियाओं में गमकों का प्रयोग अपरिहार्य माना गया है, परन्तु उक्त सभी प्रकारों का विधिवत प्रदर्शन करना सरल कार्य नहीं है और न ही सभी कलाकारों से उनका यथोचित प्रयोग हुआ ही करता है।

संगीत रत्नाकर में वर्णित गमक के मुख्य 15 प्रकार निम्नलिखित हैं—

(1) कंपित, (2) आंदोलित, (3) आहत, (4) प्लावित, (5) उल्हासित,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(6) स्फुरित, (7) विभिन्न, (8) बली, (9) हुंफित, (10) लीन, (11) तिरिप, (22) मुद्रित, (13) कुरूला, (14) नामित, (15) मिश्रित'।

कर्नाटक संगीत में इनमें से अनेक गमकों का प्रयोग आज भी होता है और उन्हें गमक कहा भी जाता है, किन्तु उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में "गमक" शब्द का प्रयोग इस अर्थ में नहीं होता, जबकि उपरोक्त सभी गमकें हमारे गायन तथा वाद्य संगीत में किसी न किसी रूप में अवश्य प्रयोग होती हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि हम इन सौन्दर्य-उत्पादक स्वर-कंपनों को गमक न कह कर अन्य नामों से जानते हैं, जैसे—मुर्की; क्रन्तन, खटका, जमजमा, मीड़, गिटकिड़ी आदि। आज "गमक" शब्द का प्रयोग भिन्न अर्थों में हमारे कलाकार करते हैं जैसे—हृदय से जोर लगाकर गंभीरतापूर्वक उच्चारण करके जो तान या स्वर प्रयोग किया जाता है, उसे तो उत्तर भारतीय संगीत में गमक नाम से ही जाना जाता है।

उपरोक्त गमक के 15 प्रकारों की व्याख्या इस प्रकार है—

(1) कंपित गमक—मूल स्वर के आगे या पूर्व के स्वर से मूल स्वर को बार-बार अतिशीघ्रता से स्पर्श करते हुए जब कंपन द्वारा मूल-स्वर का उच्चारण किया जाता है तब कंपित गमक का बोध होता है। वीणा अथवा सितार में एक ही बार में शीघ्रता से दो स्वरों पर अँगुली के हनन से कंपित गमक उत्पन्न होती है। यदि बाँयें हाथ की मध्यमांगुलि ऋषभ के परदे पर और तर्जनी षड्ज के परदे पर रखकर दाहिने हाथ से दा बजायें और बजाने के बाद तुरन्त मध्यमांगुलि को झटके के साथ तार से हटा लें, तो मिजराब के एक प्रहार में दो स्वर रे और सा

रे

शीघ्रता सहित उत्पन्न होंगे। यही जमजमा है (सा), सितार वादन के क्षेत्र में आज इस जमजमें का खूब प्रयोग होता है। इस प्रकार के अलंकारिक अथवा स्पर्श स्वर का स्पर्श देते हुए किसी मूल स्वर के बजाने को गायन में खटका कहते है, किन्तु आजकल उत्तर भारत में जमजमा के अर्थ में कंपित गमक को नहीं स्वीकार किया जाता। आजकल कंपित गमक का तात्पर्य किसी स्वर पर अँगुली को कँपाने से है। गायन में आवाज कँपाकर यह गमक उत्पन्न हो सकती है।

(2) स्फुरित गमक—उक्त कंपित स्वर का बार-बार शीघ्रता से उच्चारण करते समय जब मूल-स्वर स्पष्ट रूप में उच्चारित होता है, तब उसे स्फुरित गमक कहते हैं। जैसे वीणा अथवा सितार के गांधार के परदे पर मध्यमागुंलि एवं ऋषभ के पर्दे पर तर्जनी की सहायता से अपनी ओर आघात करके 'दा' अक्षर बनाया जाए व बजा के शीघ्र पश्चात् ही मध्यमांगुलि को एक झटका देकर उठाया जाए और यह प्रक्रिया अत्यन्त शीघ्रता से बार-बार की जाए तब स्फुरित गमक निर्मित होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्फुरित गमक में मिजराव के एक ही प्रहार से दो, तीन अथवा चार स्वर एक साथ शीघ्रतापूर्वक बजाये जा सकते हैं जिसके आधार पर आज स्फुरित गमक के तीन भेद माने गये हैं।

(1) जमजमा (रे सा) अर्थात् मिज़राव के एक प्रहार से शीघ्रता से दो स्वर बजाना।

(2) मुर्की—(रे सा नी) अर्थात् एक मिजराव में तीन स्वर बजाना। मुर्की में ज़मजमा बजाने के बाद तुरन्त तर्जनी अँगुली को सा से नी के परदे पर फिसला देते हैं।

(स) गिटकिरी—(रे सा नी सा या सा) अर्थात् एक मिजराव में चार स्वर शीघ्रता से बजाना। मुर्की बजाने के बाद तुरन्त मध्यमांगुलि को फिर स के परदे पर झटके से रखने से रेसा नी के बाद 'सा' बज उठता है और इस प्रकार एक प्रहार में रेसा निसा शीघ्रता के साथ उत्पन्न हो जाता है।

कभी-कभी मुर्की व जमजमा व्यापक अर्थ में भी प्रयुक्त होते हैं। जैसे किसी भी एक से अधिक स्वरों के समूह को शीघ्रता के साथ एक मिज़राव में उत्पन्न करने को मुर्की कह देते हैं।

(3) आहत गमक—आहत गमक का अर्थ होता है किसी पर आघात करना। इस कंपन को आज जमजमा या कण-स्वर के रूप में जाना जाता है। उसी जमजमा के प्रयोग में ऋषभ को गन्धार का कण दिया जाएगा, किन्तु यह कण एक ही पर्दे पर तार खींच कर दिया जायेगा। आहत गमक में झटका देकर जोर से जम जमें से पृथक भाव दिखलाया जाता है। यदि एक परदे पर ही गम्भीरता से नी सा बज़ायें, तो आहत गमक उत्पन्न होगी, और यदि नी सा बजायें (बिना कहीं तार को खींचे) तो जमजमा उत्पन्न होगा। शास्त्रों में आहत गमक के भी अन्य अनेक प्रकार प्रत्याहत, द्विराहत आदि मिलते हैं।

कंपित गमक और आहत गमक में यह अन्तर स्पष्ट है कि आहत गमक में एक्र ही पर्दे पर उसके पश्चात् का स्वर झटके के साथ उच्चारित होता है। आहत गमक को आज खटका की संज्ञा प्रदान की जाती है। कभी-कभी कण्ठ गायन में आहत को आलंकारिक रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है।

(4) आंदोलित गमक—आंदोलित गमक का तात्पर्य होता है—स्वर को झुला देना। जब स्वर के पूर्व एवं पश्चात् के स्वर को स्पर्शसहित उच्चारण किया जाएं अर्थात् उसे झुलाया जाए तो वह आंदोलित गमक कहलाता है। आंदोलित गमक के दो रूप आज भी प्रचलित हैं। प्रथम प्रकार का वह है जिसमें कोमल गन्धार को उसके पश्चात के शुद्ध मध्यम स्वर के गम्भीर एवं किंचित मींड़ युक्त स्पर्श से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गाया जाए, जैसे म म म म । द्वितीय आंदोलन यह है कि कोमल गन्धार स्वर को उक्त प्रक्रिया द्वारा मध्यम स्वर से आंदोलित करने के तत्काल पश्चात् उसके पूर्व के स्वर ऋषभ से भी किंचित स्पर्श से झुलाया जाये और यह प्रक्रिया बार-बार उसी गति से की जाये तो आंदोलित गमक का द्वितीय रूप प्रदर्शित होता है । आज उक्त दोनों प्रकार आंदोलित गमक के रूप में प्रयुक्त होते हैं ।

(5) प्लावित गमक—एक स्वर से दूसरे स्वर तक कण्ठ को विच्छिन्न न करते हुये दो स्वरों के प्रयोग को 'प्लावित' गमक कहते हैं इसी को आजकल उत्तर भारत में मींड़ कहते हैं । एक स्वर से किसी अन्य स्वर तक घर्षण द्वारा अथवा आवाज मिलाते हुये जाना ही मींड़ है । (प ग) गायन में मींड़ शब्द का प्रयोग होता है, जिसे कभी-कभी "लचक" भी कहते हैं । सितार वाद्यों वीणा आदि में एक ही परदे पर तार को खींचकर मींड़ उत्पन्न होती है और इन वाद्यों में मीड़ का महत्व सबसे अधिक है । इसराज, दिलरुबा, बेला और सारंगी आदि गज से बजाये जाने वाले वाद्यों में तार खींचा नहीं जाता और न उसमें परदे होते हैं । अतः इन वाद्यों में तार पर अंगुली को एक स्वर से किसी भी दूसरे स्वर तक घसीट कर ले जाने से मींड़ निकल आती है, परन्तु इन वाद्यों में उस मींड़ को सूत या घसीट कहते हैं । 'घसीट' शब्द का प्रयोग कभी-कभी सितार में भी होता है । एक स्वर से अन्य किसी स्वर तक बीच के स्वर को छुआते हुये तेजी से अँगुली घसीट कर ले जाने को घसीट कहते हैं ।

(6) उल्लसित गमक—इसमें प्रत्येक स्वर अपने पूर्व के स्वर से इस प्रकार स्पर्श करता है जिससे यह प्रतीत होता है कि वह स्वर हिल रहा है; जैसे—

सा सा	रे रे	म म
रे रे स	म मरे	प पम

आदि उल्लसित प्रवृत्ति में जैसी भावाभिव्यक्ति प्रदर्शित होती है, उसी प्रकार का इस गमक के उच्चारण में कोमलता का भाव होता हैं । इसमें खटका, सरकी तथा झटके का उच्चारण नहीं होता, बल्कि हिले हुये स्वर का उच्चारण रेशम – जैसा कोमल होता है । इससे गायन-वादन में कोमलता की भावाभिव्यक्ति सम्यक् होती है ।

(7) त्रिभिन्न गमक - यहाँ 'त्रि' का अर्थ तीन सप्तक माना गया है, जिसके फलस्वरूप तीनों सप्तकों में समान स्वरों का क्रमशः तत्काल उच्चारण होता है । जैसे—म़ प़ , म प, म़ प़ , यदि मध्य सप्तक में म प गाया जाये और उसके पश्चात् शीघ्र ही वही स्वर-युगल तार सप्तक में मं पं गाया जाये और उसके पश्चात् शीघ्र ही वही स्वर-युगल मन्द्र सप्तक में म़ पं करके गाया जाये । इस प्रक्रिया में अर्थात् मध्य सप्तक में म प स्वर युगल के उच्चारण के पश्चात् तार सप्तक में उन्हीं स्वरों का गायन करते समय कण्ठ द्वारा घसीट—जैसी क्रिया दृष्टिगोचर होती है । सितार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

या वीणा-वादन में यह क्रिया घसीट कहलाती है। इसे सूत भी कहते हैं। तार सप्तक के बाद मन्द्र सप्तक में आते समय मींड़ की क्रिया का आभास होता है।

8. तिरिप गमक—इसमें स्वर का प्रयोग अत्यन्त शीघ्रता से किया जाता है। यदि यह कहा जाय कि स्वर को सम्पूर्ण मात्रा-काल में बोलने के स्थान पर एक चतुर्थांश मात्रा-काल में ही उच्चरित किया जाता है तो यह अनुचित न होगा। इसको लिखने का ढंग निम्नवत् है—सा, रे सा।

9. वली गमक—इस गमक के अन्तर्गत चार स्वरों को बार-बार शीघ्रता से गाया-बजाया जाता है कि इनके उच्चारण में अनेक वलय अर्थात् चक्र सदृश बनते प्रतीत होते हैं। जैसे सा रे ग रे ग रे सा रे इन चार स्वरों को बार-बार शीघ्रता से गाये जाने से वादन में वैचित्र्य एवं विशिष्ट मनोरंजकता उत्पन्न होती है।

10. हुम्पित गमक—हुम्पित के उच्चारण में मूल स्वर का उस राग में निषिद्ध स्वर से सहज ही स्पर्श होता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत राग माधुरी (Melody) पर आधारित है, जिसमें वाद्य या कण्ठ द्वारा स्वर को एकदम से नियत स्थान पर पहुँचाना या खड़ा स्वर लगाना रस हानिकारक माना जाता है। कभी-कभी कण या किसी गमक प्रयोग के बिना ऐसा खड़ा स्वर प्रयोग वैचित्र्य-दायक अवश्य माना जायेगा, परन्तु एक या दो ही बार इस प्रकार दो स्वरों में भली-भाँति व्यापक होकर स्वरों का सुडौल चढ़ाव हुम्पित गमक कहलाता है।

11. लीन गमक—यह गमक प्रकार किंचित मींड़ अर्थात् प्लावित गमक जैसा प्रतीत होता है। जैसे प ग के उच्चारण में प स्वर को किंचित् मींड़ देकर गांधार स्वर गाते हैं। इसके उच्चारण का पूर्ण मात्रा-काल का न होकर उसकी कालावधि का 1/4 अंश ही होता है। किन्तु दूसरी ओर पंचम स्वर पर अधिक समय तक श्वसन-क्रिया को रोक कर उस पंचम स्वर में ही लीन हो जाने से लीन गमक का बोध होता है। कभी-कभी गायक तार सप्तक से सां पर अधिक समय तक ठहरते हैं और उसी स्वर में लीन हुए प्रतीत होते हैं।

12. मुद्रित गमक—मध्य सप्तक के किसी स्वर को मन्द्र सप्तक के किसी स्वर का किंचित् स्पर्श देकर उच्चरित करने के कारण उसे मुद्रित स्वर कहा जाता है।

13. कुरुला गमक—गमक का यह प्रकार अति सूक्ष्म होता है। सा रे ग म रे गाते समय सा ऽ ऽ रे ग म गाने से इसमें ऋषभ स्वर का किंचित आभास मात्र होता है। जिसे कुरुला गमक कहा जाता है।

14. नमित गमक—इसके अन्तर्गत किंचित मींड़ का अंश परिलक्षित होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है; क्योंकि इसमें दो स्वरों के प्रयोग द्वारा तीसरे स्वर का स्पर्श किंचित मींड़ द्वारा किया जाता है ।

15. मिश्रित गमक—साधारणतया इस प्रक्रिया में दो गमक प्रक्रियाओं का मिश्रित रूप परिलक्षित होता है, इसमें वली गमक और स्फुरित गमक का मिश्रण करते हुए गायक वादक दिखाई पड़ते हैं ।

गमक के उपर्युक्त प्रकारों को उत्तरी तथा कर्नाटकीय दोनों ही संगीतकार उक्त नामों से प्रयुक्त करते हैं ।

संगीत रत्नाकर के उपरोक्त गमकों के अतिरिक्त संगीत पारिजात में भी 20 गमकों का वर्णन है, जिनके नाम है—

च्यक्ति, स्फुरित, अनाहत, शान्त, तिरिप, घर्षण, अवघर्षण, विकर्षण, स्वस्थान, अवग्रह, कर्तरी, पुनः स्वस्थान, स्फुट, शनैभ्य, सुढालु, हुम्पित, मुद्रा ।

संगीत पंचरत्न में वर्णित 6 गमकें इस प्रकार हैं ।

स्फुरित, कम्पित, लीन, स्तिमित, आन्दोलित, आहत, त्रिकभिन्न ।

कर्नाटक संगीत में इनमें से कई गमकों का प्रयोग आज भी मिलता है और वह गमक के नाम से ही होता है, किन्तु उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में गमक शब्द का प्रयोग इस अर्थ में नहीं होता, यद्यपि उपरोक्त लगभग सभी प्रकार की गमकें हमारे गायन तथा वाद्य संगीत में किसी न किसी रूप में अवश्य प्रयुक्त होती है । अन्तर केवल इतना है कि हम उन सौन्दर्य वर्द्धक विशिष्ट स्वर-कम्पनों को गमक कह कर नहीं पुकारते, वरन् उनके कुछ पृथक और स्वतन्त्र नाम लेते हैं जैसे—खटका, मुर्की गिटकिड़ी, जमजमा, मींड़ आदि । साथ ही साथ यह भी एक महत्व की बात है कि आज हम "गमक शब्द का प्रयोग निम्न अर्थ में करने लगे हैं—हृदय से जोर लगाकर गम्भीरता पूर्वक उच्चारण करके जो तान या स्वर प्रयोग किया जाता है उसे हिन्दुस्तानी संगीत में गमक कहते हैं । वास्तव में गमक की शास्त्रीय व्याख्या ही माननीय है और उसके अनेक प्रकारों में ही हिन्दुस्तानी गमक की भी एक प्रकार मानना अच्छा होगा । हिन्दुस्तानी संगीत में ध्रुपद गायन में गमक का प्रयोग बहुत होता है, नोम्-तोम् के आलाप में भी अन्तिम भाग में द्रुतलय में गमक युक्त ताने ली जाती है । ख्याल गायन में भी कभी-कभी गमक की तानें प्रयुक्त होती है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अल्पत्व-बहुत्व

[किन्ही दो रागों में उदाहरण]

रागालाप में अल्पत्व और बहुत्व का बहुत महत्व रहता था। आज भी शास्त्रीय संगीत में किसी-किसी स्वर को गौण और किसी को महत्वपूर्ण बनाकर राग विस्तार करते हैं। अल्पत्व का अर्थ है,—"किसी स्वर का राग में कम महत्व दिखाना।"

अल्पत्व दो प्रकार से दिखाया जाता है—

1—लंघन से,

2—अनाभ्यास से

1—लंघन द्वारा अल्पत्व दिखाते समय आरोह या अवरोह में कोई स्वर छोड़ दिया जाता है; जैसे—मधुवती के आरोह में रे का लंघन अल्पत्व है, क्योंकि आरोह में उसे लांघ जाते हैं। उसी प्रकार शुद्ध सारंग के आरोह में ध का स्थान लंघन अल्पत्व का है। किन्तु यदि आरोह में लंघन होते हुये भी अवरोह में वही स्वर अधिक महत्व रखेगा, तो उस राग में उसका अल्पत्व नहीं माना जायेगा। उस दशा में उसका अल्पत्व केवल आरोह का कहा जाएगा। जो स्वर राग में बिलकुल वर्जित है, उसको अल्पत्व न कह कर वर्जित स्वर कहेंगे। क्योंकि उसका तो अस्तित्व ही उस राग में नहीं है, फिर 'कम महत्व' का क्या अर्थ। उदाहरण के लिए शुद्ध सारंग में गंधार, चन्द्रकौंश में पंचम स्वर वर्जित स्वर है, इन्हें अल्पत्व का स्थान नहीं दिया जा सकता।

2—अनाभ्यास अल्पत्व तब होता है जब कि किसी स्वर का प्रयोग तो हों पर कम हो और उस पर बार-बार अभ्यास न किया जाए अर्थात् उस पर न तो अधिक बार गाया जाता है और न अधिक देर तक उस पर रुका जाता है जैसे मधुवंती में तीव्र मध्यम अनाभ्यास अल्पत्व का स्वर है। उसी प्रकार निषाद स्वर का इस राग में अनाभ्यास अल्पत्व का स्थान है।

विवादी स्वर का प्रयोग भी अनाभ्यास के अल्पत्व का उदाहरण है।

बहुत्व का अर्थ है—"किसी स्वर का राग में अधिक महत्व दिखाना।" बहुत्व भी दो प्रकार से दिखाया जाता है—

1—अलंघन से,

2—अभ्यास से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1—अलंघन द्वारा बहुत्व तब माना जाता है जब कि राग के किसी स्वर को हम आरोह अथवा अवरोह में कभी भी छोड़ न सकें और उसका कभी लंघन न हो। उदाहरण के लिए मधुवंती के अवरोह में धैवत का अलंघन बहुत्व है, उसी प्रकार इसके आरोह में ऋषभ को भी अलंघन बहुत्व का स्थान प्राप्त है।

अभ्यास बहुत्व का तात्पर्य है "किसी स्वर को बार-बार और देर तक लगाना।" जैसे शुद्ध सारंग में ऋषभ पंचम। प्रत्येक राग में वादी स्वर पर अभ्यास बहुत्व दिखाया जाता है, किन्तु कभी-कभी वादी के अतिरिक्त अन्य स्वरों पर भी अभ्यास द्वारा बहुत्व दिखाया जाता हैं;—जैसे परज में वादी-संवादी प-सं है किन्तु निषाद पर अभ्यासमूलक बहुत्व अवश्य दिखाया जाता है।

(2) रागों में अल्पत्व-बहुत्व के उदाहरण

1—मधुवन्ती

2—शुद्ध सारंग

1—मधुवन्ती—

स—अन्य सभी रागों के समान षड्ज को भी इस राग में सम्पूर्ण न्यास बहुत्व का स्थान प्राप्त है।

म॑
रे—आरोह में ऋषभ को लंघन अल्पत्व का स्थान प्राप्त है;—जैसे नि़ सा, ग॒ म॑ ग॒ रेऽसा।

यही स्वर अवरोह में अलंघन बहुत्व का स्थान ग्रहण कर लेता है।

स
उदाहरण के लिये, ग॒ रे ऽ सा, म॑ ग॒, मे ग॒ रे सा।

अवरोह में ऋषभ को बार-बार दीर्घ करके षड्ज पर न्यास करते हैं।

म॑
ग—आरोह में गंधार को अलंघन बहुत्व का स्थान प्राप्त है,—जैसे 'स ग॒ म॑ ग॒ प ग॒

म॑ स
नी धप, नि़ सा, ग॒ म॑ ग॒ रे ऽ सा।

गंधार पर मध्यम का कण लगाया जाता है।

म॑
अवरोह में गंधार के प्रयोग को न्यास बहुत्व कहेंगे;—जैसे, म॑ प, ग॒, म॑

स
ग॒ रे सा, नि़ सा म॑ म॑ ग॒, स ग॒ म प, ग॒ म॑ ग॒ प, म॑ ग॒, म॑ ग॒ रे सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

म—तीव्र मध्यम का इस राग में लंघन एवं अनाभ्यास दोनों तरह का अल्पत्व है। उदाहरण के लिए "ग् मं प, प मं ग, ध मं प, ध मं प, स ग् मं प, मं ग् रे सा" में अनाभ्यास अल्पत्व का स्थान है जबकि "प ग् ग् मं ग् प, म' ग् प" में मध्यम स्वर लंघन अल्पत्व का स्थान ग्रहण कर लेता है।

प—सम्पूर्ण न्यास बहुत्व का स्वर है, पंचम इस राग का वादी स्वर भी है। पूर्वाङ्ग तथा उत्तराङ्ग दोनों में ही। पंचम पर न्यास करते हैं। उदाहरण के लिए "ग् मं प, स ग् मं प, ध प, ध मं प, ग् मं प, ग् मं ग् मं प, ग् मं प ध प ध मं प, नि़ सा मं मं ग् स ग् मं प," आदि।

कभी-कभी ध मं की संगति में पंचम का क्षणिक लंघन भी सामने आता है; जैसे—"ध मं प, सां नी ध मं प, नी सां ध मं प"।

ध—धैवत स्वर को इस राग के आरोह में लंघन अल्पत्व का स्थान प्राप्त है, जबकि अवरोह में यही स्वर अलंघन बहुत्व का स्थान प्राप्त कर लेता है। अवरोह में कभी भी इस स्वर को नहीं छोड़ते हैं। धैवत का आरोह लंघन अल्पत्व इस प्रकार है जैसे—"नि़ सा ग् मं प नी, ग् मं प नी सां, मं प नी ध प ग् मं प सां नी सां ध मं प, ग् मं प नी" आदि—अवरोह में अलंघन बहुत्व इस प्रकार होगा, जैसे—"सां नी ध प, नी ध प, सां नी ध प ध मं प, ग् मं प नी ध प, प नी सं रे सां नी ध प, ध प, ध मं प" आदि।

नि—निषाद स्वर का इस राग में कई प्रकार से प्रयोग होता है, जैसे आरोह में निषाद न्यास बहुत्व का स्थान ग्रहण कर लेता है, बार-बार आलाप करते समय आरोह में निषाद पर न्यास करते है, परन्तु यही स्वर अवरोह में लंघन अल्पत्व और अनाभ्यास अल्पत्व का ही स्थान ग्रहण कर लेता है। कभी-कभी निषाद का वक्र प्रयोग भी सामने आता है।

उदाहरण के लिये निषाद का आरोह में न्यास बहुत्व इस प्रकार होगा—"नि़ सा ग् मं प नी, ग् मं प नी, नी सां, पनी सा, ग् मं ग मं प नी, ग् मं प नी ध प, प मं ग मं पनी" आदि।

निषाद का लंघन अल्पत्व अवरोह में इस प्रकार होगा; जैसे—

सं ध मं प, नी सां ध मं प, ग मं प नी, प नी सं रे सां नी सां ध प" आदि।

जबकि निषाद का ही अनाभ्यास अल्पत्व इस प्रकार होगा; जैसे—"सां नी ध प", इस स्वर-समूह में निषाध पर न रुक कर पचम पर न्यास करते हैं। "नी सां ध प" के स्वर-समूह में निषाद वक्र रूप में प्रयोग होता है। इस प्रकार निषाद का इस राग में अनेक रूपों में प्रयोग होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

2—शुद्ध सारंग में स्वरों का अल्पत्व व बहुत्व

रें—इस राग में ऋषभ का वादी सम्बन्धी न्यास बहुत्व है। आरोह तथा अवरोह, दोनों में ही इस पर न्यास की क्रिया दिखाई जाती है; उदाहरण के लिये,

'सा, नि सा रे, रे, नि स रे रे म—रे, म रे, नि नि सा। सारे म रे, रे म रे. रे मं प ध मं प म-रे, म रे, प रे म रे" आदि।

म—इस राग में शुद्ध तथा तीव्र दोनों ही मध्यम का प्रयोग होता है। आरोह में तो "रे म रे, प म रे म रे" में अलंघन बहुत्व का स्थान है, परन्तु अवरोह में शुद्ध मध्यम अभ्यास बहुत्व का स्थान ग्रहण कर लेता है जैसे,— "रे म-रे, रे मं प रे म-रे, रे मं प नी ध प म-रे, रे मं प म-रे, ध मं प रे म-रे" आदि।

पंचम और ऋषभ की संगति में मध्यम का क्षणिक लंघन अल्पत्व भी सामने आता है।

मं—शुद्ध सारंग में तीव्र मं को अलंघन बहुत्व का स्थान है, इस स्वर को बिना प्रयोग किये पूर्वांग के ऊपर नहीं जाते हैं। उदाहरण के लिए—

"रे मं प, रे मं ध मं प, ध मं प, रे मं म रे, रे मं प नी, नी ध प ध मं प, रे मं प नी सां, मं प नी, नी सां" आदि—

ध—धैवत का आरोह में तो लंघन अल्पत्व दृष्टिगोचर होता है और अवरोह में अनाभ्यास अल्पत्व सामने आता है। आरोह में मं प नी सां में धैवत का लंघन स्पष्ट है, इसी प्रकार रे मं प नी सां प नी सं रे सां" इत्यादि स्वर-समूहों में धैवत का लंघन अल्पत्व है, अवरोह में उदाहरण के लिए नी ध प ध मं प, सां नी धप प, सां नी प मं रे, मं प नी ध प ध मं प,

इत्यादि स्वर-समूहों में धैवत का अनाभ्यास अल्पत्व सामने आता है।

ध

"सां नी प" के स्वरों में अवरोह में भी कभी-कभी धैवत का लंघन अल्पत्व दृष्टिगत होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि धैवत का इस राग में लंघन एवं अनाभ्यास दोनों ही प्रकार से अल्पत्व है।

प—पंचम स्वर को इस राग में पूर्ण न्यास का स्थान प्राप्त होता है। आरोह "रे मं प, ध मं प, प रे मं प, मं प, नि सा रे मं प," में पंचम का पूर्ण न्यास बहुत्व दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार अवरोह में "रे मं प नी ध प, ध मं प, सां नी ध प, नी ध प,' इत्यापि स्वर संगतियों में पंचम का सम्पूर्ण न्यास बहुत्व स्पष्ट है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नि=निषाद को भी इस राग में पूर्ण न्यास का स्थान प्राप्त है, आरोह में "रे मं प नी, रे मं प नी,नी, प नी सां रे सा" इत्यादि स्वर संगतियों में न्यास का स्थान प्राप्त है, उसी प्रकार अवरोह में " मं रे नि, स रे मं नि़, प़ नि़ ध़ सा नि़ रे सा, रे नि़" इत्यादि स्वर समूहों में निषाद को न्यास वहुत्व का स्थान स्पष्ट है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिरोभाव-आविर्भाव

[किन्हीं दो रागों में उदाहरणसहित]

किसी राग को थोड़ी देर के लिए कुशलता से छिपाने को "तिरोभाव" कहते और उसके मुख्य स्वर समुदाय अथवा पकड़ का प्रयोग करके उस राग के स्वरूप को पुनः स्पष्ट करने को "आविर्भाव" कहते हैं। तिरोभाव दो प्रकार से हो सकता है—

(1) एक तो अन्य राग की छाया लाकर जैसे बसन्त गाते समय, यदि निषाद पर न्यास करा जाय, तो परज की छाया आयेगी और इस तरह से बसन्त का तिरोभाव हो जायेगा। फिर बसन्त के मुख्य स्वर द्वारा उसका आविर्भाव किया जायेगा। तिरोभाव आविर्भाव दिखाते समय पहले मुख्य राग का स्वरूप स्थापित कर लेना चाहिए, तव तिरोभाव और अन्त में आविर्भाव करना चाहिए।

(2) कभी-कभी अन्य राग की छाया न लाकर भी तिरोभाव होता है, जिसमें कुछ विशिष्ट स्वर-समूह ऐसे लगा दिये जाते हैं जिनके लगने से मूल राग छिप जाता है।

तिरोभाव, आविर्भाव की क्रिया गायन के अन्त में करनी चाहिए, जबकि राग का स्वरूप प्रतिष्ठित हो जाय।

उदाहरण—दो रागों में

1—बसन्त

2—पूरिया धनाश्री।

1—राग-बसन्त में तिरोभाव-आविर्भाव (परज द्वारा)

बसन्त=प मं ग, मं ग, मं, ध़ रें 'सं'

तिरोभाव=रे़ं सां नी ध़ नी, ध़ प (परज)

आविर्भाव=मं ध़ सां, नी ध़ प मं ग, मं ग मं ग रे़ सा।

2—पूरिया (धनाश्री द्वारा)

बसन्त=मं ध रे़ं नि ध़ नि ध़ ऽ प

तिरोभाव=मं ग प, मं ध़ प, नि ध़ प, ध मं प मं ग प (पूरिया धनाश्री)

आविर्भाव=(प) मं ग मं ऽ ग, मं ध़ सां (बसन्त)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

2—पूरिया धनाश्री में तिरोभाव एवं आविर्भाव

1—पूर्वी द्वारा तिरोभाव

पूरिया धनाश्री = प, मं ग मं रे॒ ग, सा,

तिरोभाव = नि़ सा रे॒ ग रे॒ ग मं ग, (पूर्वी)

आविर्भाव = मं रे॒ ग, प मं ध॒ प,

2—परज द्वारा तिरोभाव

पूरिया धनाश्री— नि़ रे॒ ग, मं रे॒ ग, प, मं ध॒ प,

तिरोभाव – (प) मं ग मं ऽ ग,

आविर्भाव—मं रे॒ ग, प, मं प ध॒ प, मं ध॒ नि ध॒ प,

पूरिया धनाश्री में पूर्वी परज रागों द्वारा तिरोभाव दिखाया जा सकता है। परन्तु पूर्वी राग में गंधार की बहुलता और नि सा रे॒ ग की चलन से यह पूरिया धनाश्री से भिन्न हो जाता है, उसी प्रकार मं रे॒ ग स्वर संगति और पंचम के आरोहात्मक न्यास से यह परज से भी भिन्न हो जाता है।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्हीं दो रागों में आलाप के द्वारा न्यास की क्रिया

पूरिया धनाश्री

प्रस्तुत राग में गांधार, पंचम और निषाद सम्पूर्ण न्यास के स्वर है। उदाहरण के लिए,

गांधार पर न्यास निम्नलिखित स्वर-समूहों के द्वारा प्रकट होता है—

नि़ रे_ ग_, मं रे_ ग रे_ ग, मं ग मं रे_ ग, प मं ग रे_ ग, ग, मं रे_ ग_, मं प ध_ प मं ग, मं ध_ सां, रें_ नि ध प मं ग_, मं ध_ मं ग, प मं ग, मं रे_ ग, मं ध_ प ध_ मं प मं ग, प मं ग मं रे_ ग, ध मं ग, मं ग रे_ ग, रे_ सा, इत्यादि,।

इस प्रकार वक्र और सरल दोनों रीति से सावकाश गांधार पर न्यास किया जाता है।

पंचम—पंचम का इस राग में वादी सम्बन्धी न्यास है, आरोह अवरोह दोनों क्रम पर इस स्वर पर न्यास की क्रिया दिखाई जाती है। उदाहरण के लिए—

रे_ ग मं प, प, प मं ग, मं रे_ ग प, मं ग, रे_ ग, प, मं ध_ प मं ध नी ध_ प, नि_ रे_ ग मं प, मं नी ध_ प, मं ध_ नी ध_ प, मं ध_ ऽ प, रें_ नी ध_ ऽ प, नी रें_ नी ध_ प, मं ध प, मं ग रे_ ग प, प मं ग मं ध_ सों, नी रें_ नी ध_ प, मं ध_ सां नि ध_ प, मं रे_ ग प, मं ध_ रें_ नि ध_ नि ध_ प, रे_ ग प इत्यादि।

निषाद—निषाद का प्रस्तुत राग में आरोहात्मक न्यास है, परन्तु अवरोह में इसका सरल प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए—

आरोहात्मक न्यास—मं ध_ मं ध_ नी, मं ग रे_ ग मं ध_ नी, नी मं ध नी—इत्यादि में निषाद का आरोहात्मक न्यास दृष्टिगोचर होता है।

परज

परज में आलाप के द्वारा न्यास के स्वर प्रदर्शित करना

प्रस्तुत राग में स, ग, प, नी, क्रमशः यह न्यास के स्वर हैं।

षड्ज—परज में षड्ज सम्वादी का स्थान ग्रहण करता है; अतः इस पर न्यास स्वाभाविक है। परन्तु मध्य सा के स्थान पर तार षड्ज का न्यास इस राग की प्रमुख विशेषता है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मं ग रे_ सा, मं प ध_ प ध मं प ग मं ग, रे_ सा,

मं ध_ नी नी सां, ध_ नी सां रे_ नी सां; ध_ नी सां रें_ नी सां नी ध_ सां, सां रें_ सां रें_ नि सां, नि सां गं रें_ सा, नि सां ग मं ग रे_ सां, मं ध_ नी नी सां, ध_ नि सा रें_ सां, नि सां ग मं ध_ प ग मं ध_ नी ध_ नी सां, मं ग रें_ सां, मं ध मं ध_ नी नी सां

गांधार—गांधार प्रस्तुत राग में न्यास का स्वर है राग विस्तार में बार-बार गांधार पर न्यास किया जाता है, उदाहरण के लिए,

मं प म
मं प ध_ प ग मं ग, प ध_ प ध_ मं प ग मं ग, सां नी ध_ प ग मं ग, ध_ नि सं गं मं गं रें सां, नी सां गं मं पं गं मं ग, मं ध_ सां नि, ध_ प, मं ग मं ग, प मं ग मं ग, मं ध_ नी, ध_ प ध_ मं प ग मं ग, इत्यादि।

प प
पंचम—मं प ध_ प, प ध_ प ध_ मं प, मं ध_ नी ध_ प, नी ध_ सां नि ध_
प प
प, रें_ सां नि सां नी ध_ प, मं ध_ नी ध_ सां नी ध_ प

उपरोक्त स्वर समूह में पंचम का अवरोहात्मक न्यास दिखाई देता है।

निषाद—उपरोक्त राग में निषाद का सम्पूर्ण न्यास दिखाई देता हैं उदाहरण के लिए,

ग मं ध_ नी, मं ध_ नी, ध_ नि सां रे_ नि सां नी ध_, सां नि, मं ध_ सां नि; नि सा ग मं ग मं ध_ नि, सां नि, ग मं ग मं ध_ नी, ध_ सां नि, ध_ प ध_ मं ध_ नि, नि सां नी ध_ सां नि,

———

फा० —19

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्रुपद की लयकारी—राग हिन्डोल (चौताल)

स्थाई—हिन्डोरे झूलत आज
सब मिल गोपी ग्वाल
तरुवर कदम की छाँह ।

अन्तरा—इत झूले संग हरि, उत राधा संग सखी
गावे गरे डारे बाह ।।

स्थाई

दुगुन—7वी० मात्रा से ।

सां सां	ध मं	ध सां	सां सां ध मं	ध सां मं मं	गमं ग सा
हिं डो	ऽ रे	ऽ ऽ	हिं डो ऽ रे	ऽ ऽ झू ल	त आ ऽ ज
सा सा ध़ सा	—सा ग—	मं ग —स	स ग —मं	ध मंध सां ध	नि मं ध ध
स ब ऽ मि	ऽ ल गो ऽ	पी ग्वा ऽ ल	त रु ऽ व	र कऽ द म	की छा ऽ ह
X	0	2	0	3	4

तिगुन—सम से

सां सां ध मं ध सां	मं मं ग मं ग सा
हिं डो ऽ रे ऽ ऽ	झू ल त आ ऽ ज
	0
सा सा ध सा—सा	ग—मं ग—सा
स व ऽ मि ऽ ल	गो ऽ पी ग्वा ऽ ल
2	0
स ग— मं ध मं ध	सां ध नि मं ध ध
त रु ऽ व र कऽ	द म की छा ऽ ह
3	4

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौगुन—चौथी मात्रा से

सां सां	ध सां सां ध मं	ध सां मं मं ग मं ग सा
हिं डो	ऽ हिं डो ऽ रे	ऽ ऽ झू ल त आ ऽ ज
X	0	2

सा सा ध सा - सा ग -	मं ग-सा सा ग मं	ध मंध सां ध नि मं ध ध
स व ऽ मि ऽ ल गो ऽ	पी ग्वा ऽ ल त रु ऽ ब	र कऽ द म की छां ऽ ह
0	3	4

छगुन—सातवीं मात्रा से

सां सां	ध मं	ध सां	सां सां ध मं ध सां मं मं ग मं ग सा
हिं डो	ऽ रे	ऽ ऽ	हिं डो ऽ रे ऽ ऽ झू ल त आ ऽ ज
X	0	2	0

सा सा ध सा -- ग -- मं ग -- सा	स ग -ध मं मंध सां ध नि मं ध ध
स व ऽ मि ऽ ल गो ऽपी ग्वा ऽल	तरु ऽ वर कऽ द म की छा ऽ ह
3	4

अन्तरा

दुगुन—सातवीं से

मं मं	ग मं	-- ध	मं म ग मं	-- ध सां --	ध मं ध सां
इ त	ऽ झू	ऽ ले	इ त ऽ झू	ऽ ले सं ऽ	ग ह री ऽ
X	0	2	0	3	4

सां सां गं सां	-- ध सां ध	मं ध स --	मं नि ध मं
उ त ऽ रा	ऽ धे सं ऽ	ग स खी ऽ	गा ऽ वे ग
X	0	2	0

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

		मं	
-- ग	सा ध	स ग	मं ध
ऽ रे	ऽ डा	रे व	ऽ ह
3		4	

तिगुन— सम से

मं मं ग	मं -- ध	सां -- ध	मं ध सां	सां सां गं	सां -- ध
इ त ऽ	झू ऽ ले	सं ऽ ग	ह री ऽ	उ त ऽ	रा ऽ धे
x		0		2	
सां ध मं	ध सां --	मं नि धां	मं -- गं	सा ध़ सा	ग मं ध
सं ऽ ग	स खी ऽ	गा ऽ रे	ग ऽ रे	डा ऽ रे	वा ऽ ह
0		3	4	4	

चौगुन—

मं मं	ग मं मं ग मं	-- ध सां --	ध मं ध स
	ऽ इ त ऽ झू	ऽ ले सं ऽ	ग ह री ऽ
इ त			
x	0	2	

सां सां गं सां	-- ध सां ध	मं ध सां -	मं नि ध मं
इ त ऽ रा	ऽ धे सं ऽ	ग स खी ऽ	गा ऽ वे ग
0		3	

	मं ध
-- ग सा ध	स ग मं ध
ऽ रे डा ऽ	रे बा ऽ ह
4	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छगुन— सातवीं मात्रा से

मं	मं	ग	मं	—	ध	मंमंगमं—ध	सां—धमंधसा
इ	त	ऽ	झू	ऽ	ले	ईतऽझूऽले	संऽगहरीऽ
x		0		2		0	

			मं ध
सांसांगंसां—ध	साधमंधसां—	मंनिधमं—ग	सांधसगमंध
उतऽराऽधे	संऽगसखीऽ	गऽवेगऽरे	डाऽरेबाऽह
3		4	

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धमार-पूरिया धनाश्री

स्थाई—एरी तोहे का विध समझाऊँ ।
तू तो निपट अनाड़ी ।।

अन्तरा—बैन विचारे ना सिख की एकहु ।
कहि कहि हारी ।।

दुगुन 13वी से

मं ग मंग मंध	सांनि धप मंप गमं रे ग	मंग रेसा	नि रे गमं गमं
ए री एरी तोहे	काऽ ऽवि धस मझा ऽऊँ	तूऽ तोऽ	निप ऽट ऽऽ
धनि धप मंग मंध	सां		
अना ऽरी एरी तोहे	का		
3	X	2	0

तिगुन 4$\frac{1}{3}$ मात्रा से

मं ग मं ध	सां नि ध 1 मं ग मं ध सां	नि ध प मं प ग
ए री तो हे	का ऽ ऽ 1 ए री तो हे का	ऽ ऽ वि ध स म
3	X	2

मं रे ग मं ग रे सा नि रे	ग मं ग मं ध नी ध प मं ग मं ध
झा ऽ ऊँ तू ऽ तो ऽ नि प	ऽ ट ऽ ऽ अ ना ऽ री ए री तोहे
0	3

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौगुन—सातवीं मात्रा से

मं ग मं ध ए री तो हे 3	सां नि ध प मं का ऽ ऽ वि ध x	प मं ग मं ध स एरी तो हे 2

सां नि ध प मं प ग मं रे ग मं ग का ऽ ऽ वि ध स म झा ऽ ऊ तू ऽ 0	रे स नि रे ग मं ग मं ध नि ध प मं ग मं ध तो ऽ नि प ऽ ट ऽ ऽ अ ना ऽ री ए री तो हे 3

अन्तरा दुगुन आठवीं मात्रा से

मं ग, मं - वै ऽ ऽ न ऽ x	ध ध ऽ वि 2	मं ग - मं - ध वै ऽ ऽ न ऽ ऽ 0	ध सां - - नि रे सा - वि चा ऽ ऽ रे ऽ ना ऽ 3

नि रें गं रें - सां सां नि रें नि सि ख ऽ ऽ ऽ की ऽ ए ऽ ऽ X	ध नि ध प ऽ ऽ क हु 2

नि रे ग मं ग मं क हि ऽ ऽ ऽ क 0	ध नि ध प मं ग मं ध हि हा ऽ री ए री तो हें 3

तिगुन—स म से

मं ग - मं - ध ध सां - - नि रें सां - नि
वै ऽ ऽ न ऽ ऽ वि चा ऽ ऽ रे ऽ ना ऽ सि
X

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रें गं रें - सां सां | नि रें नि ध नि ध प नि रे |
ख ऽ ऽ ऽ की ऽ | ए ऽ ऽ ऽ ऽ क हु क हि |
2 | 0 |

ग मं ग मं ध नि ध प मं ग मं ध |
ऽ ऽ ऽ क हि हा ऽ री ए री तो हें |
3 |

चौगुन--3½ मात्रा से

मं ग - 12 मं ग - मं - ध (ध) | ध सां - - नि रें सां - |
वै ऽ ऽ - - वै ऽ ऽ न ऽ ऽ | वि चा ऽ ऽ रे ऽ ना ऽ |
X | 2 |

नि रें गं रे - सां सां नि रे नि ध नि | ध प नि रे ग मं ग मं
सि ख ऽ ऽ ऽ की ऽ की ऽ ऽ ऽ ऽ | क हु क हि ऽ ऽ ऽ क
0 | 3

ध नि ध प मं ग मं ध
हि हा ऽ री ए री तोहे

नोट—सभी रिषभ और धैवत कोमल तथा मध्यम तीव्र पढ़े जायेंगे ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ तालों का विवरण

आड़ा चारताल, ब्रह्मताल, लक्ष्मी, रुद्र, शिखर, पंचम सवारी

आड़ा चार ताल

(मात्रा 14, विभाग 6, ताली 1-7-11, खाली 5, 9 13)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धि	तिरकिट	धीं	ना	तू	ना	क	त्ता	तिरकिट	धी
X		2		0		3		0	

11	12	13	14
ना	धीं	धीं	ना
4		0	

ब्रह्म ताल

मात्रा 28, विभाग 14, ताली 1-5-7-11-13-15-19, 21-23-25 पर और खाली 3-9-17 और 27 पर

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धा	धि	धि	धा	तृक	धि	धि	धा	ती	ती
X		0		2		3		0	

11	12	13	14	15	16	17	18	19	20
ना	ती	ती	ना	ती	ना	तू	ना	क	त्ता
4		5		6		0		7	

21	22	23	24	25	26	27	28
धी	ना	धागे	नधा	तृक	धिं	गदि	गन
8		9		10		0	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्ष्मी ताल

मात्रा 18, विभाग 18, ताली 1-2-3-5-6-7-9-10-11-12-13-14-15-16-17 पर, खाली 4, 8, 18 पर।

धीना	धिंधा	तिरकिट	धीना	धिंधा
X	2	3	8	4
तिरकिट	धाधा	तिरकिट	धा धा	तिरकिट
5	6	0	7	8
धीना	धिंधा	तिरकिट	तूना	किड़नग
9	10	11	12	13
तागे	ता	तिरकिट		
14	15	0		

रुद्र ताल

मात्रा 11, विभाग, ताली 1-3-4-5-9-9 और 10 पर, खाली 2-6 और और 11 पर ।

धा	तत्	धा	तिरकिट	धी	ना
x	0	2	3	4	0
तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	
5	6	7	8	0	

शिखर ताल

मात्रा 16, विभाग 5, ताली 1-5-9-12 और 14 पर ।

धा त्रक धिन नक	थुं गा धिन नक	धुम किट तक
x	2	3

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धेत् धा	तिट कत गदि गन
4	5

पंचम सवारी ताल

1. पंचम (छोटी) सवार ताल।

मात्रा 15, विभाग 4, ताली 1-4-15 पर और खाली 8 पर।

धी ना धी धी	क त धी धी ना ती धी ना	तीऽ कड़ तीना तिरकिट तूना	कत्ता धी धी ना धी धीना
x	2	0	3

2. बड़ी सवारी ताल

मात्रा 16, विभाग 8 ताली 1-5-9-11-13 और खाली 3-6-15 पर।

धि धि	धा तिट	ना किट	नागे तूना	कत्ता धीना
x	0	2	0	3

धीधी नाधी	नागे तिरकिट	तूना कत्ता
4	5	0

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Some Important Quotations

History of Indian Music :

Indian music is artistically fully developed, has a strong theoretical basis and a glorious history, extending over a span of 2000 years. It possesses all the varieties viz., Art, Music, sacred music, dance music and folk music. The beginning of Indian music is lost in the beautiful and fanciful legends of goods and goddesses, who were supposed to be its authors and patrons. The era of ancient music begins in the age of vedas. The vocal music emerged in the form of chanting the Sama-Veda. The vedic index shows a very wide variety of musical instruments in use in vedic times.

Natya Shastra :

The oldest treatise describing ancient music, "Natya Shastra" or the Science of dancing, was composed by the sage Bharat in 200 to 400 A.D. A detailed account of the Swaras, Shruti, Scale, Grama, Parent scales, Murchana, Alankar, Tan, Geet, Jati, Tal, Chand has been given in Natya Shashtra. During this period, the Jati was the basic melody upon which compositions were constructed, a universal kind of Proto-raga from which all later ragas evolved. Actually Bharata's "Natya Shastra" is the source of evolution of classical art music.

Naradi Shiksha :

It was composed by Narada in Ist century A.D. In this treatise, Narada has described the principles of Sama-Singing. Narada made reference to the male and female ragas for the first time which later on developod into raga-ragini classification of Ragas.

Brahaddeshi :

Matanga wrote "Brahaddeshi" in 6th century. In it he has described two kinds of prevalent songs known as Giti and Gana. Matanga also introduced the Raga System for the first time. He also expanded and defined Deshi music in his book. Matanga defined the raga as a "combination of notes, illustrated by melodic

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

movements, Varna, which is capable of producing pleasant sensations.

Geet Govinda.

It was composed by Jayadev, the North Indian Musician whom we can definitely locate both in time and place. He lived at the end of twelth century. Geet Govinda is a series of songs descriptive of the amours of Krishna and so belongs to the number of India's lyrical songsters connected with the Bhakti revival. Each song was known as Prabandha. The Geet Govinda is a charming lyrical composition, and has been translated into English under the name of the "Indian songs". In these songs Radha pours forth her yearning, her sorrow and her joy and Krishna assures her of his love.

Sangit Ratnakar :

"Sangit Ratnakar" is a valuable treatise on music composed by Pt. Sharangadeva in the early thirteenth century. Sharangadeva is known as the greatest of ancient Indian musical authorities and one who still inspires reverence in the minds of India's musicians. He lived in the Court of the Yadava Dynasty of Devagiri in the Deccan. Sharangadeva has tried to give a common basis to the stream of music both of North and South. In his encyclopaedic work, "Sangit-Ratnakar", he discussed the broad range of musical forms, systematized the old music theory and explained a multitude of musical terms. Sangit Ratnakar reminds of our old tradition and solves all the misconceptions at present. It is an ocean of knowledge. The classification of Ragas devised by Sharangadeva has been much taken in to by our musicians. Sharangadeva referred Shrutis, Nad, Tala and other aspects of music. He has also discussed Tala in detail, "Sangit Ratnakar" is held in high-esteem though the Ragas mentioned in this book are different from the ragas prevalent at that time.

Raga Tarangini :

"Raga Tarangini", composed by Lochan Kavi, probably belongs to the Mohammedan period. The major portion of this work is devoted to the discussion of a number of songs by a poet named Vidyapati, who flourished in the fifteenth century at the Court of Raja Shiva Singh of Tirhut. The author also describes

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

the current musical theories of his day and groups of ragas under twelve Thats of fundamental modes.

Amir Khusro :

Amir Khusro was a famous singer at the Court of Sultan Allauddin (A.D. 1295—1316). He was not only a poet and a musician but also a soldier and statesman and was a minister of two of the Sultans The quavali mode of singing—a judicious mixture of Persian and Indian models was introduced by him and several of our modern ragas are said to have been originated by him. The Sitar was modified by him. He was an extra-ordinary innovator and genius. He was a scholar, lover of music, a poet, a musicologist and statesman. He was a persian, but brought up in India. He enjoyed his musical fans as a celebrated singer and was called Shrutidar. He held many prominent positions. Before Amir Khusro's time classical songs were rendered in Sanskrit. From Amir Khusro's time, the language of the classical songs changed from Sanskrit to Braja Bhasha. Another of Amir Khusro's outstanding achievement was the cultivation and popularization of the Quawali songs. He is said to have set the ground work of the Khyal style of singing, based on Quawali style.

Swami Haridas :

Swami Haridas was a great Hindu Saint and musician who lived at Brindaban, the centre of the Krishna cult on the banks of the Jamuna, in Akbar's reign. He was considered one of the greatest musicians of his time. Tansen, the celebrated singer of Akbar's court, was one of his pupils. Swami Haridasji combined the art of singing, playing and dancing in himself. He was well versed in all three aspects of music, the North Indian music inherits much to Swamiji. He had many deciples namely, Tansen, Baiju Bawra, Ramdas, Divakar and Raja Swarsen. Swani Haridas, was born at such a time when muslim occupied the seat of Indian music and tried to tarnish its spirit. Indian music had lost its religious appeal and was on the verge of dying. Swami Haridasji was an angel at such a critical moment, who uplifted the cause of Indian music and revived its old spirit. He was a good composer. He composed several Dhrupads, Dhamars, Trivats and Chaturangs. Northern music shall always be indebted to Swamiji. He devoted his life in the worship of God and practicing music. He has been named as "Nad-Brahmyogi" in some Sanskrit epics. He realised

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

God through the medium of sound (Nada). He did not feel any temptation for the materialistic gains and lived upto his last in his cottage known as "Nidhibun-Nikunj."

Raja Man Singh :

Raja Man Singh of Gwalior, one of the greatest Akbar's Ministers was also a great patron of music and is said to have introduced the Dhrupad Style of singing. The Gwalior Court has maintained its high musical tradition to the present day.

Tansen :

The name of Tansen is unparalleled and unforgettable in the music world. He topped the list of numerous musicians in the court of Akbar and was exceptionally favoured by the Emperor. He was a glorious giant of Dhrupad. His contribution to music is in the compositions of numerous Ragas, namely, Miya-Ki-Malhar, Miya-Ki-Sarang, Darvari Kanhara. Tansen was also the originator of Rudra Veena and Rabab. He changed the language of Dhrupads from Sanskrit to Hindi. He was Nayak and Gayak both. His numerous Dhrupads are collected in "Sangit Kalpadruma". Singing of Banis was much in use at the time of Tansen. Tansen developed :

(1) Alapee geet style.

(2) Prabandh style.

(3) Dhrupad style of Music.

It was due to the great patronage of Akbar that musicians like Tansen achieved such high place in the realm of music. A singer like Tansen has not been in India for last thousand years. Hindus and muslims both have acclaimed Tansen as the greatest composer and musicians of all times. The new life and aspect which Mian Tansen gave to Indian Music has been the greatest contribution to Indian music by single individual at any time.

The disciples of Tansen divided themselves into two groups, the Rababiyas and the Binkars. Tansen the great soul expired about at the age of eighty in April 1585 A. D. at Agra, leaving, behind his immortal name in world of music-and musicians. A great fair is held every year in the month of July and August at his Tomb where musicians from far and near gather to pay their homage to this great soul and sing before the tomb and pray for his blessings.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Pundarik Vithal :

Pundarik Vithal was probably another musician of Akbar's reign. He lived at Burhanpur in Khandesh and may have been asked to go over to Delhi when Akbar took Khandesh in 1599. He wrote four books namely, "Sadragchandrodaya", "Ragamanjari" and "Nartannirnaya". These have recently been discovered in the state Library of Bikaner. Pandarika Vithal was southern Pandit as he himself states, calling himself 'Karnatika', or belonging to South. He adopted the Shudda Scale of the South and describes many northern ragas. In describing ragas he seems to make use of only fourteen Shrutis in the Octave and uses only twelve frets for his Veena.

Ramamatya :

Ramamatya a Southern musician, gives us the first detailed exposition of the Southern System in the "Swaramela Kalanidhi, written about the year A. D. 1550. This work contains the first collection of Indian ragas which are adequately described. All of them belong to the carnatic system and have shadaj as their tonic. It seems that, in the South at least ragas have now been worked out from a common tonic, indicating that instrumental music had greatly developed.

Somnath :

Somnath was a Telegu Brahmin of the East coast probably of Rajamandry. He was evidently a practical musician as well as a scholar and poet. He wrote an important book on music. "Ragavibodha" in A. D. 1609. The book is written in masterly couplets in the Arya metre. It starts with the theory of musical sounds and goes on to describe the different veenas in and how to use them. The names and position of twenty two Shrutis are given. Somnath belongs to the Southern school and classifies the ragas into primary and derivative, (Janaka and Janya) as is done in modern South Indian music. He also gives a number of melodies developed from the ragas. A translation of this work was appearing in the Indian music Journal when he met with an untimely death.

Vyankatmakhi :

Vyankatmakhi was the son of Govind Dixit and pupil of Tanappacharya, Vyankatmakhi wrote "Chaturdandi Prakishika"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

in the year 1660. This book has gained wide popularity and has been of Historical importance to both South and North. The book gives the bases of present day southern system and also of its raga-classification. The ragas are arranged under seventy-two primary ragas, called Melkartas, with a large number of derivative ragas attached to each. Pt. Vyankatmakhi also composed 24 Astha Padas (Prabandh) on Tyagraja in the same manner as Jaidev composed Prabandh on Sri Krishan. Pt. Vyankatmakhi gave music to all that it needed. His name is written in gold letters in Southern History.

Sangit Darpan :

In the northern school, "Sangit Darpan" or the "mirror of music" by Pt. Damodar Mishra, is a popular work written by Damodar Mishra about 1625 A. D., when Jahangir was emperor. This book gives a list of 200 ragas and their dhyanas. Various pictorial descriptions of the different ragas are given in this book.

Sangit Parijat :

"Sangit Parijat", one of the most important works of the Northern School, was written by Ahobala in the seventeenth century. It was translated into Persian in the year 1724. Ahobala seems to have had access to both the Ragatarangini and the Ragavibodha. Pt. Somnath fixed the exact places of the Twelve notes in terms of the length of the strings of Veena. The Shuddha Scale of the Parijata is the same as in Raga Tarangini. Ahobala recognises twenty-nine shrutis altogether in the octave but he rarely uses more than twelve to describe his ragas. He gives altogether 122 different ragas.

Bhavabhatta :

Bhavabhatta is an author of eminence, who was attached to the court of a raja named Anupasinha. His ancestors came from the province of Abhira in Malwa and his father was Janardana-bhatta, a musician at the court of Shahjahan. He was the great musician of that time, who obtained the title (Kaviraja) from the Shah. Bhavabhatta classified all the ragas under twenty thats and his Shuddha Scale is Kanakangi, the Shuddha Scale of the South. He seems to have attempted to arrange the northern ragas according to the southern system.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Sadarang-Adarang :

These were two great musicians in the court of Muhammad Shah-Rangile (1719). They were great composers and Binkars and contributed much to Indian music. They modified the Style of Dhrupad Dhamar and popularised a new style called Khyal. Upto now Dhrupad Dhamar singing was considered as the only classical music until 17th century. It was only at the end of Mughal period in the beginning of 18th century, that Khyal was much developed and began to compete with Dhrupad. Sadarang and Adarang composed a number of beautiful Khyals which are still sung all over North India till to-day. Khyal singing secured the Royal Patronage and the traditional Dhrupad singers one by one began to be converted to the new style of Khyal. Khyal singing fully developed in Delhi, Lucknow, Jaipur, Kirana, Gwalior and Indore and some styles of Khyal singing were formed called Gharanas.

Muhammad Raza :

He was a musicologist and nobleman of Patna. He wrote a critical book on music called "Nagmate-Asafi" in A. D. 1813. Mohammad Raza pronounced the various northern systems of classification to be out of date, and has no use for the raga, raginiputra basis upon which they build. He gives a new system of his own which brings together into groups of ragas which have similar features. This work is the first authority to take the Bilaval scale as its shuddha scale. This is the shuddha scale of the North to-day, His raga lakshnas are still of use for Hindustani musicians.

Maharaja Pratap Singh of Jaipur :

He called (A. D. 1779) together a conference of musical experts and artists in Jaipur in order to arrange for a standard work on Hindustani music. The book which resulted was called Sangita Sara or 'Epitome of Music'. The literary talent available does not seem to have been of a very high order, but it preserves for future reference the opinions of a body of musicians upon current thought and practices. Here also the Shudda scale is Bilaval, which by then seems to have been recognized as the regular Hindustani Shudda scale.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Karnatic music :

From about the thirteenth century, the Indian music underwent a break-up into Karnatika and Hindustani systems of music due to the North India coming in contact with the Persian culture. The south was far away from the battlefield of Empire until the time of British and so has passed through a more peaceful evolution and has clung more closely to the old ways. When the Mohammaden invasions overwhelmed the cities of the North, the sages and seers fled to the forests of the South, where they were safe from harm and were welcomed by the cultured Dravadians. These differences are reflected in the music of the North and of the south. Indian music was divided two schools of Music-Northern and Karnatic music. Karnatic music has still retained its past tradition and the purity of Indian classical music. There the temples functioned as "Patrons" for performing artists. Every temple has a large courtyard where musical functions could be held. There was a good communication between the artists and the general audience. Thus the Indian music flourished on the traditional style. Because of the openness of the system in the South and the musical interchange that was carried on, the Karnatic music developed in a highly organised manner, with very little irregularity in concept and approach.

In Karnatic music, song texes are composed in Kanarese, Telegu language, whereas Northern music is mostly composed in Braj Bhasha Dialect,

Karnatic music is characterized by a far greater degree of precision than the music of the North and is based on a very strictly organised system. The percentage of fixed compositions played by artists is much greater too. Embellishments on fixed forms is one of the prime elements of a Karnatic musical performance, whereas in North much more stress is put on improvisation-reaching out beyond the basic forms. Mridangam is most popular in South. The violen has been the most popular bowed instrument in the South. Its position is comparable to that of the Sarangi in the North.

The Karnatic musicians advocate 72 thats or parent scales, and in practice they use only 19 melas, whereas Northern system uses only 10 thats, Karnatic Tal system consists of seven basic Talas, five Jatis and Shada-Anga. Talas there have developed

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

on mathemetical calculation. There the beauty lies in rhythmic calculations.

Northern Music :

The North has been the land of the fighting races. The music of North has been subject to Persian and Arabic influences. The Parsians brought with them some of their fine musical instruments and their influence changed North Indian music. These rulers looked down upon the Hindu culture and music and therefore many scholars and musicians, disheartened by the situation, left the North and took shelter in South, The Mohammaden rulers were ignorant of the Sanskrit language and they replaced it by the Braja Bhasha dialect. Classical music continued to be restricted mostly to the Royal Courts and to a small group of healthymen. These wealthymen patronised the musicians and purchased them by giving large sum of money. They entrusted the Persian culture and art on the Indian musicians and thus Northern music developed on the different lines as that from the South. It followed the Muquam system, introduced thatas and Ragas of Persian origin.

The Beauty of tone and subtlety of Swaras is more important in Northern music. Talas developed according to the musical forms. Northern music is comparatively modern, while the Karnatic music still retains the old traditions. Sitar, Table, Sarangi and Tanpura are used in Northern Music.

V. N. Bhatkhande :

Notable contribution towards the study of music was made by men like the late Pt. V. N. Bhatkhande. He rescued music from the clutches of its vulgar caterar and popularised it among the educated class. He is known as a stalwart to Indian music, who devoted his whole life for the cause of music. He formed a notation system, by which the compositions on Indian music can be noted down in a complete way. He wrote a series of books on the theory of Indian classical music elaborating each and every point very clearly. He wrote the original works in Marathi. He classified all the Ragas in Indian classical music under the heads of ten thats or melas. He also wrote a series of books on the practical aspect of music, giving different compositions in eaeh Raga. He himself composed many good compositions under the name of Chatur Pandit. He founded the Marris College of Music

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

in Lucknow. He introduced theory of music along with musical training and organised many conferences and symposiums. Thus his contribution to music are various.

Pt. Vishnu Digambar Paluskar :

He too was a great scholar and teacher and contributed enormously to the scientific development and cultivation of Indian music. He was a follower of Gwalior Gharana of Khyal singer. Himself a superb artist, he became in the last part of his life an extremely religious saintly man and then turned to singing mostly for devotional songs. He helped the cause of the revival of music and contributed in a number of ways such as ; he evolved a system of notation which was different from that of Bhatkhande. He published a number of volumes of song compositions mostly in the Khyal style. He founded a number of music schools such as Gandharva Sangeet Mahavidyalaya in some of the major cities of India. He encouraged the cult of devotional music in public, so as to revive the old Bhajans of the poets of Bhakti Kal. His notation system is popular in Karnatic music.

Rag-Ragini Scheme :

The chief merit of the Northern system lies in the fact that Ragas have been conceived according to their male-female qualities. The musicians ascribed forms of men and women to different Ragas. This scheme has the influence of the family structure of medival period, when a man used to keep so many wives. Mainly there have been six main ragas and 6 raginees to each of the raga as described in "Sangit Darpan", "Raga Mela". The Ragas and raginees expressed different sentiments, emotions and rasas. Their mental pictures were depicted in paintings which appeared in the Mughal period. The motive behind the Raga Ragini pictures was to preserve the abstract forms of Ragas. Ragas were thought of masculine character and depicted male qualities of love, laughter and sorrows. Different views about the Raga-Raginees Scheme later on converted into different schools named as Bharata, Hanumat, Shiva and Krishna Mata.

Classification of Ragas among Thats :

It was only during the nineteenth century that Pt. V. N. Bhatkhande systematically classified all ragas into 10 thats. There

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

are no emotional similarities in such ragas coming under one thata, but those are akin to each other only in the use of notes, determining their general character in affinity with Swara structure.

Prabandh :

Prahandha was a vocal composition form, a systematic and organized type of Giti (Song) with Sanskrit texts. The word 'Prabandh' literally means anything well-knit or well fitted. Pra + Bandh + Dhatra = Prabandh. In music, Prabandh means a combination of Dhatu and Ang. Prabandh form of vocal music emerged in the 11th century because Jaideo has written 'Geet-Govinda' in the style of Prabandh. Sarangadev also devoted a whole chapter to Prabandh in his 'Sangit-Ratnakar'. He maintains that there are four components of a Prabandh, viz., Udgraha, Melapaka, Dhruva and Abhoga. The Prabandh style of music enjoyed great popularity upto the 13th century. From the fourteenth century Dhrupada began to take its place. The present form Dhrupad is an evolved form of Prabandh style.

Gamak :

The word Gamak is devoted from the root 'गम्' to go. Gamak means indicative. The oscillation of a note which pleases the listener is Gamak. Gamak points out the way how to attack a note, and how to move from one or more notes to the other or others. Gamak reveals the very nature and soul of a song. It is an ornament to Indian music. In rendering Gamak, the vocal chords are made flexible and there is a strain on the lungs. Gamak is thus the most weighty and the most difficult ornament to render. There are many varieties of Gamakas, but some of these are hardly used and the more common gamaks are about 10 in number.

Gharana :

Gharana means a school of music, in which knowledge of the handling of notes is passed on directly by aural tradition from Guru to Shishya. A Shishya learns from his guru as much practical, actually performed music as he can and dwell little on theoretical ideas. He concentrates primarily on practical music and memorizes the traditions handed down by his musical ancestors. He absorbes all that his guru teaches. It is only the special skill accumulated from generation to generation and transmitted from father to son that gives the Hindu this proficiency.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Gharanas flourished In Nort India under the numerous Hindu Rajas and Muslim Nawabs. These gharanas became more and more isolated from the main body of Indian culture during the rule of the British Raj. Gharanas mainly Gwalor, Rampur, Lucknow, Baroda, Patitala, Kirana emerge. Each Gharana is famous for certain characteristics of singing or playing. Classical music in India was also generally confined to the boundries of Gharana.

Grama :

A Grama is a particular arrangement of the Shrutis. The series of notes with their intervals was known as Grama in Indian music. The old Indian music recognised three Gramas, Shadaja Grama, Madhyama Grama and Gandhar Grama. Shadaja Grama is the scale where the chief note is taken from 'Sa' to Tar Sa. The other two grams are obtained by having the interval Shrutis counted from Madhyam and Gandhara respectively in place of Shadaja. Of these Gramas the Gandhar Gram is not on the surface of the earth. It is agreed by all that it is used in heaven.

Murchana :

Fixing the three gramas, the next series of Scales were formed by placing their main notes Sa, Ma and Ga successively in the the position of each of the other notes. Thus for each grama there were formed seven scales or twenty-one in all. This process was called Murchana, so called because the main note, place itself in the position of each other note. Each such scale was given a name. Murchana meant the method of forming scales in old days, but they are not known at present. Murchana literally means extension or gradation.

Murchana is the ancient name for the early modes in Indian music before the Raga system emerged. According to Popley's book, 'The Music of India," Murchana in South India refers to ascending and descending varna or graph like grace movements. According to Tagore the Murchana is the extending of the note, to another in the ascending as well the descending scale without any intermediate break in the disposition of the Shrutis in the interval.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi